*लाखों लोगों की सेवामें..*
**उचित दाममें**
**अच्छी चीजें...**

कलकत्ता ▾ बम्बई ▾ न्यु दिल्ली ▾ मद्रास ▾ कानपूर ▾ गोहती

ड्रिल्स
रीमर्स
कटर्स

CENTURY
नयना भिराम
सेंचुरी के कपड़ों का स्थान सदैव विशिष्ट रहा है। 'परम सुख' धोतियाँ, लिबर्टी ब्यूटि मलमल, धुली और रंगीन वायल, साड़ियाँ, काटनवेस्ट के कम्बल, चादरें, धुले एवं रंगीन टर्किश तौलिये और कलात्मक रंगीन छींट सेंचुरी की अपनी विशेषताएं हैं।
सेन्च्युरी स्पिनिंग
एंड मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी
सेंचुरी हाउस, १५९ चर्चगेट
रेक्लेमेशन बम्बई-१
मैनेजिंग एजेंटस
बिड़ला ब्रदर्स लि०

स्वादिष्ट रसोई के लिए
कुसुम
पाक-प्रणाली
अभी ही एक प्रति मँगाइये !
कुसुम पाक-प्रणाली के लिए लिखिये—
कुसुम खाद्य-पदार्थों की पोषण-शक्ति बहुत बढ़ाता है

वो कहानी जो स्वर्ग
से आरंभ होती है..
पृथ्वीपर घटित होती
है—तथा पाताल में
अंत होती है
हेमलता पिक्चर्स
निरुपा राय, मनहर देसाई, जीवन,
निरंजन शर्मा, कुमकुम, हीरा सावंत,
सुकुमार, अरविंद दूबे तथा कमला मुकर्जी
दिग्दर्शन : जयंत देसाई
संगीत * कथा * गीत
चित्रगुप्त चतुर्भुज दोशी नेपाली
नृत्य . सत्यनारायण * फोटोग्राफी : मुकुन्द पथारे
मे जे स्टि क
(मे मुग्ध दर्शकों के बीच चालू)
बुकिंग· ९-३० से ११ और ५ से ६-३०
रोज ३-१५, ६-१५, ९-१५ रविवार व छुट्टी १२-१५
देसाई फिल्म डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रकाशन

............कहिए
काश्मीर
में छुट्टी बिताएगें

स्वदेशी
काटन मिल्स कं० लि० कानपुर
द्वारा प्रस्तुत
• धोतियाँ
• साड़ियाँ
• कोटिंग
• शर्टिंग
• पापलीन
• मारकीन
तथा
बरार स्वदेशी वनस्पति सेगांव (बरार)
द्वारा प्रस्तुत
• वनस्पति
• तेल
• साबुन सदैव व्योहार कीजिये
एजेन्ट्स
जैपुरिया ब्रादर्स लिमिटेड

बिड़ला
कल्पोत्तमा
केश तैल
अनुपम गन्ध
एवं केश शोभा
के लिये
वीर-बच्चा
बच्चों की ताकत के लिये
अनुपम टानिक
बिड़ला लेबोरेटरीज, कलकत्ता २०

## फिल्मिस्तान का

साहस और वीरता से पूर्ण अत्याचार व दंड का अद्भुत कथानक

कलाकार नलिनी जयवंत ☆ देव आनन्द

निरुपा राय, प्राण, पुरी तथा अमिता

निर्देशक सुबोध मुकर्जी संगीत सचिनदेव वर्मन

**नाज (एयर कन्डीशन) तथा क़िस्मत**

रोज २-४५; ६, ९-१५ * ३, ६, ९ शनि रवि १२-०

में अपार भीड़ के बीच चालू

लिडो (जूहू) आकाश (कुर्ला), अशोक (थाना) कृष्ण (कल्याण),
रीजट (कल्याण कैंप) : अल्का (पूना) रिलीफ (अहमदाबाद)
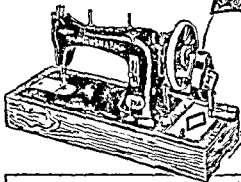
दी जय इंजीनीयरिंग वर्क्स लि. कलकत्ता

सितम्बर

# नवनीत

१९५५

[हिन्दी डाइजेस्ट]

संचालक
श्रीगोपाल नेवटिया

सम्पादक
रतनलाल जोशी

प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

सहकारी
रमेश सिन्हा : ज्ञानचन्द्र

चित्र-शिल्प: गोपालकृष्ण भोबे

## लेख-सूची

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | देह-मणि | 'चरित-चिंतामणि' से | १ |
| २. | मिथ्या सबसे बडा दुख | जातक-कथा | २ |
| ३. | ...यह चरखा-जयती | मनुबहन गाधी | ४ |
| ४ | महापुरुषो का देश | विनोबा | ७ |
| ५. | क्रोध | जैन जातक से | ९ |
| ६. | शैतान | कुमारयोगी | ९ |
| ७. | फानी | 'जोश' मलीहाबादी | ११ |
| ८ | नारी अनत-वत्सला | जगदीशचन्द्र बसु | १५ |
| ९. | ...होनी प्रबल | एड्विन अर्नाल्ड | १६ |
| १०. | शौर्य | खलील जिब्रान | १७ |
| ११ | आप थक क्यों जाते है | क्लिफोर्ड बी हिक्स | १८ |
| १२. | पूँजीवाद की जीवनघूँटी | 'वणिक्' | २४ |
| १३ | दीवारो के कान होते है | ओम्प्रकाश | २८ |
| १४. | सैयद जमालुद्दीन... | मिर्जा अदीब, बी ए | ३३ |
| १५ | इतनी सवेदनशीलता भी बुरी है | ईथेल एच बैरन | ३९ |
| १६. | शेर से भी भयानक | बेल्वी पोरचुअस | ४० |
| १७ | वर्षा की बूद | नवीनतम वैज्ञानिक शोधो से | ४२ |
| १८ | कहि न जाय का कहिये | श्रीगोपाल नेवटिया | ४७ |
| १९ | प्रकाश और कलक | रवीन्द्रनाथ ठाकुर | ४८ |
| २० | एक अद्भुत प्रतिशोध | झवेरचद मेघाणी | ५१ |

| | | |
|---|---|---|
| २१. | ...तरल सोने की मनमानी | डेनियल हलवेल |
| २२ | सर्जरी के नवीन चमत्कार | डा० एस. आर भटनागर |
| २३ | महासागर की जन्म-गाथा | डा० एस. के. कल्याणसुंदरम् |
| २४. | मानव-मन | शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय |
| २५ | भय के राज्य में प्रथम प्रवेश | कर्नल मर्दान अली |
| २६ | 'देस मेरा पंजाब नी | अमृता प्रीतम |
| २७ | उज्वल-उज्वल .. | [पंजाबी लोकगीत] |
| २८ | आप...कितने दृढ़ हैं | "द' लाइफ़ य माट हैव' में |
| २९ | बुद्धिमानी | जेम्स थेलर |
| ३०. | ...बहरों से बात करना है | जान वान |
| ३१ | पाड्या की द्यूत-क्रीडा (कहानी) | परशुराम |
| ३२ | नीलाम (कहानी) | ई. वी ल्यूकास |
| ३३ | अगम्या (उपन्यास) | मन्मथमोहन |


सुंदरी, दक्षिणी शैली
[चित्र 'प्रिंस आव वेल्स म्यूज़ियम' के सौजन्य से]

धर्मोपदेश; लंका में महेन्द्र और संघमित्रा
[चित्रकार · एम आर धर्म]




वार्षिक मूल्य : दस रुपये | नवनीत प्रकाशन लि० | प्रति अंक । एक रु
विशेष संस्करण : पन्द्रह रुपये | २४१, तारदेव, बम्बई-७ | विशेष संस्करण : डेढ़ रु

संचालक
श्रीगोपाल नेवटिया

सम्पादक
रतनलाल जोशी

वर्ष ४ : : अंक ९

सितम्बर, १९५५

## देह-मणि

महाप्रयाण के समय परमर्षि ने अपने पुत्रों को चंद्रकांतमणि दी—"वत्स, इस कामधेनुरूपिणी मणि द्वारा तुम अनंत सौख्य प्राप्त करो।' ज्येष्ठ पुत्र ने रात्रि में प्रकाश के लिए मणि का प्रयोग किया। छोटे ने प्रणय प्राप्ति हेतु उसे नगर वधू के अर्पण कर दिया। धन की भूखी गणिका ने उसे मणिकार को बेच दिया। मणिकार तो पारखी ठहरा। पूर्णिमा को रासायनिक प्रयोग द्वारा उसने अक्षय स्वर्णराशि उससे प्राप्त की। स्वयं सुख भोगा और परोपकार द्वारा करोड़ों के कष्ट मिटाये। महर्षि ने दृष्टांत समझाते हुए कहा—"आयुष्मान्, मनुष्य-देह को भी तुम वैसी ही चंद्रकांतमणि मानो।"

—'चरित चिंतामणि' से

# [illegible] दुर्लभ
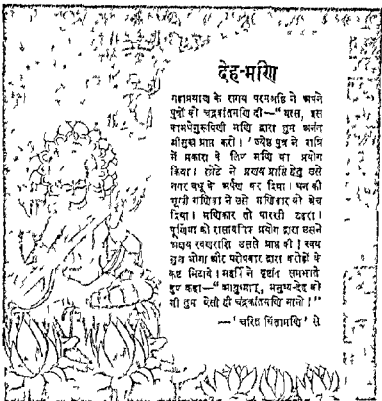
साधारण अति साधारण संसारी मनुष्यों को उनके दैनिक जीवन के विष विकारों से ऊपर उठाकर आत्म विकास के आनन्द-पथ पर आरूढ़ करना ही भगवान बुद्ध का जीवनोद्देश्य था। इसीलिए उन्होंने जो कुछ कहा, जनवाणी में कहा और जो दृष्टान्त दिये, जनसाधारण के जीवन से दिये। नीचे की जातक कथा में आपको इसी परिपाटी का सुंदर निर्वाह मिलेगा।

*

उस दिन वाराणसी में महोत्सव था। दूर-दूर से लोग उसे देखने के लिए आये थे। बहुत-से नाग, गरुड़ और भुम्मट्ठक (पृथ्वी पर विचरण करनेवाले) देवता भी पधारे और त्रयोत्रिंश भवन (बैकुंठ) से भी चार देवपुत्र उस उत्सव की ख्याति सुनकर चले आये। उनमें से एक देवपुत्र बोधिसत्व थे। चारों देवपुत्र ककार नाम के दिव्य पुष्पों से बने हार पहने हुए थे। बारह योजन का वह विराट् नगर उन फूलों की सुगंध से महक उठा। सभी के मन में उन व्यक्तियों के दर्शन की लालसा प्रबल हुई, जिन्होंने ये दिव्य पुष्पहार धारण किये थे। देवपुत्रों ने जब देखा कि, लोग हमें ही खोज रहे हैं, तो वे राजांगण में ऊपर उठ अपने प्रभाव से आकाश में स्थित हुए। जनता इकट्ठी हुई। राजा ब्रह्मदत्त, सेट्ठी तथा उपराज आदि भी आ पहुँचे। सभी की जिज्ञासा को उन्होंने यह कह कर शांत किया कि, वे त्रयोत्रिंश भवन से पधारे हैं और दिव्य ककार पुष्प की मालाएँ धारण किये हैं।

बोधिसत्व

चित्र निष्वन के एक शिल्प की सरल रेखाकृति]

लोगों ने उनसे प्रार्थना की—"स्वामी, आप तो दिव्यलोक में और दूसरी मालाएँ प्राप्त कर सकते हैं, ये हमें दे दें।" देवपुत्रों ने उन्हें समझाया कि, मनुष्य-लोक में रहनेवाले दुष्ट, मूर्ख या तुच्छ लोग उन्हें धारण नहीं कर सकते। लेकिन जिनमें ये गुण हों, वे उनके योग्य हैं। ज्येष्ठ देवपुत्र ने बताया—

"कायेन यो नावहरे वाचाय न मुसाभणे,
यसो लद्धा न मज्जेय्य स वे ककारमरहति॥"

—जो काया से किसी की कोई वस्तु हरण नहीं करता, वाणी से मिथ्या नहीं बोलता

और ऐश्वर्य-लाभ करने पर प्रमाद नहीं करता, वह कक्कारु के योग्य है।"

यह सुनकर पुरोहित ने सोचा कि, यद्यपि ये गुण मुझमें वर्तमान नहीं, फिर भी झूठ बोल कर मैं यदि यह माला ले लूँ, तो लोग मुझे इन गुणों से युक्त समझेंगे। उसने वह माला ले ली।

दूसरे देवपुत्र ने कहा—

"यस्स चित्त अहालिद्द सद्धा च अविरागिनी,
एको सादु न भुञ्जेय्य सवे कक्कारुमरहति।।

—जिसका चित्त हल्दी की तरह नहीं, अर्थात् स्थिर है और जो दृढ़ श्रद्धावान् है, किसी स्वादिष्ट वस्तु को अकेला नहीं खाता, वही कक्कारु के योग्य है।"

पुरोहित ने इन गुणों को भी अपने में बता कर दूसरी माला ले ली। तीसरे देवपुत्र ने कहा—

"धम्मेन वित्तमेसेय्य न निकत्या धन हरे,
भोगे लद्धा न मज्जेय्य सवे कक्कारुमरहति।।

—जो धर्म से धन प्राप्त करे, किसी को ठगे नहीं और भोग वस्तुओं के प्राप्त होने पर प्रमादी न बने, वही कक्कारु के सर्वथा उपयुक्त है।"

पुरोहित ने स्वयं को इन गुणों से भी युक्त बता कर चौथी माला की कामना की। चौथे देवपुत्र ने कहा—

"सम्मुखा वा तिरोक्खा
वा यो सन्ते न परिभासति,
यथावादी तथाकारी स-
वे कक्कारुमरहति।।

—जो सामने या पीठ-पीछे, किसी भी अवस्था में सन्तों की निंदा नहीं करता और अपने वचन के अनुकूल ही आचरण करता है, वह इस दिव्य माला के योग्य है।"

पुरोहित ने अपने को इन गुणों से भी युक्त बताया और चौथी माला प्राप्त कर ली। चारों देवपुत्र उसे अपने गजरे दे कर चले गये। उनके चले जाने पर पुरोहित के सिर में भयानक दर्द प्रारम्भ हुआ। वह कष्ट से व्याकुल हो जमीन पर लोटने लगा और जोर-जोर से चिल्लाने लगा—"मैंने झूठ बोल कर ये पुष्पहार ले लिये हैं। मैं इनके उपयुक्त नहीं। इन्हें मेरे सिर पर से उठा लो।" लेकिन हार किसी भी उपाय से उसके सिर पर से हटाये न जा सके, मानो वे लोहे के पट्टे से जकड़ दिये गये हों।

सात दिन तक पुरोहित भयंकर कष्ट से ग्रस्त हो रोता-चिल्लाता रहा। उसके लिए राजा भी चिंतित हो गए। सोच-विचार कर अमात्यों ने फिर से उत्सव के आयोजन की सलाह दी। राजा ने फिर उत्सव कराया। देवपुत्र इस बार भी पधारे और उनके दिव्य पुष्पहारों से फिर एक बार वह विशाल नगर महक उठा।

जनता ने उस पाखंडी पुरोहित को देवपुत्रों के सामने ला कर सीधा पीठ के बल लिटा दिया। उसने देवपुत्रों से क्षमा-याचना करते हुए जीवन दान देने की प्रार्थना की। देवपुत्रों ने सबके सामने अयोग्य पुरोहित की भर्त्सना की और चारों हार उस पर से उठा ले गये।

✗
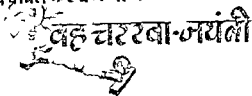
मनुबहन गांधी द्वारा लिखित एवं नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित 'बा और बापू की शीतल छाया में' पुस्तक का एक मर्मस्पर्शी अध्याय

*

सवेरे तड़के ही सबसे पहले बा ने बापूजी को प्रणाम करते हुए कहा— "लीजिये, यह मेरा अंतिम जयंती का प्रणाम है, अगली द्वादशी को मैं रहनेवाली नहीं हूँ....।"

इसके बाद हम सबने बारी-बारी से बापूजी को प्रणाम किया। रात-भर किये गये शृंगार में, सारे बरामदे में अलग-अलग रंगों से सुंदर अक्षरों में लिखे गये संस्कृत के पवित्र सूत्र और श्लोक, आकर्षक कलामय चौक और फूलों की महक, ये सब तो बाह्य आकर्षण थे, परन्तु बा की मौजूदगी में उत्सव का कुछ अनोखा ही रूप हो जाना स्वाभाविक था।

गांधीजी
[चित्र पोलिश चित्रकार फेलिक्स टोपोलास्की]
'हिन्दुस्तान टाइम्स' के सौजन्य से

प्रार्थना में आज का भजन था—

"और नहीं कछु काम के
मैं भरोसे अपने राम के
दोऊ अक्षर सब कुल तारे
वारी जाऊँ उस नाम पै
'तुलसीदास' प्रभु राम दयाघन
और देव सब दाम के।"

यह भजन बापूजी के इक्कीस दिन के उपवास के समय एक बहन ने खास तौर पर तार से भेजा था और बापूजी को यह बहुत प्रिय था।

प्रार्थना के बाद नित्यक्रम चला। बा उठीं। उनके दातून-पानी का इंतजाम कर और चाय देकर निपट जाने पर, मुझे सुशीला बहन ने

डाक्टर साहब के कमरे में आने को कहा था। इसलिए मैं वहाँ गयी। जाकर देखती हूँ, तो सभी का भेस बदला हुआ था। मीरा बहन ने दाढ़ी लगाकर सिक्खों जैसा सफेद साफा बाँध रखा था और डाक्टर साहब (डाक्टर गिल्डर) के कोट-पतलून चढ़ा लिये थे। एक हाथ में सिक्खों-जैसा कड़ा था। ऊँचाई काफी और शरीर की रचना बढ़िया थी। इसलिए बिल्कुल सरदारजी-जैसी लगती थी। डाक्टर साहब पठान बने। मीरा बहन की चूड़ीदार सलवार और सिर पर पठानों-जैसा तुर्रा निकालकर फेंटा बाँधा था। सुशीला बहन ने पादरी का वेश बनाकर गले में क्रास डाल लिया था। प्यारेलालजी दक्षिणी साधु बने। मैंने फ्राक, ऊँची एड़ी के बूट और सिर पर पारसी टोपी पहनी, जो कटेली साहब ने जुटा दी थी। इस प्रकार हम तैयार हो रहे थे कि, इस बीच बा चुपके से एक बार आकर देख गयीं और बापूजी को परोक्ष रूप में कह भी दिया।

इसी अर्से में कटेली साहब बापूजी को कह आये कि, आज आपका जन्मदिवस है, इसलिए शायद कुछ मुलाकाती आयें। परन्तु बापूजी थोड़े ही इस प्रकार के भुलावे में आनेवाले थे!

हम मीरा बहन के कमरे में बैठे और कटेली साहब ने बापूजी से कहा—"कुछ दर्शनार्थी कहते हैं कि, वे सरकार से मंजूरी लेकर आपके दर्शन करने आये हैं।" बापूजी का घूमने का समय ७॥ बजे (सवेरे) का हो गया था। इसलिए वे हमारे कमरे में आये। ज्यों ही बापूजी ने पैर रखा, त्यों ही मैं सबसे पहले उठी—"महात्मा जी, साल मुबारक! मेरा नाम जरबायी जरीवाला है। खुदा आपको बहुत-बहुत जिलाये!" मैंने यह सब-कुछ उसी भाषा में कहा, जो आम तौर पर पारसी बोला करते हैं।

[ प्रक्षालन ]

बापूजी और बा खिलखिलाकर हँसे। और, बापूजी ने तुरत ही मेरे कान एंठकर खूब जोर की थप लगायी।

बाद में मीरा बहन आयीं, पंजाबी भेंट लेकर। स्वयं ही अपना परिचय दिया और हलवे की बड़ाई की। बापूजी ने भी खूब जोर की थप जमायी। फिर आये डा गिल्डर, खजूर इत्यादि पठानी

मेवा लेकर। और, पादरी के बाद अंत में ब्राह्मण-साधु इस तरह आये, मानो आशीर्वाद देने खड़े हों।

हम सब भेंट पाकर हँसे और वहाँ से सीधे महादेव भाई की समाधि की तरफ जाने लगे। परन्तु हम ज्यों ही मैदान में निकले, त्यों ही कटेली साहब ने जमादार को डराने के लिए डाँट कर कहा—"ये कौन तीन आदमी यहाँ आ गये? दौड़ो-दौड़ो!" बेचारा रघुनाथ जमादार, साहब की ऐसी जोर की धमकी से घबरा कर दौड़ा। दरवाजे पर पहरा देनेवाले गोरे सार्जेंटों ने भी चकित होकर अपनी अपनी बन्दूकें सँभाल लीं। रघुनाथ आकर हमारे मुँह की तरफ देखने लगा और सबसे पहले बोला—"अरे, ये तो सुशीलाबाई और मनुबाई हैं।" बेचारे के दम-में-दम आया। और किसी को जल्दी पहचाना ही नहीं जा सकता था।

पूजा कर आने के बाद हम अपने रोज-मर्रा के काम में लग गये। बापूजी नहाने चले गये। इस बीच बापूजी जिस कमरे में बैठते थे, वहाँ उनके लिए आश्रम वालों ने रस्म समझकर जो खादी भेजी थी, उसे अलग-अलग ढंग से सजाया और पूनों तथा सूत के तोरण बनाये गये। बापूजी की गद्दी के ठीक सामने पूनों से ७५ लिखा। बापूजी ने सूत के ज्यादा हार बनाने की मनाही की थी। सूत के हार भी इस तरह बनाने को कहा था कि, दुबारा सूत ही के बुनने के काम में ले लिये जा सकें।

लेडी प्रेमलीला बहन ठाकरसी की तरफ से कुमकुम के साथियेवाला नारियल आया था। इसके सिवाय तीन नयी चटाइयों में खजूर, मेवे, गुड़, चावल की जोड़ी, बा और दोनों के लिए साड़ियाँ वगैरह थाल में भरकर कटेली साहब नीचे ले आये।

नहाकर बापूजी अपनी गद्दी पर बैठे। सबसे पहले कुमकुम की ७५ बिंदियाँ बनाकर, हम सबने अपने-अपने हाथ के काते हुए ७५ तारों का जो हार तैयार किया था, उस पूज्य बा ने बापूजी के माथे पर तिलक लगा कर पहनाया और प्रणाम किया। बाद में, हमने बारी-बारी से तिलक करके मालाएँ पहनायीं।

आज बा ने बापूजी के हाथ के कते हुए सूत की लाल किनारे की साड़ी पहनी थी। इस साड़ी के लिए मुझे बा ने खास तौर पर हिदायत दी थी कि, "मेरे बापूजी के हाथ की काती हुई यह एक ही साड़ी है। इसे जब मैं मरूँ, तब तू मुझे ओढ़ा देना।" मैं पंजाबी पोशाक पहनती थी, फिर भी बा ने मुझे आज लाल किनारे की दूसरी साड़ी पहनने को कहा।

सुशीला बहन ने भी लाल किनारे की साड़ी पहनी। बा कहने लगीं—"आज जेल-में तो एक बार और आखिरी बार यह बापूजीवाली साड़ी बरस-गाँठ के दिन पहन लूँ—फिर कहाँ पहननी है?"

इसके बाद गमगीन ही वह साड़ी

उनकी मृत-देह पर ओढ़ाने का कठिन काम मुझे ही करना पड़ा। अपने जीते-जी बा ने दूसरी बार बापूजी के हाथ की साड़ी आगा खां महल में कभी नहीं पहनी।

फिर हमने छोटी-सी प्रार्थना की। 'वैष्णव जन' का भजन गाया। प्रार्थना के बाद बापूजी के लिए मैं भोजन लायी। बा रोज तो बापूजी के खा लेने के बाद खाने बैठती, परन्तु आज देर बहुत हो गयी थी, इसलिए बापूजी ने अनायास ही कहा—"बा को भी परोस दो। मैं और बा एक-दूसरे का ध्यान रखकर साथ ही खा लेंगे। और, तुम लोग भी बाकर भोजन से निपट लो।"

बा ने बापूजी को आग्रहपूर्वक मीठी पपड़ी दी और दोनों खाने बैठे। बा के जीते-जी आखिरी चरखा-द्वादशी हमने खूब शान से मनायी। उसके दृश्य अभी तक मेरी आँखों के आगे इतने ताजे हैं कि, मैं चित्रकार होती, तो हूबहू चित्र खींच देती। परन्तु हमें यह कल्पना थोड़े ही थी कि, बा के लिए यह राय अंतिम ही साबित होगा।

बापूजी और बा के भोजन कर लेने पर सब कैदी प्रणाम करने आये। लेडी ठाकरसी की तरफ से जो संतरे और मौसम्बियाँ आयी थीं, वे बापूजी के हाथ से दिलवाने के लिए बा ने मँगवायी थीं। कैदी प्रणाम करते गये और बापूजी आयी हुई सारी भेंट उन्हें बाँटते गये। फिर आराम करने के लिए वे लेट गये।

मैंने बापूजी और बा के पैर जल्दी-जल्दी मले। इतने में २॥ से ३॥ बजे के सामूहिक कताई का वक्त हो गया। सबने मौन कतायी की।

४॥ बजे कैदियों को मिठाई चिवड़ा और सेव-गाँठिये दिये। यह कैदियों की सहायता से घर पर ही बनाया गया था। मीरा बहन अपनी नयी धुन में चार

## महापुरुषों का देश

यह महापुरुषों का देश है। यहाँ के लोग सम्पत्ति को उच्च स्थान नहीं देते। किसी के पास राक्षस की ताकत है या शस्त्रास्त्र हैं तो उसे बड़ा नहीं मानते।

सिकंदर की कहानी है। भारत में एक दिन वह रास्ते में जा रहा था तो उसने देखा कि एक साधु बैठा हुआ है। उस साधु ने सिकंदर को देखकर न सलाम किया न उठकर खड़ा हुआ। सिकंदर ने उससे पूछा—'तू कौन है?' उसने कहा—"मैं दुनिया का मालिक हूँ।' यह सुनकर सिकंदर घबड़ा गया। उसने सोचा कि, मेरे पास इतनी बड़ी सेना है और इसके पास तो कुछ भी नहीं है तो यह कैसे दुनिया का मालिक हो जाता है? उसने साधु से कहा—'तू नहीं जानता कि, मैं सिकंदर हूँ—इस दुनिया का मालिक।" साधु ने जवाब दिया—'मैं तो तुझे जानता ही नहीं, तो फिर तू कैसे दुनिया का मालिक बना?"

—विनोबा

पाता था। एक बार भगवान महावीर वहाँ पधारे। कायोत्सर्ग ध्यान में वे अचल खड़े थे। चंडकौशिक अत्यंत क्रुद्ध हो उन्हें दग्ध करने के लिए फुँफकारें छोड़ने लगे। किन्तु महावीर के तेज के समक्ष उनकी विष-दृष्टि असफल रही। और भी अधिक क्रोधोन्मत्त होकर वे भगवान महावीर के चरणों में बार-बार दंशन करने लगे। पर क्षमामूर्ति महावीर तब भी शांत थे। उनके चरणों से रक्त के बदले जब दूध की धार बह निकली, तब चंडकौशिक की समझ में आया कि, जिस पर वे अकारण ही क्रोध कर रहे हैं, वे सामान्य मनुष्य न होकर अवश्य ही कोई विशिष्ट पुरुष हैं। वे तत्काल ही अपना क्रोध त्याग उनके चरणों में जा गिरे।

भगवान महावीर मुस्कराये। अपनी क्षमामयी वाणी में उन्होंने कहा—"चंड-कौशिक ! जरा सोचो, तुम क्या थे और क्रोध ने तुम्हारी क्या दशा कर दी है ? क्रोध प्राणि-मात्र का घोर शत्रु है और इसके संसर्ग-मात्र से जन्म-जन्मांतर में संचित पुण्य जलकर खार हो जाते हैं।"

उनके अमृततुल्य वचनों को सुनकर चंडकौशिक को शांति प्राप्त हुई। उन्हें अपने पूर्व-जन्मों का स्मरण हुआ और वे पश्चात्ताप करने लगे। भगवान महावीर के पैरों पर सिर धुनते हुए रुद्ध कंठ से वे बोले—"प्रभु, मैंने आपके साथ ऐसा दुष्ट व्यवहार किया, फिर भी आपने मेरा उद्धार किया। मैं आपका अत्यंत कृतज्ञ हूँ।"

तीन बार प्रदक्षिणा कर उन्होंने भगवान महावीर के आदेशानुसार अनशन किया। क्रोध का उन्होंने सम्पूर्णतया परित्याग कर दिया। अहीर-वनिताओं ने दूध, दही, घी इत्यादि से उनकी पूजा की। कीड़े-मकोड़े ने काट-काट कर शरीर को छलनी बना दिया ; किन्तु वे चुपचाप लेटे रहे। भगवान महावीर की वाणी उन्हें शांति प्रदान करती रही। अंत में, नियत समय पर मृत्यु को प्राप्त कर वे आठवें देवलोक (सहस्रसार) में देव-रूप में प्रकट हुए।

*

एक बार नेहरूजी जब लखनऊ की एक सार्वजनिक सभा में भाषण देने के लिए खड़े हुए, तो दर्शकों के बीच कुछ व्यक्तियों के झगड़ पड़ने से सारी व्यवस्था असंतुलित हो गयी। कुछ क्षण तक तो नेहरूजी लोगों के शांत होने की प्रतीक्षा करते रहे ; किन्तु जब हो-हल्ला नहीं रुका, तो क्रोधित हो स्वयं भीड़ की ओर झपटे। अंगरक्षकों ने उन्हें पकड़ लिया। नेहरूजी अपनी पूरी ताकत लगाकर छूटना चाहते थे ; किन्तु पकड़ मजबूत थी। उनका चेहरा तमतमा उठा—उन्होंने घूँसे भी चलाये ; परन्तु अंगरक्षकों ने उन्हें छोड़ा नहीं। तब तक पुलिस ने भीड़ पर काबू पा लिया। सभा में सर्वत्र शांति छा गयी। अंगरक्षकों ने नेहरूजी को छोड़ दिया। नेहरूजी का गुस्सा भी तुरत ही उतर गया। पुन: मंच पर चढ़ कर टंडनजी और पंतजी से हँसते हुए बोले—"आपने मेरी कुश्ती देखी ?"

—एम. सिद्दीकी

*

उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि-शब्दशिल्पकार 'जोश' मलीहाबादी द्वारा लिखित 'फानी' के जीवन की कुछ छिट-पुट झाँकियाँ

★

अपने प्यारे और जमाने के सताये हुए शायर 'फानी' बदायूनी से मैं उस जमाने में मिला था, जब मेरी मसें भीग रही थीं और उनकी सफेद दाढ़ी के बाल सख्त हो चुके थे। हाय! यह भी क्या जमाना था—'दुनिया जवान थी, मेरे अहदे शबाब (जवानी के समय) में!'

'फानी' उस जमाने में लखनऊ में वकालत करते थे। लेकिन वकालत में उनका दिल नहीं लगता था और लगता भी क्यों? एक तो शायर, दूसरे ये ताजा वारिदाने-बिसाते-हवाये-गुल (बहार के नये विकसित पुष्प) यानी एक तो करेला और दूसरे नीम चढ़ा!

शौकतअली खाँ 'फानी'
[चित्र : बी. एन. ओके]

कारो-बार दिन-ब-दिन बिगड़ता गया। आखिर एक रोज उनकी माली हालत (आर्थिक दशा) बिलकुल बिगड़ गयी और दूसरी तरफ उनके इश्क (प्रेम) की बस्ती में एक ऐसा जलजला (भूचाल) आया, जिसने पूरा नक्शा ही उलट दिया। लाचार, बोरिया-बिस्तर बाँधा और यह कहते हुए लखनऊ से आगरा चले गये—

जाता हूँ आरामों लिये कूचे से यार के।
आता है जी भरा दरो-दीवार देखकर॥

'फानी' के आगरा चले जाने के बाद, मेरे सिर पर भी उन्हीं की तरह तूफानी बादल गड़गड़ाने लगे और कुछ ऐसे टूट-टूटकर बरसे कि, मुझे भी हैदराबाद चला जाना पड़ा। 'फानी' को आगरे में भी चैन न मिला। उस जमाने में वहाँ 'हाफिज', 'इमामुद्दीन', 'छम्मो जान', 'लतीफ अहमद', 'मैकश', 'मख्मूर' और 'मानी' सभी मौजूद थे और उनकी हिम्मत बँधाते थे; लेकिन इस जले-तन का यही हाल था!

आ गया जब कोई,
कर लीं चार बातें उससे भी।
फिर वही सिर फोड़ना,

नहीं गया और जब उन्होंने दुबारा कहा—"आप खामोश हैं", तो हँसी के साथ मेरे मुँह से 'जी-जी' निकला। मेरी इस 'जी-जी' पर उन्होंने कहा—"आप लख-नवी तहज़ीब के नाम-लेवा हैं और हँस-हँस कर 'जी-जी' कह रहे हैं!" फिर तो मेरा सीना ही फट पड़ा। "अरे, मर गये", कहता हुआ उठा और 'फ़ानी' की तरह मेरे मुँह से भी उठने-उठने तोप के गोले की तरह एक फटदार (कहकहा) निकल गया। फिर मैं कहकहे मारता हुआ 'फ़ानी' की उसी चारपाई पर आकर लेटने लगा, जिसपर 'फ़ानी' हँसी के मारे लोट रहे थे।

अभी हम लोट ही रहे थे कि, महल में बुनिया की पों-पों की आवाज आयी। हम दोनों हँसी के मारे-हुओं ने खिड़की से सिर निकाल कर देखा, तो अल्लामा मारे गुस्से के काँपते हुए, सोई हुई बुतिया का पाँव कुचल कर बाहर जा रहे थे।

इस किस्से के बाद अल्लामा ने हमसे मिलना छोड़ दिया। हमने भी उन्हें अपनी सूरत नहीं दिखायी। क्या मुँह लेकर अपनी सूरत दिखाते?

एक और दफा की बात है। रात का वक्त था, महफ़िल जमी हुई थी। 'फ़ानी' गुनगुनाते-गुनगुनाते एकदम चौंक पड़े। मुझसे कहा—"जोश, क्या ग़म गलत कर रहे हो?" मैंने हँसकर कहा—"तो और क्या करें?" उन्होंने गर्दन लम्बी करते हुए कहा—"अरे ज़ालिम, ग़म गलत करने की चीज नहीं। यह तो एक अमानते-इलाही (परमात्मा की धरोहर) है। इसे गलत करके अमानत में खयानत (धरोहर का अपव्यय) करते हो।"

मैंने कहकहा लगाकर कहा—"अरे फ़नियां, तू तो ग़म की वालिदा (माँ) है अपने बच्चे को दूध पिला, छाती से लगा, पालपोस कर जवान कर दे, यारों को इस इलाही-अमानत में क्या वास्ता-

बर्क से करते हैं रोशन,

शमे-मातमखाना हम।

—हम तो मातमखाने की शमा को बिजली से रोशन करते हैं।" इस बात पर तमाम महफ़िल झूमने लगी। मैंने फिर कहा—"भाइयो, देखो इस 'फ़ानी' की तरफ। यह पूरी दुनिया एक बड़ा इमामबाड़ा है और 'फ़ानी' एक ताजिया है, जो मुद्दतों से इसमें रखा हुआ है।" महफ़िल कहकहों के शोर में झूमने डूबने और उभरने लगी। 'फ़ानी' अजीब-सी नजरों से देखते रह गये।

'फ़ानी' की शायरी के बारे में क्या कहूँ? 'फ़ानी' ही वह आदमी था, जिसने गजल को ग़ैर-फ़ितरी (प्रकृति-विरोधी) और बेमानी (अर्थहीन) से फ़ितरी (प्रकृति-अनुकूल) और मानीदार (सार्थक) बना दिया। जो उनके दिमाग ने सोचा और जो उनके दिल ने महसूस किया, उसी को उन्होंने शायरी का लिबास पहना दिया। 'फ़ानी' का कलाम बाकी रहेगा—इसलिए कि, उसमें खुलूस (निष्ठा) है, वलवले (उद्गार) हैं और कैरेक्टर (चरित्र) के जौहर कूट-कूट कर भरे हुए हैं।

☆

# अनंत-वत्सला

भारतीय नारी के चरम श्रद्धालु रूप का स्व. जगदीशचंद्र बसु द्वारा एक शब्द निरूपण

★

एक दिन सामने की गली के मोड पर मैंने एक भिखारी को पडे देखा, जो अपनी पंगुता के कारण सबका ध्यान आकृष्ट कर उनसे दया की भीख माँग रहा था। राहगीरों की करुणा को द्रवित करने के लिए वह फूट-फूट कर रो रहा था। मुझे उसका यह स्वांग बिल्कुल पसंद नहीं आया। थोडी देर में फटी-सी साडी पहने एक स्त्री उधर से निकली। भिखारी का आर्तनाद सुन कर वह क्षणभर ठिठकी और अपने अंचल के छोर पर बँधा एक पैसा उसे देकर वहाँ से चली गयी।

मेरे मन को प्रतीति हुई, मानो वह पैसा उसकी कुल जमा-पूँजी हो। अतः जिस करुणा और स्नेहशीलता का परिचय उसने दिया, उससे नारी की मातृरूपिणी जगद्धात्री मूर्ति आँखों के आगे मूर्तिमान हो उठी!

एक बार मैंने १०-१२ वर्ष के एक बच्चे को देखा, जिसे बचपन में एक बाघिन उठा ले गयी थी। भोले शिशु ने भूख से कातर हो बाघिन का स्तनपान करने की चेष्टा की। बाघिन के भीतर भी आखिर माता का ही मन तो था! इसी से उस खूँख्वार बाघिन ने उस शिशु को स्वयं अपने ही शिशु की तरह पाला और एक दिन उसकी रक्षा में अपने प्राण भी दे दिये।

नारी के हृदय में संतान-स्नेह का जो सरस स्रोत बहता है, उसी से इस जगत में इस अनंत वात्सल्य की अवस्थिति है। हे वात्सल्य स्रोतस्विनी नारी, क्या तुमने कभी यह भी विचार किया है कि, जिस वसुंधरा को तुमने अपने आंतरिक तेजोबल से गौरवान्वित किया है, उस पर तुम्हारा क्या स्थान है? आज तो शांति के स्थान पर इस संसार में संघर्ष-ही-संघर्ष के बिगुल बजाये जा रहे हैं। और, तुमने कभी क्या यह भी सोचा है कि, जिस पुरुष नाम के सहचर पर तुम निर्भर हो, वह क्या घोर दुर्दिन के समय, घोरतर लांछना से तुम्हारी रक्षा कर सकेगा? वाक्य के अतिरिक्त तुम्हारे पास कोई अस्त्र नहीं। कौन तुम्हारे बाहु सबल करेगा, हृदय की शक्ति को दुर्दम रखेगा एवं मृत्यु के भय को दूर करेगा? यह सब शिक्षा तो मातृ-गर्भ से ही प्राप्त हो जाती है। पर तुम्हारी दीक्षा क्या है, जिससे तुम अपनी संतान को मनुष्य बनाने में सफल होगी? कठोर साधना अथवा विलासिता—इन दो में से तुम कौन-सा पथ ग्रहण करना पसंद करोगी?

✤

# होनी प्रबल

सुप्रख्यात पुस्तिका 'लाइट आव एशिया' के लेखक एडविन अर्नाल्ड द्वारा लिखित होनी ( डेस्टिनी )-सम्बन्धी एक प्रामाणिक शब्द चित्र

*

अरब के दमिश्क शहर में उन दिनों एक बड़ा पराक्रमी सुल्तान राज्य करता था। वह बहुत ही दयालु और न्यायी था। प्रजा निरंतर उसके दीर्घायु होने की कल्पना करती रहती। उसके महल में दूर-दूर देशों के गुलाम उसकी सेवा के लिए नियुक्त थे।

एक दिन दोपहरी में जब वह अपने शयनागार में आराम कर रहा था, तो उसके खास गुलाम ने आकर कोर्निश बजायी और खड़ा हो गया। भय से उसका चेहरा सफेद पड़ गया था और अंग प्रत्यंग काँप रहे थे। लगता था, जैसे बोलने की कोशिश करने पर भी शब्द उसके गले में अटक कर रह जाते हों।

सुल्तान ने देखा, तो क्षणभर आश्चर्य-अवाक् रह गया। बाद में, उसने उसे सान्त्वना दी और धैर्य बँधाते हुए उसकी इस दशा का कारण पूछा। गुलाम बड़ी मुश्किल से हकलाते हुए बोला—"जहाँपनाह! मुझे एक घोड़ा मँगवा दीजिये?

'घोड़ा?" सुल्तान का आश्चर्य बढ़ता जा रहा था।

"जी हाँ, सबसे तेज घोड़ा!" गुलाम की वाणी में भय का समावेश था।

'किन्तु बात क्या है?"

'गरीबपरवर!" गुलाम ने टूटे-फूटे शब्दों में परिस्थिति समझाने की कोशिश की—"अभी बाग में मुझे मौत मिली थी। यकीन कीजिये, जहाँपनाह! साक्षात् मौत! उसने बताया, वह मुझे अपने साथ ले चलने के लिए आयी है।"

'क्या बकते हो?" सुल्तान चीखा।

गुलाम उसके पैरों पर जा गिरा। गिड़गिड़ाकर बोला—"खुदा की कसम! झूठ नहीं बोलता हूँ, हुजूर! किसी प्रकार उसे चकमा देकर भाग आया हूँ और अब उससे बचने के लिए इसी क्षण बगदाद भाग जाना चाहता हूँ।... दया कीजिये, खुदावंद! सबसे तेज घोड़ा

निर्दिष्ट

[ चित्र क्षितीपीन के चित्रकार केनेथ लियो गार्सिन के एक चित्र की प्रतिकृति ]

मँगवा दीजिये। जल्दी, जहाँपनाह!"

सुल्तान को यह सब-कुछ बड़ा अजीब-सा लगा। किन्तु इस गुलाम के ऊपर उसका विशेष स्नेह था। तत्काल ही घोड़ा मँगवाया गया और गुलाम सुलतान से विदा ले, घोड़े पर सवार हो क्षणभर में आँखों से ओझल हो गया।

सुल्तान को अभी भी गुलाम की कहानी पर यकीन नहीं आ रहा था। उसके कथन में कितनी सचाई है, इसकी जाँच करने के लिए वह स्वयं बाग में गया। सचमुच ही, वहाँ मौत घूम रही थी।

स्वभावतः ही सुल्तान को क्रोध हो आया। कुछ रुष्ट स्वर में उसने कहा—"तूने मेरे प्रिय गुलाम को इस तरह क्यों भयभीत कर दिया? क्यों उसके पीछे पड़ी हुई है?"

मौत हँसी। बड़ी भयानक हँसी थी वह। बोली—"मैंने उसे भयभीत कर दिया? बेकार की बातें हैं। उसे यहाँ देखकर मुझे तो स्वयं आश्चर्य हुआ। तुम्हें ज्ञान नहीं कि, जिस दिन उसने जन्म लिया था, उसी दिन मेरी और उसकी मुलाकात के लिए आज की तिथि निश्चित कर दी गयी थी—शाम को, शहर बगदाद में!"

## शौर्य

संयोगतः एक शेर और एक आदमी साथ-साथ जा रहे थे। बातों-ही-बातों में दोनों में मतभेद हो गया कि, कौन अधिक बलवान है? चलते-चलते उन्हें एक शिल्प मिला, जिसमें एक ओजस्वी मनुष्य शेर के जबड़े पकड़ कर उसे चीर रहा था।

मनुष्य ने विजयोल्लास से कहा—"देख लिया न मनुष्य का शौर्य?"

"क्या? इसका निर्माता भी तो एक मनुष्य ही है—" शेर ने तेवर बदलते हुए कहा—"प्रत्यक्ष में प्रमाण की क्या जरूरत? आओ, यहीं हमारे शौर्य की परीक्षा हो जाये!" —खलील जिब्रान

★

## ...मरना अधिक श्रेयस्कर समझूँगा

सन् १९०७ में सूरत के कांग्रेस-अधिवेशन की समाप्ति पर लोकमान्य तिलक जब पूना लौटने के लिए वहाँ से स्टेशन जाने को तैयार हुए, तो लोगों ने सलाह दी—"आप पुलिस की मदद लेकर जाइये। अधिवेशन की असफलता से प्रोत्साहित हो, कुछ बदमाश रास्ते में जमा हैं और वे निश्चय ही आपको चोट पहुँचायेंगे।" तिलक ने सहज भाव से उत्तर दिया—"पुलिस की मदद ले पहुँचने के बजाय, मैं अपने देशवासियों के हाथ मरना अधिक श्रेयस्कर समझूँगा।"

—ए आनंद

★

# आप थक क्यों जाते हैं

'पापुलर-मेकेनिक्स' में प्रकाशित क्लिफोर्ड बी. हिक्स के एक लेख के आधार पर

★

थकान किसे अधिक आती है—दिन-भर दफ्तर में काम करनेवाले पति को या घर-गृहस्थी में लगी पत्नी को? श्रम किसे अधिक करना पड़ता है—गृह-कार्य में लगी महिला को अथवा उस महिला को, जो जीविकोपार्जन के लिए दफ्तर में काम करती है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर वैज्ञानिक स्तर पर ढूँढ निकालना आज अत्यन्त आवश्यक है।

यद्यपि थकान का प्रश्न ऐसा है, जिसका अनुभव मनुष्य अनन्त काल से करता चला आ रहा है, तथापि यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है कि, अभी तक इस सम्बन्ध में अनुशीलन-कार्य नहीं के बराबर ही हुआ है। इस प्रश्न का कि, आदमी थकता क्यों है, अभी तक यही उत्तर दिया जाता रहा है—"परिश्रम करने से थकान आती है और परिश्रम ही थकान का कारण है।" लेकिन प्रश्न का समाधान इस उत्तर से नहीं होता। सही समाधान के लिए तो प्रश्न को वस्तुतः इस रूप में रखना चाहिए कि, आखिर श्रम करने से मानव-शरीर में ऐसा कौन-सा परिवर्तन होता है, जिससे कारण वह थकान अनुभव करता है? क्या श्रम से मनुष्य की नाड़ी की गति में, श्वास क्रिया में अथवा रक्त में मिश्रित रासायनिक द्रव्यों में कुछ परिवर्तन होते हैं? यदि हाँ, तो उन परिवर्तनों का थकान से क्या सम्बन्ध है?

औषधि-निर्माण करनेवाली ड्यूपाँट कम्पनी नामक एक संस्था ने इस दिशा में बहुत ही गहन अध्ययन और अनुशीलन प्रारम्भ किया है। ५०-वर्षीय डाक्टर ल्यूसीन ब्रूहा नामक सुप्रख्यात शरीर-शास्त्री इस अनुशीलन-कार्य के अध्यक्ष हैं।

डाक्टर ब्रूहा का कथन है कि, चिकित्सा के लिए भी थकान की वैज्ञानिक परिभाषा बनाना कठिन है। ऐसे, निष्क्रियता की ओर झुकाव, थकान का सबसे प्रमुख लक्षण है। थकान वस्तुतः तीन किस्मों की होती है—शारीरिक, स्नायविक और मानसिक। हममें से अधिकांश लोग इनमें से किसी-न-किसी ढंग की थकान के शिकार होते ही हैं। अभी तक स्नायविक और मानसिक थकान की माप का कोई साधन वैज्ञानिकों के पास नहीं है; लेकिन शारीरिक थकान और उसका प्रतिफल, दोनों ही की माप आज आसानी से जानी जा सकती है। अतः इससे सहज ही आशा की जाती है कि, इस साधन

द्वारा शारीरिक श्रम की माप करके हम भविष्य में थकान के कारण को ही कम करने अथवा उसे पूर्णत समाप्त कर देने में समर्थ हो सकेंग।

डाक्टर वूहा मानसिक और स्नायविक थकान से अधिक शारीरिक थकान को ही महत्व देते हैं। उनका कहना है कि, अधिकारा लोग शारीरिक थकान के ही शिकार होते हैं। जो कुश्ती लडता है अथवा वजन उठाता है, वह व्यक्ति सबसे अधिक शक्ति का क्षय करता है। लेकिन इसका यह अर्थ नही है कि केवल अधिक श्रम करनेवाले ही थकते हैं। थकान का अनुभव तो दफ्तरो में फाइल उलटनवाले क्लर्क घर म काम करनेवाली महिला अथवा बैंक के काउटर पर बैठनवाले खजाची को भी होता ही है।

[प्रतिकूल पोशाक भी थकावट पैदा कर सकती है। चित्र में बर्फ की पोशाक पहने एक स्त्री की थकान को मापा जा रहा है।]

विज्ञान स्नायविक अथवा मानसिक थकान के चक्कर म नही है। सम्भव है कभी वह उनके लिए भी माप ढूँढ निकाले अथवा उनका उपचार ढूँढन की चेष्टा करे, परन्तु अभी तो उसका सारा ध्यान शारीरिक थकान के कारण और उपचार ढूँढने में ही लगा हुआ है।

शारीरिक शक्ति तथा थकान को भलीभाँति समझने के लिए किसी बैंक के हिसाब से उसकी उपमा दी जा सकती है। जब हम विश्राम करते हैं तो हम शरीर के जमा-खाते म शक्ति जमा करते हैं और जब हम श्रम करते ह तो जमा-पूँजी म से निकाल कर शक्ति व्यय करते हैं। यदि शक्ति का क्षय जमा की अपेक्षा अधिक हो जाय तो जिस प्रकार बैंक मे अतिरिक्त रुपया निकाल लेने पर पूरा करना कठिन हो जाता है उसी प्रकार क्षय की गयी शक्ति की पूर्ति भी कठिन है।

वह कौन-सी स्थिति है जब व्यक्ति का क्षय उसके संचय से अधिक हो जाने की आशंका हो सकती है? इस सम्बन्ध म डाक्टर वूहा बड अद्भुत और कौतूहल-वर्द्धक ढग का प्रयोग कर रहे है। जिस यत्र की सहायता से वे अपना अनुशीलन-कार्य कर रहे हैं, वह भी कुछ कम कौतूहलप्रद नही है। इस यत्र का निर्माण फ्रास के एक इजीनियर ने किया है जिसका नाम लामे लारु है। अभी तक विश्व म इस ढग

के केवल दो ही यंत्र हैं—एक डाक्टर गूहा की प्रयोगशाला में और दूसरा फ्रांस में। उस मशीन में एक 'प्लेटफार्म' बना है, जिस पर किसी व्यक्ति को बैठाकर विभिन्न स्थितियों में काम कराया जाता है और वह मशीन यह बताती रहती है कि, वह व्यक्ति किस स्थिति में कितनी शक्ति का क्षय कर रहा है।

अभी तक वैज्ञानिक सिर्फ काल और संचालन के रूप में मनुष्य के कार्य को मापते रहे हैं। उदाहरणार्थ, यदि एक व्यक्ति १०० रतल का बोझ २ फुट ऊपर उठा लेता है, तो वैज्ञानिकों की माप के अनुसार उस व्यक्ति ने २०० फुट रतल काम किया। पर डाक्टर गूहा का कथन है कि, जहाँ तक मानव-शक्ति के क्षय का प्रश्न है, यह हिसाब बिल्कुल ही गलत है, क्योंकि इसमें उसकी उस शक्ति के क्षय का कोई उल्लेख नहीं है, जो सामान उठाने के लिए उसे अपने अंग के ऊर्ध्व-भाग के संचालन में करना पड़ा। इसके अतिरिक्त बोझ ऊपर उठाने के बाद, उसकी गति रोकने में उसे जिस शक्ति का क्षय करना पड़ता है और उस बोझ को उठाते समय उसे हिलने-डुलने में जिस शक्ति का क्षय होता है, उसका उल्लेख भी इस हिसाब में नहीं आता।

डा. गूहा अन्य वैज्ञानिकों की तरह मनुष्य के श्रम से सिर्फ उस अंश की ही माप नहीं करते, जो उपयोगी हो; वरन् वे उस कार्य को करने में क्षय होनेवाली सम्पूर्ण शक्ति की माप करते हैं। और, इस कार्य में उनका यंत्र बड़ा सतर्क है। उस यंत्र के 'प्लेटफार्म' पर यदि एक चूहा भी दौड़े, तो वह यह अंकित कर देता कि, 'प्लेटफार्म' पार करने में चूहे ने कितनी शक्ति का क्षय किया है। यदि कोई व्यक्ति उस मशीन के 'प्लेटफार्म' पर बैठे और काम न करे, तो उसकी नाड़ी के चलने का ही अंकन वह मशीन कर देगी।

उस मशीन का 'प्लेटफार्म' तिकोना है। उसकी तीन सतह हैं। उन तीनों सतह के बीच में त्रिकोण के कोनों पर कुछ क्रिस्टल (रवे) हैं। ये क्रिस्टल बिजली की हल्की-से-हल्की शक्ति को भी घोषित करने में समर्थ हैं। इन क्रिस्टलों का सम्बन्ध एक 'रेकार्ड' से है, जिसमें पेंसिल लगी होती है और वह इस पेंसिल की सहायता से ग्राफ-कागज पर मानव की हर गति का अंकन कर देता है।

लोगे लाह की इस मशीन के 'प्लेटफार्म' पर यदि किसी व्यक्ति को खड़ा कर उससे ४ रतल का बोझ उठाने को कहा जाये, तो जो प्रतिफल वह मशीन अंकित करेगी, उसमें ४ रतल से कहीं अधिक बोझ उठाने का उल्लेख आयेगा; क्योंकि वह व्यक्ति ४ रतल के बोझ के साथ ही अपनी भुजा भी तो ऊपर उठाता है। डाक्टर गूहा का कहना है कि, व्यक्ति जितनी शक्ति भुजा-संचालन में व्यय करता है, उससे कहीं अधिक शक्ति का क्षय, उसे संचालन रोकने में करना पड़ता है।

अब उस मशीन के कुछ अन्य मनोरंजक हिसाब सुनिये। एक आदमी छत पर रंग लगा रहा था। उसके बाद, एक औरत को कपड़े पर लोहा करने को कहा गया। मशीन से पता चला कि लोहा करने वाली यह औरत, छत में रंग लगानेवाले की अपेक्षा दूनी शक्ति का क्षय करती है। और, एक व्यक्ति, जो चार ड्राअरवाले केबिनेट में कागज फाइल करता है, वह लोहा करनेवाली नारी की अपेक्षा भी दूनी शक्ति का क्षय करता है।

शक्ति-क्षय के इस हिसाब को रकम में परिणित कर दिया जाये, तो कहा जा सकता है कि, नीचे से गारे और ईंटों को उठाने में एक राज ६१६ रकम शक्ति का क्षय करता है—हाथ को सिर के ऊपर तक उठाने और उसे नीचे करने में मनुष्य ६२५ रकम शक्ति का क्षय करता है और एक सैनिक अपने शरीर को नीचे की ओर झुकाने में २७६ रकम शक्ति का क्षय करता है। इस प्रकार एक कागज का टुकड़ा उठाने तक का हिसाब यह मशीन बता देती है। उदाहरणार्थ, नीचे के ड्राअर से एक परत कागज निकालने में औसतन १५४ रकम शक्ति का क्षय होता है।

डाक्टर ब्रह्मा के इन प्रयोगों का केवल सैद्धान्तिक महत्व हो, यह बात नहीं। उनका प्रयोगात्मक महत्व भी है। एक राज दीवार बना रहा था। उसके लिए ईंटें और गारा जमीन पर रख दिये गये थे। उन्हें उठा-उठाकर उसे दीवार बनानी पड़ रही थी। फिर ईंट और गारा कुछ ऊँचाई पर रख दिये गये ताकि उन्हें लेने के लिए उसे झुकना न पड़े। मशीन से पता चला कि, ईंट और गारा ऊपर रहने से उस राज का शक्ति-क्षय पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गया। डाक्टर ब्रह्मा का कथन है कि, इन प्रयोगों से हम एक दिन उस विधि को निश्चित करने में समर्थ हो जायेंगे जिससे काम करने में मनुष्य को कम थकना आये।

यह मशीन यह भी बता देती है कि, कौन व्यक्ति किस काम को करने के योग्य है। एक बार दो व्यक्ति एक ही तरह की सुविधाओं की व्यवस्था के साथ उस 'प्लेटफार्म' पर एक ही काम करने के लिए बैठाये गये। फिर भी मशीन के रेकार्ड में अन्तर था। डा. ब्रह्मा के

[ साइकिल चलाने समय श्वास क्रिया द्वारा थकान की जाँच ]

भर के कठिन श्रम के बाद अक्सर व्यक्ति का तापमान १०१ और कभी कभी १०२ अंश तक पहुँच जाता है।

तापमान और आर्द्रता का मनुष्य की थकान से बहुत गहरा सम्बन्ध है। शारीरिक श्रम के सम्बन्ध में यह बात पायी गयी है कि, ४० अंश फार्नहाइट से जितना तापमान बढ़ता जायेगा, उतना ही आदमी की थकान भी अधिक होती जायगी। डाक्टर वूहा की सलाह पर एक कारखाने वालों ने अपने कारखाने का तापमान ४० अंश पर नियंत्रित कर दिया। फल यह हुआ कि, आदमियों के काम की शक्ति बढ़ गयी। फिर उन्हीं व्यक्तियों से ८२ अंश फार्नहाइट तापमान पर काम कराया गया। इन दोनों परिस्थितियों में श्रमिकों के काम का अनुपात ११ और ८ का था।

तापमान और आर्द्रता को ध्यान में रखते हुए डाक्टर वूहा की खोजों के आधार पर एक ऐसा वस्त्र भी तैयार किया गया है, जिसे पहन कर आदमी अधिक तापमान में आसानी से काम कर सकता है। उसमें ऐसी व्यवस्था है, जिसके कारण बाहर की गरमी का उस व्यक्ति पर कम-से-कम प्रभाव पड़ता है। लेकिन डाक्टर वूहा का कथन है कि, ये सभी चीजें तो गौण हैं। मुख्य वस्तु तो हमारा ग्राफ है, जिसके माध्यम से सम्भवतः निकट भविष्य में ही हम एक दिन थकान को सम्पूर्णतया मिटा देने में समर्थ हो जायं।

★

## दिवा-भ्रम

एक बार प्रयाग विश्वविद्यालय के दर्शन शास्त्र के प्रोफेसर श्री ए सी बनर्जी तत्कालीन वाइस चासलर श्री अमरनाथ झा के साथ किसी सम्मेलन में भाग लेने के लिए बाहर जा रहे थे। गाडी छूटने में प्राय आध घटे की देर थी। टिकिट पहले ही आ चुका था।

बनर्जी महाशय एकाएक व्यग्र हो उठे। उनका मनीबेग नही दीख रहा था। उन्होंने अपना सूटकेस ढूंढ लेने के बाद अपने नौकर को बगले पर मनीबेग की खोज में भेजा। इसी समय डा० झा की दृष्टि उनके हाथ पर पडी। उन्होंने बनर्जी महाशय से कहा—"भाई साहब, आपके हाथ में यह क्या है? देखें तो!" अपने हाथ में ही मनी बेग देखकर प्रोफेसर साहब लज्जित हो गये और बोले—"डाक्टर साहब, मैं समझ रहा था कि, मेरे हाथ में वही पुस्तक है, जिसे मैं अभी बगले पर पढ रहा था।"

—श्रीकृष्ण गोस्वामी

★

देश के एक प्रसिद्ध उद्योगपति की विचारधारा से प्रेरित श्री 'कविक्' द्वारा लिखित एक गवेषणापूर्ण विवेचन

★

हमारा देश दस वर्ष–पच्चीस वर्ष–बाद जैसा होगा, वह अब कल्पना के परे की बात नहीं रह गया है। देश के सयाने उसका स्वरूप स्पष्ट करने लगे हैं। वे उस भविष्य को देख ही नहीं रहे हैं, बल्कि उस भविष्य तक पहुँचने के मार्ग को प्रशस्त भी कर रहे हैं। सरकारी पञ्चवर्षीय योजनाएँ उसके प्रस्तुत पद हैं। पहली पञ्चवर्षीय योजना सफलता से संपन्न हुई है, दूसरी योजना का श्रीगणेश होनेवाला है।

हरेक देश की श्री-वृद्धि अब तक सरकार और श्रीमंत मिलकर करते हैं, दोनों का अपना-अपना कर्तव्य रहा है। किन्तु कुछ समय से—जबसे श्रीमंत 'पूँजीपति' के नाम से बदनाम किये जाने लगे हैं—सरकार और श्रीमंतों का साथ छूटने के लक्षण दिखायी देने लगे हैं। यही नहीं, श्रीमंतों—पूँजीपतियों—के विघटन तक की बातें आजकल होने लगी हैं।

एक ओर विवेक के अभाव में पूँजीपति आज कहते हैं—'जो-कुछ उत्पादन करना है, हमें करने दो। यह क्षेत्र सरकार का नहीं, हमारा है। हम जो कुछ कर चुके हैं या करेंगे, उसके लिए हम आश्वासन दो कि, वह हमारा ही रहेगा—सरकार उसे नहीं हथियायेगी। हमारे व्यवसायों की व्यवस्था में हस्तक्षेप करने के कानून बनाने के इरादों को रोको। हमें आश्वासन दो, हमारे काम में हमारे लाभ का आकर्षण इतना बना रहेगा कि, हम उससे पीछे पड़े रहें। लाभ के अभाव में कहीं हमें आलस्य न घेर ले, जिसके फलस्वरूप देश में उत्पादन की कमी हो जाये।"

दूसरी ओर, जो इस गुमान में हैं कि, शासन उनके मत पर अवलम्बित है, कहते हैं—"उत्पादन कुछेक व्यक्तियों पर छोड़ कर उन्हें और श्रीमंत करने से धन-सत्ता उन्हीं कुछेक व्यक्तियों में सीमित हो जायेगी। वे स्वार्थ-साधन में ही रत रहेंगे—देशोपकार में नहीं। उद्योग-व्यवसायों को व्यक्ति-विशेष चला सकते हैं, तो उन्हीं व्यक्तियों को नौकर रखकर सरकार काम चलाकर, उनका मुनाफा अपने हाथ में करके, उसे जन-हित के कामों में लगा

सकेगी। सरकारी कामों में मुनाफे की भावना न होने से उससे श्रमिकों और उपभोक्ताओं को अधिक लाभ होगा। निजी नफे के कामों में कमी होने से समाज में धनवानों व धनहीनों की विषमता दूर होगी; इत्यादि।"

इन दो विपरीत भावनाओं का उदय और विस्तार क्यों हुआ? अवश्य ही उद्योग व व्यवसाय चलानेवाले अनेक व्यक्तियों में ऐसे अवगुण आ गये, जिनसे उन सब पर शक किया जाने लगा—उनसे नफरत की जाने लगी। उन्हें सुधारने की अपेक्षा उन्हें नष्ट करने की भावना का विस्तार होने लगा। दूसरी ओर, जिनके पास बहुत कम पूँजी है, वे शासनाधिकार में आकर, इस ईर्ष्या से अभिभूत हो गये कि, हम शासनाधिकारी तो इतने 'गरीब' और ये हमारी दया पर जीवित इतने 'धनी'! धनियों के आचरण और अधिकारियों के ईर्ष्यापूरित मनोभावों के कारण ही वर्तमान काल का यह सरकार और श्रीमंतों का संघर्ष उपस्थित हुआ है। यह संघर्ष देश के लिए बहुत अहितकर है।

सरकार में भी और श्रीमंतों में भी ऐसे सयाने हैं, जो इस संघर्ष से होनेवाले अहित को भलीभाँति समझते हैं और उसके लिए ऐसे किसी प्रकार के कदम उठाये जाने के बीच में आते हैं, जिनसे वही अनिष्ट न हो जाये। किन्तु दोनों ओर ही ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है, जो हित की अवहेलना कर अपनी-अपनी बात पर अड़े हैं। फिर भी संतोष की बात है कि, देश के भाग्य की—भविष्य की—बागडोर ऐसे महान् पुरुषों के हाथ में है, जो सद्भावनाओं से पूरित हैं, जिनका एकमात्र उद्देश्य है—देशहित और जो ईर्ष्या-द्वेष से जरा प्रभावित नहीं हैं।

इधर श्रीमनों में भी ऐसे हैं, जो समय की गति को पहचान गये हैं, जिनमें धनोपार्जन ही नहीं, देशहित की भावना भी है। अपने उद्योग के फलस्वरूप वे अवश्य ही सुख-सुविधाओं से पूर्ण निजी जीवन बिताना चाहते हैं, पर साथ ही अपने उद्योग का अधिकांश फल, परोक्ष व अपरोक्ष रूप में देशहित में समर्पण करने में उत्तरोत्तर प्रयत्नशील हैं। ऐसे व्यक्ति ही देश की सुख-समृद्धि की वृद्धि करेंगे और देश में 'पूँजीवाद' की रक्षा करेंगे।

एक जमाना था, जब शहर गाँव में वहाँ का सेठ या जमींदार अपने घोड़े या रथ पर सवार होकर चाकरों से घिरा हुआ निकलता, तो उसके आश्रित-अनाश्रित सब सिर नवाते और समझते कि, पूर्वजन्म का भाग्यशाली है—अपने सत्कृत्यों का फल भोग रहा है। अब कोई धनिक यदि अच्छी व बड़ी मोटर में बैठ कर, बस की प्रतीक्षा में खड़े 'बाबू' के आगे से, गुजरता है, तो जो शब्द-बाण छूटते हैं, उनका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इस युग की यह सबसे बड़ी मानसिक क्रांति मानी जानी चाहिए। इसने जनता के बहुत बड़े भाग के मनोभावों में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया है।

ऐसा क्यों हुआ ? पिछले महायुद्ध-काल और उसके तत्काल बाद जिस गति से और जिस प्रकार धन कुछ लोगों के पास आया और उस गति-विधि का बुरा असर उपभोक्ताओं—जनसमुदाय—पर पड़ा उसने धनवान को—पूँजीपति को—बदनाम कर दिया। उस कलंक को धोने के लिए-मिटा देने के लिए-स्वयं पूँजीपति को अपने सत्कर्मों के साबुन-पानी का व्यवहार करना होगा।

देश में उत्पादन की नितांत आवश्यकता है। उद्योगपति उसके लिए सबसे अधिक सक्षम हैं। देश को उनकी जरूरत बनी रहेगी-उनका विनाश देश के हित का विनाश होगा। हाँ, अब यह जमाना नहीं रहा कि, उद्योगपतियों के मन के मुताबिक ही सब बातें हों। उन्हें देश की मंशा के मुताबिक चलना होगा-इसी में उनका हित है और देश का भी।

दूसरी पंचवर्षीय योजना गढ़ी जा रही है। उद्योगपतियों को उस योजना में कितना हाथ बँटाना है, यह तय हो रहा है। कौन-कौन-से काम उन्हें करने होंगे, इसकी रूपरेखा शीघ्र ही सम्मुख आयेगी। देश के प्रति-उनके अपने-आपके प्रति भी-उद्योगपतियों का एक कर्त्तव्य है। वह है, देश की सम्पन्नता की वृद्धि के लिए जो काम उन्हें सौंपे जायें, उनमें संलग्न हो जाना। उन्हें सफलतापूर्वक कर दिखाना ही उद्योगपतियों को-श्रीमंतों को-जीवित रख सकेगा।

पंचवर्षीय योजना के दो मुख्य विभाग किये जा सकते हैं। एक निर्माण के वे कार्य, जो जनता को अपना लाभ कु[illegible] समय के बाद पहुँचायेंगे—जनता [illegible] सुख-सुविधाओं, ज्ञान, स्वास्थ्य [illegible] में वृद्धि करेंगे। ये सब काम सरका[र] करेगी। इन कामों में सरकार जो रुप[या] खर्च करेगी, वह अधिकांश आयेगा-देश वासियों के हाथ में ही मेहनत-मजदूरी [illegible] वस्तुओं के क्रय के मूल्य के रूप में। [उ]न रुपये को पाकर लोग अपनी निजी जरूर[त] की चीजों की खोज में निकलेंगे। लोग[ों] को जितनी अब जरूरत है, उससे ज्याद[ा] कपड़े, तेल, शक्कर, इमारती सामा[न] इत्यादि वस्तुओं की जरूरत पड़ेगी। इन [illegible] चीजों का उत्पादन बढ़ाकर देशवासियों [की] माँग को पूरा करना पंचवर्षीय योजना [का] दूसरा विभाग माना जा सकता है और उसका सम्पादन उद्योगपतियों के जिम्मे होगा। उनका कर्त्तव्य होगा कि, वे अपनी क्षमता को उसमें लगा कर देश को ज[न] साधारण की आवश्यकताओं से भरा-पूर कर दें। यदि इस काम में वे सफल नहीं हुए, तो उसका दोष उन पर आयेगा औ[र] उनकी यह असफलता उनके विनाश क[ा] कारण हो जाये, तो अचरज नहीं।

उद्योगपतियों की कर्मण्यशक्ति [के] अभाव में यदि जनसाधारण की आवश्य[क] वस्तुओं का अभाव हुआ और उ[न] वस्तुओं के भाव बढ़े-जैसा कि, ग[त] युद्धकाल में हुआ था-तो यह स्थि[ति]

द्योगपतियों को बहुत भारी पड़ेगी। ाज उद्योगपतियों का जो विरोध दिखायी ता है, उसका मूलभूत कारण युद्धकालीन ाफाखोरी ही है। यदि वैसा ही, ईश्वर करे, फिर कोई मौका आ गया, तो वह ो तीव्र विरोध उत्पन्न करेगा, उसे कोई ही सँभाल सकेगा। इस बात को हृदयगम रके छोटे बड़े सभी उद्योगपतियों को ल्दी से जल्दी अपना कर्तव्य निर्धारित र लेना चाहिए।

हर्ष की बात है कि, उद्योगपति अपना र्तव्य निभा रहे हैं। सन् १९५० की लना में देश में औद्योगिक उत्पादन इस र्ष करीब ५० प्रतिशत बढ़ गया है। ह उद्योगपतियों की कर्तृत्वशक्ति के ारण ही तो हो पाया है। अवश्य ही र्तमान सरकार भी उत्पादकों को सब रह की सहायता देने में, उनकी कठिनाइयों ो दूर करने में, तत्पर है। जिस रकार का अपना अस्तित्व जनता के हितपर—उसकी आवश्यकताओं की अधिक-से-अधिक पूर्ति पर—निर्भर है, वह क्यों नहीं उद्योगों को प्रोत्साहित करेगी ? आज यह भय मन में रखना कि, हम उत्पादकों—उद्योगपतियों—को जीने दिया जायेगा या नहीं, निर्मूल है। सरकार को, देश को, उनकी जरूरत है और वह जरूरत उन्हें जिंदा रखेगी। हाँ, अगर वे अपने कर्तव्य से च्युत हुए, तो अवश्य ही उन्हें नष्ट होना पड़ेगा। अन्यथा कोई ईर्ष्या-द्वेष की भावना उनका विनाश नहीं कर सकेगी।

आगे आनेवाले पाँच-दस वर्ष विवेकपूर्ण सरकार के निर्देश में उद्योगपतियों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इस बदलती दुनिया में यही पाँच-दस वर्ष निर्णय कर देंगे कि, उनका क्या भविष्य होगा। ईश्वर करे, सरकार का विवेक बना रहे और वह अवाछनीय भावनाओं से प्रेरित व्यक्तियों के दबाव में नहीं आ जाये। इधर उद्योगपतियों की कर्तृत्वशक्ति भी बनी रहे और वे स्वार्थ की आकांक्षा में अपने कर्तव्य को न भूल बैठें।

★

## दो बादल

शरत् काल के आकाश में दो बादल कहीं से घूमते-घामते एक-दूसरे के पास आ निकले।

जल से भरे हुए बादल ने जल-शून्य बादल से कहा—"संसार में तुम्हारा अस्तित्व ही व्यर्थ है, क्योंकि तुम किसी के काम नहीं आ सकते।"

किन्तु जलहीन बादल ने पृथ्वी पर लहराते हुए खेतों की ओर इशारा करके कहा—"मेरा अस्तित्व इन पके हुए खेतों में देखो।"

—तेजनारायण काक

★

"दीवारों के कान होते हैं–' अब तक यह एक मुहावरा ही था, किन्तु आज विज्ञान ने एक चमत्कारी सत्य में परिणत कर दिया है। श्री ओमप्रकाश ने इसी भव्यता की कहानी यहाँ प्रस्तुत की है।

*

वैज्ञानिक वैचित्र्यों के इस अद्‌भुत और आधुनिक संसार में यह बात अक्षरशः सत्य है कि, दीवारों के कान होते हैं। आप अपने कमरे में बैठे किसी से बातें कर रहे हैं, पर आपको ज्ञात नहीं कि, आपके घर के सम्मुख, सड़क के उस पार किसी कमरे में बैठा हुआ आधुनिक विद्युत्-कण-उपकरणों से सुसज्जित एक व्यक्ति आपकी बातों को न केवल पूरी तरह सुन रहा है, बल्कि ग्रामोफोन के रिकार्ड की भाँति उसे 'टेप-रिकार्डर' पर सदैव के लिए अंकित भी कर रहा है, जिसे वह जब चाहे सुन सकता है।

विश्वास मानिये, यही नहीं–घनघोर तिमिर में अथवा पूर्ण रूप से बंद कमरे में प्रेमालाप करती हुई युगल-जोड़ी का चित्र भी बिना उसके जाने सैकड़ों फीट दूर से लिया जा सकता है। उसकी बातों को सुना जा सकता है और उन्हें रिकार्ड किया जा सकता है। यदि किसी के घर में टेलिफोन है, तो इन नवीन आवि-

ष्कारों के कारण उसकी खैर नहीं। उस व्यक्तिगत जीवन मानो समाप्त ही गया। हर क्षण और हर घड़ी के उ क्रिया-कलाप, उसकी बातचीत, उस उठना-बैठना-लेटना–सभी कुछ मीलों बैठा विद्युत्-कण-विशेषज्ञ अपने यंत्रों अंकित कर सकता है और उन्हें सि की फिल्म की भाँति जब और जहाँ च दिखा और सुना सकता है। मज़े की तो यह है कि, इन यंत्रों में कोई भी दियासलाई के बक्स से बड़ा नहीं है।

अधिक दिन नहीं हुए, जब सुप्र अमरीकी गुप्तचर बरनार्ड स्पिनडल अलबामा नगर की एक धातु-नि कम्पनी के प्रधान मि. ह्वाइट के सं में पूरी जानकारी प्राप्त करने के कार्य नियुक्त किया गया था। मि. ह्व की पत्नी को अपने पति के चरित्र पर हो गया था। इसी संदेह की पुष्टि लिए आवश्यक प्रमाणों को एकत्र करने भार स्पिनडल पर था। ह्वाइट

बाहर एक बड़ी कोठी में रहता था। स्पिनडल ने सबसे पहला कार्य यह किया कि, उसकी बातचीत सुनने के लिए उसके टेलिफोन के तार से गुप्त रूप में 'वायर टप' का सम्बन्ध जोड़ दिया। इसके पश्चात् वह तार विभाग के एक कर्मचारी का रूप धारण कर ह्वाइट के मकान के सामनेवाले तार के खम्भे पर जा चढ़ा। ह्वाइट के टेलिफोन से जो तार जुड़ हुए थे, उनको स्पिनडल ने नोट किया और फिर उतरकर उसके घर से तीन मील दूर चला आया। यहां पर तार के एक खम्भे के ऊपर में से केवल उन्हीं तारों को—जो ह्वाइट के टेलिफोन से जुड़े हुए थे—उसने दो अन्य तारों का सम्बन्ध जोड़ा और उन दो तारों को भूगर्भ के अंदर निकट के एक मकान तक ले आया, जिसे उसने कुछ दिनों के लिए किराये पर लिया था। इन तारों से उसने एक 'टेप रिकार्डर,' 'जक्री रेडियो-सम्प्राहक' और अन्य आवश्यक यन्त्रों का सम्बन्ध बना दिया। अब इस मकान में बैठा स्पिनडल ऑयल-कम्पनी के प्रधान मि. ह्वाइट के बारे में होनेवाली प्रत्येक बातचीत को आराम के साथ सुन सकता था।

प्रथम दिवस ही उसने टेलिफोन द्वारा बातचीत को बीच में पकड़ कर यह जान लिया कि, ह्वाइट ने अपनी प्रेयसी मेरी एलेन को अपने कार्यालय में दूसरे दिन सायंकाल में बुलाया है।

स्पिनडल तत्काल ह्वाइट के कार्यालय का निरीक्षण करने पहुँचा। यह एक अच्छा-खासा किला-सा था। विद्युत् यन्त्रों द्वारा किसी भी संकट की सूचना मि. ह्वाइट को अपनी कुर्सी पर बैठे ही-बैठे मिल जाती थी। इसमें तीन द्वार थे, जिनमें रात को अंदर से ताला लगा दिया जाता था। स्पिनडल को ह्वाइट की पत्नी से यह भी ज्ञात हुआ कि, व्यवसाय की गुप्त बातें कोई और न सुन सके इसका बहाना बनाकर, हजारों डालर के व्यय से उसने अपने कार्यालय स्थित कमरे को माइक्रोफोन प्रूफ' बना लिया था, ताकि अगर कोई व्यक्ति उसके कार्यालय में 'माइक्रोफोन लगाकर कभी किसी प्रकार की जानकारी प्राप्त करना चाहे तो उसे सफलता न मिल सके।

विद्युत् विज्ञान का विश्वकर्मा एडिसन [चित्र वी एन ओके]

स्पिनडल ने ह्वाइट की पत्नी से एक ऐसा सेट खरीदवाया, जिसमें रेडियो, टेलिविजन और फोनोग्राफ, सभी मौजूद थे। इस सेट का मूल्य लगभग ३,२५० रु था। स्पिनडल ने दियासलाई के बक्स-जितना बड़ा अपना 'जक्री रेडियो प्रपाक' यन्त्र इस सेट के रेडियो के लाउड-स्पीकर' में छिपा कर लगा दिया। अब जब कभी

भी यह सेट चालू किया जाता, तो उस कमरे की—जहाँ पर यह रखा रहता—सारी बातें इस 'रेडियो-प्रेषण यंत्र' द्वारा दूर बैठे व्यक्ति का ज्ञात हो जाती।

ह्वाइट की पत्नी ने इस नवीन सेट को अपने पति को उपहार-स्वरूप दे दिया। दूसरे ही दिन वह इस सेट को अपने कार्यालय में ले गया। तीन सप्ताह तक स्पिनडल, ह्वाइट और उसकी प्रेयसी की हर रोज की प्रणय-वार्ता का टेप-रिकार्डर पर अंकित करता रहा।

ह्वाइट की पत्नी इन 'टेप-रिकार्डरों' के बल पर बड़ी आसानी से अपने पति से तलाक पा गयी और ह्वाइट को उसके हर्जे का पर्याप्त धन भी देना पड़ा।

उसी गुप्तचर की ओटियो में एक दूसरा केस मिला। उसमें मुवक्किल की पत्नी एक बंद कमरे में अपने तथाकथित चचेरे भाई की दावत कर रही थी। उसका मुवक्किल यह जानना चाहता था कि, उसकी पत्नी अपने उस भाई से क्या बातें कर रही है? स्पिनडल के पास एक ऐसा 'माइक्रोफोन' था, जो प्रतिध्वनि की विधि से किसी बंद कमरे की बातों को भी ग्रहण कर लेता था। उसने दीवार में एक कील गाड़ी और अपना यह 'माइक्रोफोन' टाँग दिया। बंद कमरे के अंदर उसके मुवक्किल की पत्नी और उसके भाई की बातचीत दीवार के द्वारा कील तक आती, फिर उस 'माइक्रोफोन' तक—स्पिनडल का काम बिना किसी विशेष असुविधा के पूरा हो गया।

मिडवेस्टर्न टाउन में स्पिनडल को जो तीसरा मुवक्किल मिला, वह एक लोहे का व्यापारी था। इस लोहे के व्यापारी मि कीन की धारणा थी कि, उसका साझेदार उसके साथ बेईमानी कर रहा है। चालीस हजार डालर का माल दूकान से गायब था, किन्तु पर्याप्त संदेह होते हुए भी कीन के पास इसका कोई प्रमाण नहीं था कि, यह उसके साझेदार की ही कार्रवाई है।

स्पिनडल ने मि कीन के साझेदार के घर के 'स्विचबोर्ड' पर एक 'वायर-टेप' लगा दिया और उसका सम्बन्ध उसके घर से चार ब्लाक की दूरी पर के एक खाली घर के 'स्विचबोर्ड' से जोड़ दिया। अब खाली घर में बैठा हुआ वह साझेदार की बातों को सुनता रहा।

प्रथम दिवस ही उसे ज्ञात हो गया कि साझेदार लोहे की दूकान से उठाये हुए चालीस हजार के माल को जहाज द्वारा दूसरे शहर के एक गोदाम में भेजता रहा है। वहाँ वह कुछ माल अपना बता कर बेच रहा है और शेष इस दृष्टि से संग्रह कर रहा है कि, कुछ समय पश्चात् साझे दार कर अपना स्वतंत्र व्यापार कर सके।

स्पिनडल को अब उस गोदाम का पता लगाना था। उसने एक दिन अपने मुवक्किल के कारखाने के सम्मुख सड़क पर एक ट्रक ले जाकर खड़ा कर दिया। ट्रक पर 'वेट्स साउंड-सर्विस' लिखा हुआ

। अब यह कुछ मन लेकर उनके
रीक्षण करने या नाट्य करने लगा।
ो पहले ही ज्ञात हो चुका था कि,
न का साझेदार नित्य ही प्रातःकाल
फी पीने के बहाने कारखाने से बाहर
कल जाता है। कारखाने से कुछ
: आगे उसी ओर उसे एक मोटर खड़ी
लती है। मोटर के चालक से वह कुछ
ते करके पुनः कारखाने लौट आता है।
स्पिनडल ने अपनी ट्रक मोटर रखने
स्थान के ठीक सामने, सड़क की दूसरी
र खड़ी की थी। जैसे ही साझेदार
टर में बैठे चालक से बातें करने लगा,
। ही स्पिनडल ने अपना एक विशेष
र 'पैराबोलिक माइक्रोफोन' चालू कर
या। इस 'माइक्रोफोन' में यह गुण होता
कि, बिना विद्युत् और तारों के सम्बन्ध
. बेतार की तरह दूर हो रही बातें इससे
लकुल साफ-साफ सुनायी पड़ती हैं।
पनडल ने इस 'पैराबोलिक माइक्रोफोन'
साथ एक 'टेप-रिकार्डर' का भी सम्बन्ध
ड़ दिया था।

साझेदार ने अपनी जेब से कागज का
र पुलिंदा निकाला और मोटर-चालक
बातें करने लगा। 'पैराबोलिक माइक्रो-
न' के कारण स्पिनडल को सारी बातें
पष्ट सुनायी पड़ रही थीं, मानो वे तीनों
र ही कमरे में बैठे बातें कर रहे हों।
५ मिनिट की उनकी बातचीत से स्पिनडल
। गोदाम और उन ग्राहकों का पता
ल गया, जिनके हाथ यह चोरी का
माल बेचा गया था। साथ ही 'टेप-
रिकार्डर' पर सब अंकित भी हो गया था।
स्पिनडल ने सारे प्रमाण अपने मुवक्किल
को दे दिये। साझेदार को ८० हजार
डालर की रकम लौटानी पड़ी, साझा खत्म
करना पड़ा और स्पिनडल को फीस-
१२ हजार रुपये-भी उसे ही देनी पड़ी।

इन नवीन यन्त्रों में छोटी-सी ड्राई
बैटरी से चलनेवाला दियासलाई के
आकार का 'रेडियो-प्रेषक', मैस्टर टेलिफोन
के तारों के जाल में से किसी भी टेलिफोन
के तारों की खोज निकालनेवाला 'विद्युत्-
अन्वेषक', स्वचालित 'टेप-रिकार्डर,'
'आतशिक फोटो यंत्र, 'लिसन केरियर
रेडियो-प्रेषक' और 'पैराबोलिक माइक्रो-
फोन' आदि मुख्य हैं।

'रेडियो प्रेषक' कहीं भी लगा दिया
जाये, तो वह बिना विद्युत् के ही उस स्थान
के सभी संदेशों को भेजता रहेगा। एक
करोड़पति ने इसी 'रेडियो-प्रेषक' को
अपनी प्रेमिका के पलंग से लगाकर ज्ञात
कर लिया था कि, वह कितनी चरित्र-
हीन है। इस 'रेडियो-प्रेषक' को किसी
स्थान पर लगाना उतना ही सरल है,
जितना बिजली का बल्ब फिट करना।

'विद्युत्-अन्वेषक' तारों-द्वारा सम्बन्धित
३६ छोटी छोटी 'नियन गैस' की
बत्तियों का एक समूह होता है। प्रत्येक
बत्ती दो तारों से सम्बन्धित रहती
है। ३६ बत्तियों से सम्बन्धित तारों के
७२ सिरे एक 'ग्रास बक्स' में सुसज्जित

होते हैं। इस 'ग्राम-बक्स' को जब टेलिफोन से सम्बन्धित किया जाता है, तो टेलिफोन का इस्तेमाल किये जाने पर उन ३६ बत्तियों में एक बत्ती जल उठती है। उस पर एक अंक अंकित हो जाता है। इस अंक द्वारा इस प्रकार, मीलों दूर पर लगे टेलिफोन का पता बड़ी आसानी से लगाया जा सकता है।

स्वचालित 'टेप-रिकार्डर' भी बड़ा विचित्र यन्त्र है। इस यन्त्र के साथ 'ध्वनि-सक्रिय एजेंट' होता है। इस 'ध्वनि-सक्रिय एजेंट' को बिजली के बल्ब, होल्डर या कहीं भी लगा दिया जा सकता है। यह इतना छोटा होता है कि, जल्दी दिखायी तक नहीं देता। सक्रिय इतना है कि, मात्र-ध्वनि से कम्पायमान हो उठता है। जैसे ही 'ध्वनि-सक्रिय एजेंट' कम्पायमान होता है, वैसे ही मीलों दूर रखा हुआ 'टेप-रिकार्डर' उसके द्वारा भेजे हुए संदेशों को 'टेप' पर अंकित करना आरम्भ कर देता है, जिन्हें एक बटन दबाकर रेडियो की तरह सुना जा सकता है। कुछ 'ध्वनि-सक्रिय एजेंट' तो इतने तेज़ होते हैं कि, वे विद्युत्-तारों द्वारा संदेश भी भेजते हैं।

*जहाँ पर इन एजेंटों का लगाना सम्भव* नहीं होता, वहाँ पर टेलिविजन के जो 'एरियल' तार इमारतों के बाहर निकले होते हैं, उनमें एक विद्युत्-बल्ब लगा दिया जाता है। यह बल्ब जब कमरे में लगे 'माइक्रोफोन' से कोई शक्ति-बिंदु प्राप्त करता है, तो उस समय अदृश्य 'इन्फ्रा-रेड' किरणें फेंकता है। जब कोई व्यक्ति कमरे में बातचीत करता है, तो बिजली के इस बल्ब से निकली तरंगें सड़क की दूसरी ओर किसी अन्य इमारत पर लगे 'विद्युत्-नेत्र' से जाकर टकराती हैं। यह 'विद्युत्-नेत्र' अनेक मील दूर रखे 'टेप-रिकार्डर' को संदेश भेजता है। इस 'विद्युत्-नेत्र' का वैज्ञानिक नाम 'फोटो-एलास्टिक सेल' है, जो ध्वनि-तरंगों को विद्युत्-तरंगों और विद्युत्-तरंगों को ध्वनि-तरंगों में बदल देता है।

इस प्रकार के कार्यों के लिए 'इन्फ्रा-रेड' किरणें बड़े काम की हैं। एक विशेष प्रकार के 'इन्फ्रा-रेड बल्ब' और 'इन्फ्रा-रेड फोटोग्राफिक फिल्मों' के द्वारा गहन अंधकार में भी बड़ी आसानी से चित्र लिये जा सकते हैं। 'इन्फ्रा-रेड बल्ब' चित्र लेते समय उतनी ही चमक पैदा करता है, जितनी चमक जलती हुई एक सिगरेट के अगले सिरे से निकलती है। *इसके लिए एक विशेष फोटो-यन्त्र होता* है, जिसे 'इन्फ्रा-फोटो-यन्त्र' कहते हैं।

★

उस व्यक्ति से अधिक और कौन इस संसार में अभिमानी होगा, जिसने अपनी वर्षगांठ पर अपनी माँ को बधाई का तार भेजा था!

—'तरंगावली' से

★

# सैयद जमालुद्दीन

## इस्लामी जगत का विस्फोटक व्यक्तित्व

मिर्जा अदीब बी. ए.
सम्पादक, 'अदबे-लतीफ'

पतझड के दिनो में आपने बागो से गुजरते हुए देखा होगा कि, हर तरफ वीरानी-ही-वीरानी नजर आती है—न पेडो पर हरे-भरे पत्ते दिखायी देते है, न पौधो पर रग-बिरगे फूल नजर आते है। बहार का मौसम आने तक बागों का यही हाल रहता है। सैयद जमालुद्दीन अफगानी के दुनिया में आने के पहले, बिलकुल यही पतझड की ही हालत पूरे मध्य-पूर्व की हो रही थी। यही वजह थी कि, दुश्मन-हुकूमते पूरे दक्षिणी-एशिया के भू-भाग में खुलकर मनमानी कर रही थी।

अफगानिस्तान, जो सैयद साहब का वतन था, उस समय अमीर दोस्तमोहम्मद के हाथ में था, लेकिन सलतनत पर अंग्रेजी साया फैलता जा रहा था। हिन्दुस्तान में मुगलिया सलतनत का खातमा हो चुका था। 'ईस्ट-इडिया-कम्पनी' बडी तेजी से मुल्क पर कब्जा करती चली जा रही थी। मिस्र में भी अंग्रेजो का जोर बढता जा रहा था। ईरान के हिस्से बॉटने की तैयारियॉ हो रही थी। टर्की की हालत भी खराब थी।

ऐसे हालात में सैयद जमालुद्दीन-अल-हुसैनी-अल-अफगानी १८३९ में अफगानिस्तान के कोनर नामक इलाके मे पैदा हुए। उनके पिता सैयद सफ्दर हुसैनी बहुत बडे आलिम और ब रसूख (पहुँचवाले) आदमी थ। उन्होने सैयद साहब की तालीम के लिए ८ साल की उम्र से ही इतजाम कर दिया। उन दिनो अफगानिस्तान में सैयद फकीर बादशाह से बडा कोई विद्वान न था। अत उनके पिता ने सैयद फकीर बादशाह पर ही उनका शिक्षण-भार सौप दिया। सैयद साहब की जहानत (मेधा-शक्ति) का अदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि, दस साल की उम्र होने तक वे तवारीख (इतिहास), फलसफा (दर्शन), रियाजी (भौतिक विज्ञान), तिब्ब (चिकित्सा-शास्त्र), हिंदसा (गणित) और नहव (व्याकरण) में माहिर (पारगत) हो चुके थे। यह इल्म आज तो तीस साल की उम्र तक में भी नही सीखे जा सकते।

अठारह साल की उम्र तक सैयद साहब काबुल में अपने वालिद (पिता) के साथ रहे। उनके देहात के बाद सैयद साहब अपनी तालीम(शिक्षा)

जारी रखने के लिए हिन्दुस्तान आये। यहाँ उन्होंने पाश्चात्य साइंस (विज्ञान) और रियाजी (भौतिक विज्ञान) की तालीम पूरी की। एक साल यहाँ गुजारने के बाद वे हज करने के लिए मक्का चले गये और वहाँ से इराक तथा फारस होते हुए वापस अफगानिस्तान लौटे। इस यात्रा के अर्से में उन्हें इन मुल्कों की हालात को काफी नजदीक से देखने का मौका मिला।

उनके अफगानिस्तान लौटने पर अमीर दोस्तमोहम्मद खां ने उन्हें अपना दरबारी बनाया और साथ ही उन्हें शहजादे मोहम्मद आजम की तालीम व तर्बियत (शिक्षा-दीक्षा) की जिम्मेदारी सौंपी। १८६४ में अमीर दोस्तमोहम्मद के मरने पर उसकी वसीयत के मुताबिक उसके छोटे लड़के शेरअली ने हुकूमत की बागडोर अपने हाथ में ले ली। छोटे भाई का बादशाह होना दोस्तमोहम्मद के बड़े लड़कों–मोहम्मद आजम, अस्लम और अमीन–को बहुत बुरा लगा और तख्त के लिए भाइयों में संघर्ष की तैयारियाँ होने लगी। पर सैयद साहब के ही कारण सभी बड़े भाई, छोटे भाई के हक में तख्त से अलग हो गये। अफगानिस्तान में यह सैयद साहब का पहला कारनामा था।

अमीर शेरअली ने भी अपने बाप की तरह सैयद साहब को अपना मुशीर (परामर्शदाता) और मुसाहिब (दरबारी) बनाया। और, सैयद साहब मुल्क की तरक्की में लग गये। थोड़ी ही मुद्दत में उन्होंने अफगानिस्तानियों में जिंदगी की एक नयी लहर दौड़ा दी।

इसी बीच उन्होंने एक अखबार निकाला, जिसका नाम 'शमसुन्नहार' था। सैयद साहब अफगानिस्तान में पहले आदमी थे, जिन्होंने लोगों में अखबार पढ़ने का शौक पैदा किया। अपने कार्यकाल में सैयद साहब ने शासन में भी काफी सुधार किये। उन्होंने न केवल सभा की ओर ध्यान दिया, बल्कि नयी पाठशालाएँ खुलवायी तथा अस्पताल और डाकखाने कायम कराये।

अमीर का वजीर मोहम्मद रफीक सैयद साहब के कारनामों को और उनके बढ़ते प्रभाव को देख कर डरा कि, किसी रोज सैयद साहब अफगानिस्तान के कर्ता धर्ता बन जायेंगे। चुनांचे, सैयद साहब के असर को कम करने के लिए उसने अमीर को उसके भाइयों के खिलाफ भड़काना शुरू किया। आखिर, उसने भाइयों से जंग करने का फैसला अमीर से करा लिया।

सैयद साहब को इस गृह-युद्ध पर बहुत दुख हुआ। उन्होंने अपनी ओर से मामले को सुलझाने की बड़ी कोशिशें कीं, पर इसमें वे बिल्कुल असफल रहे। तब उन्होंने अमीर के भाइयों को खबर कर दी कि, उनकी जिंदगी खतरे में है।

भाइयों में जंग शुरू होने के पहले ही अपना मुल्क छोड़कर वे हिन्दुस्तान चले आये। उधर भाइयों की लड़ाई के नतीजे में मोहम्मद अमीन खत्म हो गया और मोहम्मद आजम हार कर हिन्दुस्तान

की तरफ चला आया। शेरअली का बडा लडका भी मारा गया, जिसके सदमे से उसकी कमर टूट गयी। मौका देखकर मोहम्मद आजम ने फिर हमला किया, जिसमें शेरअली हार कर कंधार भाग गया। मोहम्मद आजम ने काबुल पहुँचते ही पुराने वजीर मोहम्मद रफीक को फाँसी पर लटकवा दिया और सैयद साहब को वापस बुलाकर अपना वजीर बनाया।

सैयद साहब डेढ साल तक मोहम्मद आजम के वजीर रहे। इस बीच शेर-अली ने अंग्रेजो से साठ-गाठ की और उनकी मदद से काबुल पर हमला कर दिया। मोहम्मद आजम को हारकर मशहद की तरफ भागना पडा, जहाँ वह कुछ महीने बाद मर गया और शेरअली दुबारा अमीर बनकर काबुल में दाखिल हुआ। शेरअली के कोप से बचने के लिए सैयद साहब १८६६ में पुन: अपना मुल्क छोडकर हिन्दुस्तान के रास्ते से मक्का के लिए रवाना हो गये।

[अफगानिस्तान का तत्कालीन अमीर दोस्तमुहम्मद खा]

हिन्दुस्तान आने पर अंग्रेजी हुकूमत ने उनकी बडी इज्जत की, पर वह सैयद साहब से बडी सतर्क भी रही। और, कुल एक महीने बाद ही, उन्हे एक सरकारी जहाज में सवार कर स्वेज पहुँचवा दिया, जहाँ से वे काहिरा चले गये।

काहिरा मे वे ४० रोज ठहरे। किन्तु अंग्रेजो ने खदीव (मिस्र के बादशाह की उपाधि) के जरिये उन्हे मजबूर किया कि, वे फौरन मिस्र छोड दें। अत सयद साहब मिस्र से निकल कर टर्की चले गये। मिस्र से निकलकर सैयद साहब टर्की तो चले गये, लेकिन उनके भक्त शेख मोहम्मद अब्दुल ने बाद म भी मिस्र म उनका 'मिशन' जारी रखा।

सैयद साहब टर्की पहुँचे, तो अलीपाशा, वजीर आजम (प्रधान मत्री) और दूसरे बडे लोगो ने उनका स्वागत किया। वह जमाना टर्की के लिए बडा नाजुक था। हुकूमत सख्त उलझन में गिरफ्तार थी और मुस्तफा कमाल और उसके साथी यूरोप के चगुल से देश को मुक्त करने के लिए एडी-चोटी का पसीना एक कर रहे थे। सैयद साहब के व्याख्यानो ने सोयी हुई तुर्की कौम को जगाना शुरू कर दिया।

लेकिन तुर्की के पुराने खयालात का मुल्ला-वर्ग यह बर्दाश्त न कर सका कि, सैयद साहब इज्जत और शोहरत म उससे आगे निकल जाये। अत टर्की से निकल कर सैयद साहब को फिर मिस्र आना पडा। मिस्र का खदीव इस्माइल पाशा बडा फिजूल-खर्च था। रिआया भूखो मर

रही थी और वह यूरोप की हुकूमतों से कर्ज लेकर ऐयाशियाँ कर रहा था। उसने इसकी खातिर स्वेज के हिस्से भी बेच दिये थे। मिस्र के देशभक्तों ने दुश्मनों का दखल हटाने के लिए एक संस्था कायम कर ली थी। संस्था की ओर से सैयद साहब का निहायत जोरदार स्वागत किया गया। खुद वजीर आजम रियाजी पाशा मिलने आये और उनसे मिस्र में रहने के लिए प्रार्थना की।

उन्होंने सबसे पहले अल-अजहर की शिक्षा-पद्धति की तरफ ध्यान दिया। अपने इसी प्रवास-काल में उन्होंने 'मिहफ़िले-वतन' नामक एक संस्था बनायी और दो नये समाचारपत्र निकाले—एक का नाम था 'मिस्र' और दूसरे का 'अबू-नजारा'।

उन्हीं दिनों बर्तानिया ने इस्माइल पाशा को तख्त से उतार दिया और २६ जून, १८७९ को तौफीक को मिस्र का खदीव बना दिया गया। तौफीक के खदीव हो जाने से मिस्रियों को बड़ी खुशी हुई। उन्हें उम्मीद थी कि, तौफीक इस्माइल की तरह मिस्र को गैरों के हाथ में नहीं देगा। लेकिन मामला उलटा ही हुआ। तख्त पर बैठने के एक माह बाद ही, उसने सैयद साहब के दोस्त शरीफ पाशा को वजीर आजम के ओहदे से हटा दिया। तौफीक जब शरीफ पाशा को ही वजीर न देख सका, तो फिर सैयद साहब को मिस्र में क्यों कर देख सकता था? सैयद साहब गिरफ्तार करके स्वेज भेज दिये गये।

स्वेज से वे हिन्दुस्तान आये और बम्बई होते हुए हैदराबाद पहुँचे। यहाँ अपना सारा वक्त लोगों की तालीम और सुधार में व्यय करने लगे। उन्हीं के प्रयास से हैदराबाद में उर्दू शिक्षा का माध्यम बनाया गया।

मिस्र में १८८२ में अर्बी पाशा ने जो सैयद साहब के ही आदमी थे, खदीव के खिलाफ बगावत कर दी, जिसके नतीजे में सिकन्दरिया पर गोलाबारी हुई। मिस्र की इसी घटना के कारण हिन्दुस्तान की अंग्रेजी हुकूमत ने सैयद साहब को हैदराबाद से कलकत्ता ले जाकर नजरबंद कर दिया। सन् १८८४ में उन्हें हिन्दुस्तान छोड़ने की इजाजत दे दी गयी।

कलकत्ता से रवाना होकर सैयद साहब लंदन होते हुए पेरिस पहुँचे। उनके पेरिस आने की खबर सुनकर उनके मिस्री शागिर्द शेख अब्दुल और सैयद जागलोल पाशा भी पेरिस आ गये। पेरिस में उन्होंने इन दोस्तों के साथ मिलकर एक जमाअत 'उर्वतुल-वुस्का' (मजबूत रस्सी) बनायी और इसी नाम का एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला, जिसकी पहली प्रति १३ मार्च, १८८४ को प्रकाशित हुई।

उसी जमाने में मिस्र के खदीव तौफीक के जुल्मों के खिलाफ सूडान में मेहदी सूडानी के नेतृत्व में बगावत (विद्रोह) हो गयी। २६ जनवरी, १८८५ को मेहदी की फौजों ने जनरल गार्डन की फौजों को हराकर खर्तूम पर कब्जा कर लिया।

इस घटना पर अंग्रेजों का रुख जानने के लिए सैयद साहब पेरिस से लन्दन गये। लार्ड सालसबरी ने उनसे मुलाकात की और दरख्वास्त की कि, वे बर्तानिया और रूस में सुलह करा दें। सैयद साहब ने इसमें पहली शर्त यह रखी कि, बर्तानिया मिस्र छोड़ दे। लेकिन बर्तानिया ने इस शर्त को स्वीकार न किया।

बर्तानिया से सैयद साहब मास्को आये और ४ साल रूस में रहे। १८८७ में सैयद साहब के पेट्रोग्राड पहुँचने पर स्वयं ज़ार ने उनसे मुलाकात की। रूस में कुछ दिन रह कर वे जर्मनी होते हुए वापस पेरिस आये। यहीं उनकी ईरान के शाह से मुलाकात हुई। शाह ने बड़ी खुशामद-मिन्नत के साथ उन्हें ईरान आने के लिए कहा। अत कुछ अर्से बाद वे ईरान जा पहुँचे।

शीराज में महाकवि 'हाफ़िज' की समाधि [चित्र फ्रांसीसी पर्यटक बार हुर्त के स्केच-बुक का एक पृष्ठ]

ईरान की रिआया भूखों मर रही थी। खजाना खाली था और बर्तानिया और रूस को खास रिआयतें मिली हुई थीं। सैयद साहब ने इन सभी बातों के विरुद्ध आवाज उठानी शुरू की। ईरान का प्रधान मंत्री सैयद साहब का विरोधी था। सैयद साहब की बढ़ती हुई लोकप्रियता से उसने शाह को डराया और मजबूर किया कि, शाह उन्हें ईरान से बाहर भेज दे। इसी बीच सैयद साहब बीमार हो गये और बीमारी की हालत में ही ईरान-सरकार ने उन्हें गिरफ्तार करवा बसरा भेज दिया।

उनके जाते ही शाह ने एक यूरोपियन कम्पनी को पूरे ईरान के तम्बाकू का ठेका दे दिया। सैयद साहब ने ईरान के मौलवियों और मुजतहिदों (धर्मगुरुओं) को संदेश भेजा कि, वे खुदा की तरफ से मुसलमानों के पथ-प्रदर्शक हैं। अत ईरान को खुदगर्ज और ऐयाश बादशाह से ईरान को बचाना उन्हीं का फर्ज है। सैयद साहब की यह आवाज जंगल के आग की तरह फैल गयी। ईरान के उल्लेमाओं (विद्वानों) ने फतवा दिया, जो सिर्फ एक लाइन का था—"आज से तम्बाकू का इस्तेमाल चाहे किसी सूरत में हो, इस्लामी कानून के खिलाफ है।" ईरानी नौजवानों ने तमाम मुल्क-भर का तम्बाकू फौरन ही बरबाद कर दिया और शाह को मजबूर हो यूरोपियन कम्पनी से किया हुआ ठेका तोड़ना पड़ा। यह सैयद साहब की बहुत बड़ी कामयाबी थी।

बसरा से सैयद साहब लंदन चले गये और वहाँ से उन्होंने अरबी और अंग्रेजी में एक अखबार 'जिया-उल-खाफिकीन' के नाम से निकालना शुरू किया। इस अखबार में उन्होंने ऐसे-ऐसे मजमून लिखे कि, ईरान का बादशाह काँप उठा। उनकी आवाज बिजली की तरह चारों तरफ फैल गयी और आखिर ६ मई, १८९६ को जब शाह, शाह अब्दुल-अजीम की दरगाह में दाखिल हो रहा था, मिर्जा रजा खा करमानी की गोली से मारा गया।

सैयद साहब के लंदन जाने का बहुत से लोगों को बड़ा अफसोस था। उन्हीं में टर्की का सुल्तान भी था। टर्की के सुल्तान के आमंत्रण पर सैयद साहब टर्की चले गये। वहाँ सुल्तान उनसे बड़ी इज्जत से पेश आया। रहने के लिए एक बड़े महल के अलावा दो सौ पौंड महीना वजीफा (वृत्ति) भी मुकर्रर कर दिया।

सुल्तान के दिल में चूँकि खलीफा बनने की बड़ी ख्वाहिश थी, इसलिए वह सैयद साहब को खुश रखने के लिए हर तरह की कोशिश करता था। इसी सिलसिले में उसने उन्हें एक शाही तमगा (पदक) भेजा, जो वह वजीरों को दिया करता था। उन्होंने वह तमगा अपनी बिल्ली के गले में डाल दिया और कहा कि, इसकी सबसे अच्छी जगह यहीं है; क्योंकि ऐसी चीजें आम तौर पर बेईमान लोगों के गले में डाली जाती हैं।

उसी जमाने में मिस्र का खदीव अब्बास हलीमी पाशा टर्की आया हुआ था। वह उनसे मिलने आया और बहुत देर तक बातें होती रहीं। वजीर के कार-मियों ने सुल्तान से जा लगाया कि, सैयद साहब मिस्र के खदीव को आपकी जगह खलीफा बनाना चाहते हैं।

यह सब जानकर सुलतान ने उन पर पुलिस और जासूसों की निगरानी बिठा दी। अब उनकी उम्र साठ साल की हो चुकी थी। बहुत ज्यादा काम की वजह से सेहत (स्वास्थ्य) गिरती जा रही थी कि, इसी हालत में सुलतान ने उन्हें नजरबंद कर दिया। इन्हीं दिनों उनके जबड़े में कैंसर निकला। डाक्टर जमील पाशा ने छ दाँत निकाल दिये; लेकिन फिर भी कुछ फर्क न आया।

कहा जाता है कि, चूँकि उनमें और सुल्तान में काफी चल रही थी, इसलिए उसने बहुत-से खिलाल (दाँत साफ करने का तिनका) भेजे, जिनमें जहर लगा हुआ था। वे खाने के बाद हमेशा खिलाल करते थे। चुनाचे इन खिलालों के इस्तेमाल से बीमार हो गये और ९ मार्च, १८९७ को उन्होंने दुनिया से हमेशा के लिए मुँह मोड़ लिया।

उन्हें कबरस्ताने-शयूख, मोहल्ल माचका में दफन किया गया। उनकी क काफी अर्से ना-मालूम रही; लेकिन १९१ में एक अमरीकी ने अपने खर्च से उ पक्का करा दिया और आज वह मध्य-पू के युवकों तथा स्वातंत्र्य-प्रेमियों के लि किसी तीर्थस्थान से भी बढ़कर हो गयी है।

★

# इतनी संवेदनशीलता भी बुरी है

रैथेल एच. वैरन के एक प्रेरक लेख का संक्षिप्त हिन्दी रूपांतर

★

अतिसंवेदनशील व्यक्ति अपने-आपमें सदा एक प्रकार की कमी अनुभव करने के कारण प्रत्येक परिस्थिति को अंधकारमय ही देखता है। चूंकि उसका ध्यान हमेशा इसी बात पर लगा रहता है कि, कोई कहीं उसका अपमान तो नहीं कर रहा है—वह यही सोचता रहता है कि, अमुक व्यक्ति ने ऐसा क्यों कहा? वह कहीं मुझ पर हँस तो नहीं रहा था?

प्रख्यात मानसशास्त्री डा. कारेन होर्नी के मतानुसार यह एक ऐसी प्रवृत्ति है, जो अपने भीतर का भाव दूसरों पर लादना चाहती है। कुछ परिस्थितियाँ अवश्य ऐसी हो सकती हैं, जब सामने के व्यक्ति में अवहेलना या तिरस्कार की भावना मौजूद हो, लेकिन अधिकतया बिना किसी वास्तविक कारण के ही, अत्यधिक संवेदनशील व्यक्ति अपने मन का भाव दूसरे के साथ जोड़कर, कल्पना में ही अपना अपमान मान बैठता है और दूसरों पर व्यर्थ ही दोषारोपण करता है। इसका कारण यह है कि, ऐसा व्यक्ति अत्यधिक सम्मान का भूखा होता है। जब उसे कोई विशेष रूप से नहीं पूछता, तो वह अपना तिरस्कार हुआ समझता है।

वास्तव में, इससे उसके मिथ्या गर्व को आघात लगता है और वह दुःखी होता है। लेकिन यह समझना चाहिए कि, संसार में सभी लोग अपनी उधेड़बुन में व्यस्त रहते हैं। उन्हें अपनी ही चिंता या कार्यों से इतनी फुर्सत नहीं कि, वे सबके साथ आदर या विनय का व्यवहार कर सकें। हो सकता है कि जिसने आपकी भावना को आघात पहुँचाया हो, वह स्वयं ग्रस्त हो और उसने इस 'रूखे' व्यवहार का कारण आपके प्रति दुर्भावना या तिरस्कार न हो!

एक बार किसी बैंक का एक क्लर्क एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के साथ कुछ अभद्रता का व्यवहार कर बैठा। उसने जाकर बैंक के मैनेजर से शिकायत कर दी। चूँकि उसका लेन-देन बैंक से काफी बड़े पैमाने पर था, मैनेजर ने क्लर्क को बुला कर डाँटा। लेकिन उसके रूखे व्यवहार का कारण क्या था, यह जानने की किसी ने चेष्टा नहीं की। यह तो तब विदित हुआ, जब उक्त क्लर्क ने कुछ दिनों बाद आत्महत्या कर ली। मरते समय वह एक

'नोट' लिखकर छोड़ गया था—"अपनी अस्वस्थता और असमर्थता से तंग आकर मैं आत्महत्या कर रहा हूँ।"

इसलिए जब कभी आप यह सोचें—अमुक व्यक्ति ने मेरी अवहेलना की, तो आप अपने मन को भी टटोलें कि, उस भावना का कितना अंश स्वयं आपके मस्तिष्क की उपज है। फिर इस काल्पनिक अंश से स्वयं को मुक्त करने का प्रयास कीजिये।

आपके लिए अपनी अच्छाइयों पर ध्यान देना भी बहुत जरूरी है। यदि आप अपनी खामियों के बजाय अपनी खूबियों की ओर ध्यान देना शुरू करें, तो सहज ही कोई आपके दिल को दुखा न सकेगा।

दूसरा तरीका यह है कि, जो भी गुण आपमें स्वाभाविक रूप से वर्तमान हो—जिस कार्य की ओर आपकी रुचि हो—उसका विकास कीजिये। इससे आपको आनंद तो मिलेगा ही, साथ-ही-साथ मानसिक बल की भी वृद्धि होगी।

## शेर से भी भयानक

बुरे विचार शेरों से अधिक भयानक होते हैं। मनुष्य खूँखार जंगली जानवरों से तो स्वयं को दूर रख भी सकता है, किन्तु बुरे विचार हर समय और हर स्थान पर अपना रास्ता बना ही लेते हैं। उनसे बचने का सिर्फ एक तरीका है। जिस प्रकार ऊपर तक [illegible] भरे प्याले में किसी वस्तु के प्रवेश की गुंजाइश नहीं रहती, उसी प्रकार आप अपने मस्तिष्क को सद्विचारों से भर कर रखिये—बुरे विचारों को उसमें प्रवेश करने का मार्ग ही नहीं मिलेगा। बुरे काम बुरे विचारों का ही फल हैं, अतः यह भलीभाँति स्मरण रखिये कि, सिर्फ बुरे कार्यों का त्याग करने से ही काम नहीं चलेगा। अगर आपके बुरे विचार वैसे ही मुक्त रह गये, तो आपकी सारी नैतिक शक्तियाँ समाप्त हो जायेंगी।

—केवी पारचुअग

एक उपाय और भी है। आप लोगों के साथ दिल खोल कर मिलिये। साधारणतया अत्यंत भावुक व्यक्ति अपनी ही धुन में खुये रहना पसंद करते हैं; लेकिन वे दूसरों के साथ मिले-जुलें, जलसों और सभा-सोसाइटियों में आयें-जायें, तो उनकी झिझक दूर हो जायेगी और तब वे देखेंगे कि, लोग उनसे मिलकर और वे लोगों से मिल कर कितने खुश होते हैं!

सहज ही बुरा मान बैठने की आदत अच्छी नहीं। यदि किसी ने आपका जानबूझ कर भी अपमान किया हो, तो आप उस व्यक्ति की बात पर अधिक विचार मत कीजिये। अपने मन को कष्ट पहुँचा कर, व्यर्थ ही आप उसे या उसकी बात को महत्व क्यों देते हैं? अपने मन को थोड़ा मजबूत बनाइये।

आप स्वयं दूसरों का तिरस्कार न कीजिये। सामान्यतया यह देखा गया है कि, जो लोग सहज ही बुरा मान जाते हैं, वे

हमेशा एक ऐसा रुख बनायें रखते हैं, जिससे दूसरे लोग बुरा मान जाते हैं। ऐसा वे इसीलिए करते हैं कि, लोग उनकी उपेक्षा या अनादर करें, इससे पहले ही वे यह बता दें कि, उनको किसी की परवाह नहीं है। उनके इस रुख या व्यवहार से जो भी उनके सम्पर्क में आता है, वह उन्हें घमंडी समझ कर बदले में उनका तिरस्कार करता है। इससे अत्यधिक संवेदनशील पुरुष और भी आहत होते हैं और अपने मन में सदा यही सोचा करते हैं कि, सारा संसार ही उनकी उपेक्षा करने पर तुला हुआ है।

आलोचना लाभदायक भी हो सकती है। प्रत्येक आलोचना से चिढ़ना नहीं चाहिए। हो सकता है कि, आलोचक की दृष्टि में आपके कुछ ऐसे दोष या त्रुटियाँ खटकती हैं, जिन्हें आप स्वयं नहीं देख सकते। बुरा मानने के बजाय यदि आप शांति से अपनी आलोचना पर विचार करें, तो आप अपनी बहुत-सी बुराइयाँ या खामियाँ दूर कर सकते हैं।

अगर आप अपना जीवन वस्तुतः आनंदमय बनाना चाहते हैं, तो एक काम आपको और करना होगा। श्रद्धा का साथ कभी मत छोड़िये। यदि आप ईश्वर या किसी दैवी शक्ति में विश्वास करते हैं, तो आपकी श्रद्धा उस पर अटूट होनी चाहिए। ऐसी अवस्था में, आप किसी की भी बात या हँसी की परवाह नहीं कीजिये। लोग चाहे आपकी अवहेलना, तिरस्कार या निरादर करें, फिर भी आप अपनी श्रद्धा का सहारा ले अपने पथ पर सदैव आगे बढ़ते रहिये।

साथ ही, अपने आदर्श उच्च रखिये, लेकिन अम्बर के तारे तोड़ने की भी मत सोचिये। अत्यधिक संवेदनशील व्यक्ति सामान्यतया इतनी ऊँची उड़ान भरना चाहते हैं कि, जहाँ तक पहुँचने की उनकी सामर्थ्य ही नहीं होती। यह आप निश्चित जान रखिये–भावुकता से कोई व्यक्ति कभी सुखी नहीं हो सकता। धीरे-धीरे इससे दूर होने की आदत अपने-आपमें डालिये। अगर आप तुनकमिजाजी या सहज ही बुरा मानने की आदत से छुटकारा पा जायें, तो संसार आपके लिए इतना नैराश्यपूर्ण नहीं रहेगा। और, तब आप जीवन का पूरा-पूरा आनंद उठा सकेंगे।

★

"साहब, मैंने अभी-अभी एक जोड़ा जूता बेचा है। दाम उसका तो १८ रुपये था, पर खरीददार के पास सिर्फ ६ रुपये ही थे। इसलिए मैंने वे रुपये बतौर जमानत के रख लिये।' नये सेल्समैन ने दूकान-मालिक से कहा।

"अजीब बेवकूफ हो, वह अब कभी लौट कर आयेगा भी?'

"जरूर आयेगा, साहब! .. मैंने उसे दोनों जूते एक ही पैर के बाँध दिये हैं!"

—'हास्य विनोद' से

★

नवीनतम वैज्ञानिक शोधों के आधार पर लिखित एक रोचक लेख

★

उष्ण प्रदेशीय किसी सागर या 'गल्फ-स्ट्रीम'-सरीखी किसी धारा का जल प्राप्त हो तो वह, नहीं तो कोई भी स्वच्छ, निर्मल जल लेकर उसमें थोड़ा-सा 'एसिड' (तेजाब) और कारबन-डाइ-आक्साइड मिलाइये। फिर थोड़ा-सा नमक, चीड़ के वृक्ष की राल, ज्वालामुखी पर्वत की राख, रेगिस्तान की रेत या किसी कारखाने के धुंए के कण उसमें मिलाइये और ऊपर से 'स्टार-डस्ट' (उल्कापात में गिरे किसी प्रस्तर-खंड का चूर्ण) डालिये। तब खूब जोर से उसे हिलाइये। और, आप देखेंगे कि, बादल बनने लगे हैं।

घबड़ाइये मत! यह किसी भूत को बुलाने का जन्तर-मन्तर नहीं, न किसी महात्मा की दी हुई जड़ी-बूटी है। यह तो वैज्ञानिक नुस्खा है, वर्षा का। आप इससे वर्षा की बूंदें तैयार कर सकते हैं। वर्षा की बूंद आकार में अत्यंत छोटी होते हुए भी, पृथ्वी के सभी अंशों, बल्कि पृथ्वी के परे, ब्रह्माण्ड के तत्त्व भी अपने में समाये रखती है। ऐसे, एक बूंद की अकेले कोई बिसात नहीं, लेकिन यही बूंद जब कई बूंदों के साथ वृष्टि में गिरती है, तो वह पर्वतों तक को समतल कर देती है, जमीन के फटने का कारण बन जाती है और बड़े-बड़े प्राकृतिक उपद्रवों में सहायक होती है।

वर्षा की बूंद का निर्माण किस प्रकार होता है, इसका सम्पूर्ण रहस्य तो अभी प्रकट नहीं हो सका, लेकिन वैज्ञानिकों ने हाल ही में इस सम्बन्ध में कुछ नयी बातों का पता लगाया है। वर्षा की बूंद बनने की तीन विभिन्न अवस्थाएँ हैं। पहले तो सागरों से भाप उठकर वायुमंडल में फैलती है, उसके बाद भाप से बादल की बूंदें बनती हैं और अंत में, ये ही बूंदें मिलकर वर्षा की बूंदें बन जाती हैं।

संसार के सभी समुद्रों पर से भाप की अनंत राशि आकाश की ओर उठती है। भूमध्य रेखा की ओर बहनेवाली 'ट्रेड हवाएँ' इसमें सहायक होती हैं। गरम, गीली भाप आकाश में मील-भर ऊँचा जल-स्तम्भ बनाती है। यह क्रिया रात-दिन, निरंतर चलती रहती है। आपको यह जानकर शायद आश्चर्य होगा कि, आपकी घड़ी की प्रत्येक 'टिक्' शब्द के साथ—अर्थात् एक सेकेंड में—७,५०,००,००,००० गैलन पानी सातों समुद्रों में भाप बन कर आकाश में ऊपर उठता है।

यह अपार वाष्प-राशि जब वायुमंडल में फैलती है, तो बादल बनना प्रारम्भ होता है। भाप के रूप में जो जल ऊपर उठता है, वह निर्मल और विशुद्ध होता है। लेकिन केवल विशुद्ध जल से बादल का वर्षा नहीं हो सकती। इसके लिए प्रकृति उसमें धूल, समुद्र-फेन का लवण, राख और प्राकृतिक अथवा मनुष्यकृत अनिवार्य के अवशेष मिलाती है। बादलों के निर्माण के लिए इन अशुद्ध पदार्थों का रहना अत्यंत आवश्यक है। जिस प्रकार बर्फ से भरी गिलास के बाहर जब हवा टकराती है, तो उसमें की भाप जम जाती है—उसी प्रकार वायुमंडल में उड़ते हुए कणों से टकरा कर समुद्र से उठी हुई भाप उन पर जम जाती है। करोड़ों वाष्प-परमाणु मिलकर एक मेघ बूंद बनती है, जिसका व्यास एक इंच का दो हजारवाँ भाग होता है। इसके बीच में बीज की तरह एक कण होता है। लेकिन बादल की ये बूंदें इतनी छोटी होती हैं कि, इनसे वर्षा का होना असम्भव है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद एक दिन अनायास ही वर्षा के विषय में एक महत्व-पूर्ण खोज 'जनरल इलेक्ट्रिक' की प्रयोग-शाला में हो गयी। विंसेट शेफर नाम के एक वैज्ञानिक ने फूड फ्रीजर (खाद्य पदार्थ को अच्छी हालत में रखने की ठंडी आल-मारी) में काले मखमल का पर्दा लगाकर आकाश का प्रतिरूप बनाया। फ्रीजर में साँस से हवा फूँकने से छोटे-छोटे बादल तैयार हो जाते थे, लेकिन वर्षा नहीं होती थी। एक रोज गरमी इतनी अधिक थी कि, फ्रीजर में बादल स्थिर न रह सके। इसलिए उसने फ्रीजर में सूखी बर्फ डालना तय किया। सूखी बर्फ डालते ही बादल असंख्य हिम-कणों के रूप में परिवर्तित हो गये। जब उसने फ्रीजर में फूँक मारी, तो साँस की आर्द्रता जमकर वर्षा की बूंदें बन गयीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि, बर्फ के कण द्वारा पानी बरसाया जा सकता है। इसी से ऐसे बादलों पर, जिनमें वर्षा जल की सम्भावना रहती है, सूखी बर्फ डालकर कृत्रिम रूप से पानी बरसाने के आधुनिक प्रयोगों का सूत्रपात हुआ।

भीजै चुनरी मोरी
[चित्र पहाड़ी शैली, 'भारत कला-भवन,' काशी में संगृहीत एक चित्र की सरल रेखानुकृति]

हवाई सेना ने इस विषय का अध्ययन प्राकृतिक परिस्थितियों के बीच किया। एक छोटा-सा बादल, जिसकी भीतरी हवा बाहर की हवा से अधिक गरम और आर्द्र होती है धुएँ की तरह आकाश में

ऊपर उठता चला जाता है। लेकिन कुछ ही मिनिटों बाद उस बादल के बीच और भी अधिक गरम हवा भर जाती है और वह छोटा-सा बादल तीन मील लम्बा एक विशाल मेघराशि बन जाता है। आर्द्रता ऊपर की ओर उठती रहती है–जब तक कि, वह शून्य या उससे भी कम अंश तापमान की ऊँचाई पर नहीं पहुँच जाती। १५,००० फुट की ऊँचाई पर पहुँच कर वह जम जाती है। २५,००० फुट की ऊँचाई पर शून्य से तीन या चार अंश कम और ४०,००० फुट की ऊँचाई पर शून्य से करीब ६० अंश कम तापमान होता है। पहले तो यह आर्द्रता जमने के कारण बर्फ बनती है और उससे भी ऊँचे पहुँचने पर हिम-कण। मेघ-बूंदें इन कणों के चारों ओर एकत्र होती हैं और आपस में मिल कर वर्षा की बड़ी-बड़ी बूंदें बन जाती हैं।

बादल में वर्षा का पानी भरा रहने पर भी वर्षा नहीं होती। प्रारम्भ में तो बादल की बूंदें, हिम कण–सभी हवा के साथ तेज, कभी-कभी तो ७० मील प्रति घंटे की रफ्तार से, बहते रहते हैं। जैसे-जैसे अधिक बादल की बूंदें एकत्र होती जाती हैं, वर्षा की बूंदें अधिक भारी और बड़ी बन जाती है। जमीन पर जो वर्षा की बूंदें गिरती हैं, उनका व्यास सामान्यतया एक इंच का पचीसवाँ भाग होता है। वर्षा की एक बूंद करीब पाँच लाख मेघ-बूंदों के जितनी बड़ी होती है। उसके बाद ये बूंदें बादलों के बीच जमीन पर गिरनी शुरू हो जाती हैं।

वर्षा का एक महत्वपूर्ण रहस्य, उसके हिम-कण है। इन हिम-कणों को, वृद्धि के लिए एक 'बीज' चाहिए और यही 'स्टार-डस्ट' का उपयोग होता है। अन्य साधारण धूलि-कण मोटे होने से इस काम के लिए उपयुक्त नहीं होते।

पृथ्वी जब सूर्य के चारों ओर घूमती है, तो उसके चारों ओर रेत की वर्षा होती रहती है। यह धूल या तो ग्रह मंडल के निर्माण के पश्चात् बचा हुआ अवशेष है या यह वही वस्तु है, जिससे तारे बनते हैं। उसके सूक्ष्म-कण नीचे उतर कर, अधिक ऊँचाई पर जो बादल रहते हैं, उनमें मिल जाते हैं और ऐसे कणों का निर्माण करने में सहायक होते हैं, जिनके द्वारा वर्षा होती है। इस प्रकार हिम-कण और वर्षा की बूंदों का निर्माण अंतर-नक्षत्रीय पदार्थ के धूलि-कणों के इर्द-गिर्द होता रहता है।

डा ई जी ब्राउन का, जो आस्ट्रेलिया के एक उत्कृष्ट भौतिक विज्ञान-वेत्ता हैं, कम-से-कम यही मत है। दूसरे विशेषज्ञों ने भी इसे स्वीकार किया है। ज्योतिषियों का कहना है कि, प्राय: १०,००० टन, अर्थात् लगभग २,८०,००० मन अदृश्य कण प्रति दिन पृथ्वी पर गिरते हैं। ऐसा मालूम होता है कि, आकाश में पर्याप्त 'स्टार-डस्ट' है। इन अदृश्य कणों के ही कारण कितनी बार पृथ्वी पर जबर्दस्त तूफान आते हैं।

अमेरिका की 'वेदर-ब्यूरो' की गणना के अनुसार तीस साल पहले केलिफोर्निया प्रांत में ओपिड्स केम्प में एक मिनिट में सर्वाधिक वर्षा हुई थी। उस वक्त २/३ इंच वर्षा उस एक ही मिनिट में उस स्थान पर हुई। इसका अर्थ यह हुआ कि, ६० सेकेंड में १ वर्ग मील के घेरे में १,००,००,००० गैलन पानी वर्षा के रूप में गिरा। औसत आकार की वर्षा की बूंदों से हिसाब लगाया जाये, तो ४,००,००,००,००,००,००० बूंदें एक मिनिट में वहाँ गिरीं।

साधारणतया लोग यह नहीं जानते कि, गिरती हुई वर्षा की बूंदों के कारण विद्युत् भी पैदा हो सकती हैं। बहुत-सी बड़ी-बड़ी बूंदें गिरते समय फेन फेंकती हैं। फेन के साथ 'इलेक्ट्रोन' उड़ते हैं, जिससे बूंदों में 'पाजिटिव' बिजली पैदा हो जाती हैं। यह क्रिया जब अधिक देर तक चलती रहती है, तो तूफान के बादलों के नीचे बिजली का 'पाजिटिव चार्ज' काफी जमा हो जाता है। इसी से नीचे की जमीन पर बिजली का 'निगेटिव-चार्ज' तैयार होता है। विपरीत विद्युत्-शक्ति चूंकि एक-दूसरे को आकृष्ट करती हैं, धरती और बादल के बीच तनाव बढ़ता जाता है। अंत में बिजली, दोनों के बीच में जो अंतर है, उस ओर दौड़ती है और उसी से शून्य में हमें बिजली चमकती हुई दिखायी पड़ती है।

वर्षा में श्वान
[चित्र 'पंच' से साभार]

वर्षा की बूंदों का प्रभाव इतना धीरे-धीरे होता है कि, हम उसे स्पष्टतया देख नहीं सकते। सागरतटों, पर्वतों, समुद्र-तट इत्यादि की परिधि-रेखा को बदलना, छोटी-छोटी छेनी की भाँति पर्वतों को काटना—सब काम बूंदें करती हैं, लेकिन हम उन्हें ऐसा करते देख नहीं पाते। अलावे, वर्षा की बूंदों में वायुमंडल का 'नाइट्रोजन' और कारखानों से निकले हुए धुएँ की कुछ जहरीली गैसें भी पायी जाती हैं।

वर्षा की बूंदें एक बड़ी मात्रा में पृथ्वी पर की गंदगी और कंकड़-पत्थर को बहा ले जाती हैं, यह तो निर्विवाद है। वर्षा के जल से पूरित, मिसीसिपी नदी प्रत्येक वर्ष ६०,००,००,००० टन पदार्थ मेक्सिको की खाड़ी में बहा कर ले जाती है। प्रायः प्रत्येक चौथी शताब्दी पर वर्षा के कारण धरती की सतह एक इंच नीचे हो जाती है।

भूतत्त्व-विशारदों ने पता लगाया है कि, भूचाल और उनके आने के काल पर भी वर्षा का प्रभाव रहता है। हार्वर्ड के प्रोफेसर रही कोनराड का कहना है कि, वर्षा के कारण जो जमीन कटती है, उसकी रेत और दूसरी वस्तुएँ जमा होते रहने से जब नीचे की चट्टान की परतों पर अधिक वजन पड़ता है, तो वे गिर पड़ती हैं और धरती काँप जाती है।

यह एक विचित्र बात है कि, अगर पृथ्वी पर वृष्टि होना बंद हो जाये, तो कहीं भी अनावृष्टि या सूखा नहीं पड़ेगा। भले ही चाहे कुछ काल के लिए, कहीं-कहीं हवा उष्ण और सेन नष्ट हो जायें, लेकिन अनावृष्टि की अवस्था अधिक देर तक नहीं ठहर सकती। उस समय भी वृष्टि-शून्य जगत में वायुमंडल में आर्द्रता काफी मात्रा में उपस्थित रहेगी। समुद्रों से जो भाप हवा में ऊपर उठती है, उसके कारण वायुमंडल में उपस्थित आर्द्रता को, वर्षा की प्रत्येक बूंद कम करती है। यदि वर्षा न हो, तो वायुमंडल की आर्द्रता जैसी-की-तैसी ही बनी रह। उसका फल यह होगा कि, वायुमंडल गाढ़ा और भरा हुआ रहेगा। जमीन गीली मिट्टी का एक समुद्र बन जायेगा। चलने-फिरने के लिए आपको घुटनों तक के ऊँचे जूते पहनने पड़ेंगे और आपके कपड़े हमेशा बुरी तरह गीले और बदन से चिपके हुए रहेंगे। प्रत्येक वस्तु गरम, गीली और टपकनेवाली बन जायेगी। आप हमेशा नहा रहे हैं, ऐसा मालूम होगा।

वर्षा आने पर यदि आपको बाहर जाने में तकलीफ हो और सम्भवतया आपका काम भी बिगड़ जाये, तो आप अवश्य अप्रसन्न हो सकते हैं, लेकिन यह भी याद रखिये कि, इसी वर्षा के कारण आगे का मौसम स्वच्छ होगा। वर्षा प्रकृति की एक महत्वशाली कार्यकर्त्री है। अन्य कार्यों के अतिरिक्त वह संसार-भर के वायुमंडल का तापमान ठीक करती है और इस परिवर्तनशील संसार को हमारे रहने के अधिकाधिक योग्य बनाती है!

★

एक अंग्रेज महोदय ने किसी प्रीति-भोज के अवसर पर कहा—"हम अंग्रेज वस्तुत. ईश्वर के बहुत प्यारे हैं। ईश्वर ने हमारा निर्माण बड़े यत्न और स्नेह से किया है, तभी तो हम इतने गोरे हैं।"

डा राधाकृष्णन् भी वहाँ उपस्थित थे। यह गर्वोक्ति सुन मुस्कराये और सभी व्यक्तियों को सम्बोधित करते हुए बोले—"मित्रो! एक बार भगवान को रोटी पकाने की इच्छा हुई। वे रोटी सेकने तो बैठे; किन्तु पहली रोटी जरा कम सिकी और परिणामस्वरूप अंग्रेज जाति का जन्म हुआ। दूसरी रोटी वे अधिक देर तक सेकते रहे और इससे नीग्रो लोगों की पैदाइश हुई। अपनी इन दो भूलों से सतर्क हो, भगवान ने जो तीसरी रोटी सेकी, तो वह बिल्कुल ठीक थी—वह न कम सिकी थी, न ज्यादा। फलस्वरूप हम भारतवासियों का जन्म हुआ....।"

उक्त अंग्रेज महोदय ने झेंप कर सिर झुका लिया और बाकी लोग उन्मुक्त भाव से हँस पड़े!

—आर. पी. वर्मा

★
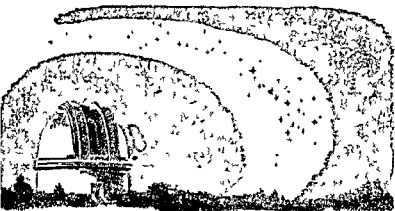
अंतरिक्ष सम्बन्धी आधुनिकतम जानकारी के आधार पर श्रीगोपाल नेवटिया द्वारा लिखित एक रोचक लेख

★

तुलसीदासजी ने राम के रूप में कौशल्या को, रोम-रोम म कोटि-कोटि ब्रह्माड दिखलाये थे। वह निरी भक्त की दृष्टि नही थी—आजकल की विशालकाय वेधशालाएँ और विज्ञान का महान् ज्ञान भी यही देखते है, कहते हैं। यह प्रचड मार्तंड, जो हमें ब्रह्माड के राजा के समान दिखायी देता है, वह भी अरबो-खरबो तारो के समान एक तारा है। सूर्य हमें ताप प्रदान करता है, जीवन-दान देता है—हम उसकी पूजा करते है, उसको बडा मानते है। जिस प्रकार हमारा सूर्य हमारी पृथ्वी से सम्बन्धित है, न-जाने कितने सूर्य कितनी पृथ्वियो से सम्बन्धित होगे!

और, हमारे सूर्य और उससे सम्बन्धित तारो के समूह का

# कोटि ब्रह्माड का कहिये

विस्तार भी क्या कम है? हमारे इस तारा-समूह के इस पार से उस पार प्रकाश को पहुँचने में एक लाख वर्ष लगते हैं और दूसरो के सम्बन्ध मे भी उनके इतने ही बडे तारा-पुंज होने का अनुमान किया जाता है।

ये तारा-पुंज या निहारिकाएँ हमसे और एक-दूसरे से बहुत दूर हैं। दो के फासले की जगह में किसी प्रकार का कोई घनीभूत पदार्थ नही है। सर्वथा शून्य मे भ्रमण करनेवाले एकाकी पथिको के समान ही वे हैं।

इन पथिको की चाल भी मार्के की है। एक पथिक दूसरे पथिक की ओर नही,

किन्तु एक-दूसरे से परे–उससे दूर की ओर–चलता रहता है। हमसे भी ये तारा-पुंज दूर.. और दूर होते चले जा रहे हैं। उनसे हमारी पृथ्वी पर पहुँचनेवाली रोशनी के रंग की तुलना करके, आज के वैज्ञानिक उनकी चाल का पता लगाने में अभी तक असमर्थ हैं।

प्रत्येक तारे का अधिकांश भाग 'हाइड्रोजन'-गैस होता है। गरम 'हाइड्रोजन' एक विशेष रंग का प्रकाश देता है। 'हाइड्रोजन' का अणु यदि एक जगह स्थायी रहने की अपेक्षा देखनेवाले से दूर की ओर जा रहा हो, तो अधिक लाल दिखायी देता है और अगर देखनेवाले के समीप आ रहा हो, तो अधिक नीला।

इसी रहस्य की जानकारी के कारण वैज्ञानिक दूर जाते हुए तारों में हाइड्रोजन की लालिमा को नापकर उनकी चाल का पता लगाते हैं।

नजदीक के कुछेक निहारिकाओं को छोड़कर बाकी सब निहारिकाएँ हमसे दूर होती जा रही हैं। जिस गति से वे हमसे परे हो रही हैं, उसका सीधा सम्बन्ध उनके और हमारे बीच की दूरी से है। दो निहारिकाओं में से जो निहारिका हमसे दुगुना दूर है, वह नजदीकवाली निहारिकाओं की अपेक्षा दुगुनी चाल से हमसे दूर होती जा रही है।

अब इस ज्ञान की सहायता से हमारे विश्व की आयु का पता लगाने के लिए इन निहारिकाओं की चालों के पुराने काल का अनुमान कीजिये। आज जब हम उन्हें एक-दूसरे से दूर होते देखते हैं, तो किसी अति प्राचीन काल में वे आज से और भी नजदीक ही रही होंगी–प्रारम्भ में तो बिलकुल एक ही रही होंगी। तब से अब तक अपने-अपने यात्रा-पथों पर वे एक-दूसरे से दूर...और दूर बढ़ती चली जा रही हैं। जैसा ऊपर बताया गया है, उसके अनुसार उनकी दूरी और गति मालूम होने पर, उल्टा हिसाब लगाने से पता चल ही जाता है कि, कब वे सब एक जगह पर थीं, एक साथ जनमी थीं। हिसाब लगाया जाये, तो मुहूर्त था–४ अरब वर्ष पूर्व। और, उस समय यदि वास्तव में, विश्व का पदार्थ घनीभूत था, तो उसे विश्व का जन्म-समय मानना ही होगा।

अभी कुछ समय पूर्व तक विश्व की आयु दो अरब वर्ष ही मानी जाती थी, किन्तु दूसरे तरीकों से हमारी इस पृथ्वी की आयु तीन अरब वर्ष प्राय सर्वमान्य

### प्रकाश और कलंक

चंद्र कहे, विश्वे आलो दियेछि छड़ाये,
कलंक जा आछे, ताहा आछे मोर गाये।

—चंद्रमा कहता है–"मेरे पास जो प्रकाश था, उसे तो सारे विश्व में बिखेर दिया, किन्तु जो कलंक है, उसे मैंने अपने ही पास रखा है।" —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

भोजन स्वादिष्ट बनानेके लिये
प्रताप
छाप
हींग




HUXLEY'S
WINTOGENO
WINTOGENO
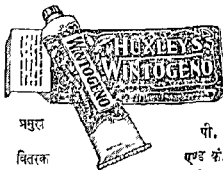
"क्या ही मतवाली,
निराली सुगन्ध है!"
शशिकला
कहती हैं
'लक्स टॉयलेट साबुन की नयी फूल सी महक ने मुझे मोह लिया है"
संसार की सर्वसुन्दर महिलाओं की तरह आप भी सफ़ेद व शुद्ध लक्स टॉयलेट साबुन को अपनी सुन्दरता की रक्षा के लिए प्रति दिन प्रयोग कीजिये। इस का मुलायम, सुगन्धित झाग आप की त्वचा को साफ़ और सुन्दर बनाएगा और आप का रूप खिले फूल की तरह निखर जाएगा।
संपूर्ण शारीरिक सौन्दर्य के लिए बड़े आकार की बट्टी इस्तेमाल कीजिए।
LUX
LUX TOILET SOAP
LUX
लक्स
टॉयलेट साबुन
चित्र तारिकाओं का सौन्दर्य साबुन
भारत में बना हुआ

हो गयी है। फिर पृथ्वी की आयु ही जब तीन अरब वर्ष की है, तो विश्व इससे अधिक आयु का होना ही चाहिए।

माउंट पेलोमार पर नये लगे २०० इंच व्यास की दूरबीन की क्षमता के कारण प्रकाश-वर्षों के द्वारा दूरी नापने का और भी सही माप-दंड वैज्ञानिकों को मिल गया है। उसी से ये नये तथ्य खोज निकाले हैं। कुछ अन्य तरीकों से भी इसी निर्णय पर पहुँचा जाता है कि, हमारे विश्व की आयु ४ से ५ अरब वर्ष के बीच होनी चाहिए।

अब यह वैज्ञानिक सत्य सिद्ध हो चुका है कि, विश्व में हाइड्रोजन के अणुओं के रूप में नित नये पदार्थ पैदा होते रहते हैं। उनके निर्माण का परिमाण बहुत कम है; किन्तु यह विश्व भी इतना विशाल है कि, कुल मिलाकर नये निर्माण का परिमाण, फिर भी बहुत बड़ा हो जाता है।

इस नये निर्माण के उपरांत भी, विश्व-प्राप्त पदार्थ का परिमाण नहीं बढ़ता। कारण, जो निहारिकाएँ विश्व की सीमा पर पहुँच गयी हैं, वे विलीन होती जाती हैं और उनमें का पदार्थ विश्व की पदार्थ-राशि में से कम होता जाता है।

निहारिकाओं के विलीन होने का

[पेलोमार स्थित वेधशाला की २०० इंच व्यास की दूरबीन, जिसके द्वारा १८,००० मील की दूरी पर जलनेवाली मोमबत्ती भी देखी जा सकती है।]

यह तथ्य आधुनिक विश्व-विद्या का एक बहुत ही आश्चर्यप्रद ज्ञान है। हमसे दूर होने की उनकी गति में निरंतर वृद्धि होने के नियम का ही यह विलीन होना स्वाभाविक नतीजा है।

किसी दौड़ती या सहसा होती चीज की चाल प्रकाश से तेज नहीं है। एक निहारिका के, प्रकाश की चाल से भी तेज चाल प्राप्त करने पर, हमें बाध्य होकर यही कहना पड़ता है कि, हमारे शून्य आकाश की सीमा पर पहुँचकर वह निहारिका वहीं तिरोहित हो गयी।

नये पदार्थ के निर्माण तथा पुराने पदार्थ के तिरोहित होने के कारण हमारे विश्व में स्थित पदार्थ के परिमाण में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता। यही बात तारों की भी है। 'हाइड्रोजन-गैस' के जम कर बड़ी-बड़ी बूंदों के रूप में एकत्र होने से ही तो इन नये तारों का जन्म होता है। इसका निष्कर्ष यह निकला कि, न-जाने कहाँ से 'हाइड्रोजन' के नये अणु उत्पन्न होते हैं और वे सम्मिलित होते-होते इन तारों का रूप धारण करते हैं। और, ये तारे मिलकर रूप धारण करते हैं—निहारिका का, जो गति में वृद्धि पाती हुई एक दिन हमारे शून्याकाश से दूर

भासकर तिरोहित हो जाती है। नव-निर्माण और विनाश का यह क्रम चलता ही रहा है, चल रहा है और चलता रहेगा। विश्व-मंच पर इन तारिका, निहारिका-रूपी पात्रों का अभिनय चल रहा है, चलता रहेगा। नये पात्र आते हैं, पुराने चले जाते हैं। इस अभिनय का न कोई आदि था, न कोई अंत है। हाँ, एक-एक पात्र का आदि-अंत अवश्य रहा है और रहेगा। विश्व के इस रहस्य का क्या कहना—इस सच की अनुभूति सामने दीखते-जन्मते-मरते एक प्राणी की अपेक्षा कितनी अधिक रोमांचकारी है!

यह सब अनुभूति की ही वस्तु है। हमारे विश्व के जन्म-जीवन-मरण का हमारा ज्ञान, अधिकांशतः हमारे मस्तिष्क की उपज ही तो है। विज्ञान उसे आँखें देता है जरूर, किन्तु इस पर्वत को देखने के लिए एक चींटी-जितनी बड़ी आँख भी तो उसके पास नहीं है!

००० ००० ०००

हमारे विश्व की आयु का तो ऊपर कुछ पता चला; पर यह है कितना बड़ा, कितना विशाल—इसे नापा है किसी ने? अवश्य हाँ, इसे वामन भगवान ने अपने चरणों से नापा था.....पर इस युग के यशस्वियों की दूरबीनें १,८६,००० मील प्रति सेकेंड चलनेवाले प्रकाश के करोड़ों-अरबों वर्ष की दूरी भी नापने लगी हैं। चार वर्ष पूर्व इस विशाल विश्व में दृष्टि दौड़ाने का कार्य आरम्भ करनेवाली, पैलोमार की दूरबीन ने तो कई नयी बातें खोज निकाली हैं, जिनसे हमारे विश्व के नाप का पता चलता है। सबसे बड़ी बात तो इसने यह की है कि, विश्व को नापने के हमारे फीते को ही गलत साबित कर दिया है।

पहले जिस दूरी को ज्योतिर्विद एक अरब प्रकाश-वर्ष मानते थे, वही दो अरब प्रकाश-वर्ष पायी गयी है। माप-दंड के इस सुधार के कारण हमारे विश्व का नाप, जो हम पहले मानते थे, उससे दुगुना हो गया है। नाप बढ़ा नहीं है, बल्कि पहले का नाप गलत साबित होकर नया नाप पहले की अपेक्षा दुगुना सिद्ध हुआ है। यह नया नाप हमारे तारा-पुंज के परे के तारा-पुंजों पर ही लागू होता है।

पहले की १०० इंच व्यास वाली दूरबीन की जगह नयी २०० इंच व्यास वाली दूरबीन ने ऐसे कम प्रकाशमान तारों को दिखाया है, जिनसे विश्व का मानचित्र बनाने पर, विश्व की विभिन्न निहारिकाओं की पारस्परिक दूरी को सही नापना सम्भव हो सका है। कौन कह सकता है कि, २०० इंच के बाद ४०० इंच व्यास की दूरबीन के बनने पर, यह मापदंड भी गलत न हो जाये? अरबों प्रकाश-वर्षों में नापे जाने-वाले विश्व का सही नाप—सही रूप—फिर भी विज्ञान के लिए कौतूहलप्रद तो है ही! अपने इस विश्व को देखने-समझने और इसका कुछ भी परिचय प्राप्त करने में सचमुच ही, कितना आनंद है!

★

# एक अद्भुत प्रतिशोध

गुर्जर गिरा के रस प्राण उपासक झवेरचन्द मेघाणी की एक लोक-वार्ता का संक्षिप्त हिन्दी-रूपांतर

★

एक हजार वर्ष पूर्व, पाटन महानगरी के सरिता-तीर पर सन्ध्या के समय दो रमते जोगी न-जाने कहाँ से आ उतरे। उनके तन में तेज था और मन में संसार के भौतिक साधनों के प्रति निरपेक्ष उपेक्षा थी। सोना उनकी दृष्टि में मिट्टी के समान भी न था। रत्न और जवाहर को कौन पूछे! वे भोग को जग-जीवन का रोग जान कभी का त्याग चुके थे। जीवन में जाने या, अनजाने उनसे कोई दोष हो गया था, जिसके प्रक्षालन के निमित्त वे समस्त तीर्थों के पुण्य-सरोवरों की बारम्बार शरण ले रहे थे।

दोनों साधुओं की काया-माया अत्यन्त मोहिनी थी। उनमें से एक, जो वय में वयस्क था, अंधा था। पर उसे प्रच्छन्न नेत्र प्राप्त थे, जिनके द्वारा अंधा भी त्रिकालज्ञ हो जाता है। दूसरा साधु ज्ञान में नहीं, पर बाहुबल में अद्वितीय था।

जिस सरिता-तट पर ये दोनों साधु स्नान कर रहे थे, वहीं समीप ही एक घुड़सवार अपनी घोड़ी को पानी पिलाने का प्रयत्न कर रहा था। किन्तु घोड़ी जल के निकट जाती ही नहीं थी। घुड़सवार ने क्रुद्ध होकर अत्यन्त निर्दयतापूर्वक उस घोड़ी को तीन-चार चाबुक मारे। चाबुक की आवाज सुनकर वयवान अंध तापस का हृदय करुणा से भर आया और वह रोष में बोला—"यदि यह घोड़ी मेरी होती, तो इस सेवक को मैं मार डालता।"

"किसलिए?" छोटे साधु ने पूछा।

"इस घोड़ी के पेट में पंचकल्याणी बच्चा है। इस व्यक्ति ने चाबुक के प्रहार से उसकी एक आँख फोड़ दी है।"

घुड़सवार ने यह बात सुन ली और जब वह नगर के राजप्रासाद में पहुँचा, तो उसने सारा वृत्तान्त अपने स्वामी—वहाँ के महाराजा—को बताया।

राजाज्ञा हुई कि, इन सन्तों को सादर महल में ले आया जाये। राजा ने स्वागत-

सत्कार के उपरान्त साधु से नदी-तटवाले कथन का रहस्य पूछा, तो साधु ने सहज भाव से उत्तर दिया—"महाराज ! यह भेद मैंने अपनी विद्या से जाना है।"

"यदि वह गलत निकले तो ?"

"तो इस धड़ पर मेरा सिर न रहे। साधु और क्षत्रिय अपना मस्तक सदैव अपनी हथेली पर लेकर चलते हैं।"

"यही होगा। दस दिन बाद थोड़ी बल्वा देखो, तब आपकी इस विद्या की करामात देखी जायेगी।"

"और, महाराज ! यदि मेरा कथन सच निकले तो ?"

"तो आधा राजपाट और अपनी बहन आपको दे दूँगा।"

दस दिन बाद सचमुच साधु की वाणी सत्य हुई और नगर में शोर हो गया कि, योगी जीत गया, योगी जीत गया।

पाटन का यह राजा राजपूत था। उसके लिए वचन की पूर्ति जीवन से बढ़कर थी। अतएव, उसने अन्तःपुर में आदेश भेजा कि, मेनाबाई के शुभ विवाह की राजसी तैयारियाँ की जायें। उत्तर मिला कि, मेनाबाई ऐसे अधे मूनराज से विवाह करना अस्वीकार करती है, जिसके गोत्र-वंश का पता नहीं है।

साधु-बन्धु इस अपमान को न सह सके और उन्हें राजसभा में अपनी अवस्था और वंश का परिचय देना पड़ा कि, दोनों साधु सोलंकी-कुल के सूरमा हैं और निर्वासित राजपुत्र हैं। अनजाने में किये अपराध के प्रायश्चित्त में गला से लगी गयी जड़ की तीसर लिये टहलते जा रहे हैं।

राजा इनका परिचय पाकर प्रसन्न हुआ। बड़े साधु ने कहा—"महाराज ! मैं तो आजन्म ब्रह्मचारी हूँ—मर्जी हो, तो मेरे छोटे भाई को अपना जामाता बना लें।"

यही हुआ। छोटे साधु का, जिसका नाम राज था, मेनाबाई से विवाह हो गया।

कालान्तर में मेनाबाई की कोख से एक पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ। उस समय एक ज्योतिषी ब्राह्मण प्रसूतिगृह के बाहर बैठा था, ताकि शिशु-जन्म पर तत्काल समय जानकर अपना गणित बिठा सके। किन्तु दासी की असावधानी के कारण घड़ी की सूचना देने में दो घड़ी की देर हो गयी। इसका प्रभाव ज्योतिषी की गणना पर भी पड़ना ही था। और गणना करके ज्योतिषी ने यह बताया कि इस शिशु का दर्शन इसके पिता के लिए मृत्यु का कारण होगा।

परिणाम में, मेनाबाई ने अपने मातृ हृदय को कड़ा कर उस बालक को चुपचाप वन में छिपा दिया।

जिस जगह बालक रख दिया गया था, उसके पास ही एक सिंहनी अपने दो नवजात शिशुओं को पालती थी। इस तीसरे शिशु को असहाय और भूख से रोता देख उसके मन में दया उपजी और उसने इस मानव-शिशु को अपना स्तनदान दिया।

धीरे-धीरे यह बालक उन युगल सिंह-शावकों के संग, सिंहनी का पयपान कर

बडा होने लगा। एक दिन दो पथिक उस मार्ग से निकले। उन्होंने मनुष्य और पशु का यह अद्भुत प्रेम-मिलन देखा, तो विस्मित हुए और उस बालक को अपने साथ उठा लाये।

राज-दरबार में वह बालक लाया गया। राजा ने इस रहस्य उद्घाटन के लिए बीज नामक उस बड़े साधु से निवेदन किया—'महाराज! आप ही कुछ बताइये!"

बीज ने उस बालक को उठाया, तो वह तुरत चुप हो गया। बीज हठात् बोल उठा—"मेरा हृदय गल-कर बर्फ बनता जा रहा है। अवश्य ही यह बालक मेरे वंश का है।"

खोज करने पर वास्तविकता ज्ञात हो गयी। बीज बोला—"क्या मैं अपने वंश-पुत्र को पहचानने में गलती कर सकता हूँ? इस शिशु के रोम-रोम पर मेरे सोलंकी-कुल का नाम लिखा हुआ है। यह मेरे भाई का होनहार सपूत है।"

[झवेरचंद मेघाणी]

उसने उस बालक का नाम मूलराज-सोलंकी रख दिया।

मूलराज के इसी कथाकाल में कच्छ के केराकोट नामक रम्य राजनगर के अधिपति वीरवर लाखा फुलाणी की कीर्ति चारों ओर फैली हुई थी। सेनावाई से विवाहित राज और उसका बड़ा भाई बीज द्वारका जाते समय इसी लाखा की सीमा में से निकले। बीज का नाम लाखा की सभा में पहुँच चुका था। अपने यहाँ इस प्रकार उन्हें अनाहूत आया देख लाखा प्रसन्न हो गया और उसने दोनों को रोक लिया। बीज के कार्य-कलापों के चमत्कार से लाखा इतना प्रभावित हुआ कि, उसने अपनी बहन रायाजी का ब्याह राज से कर दिया।

रायाजी गर्भवती हुई और सुभद्रा के पेट से मानो अभिमन्यु जन्मा हो, इस प्रकार एक पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम राखाइश रखा गया। इन दिनों उसका पिता राज उसके ननिहाल में ही रहता था। बात-बात में एक दिन उसकी अपने साले लाखा से अनबन हो गयी। यह सोचकर कि, मैं अपने ससुराल की रोटी खाता हूँ, जो अपमान भरी है, वह लाखा का नगर छोड़कर अपनी प्रथम पत्नी सेनाबाई के नगर पाटन चला गया।

राज के चले जाने से लाखा को बड़ा पछतावा हुआ। रायाजी का वियोगवश रुदन देखकर लाखा का मन पिघल आया और वह पाटन की ओर ससैन्य चला। नगर के बाहर उसकी राज से भेंट हुई और वह दूर से चिल्लाया—"हे राज, रायाजी तेरे लिए निरंतर रोती है। मेरे अपराध क्षमा कर और केराकोट लौट चल।" किन्तु राज ने लाखा की

बात इसलिए न मानी कि, वह मेना के साथ आया था। राज ने लाखा को लल-कारा। दोनों में युद्ध हुआ और अन्त में राज को अपने प्राणों का बलिदान देना पड़ा। रायाजी विधवा हो गयी। उसका विरह-विलाप अवनि-अम्बर में छा गया।

लाखा के लिए अपनी प्रिय बहन का यह दारुण दुःख असह्य हो गया। अपने अपराधी मन को शांति देने के लिए राखाइश का वह बड़े प्यार से लालन-पालन करने लगा। शुक्ल-पक्ष के बढ़ते चाँद की तरह रायाजी की गोदी का चाँद राखाइश दिन-प्रति-दिन बढ़ने लगा।

एक दिन राखाइश ने अपनी माँ से पूछा—"माँ! मेरे पिता की हत्या किसने की?" माँ ने लाखा और राज के युद्ध का हाल सुनकर राखाइश अपने पिता का बदला लेने को तैयार हो गया। उसकी माँ ने उसे समझाया कि, तुमने अपने मामा का अन्न खाया है, अतएव हम-तुम उसके ऋणी हैं।

राखाइश अब रात-दिन चिंतित रहने लगा कि, अपने पिता का प्रतिशोध कैसे लिया जाये? अनहिलपुर(पाटन) में उसका सौतेला भाई मूलराज सोलंकी अपने परा-क्रम की प्रसिद्धि पा रहा था। राखाइश ने अपने उस भाई के सहयोग से मामा लाखा को मार डालने का आयोजन किया।

उसकी माँ रायाजी ने उसे बहुत समझाया, परन्तु वह न माना और एक रात श्यामा की पूर्ण-भाट नामक घोड़ी पर सवार होकर, रातों-रात अनहिलपुर जा पहुँचा। राजदुर्ग के बाहर से ही उसने जोर से पुकारा—"मूलराज, भाई मूलराज!"

रात्रि का समय था। सब लोग नींद की मधुर गोद में बेसुध थे। राखाइश ने पुनः पुकारा—"मूलराज, भाई! अपने पिता का प्रतिशोध लेना शेष है और तुम इस प्रकार नींद में बेसुध पड़े हो?"

दुर्ग के राजतोरण पर अंधे तपस्वी वृद्ध बीजराज का आवास था। अर्द्धरात्रि में यह आवाज सुनकर वह बाहर निकल आया और बोला—"यह तो मेरे प्रिय पुत्र की वाणी है।"

"बापूजी! आप सोये थे क्या?"

"मैं कैसे सो सकता हूँ, बेटा! अपने भाई की स्मृति को साकार देखने के लिए मैं आज पिछले अठारह वर्षों से एक-एक पल गिन रहा हूँ।"

अब तक मूलराज भी जग गया था। दोनों भाई आकुलतापूर्वक गले मिले। राखाइश ने कहा—"भाई! अपने पिता का बदला लेना है।"

"बदला! मामा से! तेरे आश्रयदाता से?" मूलराज ने विस्मित हो पूछा।

"चिंता न करो। मैं तुम्हें इसके लिए निमंत्रण देने आया हूँ। सोमवार के प्रभात में केराकोट के प्रमुख शिवालय में मामा पूजा करने आयेगा। उसी समय हमारा महारुद्र जागेगा। घबड़ा मत जाना, भाई! तुम पिता की ओर से आमन्त्रण करने आओगे और मैं मामा की ओर से

उसका उत्तर दूँगा। मैं सदैव उनकी रक्षा में आगे-आगे चलूँगा। अपने बाणो के समक्ष, अवली की चट्टानो के समान अटल मेरे सीने को देखकर, तुम कही विचलित मत हो जाना।"

मूलराज और राखाइश की बाते सुनकर उनका ताऊ अध तापस बीजराज प्रसन्न हो गया और उसने दोनो को गले लगाकर आशीर्वाद दिया।

निश्चित समय पर सोमवार के दिन लाखा महादेव के शिवालय में पूजा के लिए सेना-सहित आया। जब वह पूजा-*पाठ में तल्लीन था, मूलराज सोलकी की सेना ने आक्रमण कर दिया।*

दोनो सेनाओ मे घमासान युद्ध होने लगा। किन्तु लाखा शिवमूर्ति के सम्मुख पूजा के अपने आसन से न हटा।

जब लडते-लडते सोल्की सैनिक उसके अति निकट आ गये, तो वह चितित हुआ, क्योकि पूजा में वह निरस्त्र बैठा था। उसके सैनिक इधर-उधर उलझे थे, मूलराज समीप आकर उसे बारम्बार ललकार रहा था। तभी राखाइश ने निकट आकर कहा-"मामा, मैं आपके अन्न पर पला हूँ। प्राण रहते आपकी रक्षा करूँगा।"

लाखा और राखाइश तलवारे लेकर मूलराज के सैनिको पर टूट पडे। किन्तु विजय मूलराज सोलकी की ओर थी। लाखा के वीर मृत्यु का वरण कर चुके थे।

मूलराज सोलकी ने तभी तलवार खीचकर ललकारा-"मामा! सावधान!"

इसके पूर्व ही लाखा की रक्षा में राखाइश के तीर मूलराज की ओर उड चले।

मूलराज ने चिल्लाकर कहा-"भाई, भाई राखाइश!"

राखाइश ने बाणो की वर्षा करते हुए उत्तर दिया-"भाई नही, दुश्मन कहो! दुश्मन! और, खुलकर वार करो!

मूलराज ने लाखा पर प्रहार किया, परन्तु राखाइश बीच में आ गया। भाले के प्रखर प्रहार से राखाइश की देह कटे वृक्ष के समान धराशायी हो गयी। मूलराज न दुगुने क्रोध से वार किया। इस *वार लाखा वीर-गति को प्राप्त हुआ।*

अपने पिता के वैरी से बदला ले मूलराज सोलकी राखाइश के लिए शोक मनाता हुआ अनहिलपुर रवाना हो गया।

युद्ध-क्षत्र में मामा लाखा और राखाइश की घायल देह पडी थी। दोनो घडी-दो-घडी के मेहमान थे। मामा तडप रहा था, पर पाषाण-से कठोर प्राण छूटते ही नही थे। उन्हे अब भी ससार के युद्ध-क्षेत्र का मोह था। राखाइश भी रक्त के फौव्वारो में छटपटा रहा था।

*तभी राखाइश ने देखा कि, एक बडी-सी* चील मामा की आँखें निकाल ले जाना चाहती है। उसने चील को उडाने के लिए अपना हाथ उठाना चाहा, पर हाथ तो कई जगह से कटा था। किसी प्रकार अपनी कटी पसली का एक अश चील को दिखाकर उसने मामा की आँखो की रक्षा की। और, काल आने पर दोनो चल बसे।

✶

'रिसलाइस्ट' में प्रकाशित श्री डेनियल इकवेल के एक लेख के आधार पर

★

दूसरे पृष्ठ के इस मानचित्र को देखिये। दक्षिण अमेरिका का यह एक नगण्य देश आज कुछ ही वर्षों में संसार के देशों में एक 'सिद्ध-देश' बन गया है—उसी की भाँति, जिसे भगवान छप्पर फाड़कर धन दे। इस देश को धरती फाड़कर आज के जमाने का 'बहता काला सोना'—तेल—मिला है। इस देश का नाम है, वेनेज्वेला।

नवम्बर, १९५० के 'नवनीत' में आप ऐसे ही वरदान की कृपा से समृद्ध कुवैत का हाल जान चुके हैं; पर वहाँ की समृद्धि अभिशापित केवल वहीं के शेख की है। वेनेज्वेला में भी यह 'बहता काला सोना' सुन्दर-सुन्दर नये मकानों, चीजों से भरी दुकानों, सड़कों पर मोटरों की भीड़, घर-घर टेलिविजन व मयखानों में शराब के दौरों के रूप में पद-पद पर प्रकट हो रहा है। मानो किसी मजदूर बाप की मरी दौलत गाड़-उखाड़ बेटे के हाथ लग गयी हो और वह चारों ओर अपनी शाह-खर्ची की धौंस जमा रहा हो।

दक्षिण अमेरिका के देश—पनामा, ब्रिटिश गिनी, कोलम्बिया, ब्राजील—इस देश की सीमा पर हैं। १९४८ में जब क्रिस्टोफर कोलम्बस मराकैबो-तट पर आया था, तो उसने इस देश में फैली हुई नहरों और छिछली झीलों को देखकर, इसके सौंदर्य से मुग्ध होकर, इसे नाम दिया था 'वेनेज्वेला', अर्थात् 'छोटा वेनिस'। उसे क्या पता था, नहरों पर का पानी नहीं; किन्तु इसके गर्भ का तेल अवश्य ही किसी दिन इसे बड़ा बनायेगा!

आज यहाँ प्रति दिन १७ लाख बैरल—अर्थात्, ७ करोड़, १४ लाख गैलन—तेल का उत्पादन होता है। वेनेज्वेला दुनिया में सबसे दूसरा बड़ा तेल उत्पादक और उसका सबसे बड़ा निर्यात करनेवाला है। उससे बड़ा तेल-उत्पादक केवल अमेरिका है। वेनेज्वेला में ११,००० तेल के कुएँ हैं, जिनसे दुनिया का १३ प्रतिशत तेल निकलता है। यहाँ के १७ लाख बैरलों के परिमाण का इसी से अनुमान कर लीजिये कि, सारे हिंदुस्तान की पैदावार लगभग ७०-७५ हजार बैरलों से अधिक नहीं है।

वेनेज्वेला के तेल के कुएँ देश के दो भागों में विभक्त हैं। एक तो मराकैबो के वन्यभागों में एक झील के बीच, दूसरा पूर्वी प्रदेश में। देश की राजधानी है,

सराकास—२,५०० फुट की ऊँचाई पर पहाड़ों के बीच—जहाँ तक सुख, सुविधा और गति से पहुँचने के लिए २५ करोड़ रुपया खर्च कर शानदार सड़क बनायी गयी है—२० महीने के भीतर !

अब भी वहाँ की एक-तिहाई आबादी पहाड़ी ढलानों पर लकड़ी की झोपड़ियों में बसती है, किन्तु भवन-निर्माण की ऐसी प्रगति वहाँ की राजधानी में चल रही है, जैसी आज तक नहीं देखी गयी—सैंकड़ों-हजारों मकान बन रहे हैं। इमारती सामानों से लदी लारियों से सड़कें भरी पड़ी हैं—कहीं होटल बन रहा है, कहीं नाचघर, तो कहीं 'स्विमिंग-पूल' ! अधा-धुंध 'प्रगति' हो रही है। वहाँ की राजधानी सराकास में ही नहीं, वेनेज्वेला देश के किसी भी भाग में पदार्पण कीजिये, तो ऐसा मालूम देगा कि, भरी-पूरी किसी थैली का मुँह खुल गया है और चारों ओर मौज शौक की धूम मची हुई है !

वेनेज्वेला-निवासी तेल के सिवाय और किसी वस्तु के उत्पादन से खास सरोकार नहीं रखते। धरती के गर्भ से इस 'काले बहते सोने' को चूस-चूस कर देश देशांतर में भेजते हैं और बदले में अपनी सब तरह की आवश्यकताओं का आयात करते हैं। करीब सवा तीन अरब रुपये की चीजें वे हर साल आयात करते हैं—मशीनरी, मोटर, रेफ्रिजरेटर, रेडियो, सिलाई की मशीन, हवाई जहाज, लोहा, 'कडेंस्ड' दूध, लडाकू सॉड, फल, कागज, शराब, कपड़ा, सिगरेट, सभी-कुछ ! २२ करोड़ रुपये की अमरीकी मोटरें ही वे हर साल खरीदते हैं और जगह-जगह चीटियों की तरह उनकी लम्बी-लम्बी पंक्तियाँ लगी रहती हैं !

जहाँ-कहीं भी जाइये, जिस-किसी से जो-भी बात कीजिये, वह होगी तेल के बारे में ही—जैसे वहाँ के वातावरण में तेल समाया हुआ हो। जहाँ ११,००० कुएँ अहर्निश तेल उगल रहे हों, जहाँ के प्रायः सभी उस तेल के गुलाम हों, वहाँ और बात हो भी क्या सकती है ?

पर देश के समझदारों को यह गुलामी चिंतित किये हुए है। किसी दिन यह स्रोत बंद हो गया, तो ? अनुमान तो है कि, अभी ५० वर्ष तक यह स्रोत अबाध रूप से बहेगा। पर देश का जीवन ५० वर्ष का ही तो नहीं होता ? अतः अब वहाँ खेती का प्रचार किया जा रहा है—खाद व अच्छे बीज बाँटे जा रहे हैं। खेती भीतरी भागों में सम्भव है, पर वहाँ का जलवायु ऐसा है कि, बस्ती बढ़ नहीं पाती—सभी

[ वेनेज्वेला का भौगोलिक मानचित्र ]

शहरों की ओर बढ़ते चले आते हैं। वहाँ के जीवन का आकर्षण भी तो बहुत है।

ऐसे 'धनी' देश की छोटी आबादी उसी भाँति है, जैसे सम्पन्न पिता के एक-दो सन्तान का ही होना। वेनेज्वेला की आबादी बढ़नी चाहिए, बाहर से लोगों को आकर वहाँ बसना चाहिए। सफेद चमड़ीवाले वहाँ जाकर वहाँ के भीतरी भू भागों में बसते नहीं, रंगीन चमड़ीवालों को परे रखने का ही प्रयत्न किया जाता है। गोरी चमड़ी, भूरे बाल और नीली आँखें वालों से बसा-बसाया देश देखने की महत्वाकांक्षी सरकार औरों के वहाँ आकर बसने में रोड़े ही अटकाती रहती है।

जहाँ धन, वहाँ भय! जहाँ भय, वहाँ पहरा! सारा देश मानो मिलिट्री-कैम्प हो। देश में पाँव रखते ही, वहाँ के जीवन में घुले-मिले, पद-पद पर खाकी वस्त्र व पिस्तौल धारी, निरंकुश पुलिस-कर्मचारी फैले हुए है। सबकी कड़ी जाँच रखते हैं। कोई कहीं तेल-देवता का दुश्मन तो नहीं है न? कोई कहीं दूर तक फैली लम्बी तेल की 'पाइप-लाइन' में छेद करने की फिराक में तो नहीं है न? ३२-३३ पृष्ठों के मोटे दैनिक पत्रों की एक-एक पंक्ति कड़ाई से सेंसर की हुई होती है। ५ हजार राजनैतिक नजरबंद हैं—एक टापू में। राजधानी का विश्वविद्यालय पिछले दो वर्ष से बंद कर दिया गया है।

ऐसे देश का शासन भी ऐसा ही है। ४० वर्ष का एक फौजी कर्नल पीरेज जिमेनेज, डिक्टेटर बना बैठा है। १९५१ में चुनाव हुए थे, उसका विरोधी-दल चुनाव में जीता था, पर निर्वाचन के फल की परवाह किये बिना वह आज भी एकछत्र राज्य कर रहा है। वह तो साफ कहता है–"स्वतंत्रता का क्या मतलब है? देश की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए तो कठोर शासन चाहिए।"

उसके सहयोगी भी उसके-जैसे ही हैं। सारा देश अपरिपक्व बुद्धिवाले व्यक्तियों से भरा पड़ा है। जीवन के मूलभूत सद्गुणों का तो वहाँ पता ही नहीं। पुराने निवासी तो अपनी गरीबी के कारण दुर्गुणी और नये कमाऊ पूत अपने धन के कारण दुर्गुणी! नवजात शिशुओं में ७० प्रतिशत मिली जुली रक्त के होते है! ऐसे देश को वहाँ का 'बहता काला सोना' सद्गुण प्रदान कर पायेगा क्या?

वेनेज्वेला में अमेरिका का १५ अरब रुपया लगा हुआ है, जिससे उसे सालाना सवा अरब की आमदनी है। अमेरिका अपने तेल को जितना हो सके, बचाकर रखना चाहता है–जितना हो सके, उतना वेनेज्वेला के कुओं को सोख रहा है। वेने-ज्वेला देश के हित की बात कोई नहीं सोच रहा है। ओरिनोको-बेसिन के लोहे, निकटस्थ गीनी के बाक्साइट, कारोनी के जलप्रपात, वहाँ के प्राकृतिक गैस, सोने और हीरों को भी लोग भूले हुए हैं। फिर खेती करके स्वावलम्बी होने की बात ही भला कौन सोचता-समझता है!

नवीन ज्ञानार्जन के प्रकाश में सर्जरी के कुछ अद्भुत चमत्कारों का संक्षिप्त विवरण

★

दिसम्बर, सन् १९५२ की यह घटना है। पेरिस में मारियस रेनार्ड नाम का एक लडका किसी तिमंजिली इमारत से नीचे गिर पडा। उसके गुर्दे में भयानक चोट आयी। उसके शरीर से बडी देर तक इतना ज्यादा खून बहता रहा कि, उसे रोकने का प्रबंध शीघ्र ही नही कर लिया जाता, तो उसकी मौत निश्चित थी।

रोगी की अवस्था अत्यंत गम्भीर थी। डाक्टर कुछ देर तक तो आपस में विचार-विमर्श करते रहे और फिर अंत में आपरेशन करके मारियस के शरीर से गुर्दे का सारा भाग–जो चोट लगने से बिलकुल चकनाचूर हो चुका था–निकाल देने का निश्चय किया गया। लेकिन जब आपरेशन किया गया, तब डाक्टरों ने देखा कि, अपने जन्म के समय से ही मारियस के शरीर में सिर्फ एक ही गुर्दा था!

मारियस की माँ ने अपने बच्चे की जान बचाने के लिए डाक्टरों से अनुरोध किया कि, वे उसके शरीर से एक गुर्दा निकाल कर मारियस के शरीर में जोड दें। डाक्टरों ने आपरेशन करके उसके शरीर से एक गुर्दा निकाला और मारियस के शरीर में जोड दिया। उक्त सारी क्रिया में कुल ६ घंटे लगे, लेकिन रोगी अब खतरे से बाहर था।

न्यूयार्क में भी इसी तरह नवम्बर, सन १९५० में एक आपरेशन हुआ था। एक महिला के गुर्दे में खराबी थी और उसकी चिकित्सा के लिए उसे अस्पताल में भरती होना पडा। डाक्टरों ने आपरेशन करके किसी अन्य महिला के शरीर से–जिसकी हाल ही में मृत्यु हुई थी–गुर्दा निकाल लिया और उसे इस रोगिणी की गुर्दे की जगह लगा दिया। परिणाम आशातीत रहा। कुछ दिनों बाद ही वह बीमार महिला बिलकुल अच्छी हो गयी। उक्त आपरेशन के

५ दिन बाद ही उसकी स्थिति यह थी कि, वह बिना तकलीफ उठ-बैठ सकती थी। २० दिनों बाद तो वह अपने-आपको चलने-फिरने में भी समर्थ पा रही थी और उसके लगभग १ सप्ताह बाद वह पूर्णरूपेण स्वास्थ्य-लाभ कर चुकी थी।

शल्य-चिकित्सा-विज्ञान (सर्जरी) के क्षेत्र में इसी तरह के और भी न-जाने कितने नये और सफल प्रयोग इधर हुए हैं! एरिजोना में मई, सन् १९५० में एक लड़का आग की लपटों से बुरी तरह झुलस गया। उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं रही। लेकिन तब भी, डाक्टरों ने उसके शरीर पर एक नया प्रयोग और परीक्षण शुरू किया। किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर का चमड़ा लेकर, जहाँ-जहाँ से वह जल गया था, वहाँ-वहाँ उन्होंने उसे जोड़ना शुरू किया और इस नवीन प्रयोग में उन्हें सफलता भी प्राप्त हो गयी।

जिस तरह गुलाब के पौधे की एक कलम काटकर, दूसरी जगह लगाने पर वह उग आती है और उसमें 'जीवन' पूर्ववत् ही कायम रहता है, ठीक उसी तरह, दूसरे व्यक्ति के शरीर से काट कर लिये हुए चमड़े को भी, जले हुए व्यक्ति के शरीर ने इस तरह आत्मसात् कर लिया, जैसे वह कभी 'पराया' रहा ही न हो! अपने स्थान पर, लगातार रक्त के सिंचन से उक्त नयी चमड़ी भी मुर्दा नहीं हो पायी और धीरे-धीरे शरीर का ही एक अंग बन गयी–पूर्णतया सजीव और कार्मरत!

सर्जरी के क्षेत्र में इस तरह के प्रयोगों पर विशेषज्ञों का ध्यान सिर्फ एक-चौथाई सदी पूर्व ही गया है। इस दिशा में सबसे पहले, सन् १९०६ में, 'ब्लड-बैंकों' (रक्त-कोषों) की स्थापना हुई थी, जब विशेषज्ञ अपने अनुसंधान और नये परीक्षणों से इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे कि, एक व्यक्ति के शरीर का खून आवश्यकता पड़ने पर किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर में भी पहुँचाया जा सकता है! उक्त खोज के लगभग ३९ वर्ष बाद, सन् १९४५ में, चक्षु-कोषों की स्थापना हुई और अब तो हड्डी व शरीर के अन्य अवयवों का भी, विशेष तापमान में स्थित संग्रहालयों में संग्रह किया जाने लगा है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि, हृदय के निकट, किसी व्यक्ति की रक्त-प्रवाहिनी शिराओं में खराबी आ जाने से, उसके हृदय की धड़कन रुकने लग जाती है। यदि ऐसे व्यक्ति की तत्काल यथोचित चिकित्सा न की जाये, तो उसके जीवित बचने की कम उम्मीद रहती है।

न्यूयार्क में डाक्टर क्लाड एस बैक के पास एक बार एक ऐसा ही मामला आया। हृदय की धड़कन रुक जाने से एक अन्य डाक्टर अपनी जिंदगी की आखिरी घड़ियाँ गिनते हुए उनकी आप-रेशन-मेज पर लेटा हुआ था। लेकिन हृदय-रोग विशेषज्ञ डाक्टर क्लाड मरीज की यह स्थिति देखकर विशेष चिंतित नहीं हुए। हृदय का आपरेशन करते हुए

उन्होंने–जिस रक्त-प्रवाहिनी शिरा के रुक जाने से उक्त सारी गडबडी पैदा हुई थी–उसे काट कर उसके स्थान पर एक नयी नली जोड दी। फलत देखते-ही-देखते, बीमार के हृदय तक शरीर की रक्त-सचालन-क्रिया पुन आरम्भ हो गयी। डा बल्गाड ने सतोष की साँस ली–स्पष्ट था कि, बीमार अब खतरे से परे है।

कई बार बच्चेदानी में खराबी आ जाने से, औरतो में गर्भ धारण करने की क्षमता नही रह जाती। लेकिन 'याले मेडिकल कालेज के प्रोफेसर, डाक्टर हेरी ग्री तथा डाक्टर व्हाइटनी ने इस सम्बन्ध में बडे ही आशाजनक परीक्षण किये है। अब निकट भविष्य में ही, शल्य क्रिया से औरतो की बच्चेदानियो की अदला-बदली सम्भव हो सकेगी और इस तरह किसी भी औरत की गर्भ धारण करने की अक्षमता को आसानी से दूर किया जा सकेगा।

रूसी डाक्टर भी इस दिशा में काफी आगे बढ चुके है। मास्को स्थित 'चिकित्सा-विज्ञान एकादमी' के डाक्टर वी पी डेमीखोव ने वर्षों की कठिन तपस्या के बाद आपरेशन-द्वारा कुत्तो के 'हृदय और 'फेफडे की, आपस में अदला-बदली करने में सफलता प्राप्त कर ली है। एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानातरित होने के बाद भी उक्त हृदय और फेफडे पूर्ववत् ही कार्य कर रहे है।

कोलम्बिया विश्वविद्यालय के 'मेडिकल कालेज' में भी वहाँ के कुछ प्रमुख डाक्टरो ने बिल्लियो के दाँत एक-दूसरे के दाँतो से अदला-बदली करके देखे है और परिणाम सर्दव आशाजनक रहा है। कई बार तो उन्हे किसी बिल्ली की ऊपर की दाढ निकाल कर नीचे लगा देने में भी सफलता मिल चुकी है।

[कीटाणु सिद्धात के सुप्रसिद्ध विश्लेषक रावर्ट कौश]

इसी तरह, मनुष्यों के मस्तिष्क तथा हृदय परिवर्तन के भी अनक नये प्रयोग चल रहे है। आपरेशन कर किसी मृत व्यक्ति की आँख की पुतली किसी अधे व्यक्ति की आँख में जोड कर उसे भी देखने योग्य बना देने की कहानी तो अब बहुत पुरानी हो चुकी है। चिकित्सा विज्ञान ने तबसे बहुत प्रगति की है। इन दिनो जो अनुसधान और परीक्षण चल रहे है, यदि वे सफल हो गये, तो फिर निश्चय ही किसी दिन ऐसी स्थिति भी ससार के सामने आ सकती है, जब इस धरती पर कोई व्यक्ति अपग अथवा असुदर नहीं रह जायेगा।

किन्तु इन नये प्रयोगो के रास्ते में कोई रुकावट न हो, ऐसी बात नही। प्रकृति पर इसान की जीत का यह महान् स्वप्न उतना सरल नही है, जितना सोचने

पर प्रतीत हो सकता है।

इन प्रयोगों के रास्ते में जो सबसे बड़ी बाधा आज अनुभव की जा रही है—वह यह है कि, कई बार शरीर किसी 'पराये' तत्व अथवा अवयव को स्वीकार करने या उसे आसानी से अपनाने को तैयार नहीं होता। 'अपने' और 'पराये' के उक्त भेद के बीच कभी-कभी, किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर से लेकर जोड़ा हुआ अंग कारगर नहीं हो पाता और उस स्थिति में वह लाभ के स्थान पर हानि ही पहुँचाया करता है।

किसी मशीन का एक पुर्जा खराब हो जाने पर, आप उसी नाप का दूसरा पुर्जा आसानी से, बाजार से खरीद कर ला सकते हैं। लेकिन एक मनुष्य के हृदय के किसी भाग में खराबी आ जाने पर, उसे काटकर, उसकी जगह ठीक उसी नाप का दूसरा हृदय आप कहाँ से लायेंगे? ऐसा आप कर नहीं सकते कि, जिस नाप का हृदय वहाँ पर जोड़ना है, ठीक उसी नाप का हृदय खोजने के लिए हजार-दो हजार आदमियों का आपरेशन कर दें अथवा हजार-दो हजार ताजे शव आपको अपने उस प्रयोग के लिए प्राप्त हो सकें! छोटी-छोटी नसों और नाड़ियों से निर्मित मानव-शरीर की मशीनरी लोहे और इस्पात की छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी मशीनरियों से भी अधिक पेचीदी है।

किन्तु धुन के धनी मानव ने इतनी आसानी से पराजय स्वीकार करना नहीं सीखा है। चिकित्सा-शास्त्र के विशेषज्ञ और वैज्ञानिक इन अड़चनों की किंचित्-मात्र परवाह न करते हुए अपने प्रयोगों में पूरी तन्मयता से जुटे हैं। उन्हें अपने उक्त प्रयोगों में पूर्ण सफलता कब मिलेगी—मिलेगी भी या नहीं—इस सम्बन्ध में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन क्यों न वे जो स्वप्न देख रहे हैं—कौन दावा कर सकता है कि, वह कभी पूरा होगा ही नहीं?

मानवता की सेवा में तत्पर इन तपस्वियों को अपनी साधना की सफलता का पूर्ण विश्वास है। निश्चय ही एक दिन ऐसा भी आयेगा, जब मानव-शरीर के विभिन्न अवयव—हृदय, फेफड़े, गुर्दा, तिल्ली, धमनी, हड्डी, धमनियाँ, छोटी-बड़ी नसें और रक्त-प्रवाहिनी शिराएँ तक—रक्त-कोष (ब्लड-बैंक) की तरह ही बड़े-बड़े अस्पतालों में संगृहीत किये जा सकेंगे और जिस किसी व्यक्ति को इनमें से जिस चीज की आवश्यकता होगी, उसे वह आसानी से उपलब्ध हो जायेगी!

*

## दो बार प्रधान मंत्री

फ्रांस की पार्लमेंट में एक सदस्य लम्बी बहस सुनते-सुनते सो गया। जब वह जगा, तो उसके मित्र ने बताया कि, इतनी देर में वह दो बार प्रधान मंत्री बनाया जा चुका था। —'परी मैच' (फ्रांसीसी साप्ताहिक) से

*

# महासागर की जन्म-गाथा

डा. एस. के. कल्याणसुंदरम् द्वारा लिखित एक अनुसंधानात्मक लेख

★

हमारी इस पृथ्वी पर इतना पानी कहाँ से आया, इस प्रश्न का उत्तर देना बहुत कठिन है। यह बात तो ठीक है कि, भाप के ही ठंडी हो जाने से पानी की उत्पत्ति हुई होगी, पर यह कैसे हुआ कि, भूमि का कुछ भाग थल बन गया और कुछ जल? वे बड़े-बड़े खड्ड, जिनमें इस समय पानी भरा हुआ है, कैसे बने? सूखी जमीन कैसे निकली? यह बहुत सम्भव है कि, जहाँ इस समय पानी है, वहाँ कभी थल रहा हो—थल और जल का जो अनुपात इस समय है, वह कालांतर में स्वयं ऐसा बन गया हो! पर ऐसा भी तो हो सकता है कि, किसी समय समस्त भूमंडल पर समुद्र-ही-समुद्र हो, थल का कहीं नाम भी न हो! भूमि पर इतना पानी तो इस समय है ही, जिससे समस्त पृष्ठ-तल ढक जाये। पृष्ठ-तल में थोड़ा-सा परिवर्तन होने से ही यह सम्भव है कि, समस्त थल-भाग पानी के नीचे आ जाये।

भूमि के थल-भाग की औसत ऊँचाई २,२५० फुट है और समुद्रों की औसत गहराई १३,८६० फुट। समुद्र-तल का क्षेत्रफल थल-पृष्ठ की अपेक्षा २॥- गुना से भी अधिक है। समुद्र-तल का क्षेत्रफल लगभग १४,४०,००,००० वर्ग मील और थल-पृष्ठ का क्षेत्रफल लगभग ५,५०,००,००० वर्ग मील है। इससे स्पष्ट है कि, समुद्र-तट से ऊपर जितनी भूमि है, उसकी अपेक्षा समुद्र जल की मात्रा १३-गुने से भी अधिक है। इसके आधार पर यह बखूबी कहा जा सकता है कि, यदि भूमि की आकृति सुडौल अंडे की-सी होती, तो इसके समस्त भाग पर दो मील गहरा समुद्र फैला होता।

समुद्र के तल में थोड़ा-सा उठाव या गिराव होने से ही बहुत अधिक भौगोलिक परिवर्तन हो सकते हैं। यदि इस समय की अपेक्षा समुद्र-तल ६०० फुट कम हो जाये—अर्थात् यदि पानी ६०० फुट नीचे खिसक जाये—तो फ्रांस और इंग्लैंड एक-दूसरे से संयुक्त हो जायेंगे, एशिया और अमेरिका बहरिंग-डमरूमध्य पर जुड़ जायेंगे, भारतवर्ष और लंका एक हो जायेंगे, पेपुआ और टसमानिया आस्ट्रेलिया से मिल जायेंगे एवं सिडनी से पेकिंग और पेकिंग से क्लोडाइक तक स्थल-

मार्ग से ही जाना सम्भव हो जायेगा। पानी से ६०० फुट खिसकने से १,००,००,००० वर्ग मील से लगभग नयी सूखी जमीन ऊपर निकल आयेगी।

पर यदि समुद्र का पानी २,००० फुट और ऊपर उठ जाये, तो भूमि का अधिकांश थल-भाग पानी में विलीन हो जायेगा। महाद्वीपों की आकृति, रूप और विस्तार इस बात पर निर्भर है कि, महासागरों की तलहटियाँ कितनी गहरी हैं और किस प्रकार की हैं।

पृथ्वी के भौगोलिक इतिहास में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं। जहाँ इस समय हिमालय की आकाशचुम्बी उत्तुंग चोटियाँ हैं, वहाँ भी एक समय पानी बह रहा था। पृथ्वी के जल और थल-भागों में अनेक बार विनिमय हुआ। पर बड़े-बड़े महासागरों के गड्ढे कैसे बने, इसके अनेक रहस्यमय कारण हैं। कहा जाता है कि, भूमि का एक भाग टूटकर पृथक् हुआ और चन्द्रमा बना, तो जो गड्ढा वहाँ रह गया, वही पैसिफिक या प्रशांत महासागर कहलाया। पर यह कल्पना कहाँ तक सच है, यह कहना कठिन है। सम्भव है, कुछ गड्ढे इस प्रकार अवश्य बने हों, पर उनमें से बहुत-से तो अब तक बिलकुल मुँद भी गये होंगे।

आरम्भ में पृथ्वी लचीली और कोमल थी। तेजी से चक्कर खाने के कारण इसमें छेद मुँद अवश्य गये होंगे; पर बराबर नाचते रहने के कारण इसका नाशपाती का-सा आकार हो गया होगा। नाशपाती की गर्दन के निकट समुद्र-भाग आकर जमा हो गया होगा। नाशपाती की नोक पृथक् द्वीप के समान निकली हुई दिखायी देती होगी। दूसरी ओर का गोल चौड़ा भाग एक महाद्वीप बन गया होगा।

यह प्रारम्भिक समुद्र तो अब भी प्रशांत महासागर के रूप में विद्यमान है; पर उस प्रारम्भिक महाद्वीप के अटलांटिक और भूमध्य सागरों ने कई टुकड़े कर दिये हैं। अति प्राचीन काल में उत्तरी अमेरिका, ग्रीनलैंड और उत्तरी यूरोप, इन तीनों से मिला हुआ, एक बड़ा महाद्वीप था और यह महाद्वीप एक थल-भाग द्वारा एक दूसरे प्राचीन महाद्वीप से सयुक्त था, जिसका नाम गोंडवाना-लैंड रखा गया है। इस गोंडवाना-लैंड में आजकल के

## मानव-मन

मैं मनुष्य के मन के सम्बन्ध में एक बहुत ही विलक्षण बात यह देखता हूँ कि, जब कोई विपत्ति अचानक उसके सिर पर आ पड़ती है और उसे बहुत अधिक अस्थिर व उद्विग्न कर देती है, तब कभी-कभी वह उस विपत्ति को तो एक ओर रख देता है और दूसरी किसी तुच्छ बात की चिंता करने बैठ जाता है।

—शरत्चंद्र
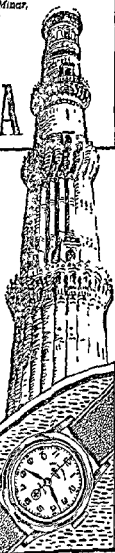
सौंदर्य निखरता ही गया—
ज्यों ज्यों रेक्सोना का
उपयोग किया...
...क्यों कि कॅडिल
मिले रेक्सोना से सोई
हुई सुंदरता जाग
उठती है !
रेक्सोना

अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, अरब, दक्षिण भारत और आस्ट्रेलिया, सब संयुक्त और सम्मिलित थे। दक्षिण यूरोप का अधिकांश भाग एक पुराने टेथिस समुद्र में डूबा हुआ था। इस टेथिस सागर का एक भाग उत्तर में यूरोप को एशिया से पृथक् करता था और दूसरा भाग उस स्थान पर फैला हुआ था, जहाँ आजकल हिमालय की श्रेणियाँ हैं। यह भाग भारत और मलाया प्रायद्वीपों को, जो गोंडवाना-लैंड के भाग थे, शेष एशिया से पृथक् करता था। इस प्रकार भारत, यूरोप और अफ्रीका से पृथक्, जो उत्तर-पूर्वी एशिया था, वह एक विशाल द्वीप था, जिसका नाम 'अगारा' है। अटलांटिक सागर तो एक झील के समान था, जिसे 'लारामी' कहा जाता है। यह प्रशांत सागर से स्वेज-स्थल-डमरूमध्य स्थान पर जुड़ा हुआ था। भौगर्भिक इतिहास के माध्यमिक काल (मेसोजोइक युग) में पृथ्वी की ऐसी अवस्था थी। तब से अब तक तो बहुत परिवर्तन हो गये हैं।

इस समय निस्संदेह सबसे बड़ा समुद्र प्रशांत महासागर है। इस अकेले का क्षेत्र-फल ६,७७,००,००० वर्ग मील है, अर्थात् हमारे समस्त थल-भाग से भी अधिक। इसमें बहुत-से द्वीप भी हैं, पर फिर भी इसके बहुत-से ऐसे भाग हैं, जो निकटस्थ महाद्वीप से भी २,५०० मील दूर हैं।

[सूर्य के महापिंड से विलग होते हुए पृथ्वी एवं ग्रहों को व्यक्त करनेवाला एक चित्र]

प्रशांत सागर अटलांटिक महासागर से अधिक गहरा है। इसका अधिकांश भाग १४,००० फुट से भी ज्यादा गहरा है। ५,२८० फुट का एक मील होता है, अर्थात् अधिकांश गहराई २·७ मील की है। बहुत-सी जगह तो गहराई और भी अधिक है। पेरू-तट से थोड़ी दूर पर समुद्र की गहराई २८,००० फुट (५·४ मील) है। जापान के पूर्वी तट से कुछ दूर समुद्र का एक इतना बड़ा भाग है, जो क्षेत्रफल में न्यूजीलैंड के बराबर होगा। इसे 'टुस्कारोरा-डीप' कहते हैं। यह २८,००० फुट से भी अधिक गहरा है। सबसे अधिक गहराई फिली-पीन के पूर्वी तट से कुछ दूरी पर एक जहाज 'प्लेनेट' ने नापी थी। यह गहराई ३२,०८९ फुट, अर्थात् ६ मील के लगभग

की निकले। प्रशांत महासागर के बेहरिंग-डमरूमध्य की गहराई केवल ३०० फुट है। एशिया और फिलीपीन के बीच का समुद्र और फिलीपीन और आस्ट्रेलियन द्वीपों के बीच का समुद्र ६०० फुट से शायद ही कहीं अधिक गहरा हो।

अटलांटिक महासागर की दो भुजाएँ हैं–एक तो उत्तरी महासागर और एक भूमध्यसागर। अटलांटिक का इस प्रकार समस्त क्षेत्रफल ३,४७,००,००० वर्ग मील है। यह एक प्रकार से नदियों का समुद्र है, क्योंकि संसार की अधिकांश बड़ी-बड़ी नदियाँ इसी महासागर में गिरती हैं–अमेजन, मिसीसिपी, ओरिनोको ला-प्लाटा, उरुग्वे, पराना, कांगो, नाइजर, नील, सेंट लारेंस, डन्यूब, राइन, रोन, आदि। यह उतना तो गहरा नहीं, जितना प्रशांत महासागर है, पर तब भी बहुत गहरा है। अधिकांश स्थानों पर गहराई १८,००० फुट से अधिक है। इस महासागर के दो भाग हैं, जिनके बीच में, उत्तर-दक्षिण की ओर एक जलमग्न प्लेटो–डोल्फिन-रिज नामक–है। इस प्लेटो पर १२,००० फुट पानी है। अटलांटिक महासागर की अधिकतम गहराई पोर्टोरिको से ७० मील उत्तर की ओर नापी गयी है। यह २७,९७२ फुट है।

हिन्द महासागर अटलांटिक के आधे से कुछ अधिक है। इसकी औसत गहराई १५,००० फुट है। इसका सबसे अधिक गहरा भाग जावा और उत्तर-पश्चिमी आस्ट्रेलिया के बीच में है। यह लगभग १८,००० फुट गहरा है।

भूमध्यसागर अटलांटिक की ही एक भुजा है, जो जिब्राल्टर-डमरूमध्य पर जुड़ी हुई है। यह उथला समुद्र है। यदि ६०० फुट नीचे धँस जाये, तो डार्डेनेलीज और बासफोरस, पूरे चल-आग निकल आयें–एड्रियाटिक समुद्र प्रायः लुप्त हो जाये–मेजोरका मेनोरका से मिल जाय और माल्टा सिसली से। भूमध्यसागर की अधिकतम गहराई–१३,८०० फुट–पूर्व की ओर है।

कैसपियन सागर यद्यपि झील के समान है, किन्तु फिर भी गहराई कम नहीं है–यह १८,००० फुट गहरा है।

✱

एक बार सम्राट् अकबर को तानसेन के गुरु स्वामी हरिदास का संगीत सुनने का सुअवसर मिला। कुछ दिनों बाद उन्होंने उस सुखद क्षणों की याद करते हुए तानसेन से कहा–"तानसेन, तुम भी तो बहुत सुंदर गाते हो; किन्तु तुम्हारे गुरु के संगीत से मुझे जिस आनंद का अनुभव हुआ, वैसा आनंद तुम्हारे संगीत से मुझे आज तक नहीं मिला . . . ।"

तानसेन कब चुप रहनेवाले थे! छूटते ही बोले–"जहाँपनाह! इसका कारण तो स्पष्ट है। मेरे गुरुजी अपनी इच्छा और अपनी मौज में गाते हैं; किन्तु मुझे जहाँपनाह की आज्ञा पर गाना पड़ता है।" –पी. चन्द्र

✱

# भय के राज्य में प्रथम प्रवेश

सुप्रख्यात शिकारी कर्नल मर्दान अली की शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तक "द'लाइट आव दुर्ब्स डिड नाट रीच देअर" के कुछ रोचक पृष्ठों का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर। पार्श्व में, अफ्रीका के भयकर वन्य प्रदेशों में निवास करनेवाले एक 'प्रेत-नतक' का चित्र।

*

बहुत-से लोगो की यह धारणा है कि, वर्तमान जगत में ऐसे स्थान अब नही बचे है, जहाँ सभ्य पुरुष न पहुँचा हो। लेकिन कहना होगा कि, यह धारणा पूर्णरूपेण भ्रात है। अफ्रीका में सैकडो मील लम्बी-चौडी भूमि अभी एसी है, जहाँ सभ्य जगत की पहुँच नही के बराबर है—न केवल सभ्य जगत के व्यक्ति, वरन् वहाँ के निकटवर्ती आदिवासी भी उस वन्य प्रदेश के अधिकाश भू-भाग से अपरिचित है। यह भू भाग उत्तर में सूडान प्रदेश के सीमात से लेकर टाग्यानिका झील के प्राय मध्य भाग तक फैला है।

एक बार मुझे इस हजारो मील लम्बे-चौडे भू भाग में जाने का अवसर मिला, जहाँ सम्भवत सभ्य जगत का कोई व्यक्ति पहले पहुँचा ही न था। जब मैंने निकटवर्ती क्षेत्र के पिगमियो से अपनी यात्रा का प्रस्ताव किया, तो अधिकाश ने स्पष्ट इनकार कर दिया। केवल १० युवक—जिन्हें मेरे साथ शिकार मे जाने का कई बार अवसर मिल चुका था—किसी प्रकार साथ चलने को तैयार हुए।

उस जगल म दो दिनो की यात्रा करने के बाद, एक दिन ऐसा हुआ कि, मेरे उन साथियो ने अचानक अपना-अपना बोझ नीचे गिरा दिया। उनके बालकोचित् सरल मुख-मडल पर चिंता एव भय स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा। उनके इस प्रकार भीत होने से मैं समझ गया, किसी गम्भीर खतरे की आशका है, पर जब मैंने उनसे पूछा कि, आखिर इस प्रकार भयग्रस्त होने का कारण क्या है, तो बजाय उत्तर देने के वे भालुओ-सरीखे जोर-जोर से अपनी नाक खुरचने लगे।

बहुत सात्वना देने पर वहाँ के आदिवासी पिगमियो ने बताया कि, इस क्षेत्र में मुलाहू नाम का एक जानवर होता है, जिसके

सारे शरीर पर लम्बे और घने बाल होते हैं। यह जानवर बडे-बडे वृक्षों के कोटरो में रहता है। इस जंतु का शरीर इतना विषाक्त होता है कि, जिस वृक्ष के कोटर में यह जंतु रहता है, वह वृक्ष ही सूख जाता है। मुलाहू किसी आदमी को देख लेता है, तो वह फौरन अपने चेहरे से एक मुट्ठी बाल नोच कर–जिससे इसका चेहरा पूर्णत ढका रहता है–एक फूक के साथ मनुष्य की ओर फेंक देता है। ये बाल आदमी की आंख और नाक में प्रवेश कर जाते हैं और उनके विष-प्रवेश के फलस्वरूप वह व्यक्ति तत्काल मर जाता है। उनका कहना था कि, निकट ही किसी मुलाहू के छिपे होने की सम्भावना प्रतीत हो रही है।

ओकापी
[ चित्र . वाल्ट डिस्ने ]

इस प्रदेश में नडेगी नामक एक अति विशालकाय पक्षी भी होता है, जो एक मिनिट में मानव-शरीर को लोथों में परिणत कर सकता है। इसकी खाल घडियाल की खाल-सरीखी मजबूत होती है और इसका पूरा शरीर बालो से ढका होता है। पक्षियों में इतना दुर्भेद्य प्राणी शायद ही कोई और होता हो।

इनके अतिरिक्त सर्पदंश बौना हाथी, ओकापी, लाल रंग के बालो से ढके जंगली भैंसे आदि ऐसे कितने ही जंतु होते हैं, जो मानव के लिए प्राणघाती सिद्ध हो सकते हैं। इनमें ओकापी, जिसे एक प्रकार का हिरन कह सकते हैं, क्रोधोन्मत्त शेर से भी अधिक भयंकर जंतु है। यहाँ के आदिवासियों ने इन जंतुओं की भयानकता की अनेक कथाएँ मुझे सुनायी।

इस जंगल के अज्ञात प्रदेश के भीतरी भाग में मैंने लगभग ६ मास बिताये। परन्तु इस अवधि मे, मैं जितने भाग का पता लगा सका, वह भाग इस विस्तृत व भयानक वन का ए नगण्य अंश-सा ही था।

कुछ दुर्लभ जंतुओं क पकड पाने की आशा से एक बार हम लोगों ने जंगल में एक गड्ढा खो दिया था। एक दि जब हम लोग उस गड़ के पास पहुँचे, तो दे कि, उसमें एक जानव फंसा हुआ है। इ रूप-रंग का जानवर मैंने पहले क नहीं देखा था। वह लगभग २ फुट ऊं और सिर से दुम तक लगभग ४॥ प लम्बा था। मुझे देखते ही यह दांतो किटकिटा कर इस भयंकर रूप से उछ कि, हमारे साथ के सभी व्यक्ति व मे भाग कर पेडों की आड में छिप गये।

पेड की आड मे ही एक पिग्मी चिल्ल कर बोला–"अरे, यह चीते से भी भयं जानवर है। इसे जल्दी मार डालो

तब तक दूसरा बोला—"इसका दंश सर्प-दंश से भी अधिक विषाक्त होता है। शिकारी ! इसे जल्दी मारो।"

पर मैं उसकी उछाल देखकर समझ चुका था कि, वह गड्ढे से बाहर नहीं निकल सकता। अतः मुझे एक खेल सूझा। मैंने 'गैस-मास्क' निकाल कर पहन लिया और क्लोरोफार्म में रूई डुबो कर उस गड्ढे में फेंकना शुरू कर दिया।

कुछ ही मिनिटों बाद वह जानवर शिथिल-सा हो लेट गया और उसके कुछ ही क्षण बाद वह ऐसा बेसुध हो गया, मानो उसे गोली लगी हो। मेरे साथ के आदिवासी दूर से ही यह सब देख रहे थे। उनकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि, मैं यह क्या कर रहा हूँ। जानवर गड्ढे में था, अतः वह भी उनकी दृष्टि से परे था। इसलिए जब मैं गड्ढे में उतरने लगा, तो वे बड़े जोर से चिल्ला उठे और जब मैं उस अचेत जंतु को पकड़े गड्ढे से बाहर निकला, तो उन्होंने विस्मययुक्त मौन से मेरा स्वागत किया।

बड़ी सावधानी के साथ, धीरे-धीरे वे मेरे पास आये और डरते-डरते उनमें से कुछेक व्यक्तियों ने अपने भाले की नोक से उस जानवर का स्पर्श किया।

"यह मरा हुआ है ?" एक बुड्ढे आदिवासी ने पूछा।

तब तक दूसरा बोला—"शिकारी ! मुझे इस जानवर को खाने के लिए दे दो।"

"नहीं !" मैंने गम्भीर होकर कहा—"तुम इसे खा नहीं सकते—यह जीवित है।"

मेरी इस बात पर विश्वास न कर वे सभी खिलखिला कर हँस पड़े।

उन्हें अपनी बात समझाने के लिए मैंने कहा—"देखो, मैं किसी भी जानवर को इस प्रकार मार दे सकता हूँ और फिर जिला भी सकता हूँ।" और, मैं इस अनुकूल अवसर से लाभ उठाने के लिए उसके शरीर पर इस तरह हाथ फेरने लगा, मानो मैं कोई जादू की क्रिया कर रहा हूँ। मेरी इस क्रिया से उस जानवर का शरीर सकपकाने लगा।

फिर क्या था ? एक क्षण में वे सभी आदिवासी आसपास के पेड़ों पर चढ़ कर गायब हो गये। लेकिन इस समय मैं जो कृत्रिम उदासीनता प्रकट कर रहा था, उसके खतरे से भी अवगत था। मैं जानता था कि, यदि वह पुनः शक्ति प्राप्त करके मुझ पर उछल पड़े, तो मैं कुछ न कर सकूँगा। मेरी बंदूक इतनी दूरी पर रखी हुई थी कि, जहाँ तक मैं पहुँच नहीं सकता था। उस समय एक ही चीज थी, जिससे मुझे सहायता मिल सकती थी। वह था मेरा 'गैस-मास्क'।

जानवर को अधिक सकपकाता देख मैंने अपना 'गैस-मास्क' पहन लिया। मैं यह क्रिया सम्पन्न कर ही पाया था कि, मैंने देखा, वह जानवर अपने चारों पैरों पर खड़ा होकर मेरी ओर मुखातिब है। उसके दाँत खुले हुए थे और अपने शरीर को वह इस रूप में झुकाये था,

# देस मेरा पंजाब नी

सुप्रसिद्ध कवयित्री अमृता प्रीतम का एक पंजाबी गीत हिन्दी रूपांतर सहित

✱

देस मेरा पजाब नी, होर वस्से कुल जहान
गभरु मेरे देस दा, बांका छैल जवान
हल पजाली ऐस दी, देवे खेत खिलार
मेहनत ऐस जवान दी, सोना दये पसार।
खेत नु गोडे खेत नु बीजे, लये बोहल हुण ला
चेत पकड्दे रत्ता फिरोया, नवीं रुत दा चा
बेलीया! नवीं रुत दा चा.

नढ्डी देस पजाब दी, हीरा विचो हीर
जिओं कोई सोहणी मिरगणी जगल बेले चीर
पाल्ले लागी पुरा दी, जिंदड़ी देवे घोल
हरफ बोलदी इश्क दा, मुँहों देंदी बोल।
नवीं कणक दी रोटी खावा, दुध मलाई दा,
चूरी मेहवा दुध धुयावो शक्कर देवा पा
बेलीया! शक्कर देवा पा

देस मेरा पजाब नी, होर वस्से कुल जहान
गभरु मेरे देस दा, बांका छैल जवान
सिर ते चीरा रांगला कुड़ता नवा नुआ
मोढे चादर लटकदी, मेला लदे मना।
रत मसती ऊत्तों बेला भरी जवानी दा
माल मुहदा चेतर खिधिया गयी वैसाखी आ
बेलीया! गयी वैसाखी आ.

—मेरा देश पंजाब है–विश्व का सुंदरतम प्रदेश! इस पृथ्वी पर और भी बहुत-से देश हैं, किन्तु पंजाब के जैसे सजीले और स्वस्थ जवान अन्यत्र नहीं दिखायी पड़ते। मेरे देश का पुरुष अपने हल और पंजाली पर ही संतुष्ट रहता है–उसे इन पर गर्व है। इन्हीं की सहायता से वह अपने खेत बोता है–फसल उगाता है। जिस ओर आँख उठती है, हरियाली का ही साम्राज्य दिखायी देता है–मानो धरती प्रसन्न हो चारों ओर सोना बिखेर रही है। ऐसा है मेरा देश।

मेरे देश का किसान अपने खेत जोतता है, बोता है और चैत के महीने में जब उसके कठिन श्रम के दान-स्वरूप फसल पक कर तैयार हो जाती है, तो वह खुशी के मारे फूला नहीं समाता।

भाग्याएँ
[चित्र अमृता शेरगिल के चित्र की सरल रेखानुकृति]

# जार्ज डोन्लान् बंदरों से बातें करता है

'सर' में प्रकाशित जान पान के एक मनोरंजक लेख का संक्षिप्त भावांतर

★

तीस साल पहले दक्षिण के किसी खेत पर जब डेढ़ सौ बैबूनों (बड़ी जाति के एक प्रकार के बंदर) का दल बहुत उत्पात मचाने लगा, तो वहाँ घुड़सवार पुलिस भेजी गयी। पुलिस और उसकी बंदूकों की आवाज से डर कर बैबून भाग खड़े हुए, लेकिन उनमें से एक अपने साथियों से बिछुड़ गया। तत्काल ही उसे पकड़ लिया गया। पुलिस ने जब उसे नजदीक से देखा, तो मालूम हुआ कि, यह बैबून नहीं, बल्कि आदमी का बच्चा है। उसकी अवस्था उस समय पन्द्रह साल की थी। उसके मोटे-मोटे बाल, जंगली जानवरों की भयातुर दृष्टि और बैबूनों की भाँति गले से निकलनेवाली आवाज को देखकर यह अनुमान लगाना मुश्किल था कि, चौदह वर्ष पूर्व कुछ बैबून उसे उसकी अफ्रीकी माता से छीनकर जंगल में ले गये थे। लेकिन पुलिस की फाइलों में इस घटना का पूरा-पूरा जिक्र था।

अल्फ्रेड डोन्लान् नाम के एक किसान ने अपने पास रखकर उसे सभ्य और शिक्षित बनाने का बीड़ा उठाया। लेकिन यह काम इतना आसान नहीं था। बैबून-लड़का–जैसा कि, उसे बाद में पुकारा जाने लगा–किसी मकान में रहने के लिए तैयार ही नहीं हुआ। रात में तो उसे ताले में बंद रखना पड़ता।

प्रारम्भ में उसने मिस्टर डोन्लान् अथवा उनकी पत्नी के हाथ से खाना भी अस्वीकार कर दिया। उसे खेत और बगीचे में घूम-घूम कर कच्ची सब्जियाँ, पौधे और कीड़े-मकोड़े खाना अधिक पसंद था। खुराक भी उसकी तगड़ी थी। कई वर्षों के बाद उसने जार्ज डोन्लान् (अपना नया नाम) उच्चारण करना सीखा। उसके बाद दैनिक व्यवहार में आनेवाले अंग्रेजी के कुछ शब्द उसने सीख लिये। लेकिन बैबूनों की भाषा वह अब भी बड़े मजे से बोलता था और बहुधा जंगल में जा-जाकर उनसे घंटों वार्तालाप किया करता।

[जार्ज डोन्लान्]

बैबूनों से वार्तालाप कर सकने के कारण वह काफी प्रसिद्ध हो

गया। प्राणि-शास्त्र के विशेषज्ञ उसे देखने आने लगे। उन्हें आशा थी कि, इस लड़के के जरिये बेबूनों की रहस्यमयी भाषा के बारे में वे कुछ जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। अब तक यह विषय सभी के लिए अभेद्य ही बना हुआ था।

बेबून-लड़के से उन्हें बहुत-सी बातें ज्ञात हुईं। उसके बताये हुए बेबून-भाषा के कुछ मूल शब्द इस प्रकार हैं—

खूब=यह शब्द भोजन के लिए प्रयोग होता है और बेबून-भाषा में सर्वाधिक महत्व रखता है।

च्यू-को=इसका अर्थ है, जल अथवा और कोई तरल पदार्थ।

ऊमे-मे=जब कोई तरुण बेबून प्रणय-विभोर हो जाता है, तो अपनी प्रेमिका से वह इसी शब्द द्वारा प्रेम-याचना करता है।

ऊम्फ-वागा=इसका अर्थ है, बहुत अच्छा।

एक रोज जार्ज डोल्लान् बाहर से आये हुए कुछ प्राणि-शास्त्रियों को जंगल में अपने साथ यह दिखाने के लिए ले गया कि, वह बेबूनों से किस प्रकार बात-चीत करता है। एक पहाड़ी पर ८५ बेबून बैठे थे। जब ये लोग वहाँ पहुँचे, तो तत्काल ही सारे बेबून भाग कर कंद-राओं तथा दरारों में छिप गये। लेकिन जब जार्ज डोल्लान् ने उन्हें उनकी भाषा में समझाया कि, भय का कोई कारण नहीं है, सब ठीक है ("होआ-जेओम, होआ-जेओम, होआ-जेओम"), तो सारे बेबून धीरे-धीरे फिर से बाहर निकल आये।

इसके बाद डोल्लान् ने बेबूनों से बात-चीत करना आरम्भ किया। बेबून भी उसके प्रश्नों का उत्तर देते रहे। डोल्लान् की बातों में अपनी रुचि प्रदर्शित करने के लिए बीच-बीच में वे अपनी नाक भी खुजलाते। प्राणि-शास्त्र-विशेषज्ञ इन सारी बातों को नोट कर रहे थे।

इतने में आकाश में काले बादल घिर आये। डोल्लान् ने आकाश की ओर इशारा करके कहा–"ऊर्ज-जाप, ऊर्ज जाप!" अर्थात्—"बरसात आनेवाली है।" बेबूनों ने इसका उत्तर दिया–"ऊम्फ-वागा, ऊम्फ वागा!" याने—"बहुत अच्छा, हम स्वयं देख रहे हैं!" और, वे गुफाओं एवं दरारों में दौड़ गये।

दूसरे दिन डोल्लान् उन विशेषज्ञों को संध्या के पश्चात् यह दिखलाने के लिए ले गया कि, बेबून सोते किस प्रकार हैं। जिस चट्टान पर बहुत-से बेबून रहते थे, उसके आसपास काफी ऊँचे पेड़ थे। यही पेड़ बेबून-परिवारों के शयन-कक्ष थे।

सबसे ऊँची डालियों पर मादा बेबून सोती हैं और उनके ठीक नीचे की डालियों पर नर। वृक्ष के नीचे एक बेबून रात-भर पहरा देता है और किसी चीते, साँप या आदमी के नजदीक आने पर ऊपर सोये हुए अपने साथियों को सावधान कर देता है, ताकि वे उसका मुकाबला करने को तैयार हो जायें। खतरे की आशंका होते ही पहरेदार बेबून चिल्लाने लगता है–"ऊम-ऊम-ओआल, ऊम-ऊम

ओआल !" इसका अर्थ है—"सावधान हो जाओ, खतरा है।"

ऊपर सोये हुए सभी बैबून जग जाते हैं और खतरे का सामना करने को तैयार हो जाते हैं। जब खतरा दूर हो जाता है, तो पहरेदार बैबून चिल्लाता है—"ऊम्फ-काग, ऊम्फ काग !" यानें—"सब ठीक है !" और, बैबून परिवार फिर से शांत हो गहरी नींद में सो जाते हैं।

डोन्लान् अब ४५ वर्ष का हो गया है और जीविका-निर्वाह के लिए खेती करता है। एक बार उसने बताया कि, न्यूजीलेंड से आये हुए एक व्यक्ति मिस्टर आस्टिन लेमसन ने एक बार ट्रांसवाल के घने जंगलों में कुछ बैबूनों को एक साथ गाते हुए देखा। लेमसन की एक चिट्ठी भी उसने बतायी, जिसमें लिखा था कि, लेमसन को किस प्रकार बैबूनों के उस सामूहिक संगीत को सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। एक रोज शाम को, जब वह जंगल से अपने कैम्प में लौट रहा था, तो एक पहाड़ी पर उसने बहुत-से बैबूनों को निश्चल बैठे हुए देखा। वे सभी बिलकुल शांत थे; लेकिन थोड़ा-सा नीचे एक स्थान पर, एक दूसरा बैबून खड़ा था, जो अपने हाथ ऊँचे कर ऊपरवाले बैबूनों को अपनी भाषा में कुछ हिदायतें दे रहा था। सभी बैबूनों की दृष्टि अपने मुखिया पर गड़ी थी। लेमसन ने तत्काल ही अपनी दूरबीन आँखों पर लगा ली।

उसके बाद मुखिया बैबून ने ऊँची आवाज में गाना शुरू किया। उसके पीछे-पीछे सभी बैबून गाने लगे। बड़ा विचित्र संगीत था वह। एक खास बात लेमसन ने लक्ष्य की कि, कुछ बैबून द्रुत गति से गा रहे थे और कुछ मध्यम लय से। इससे उनके सामूहिक संगीत में एक विशेष स्वर विन्यास पैदा हो गया था।

[ बैबून माँ की गोद में बालक डोन्लान् ]

बैबून और बंदरों की भाषा के विषय में बहुत-से विशेषज्ञों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। आर एम मेकर्स ने अपनी किताब में लिखा है—"सभी बैबून और वनमानुष ठीक मनुष्य की ही भाँति तरह-तरह की बारीक, तेज, ऊँची या नीची आवाज कंठ से निकालने में समर्थ हैं।"

रिचार्ड एल गार्नर ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के सभी चिड़ियाखानों में जाकर सभी प्रकार के बंदरों की फोनोग्राफ-रिकार्डें तैयार करवायी हैं। उस विषय पर काफी अध्ययन करने के बाद,

गार्नर का कहना है कि, चिम्पाजियो का पूरा शब्द-कोष कुल २५ या ३० शब्दो का है। ये शब्द मनुष्य की भाषा से बहुत-कुछ मिलते-जुलते है।

गार्नर ने सिनसिनाटी के चिडियाखाने के बदरो की आवाज के रिकार्ड तैयार करके उन रिकार्डो को शिकागो के चिडियाखाने के बदरो के सामने बजाया। शिकागोवाले बदरो ने रिकार्डो की भाषा को केवल समझा ही नही, बल्कि उसके उत्तर में वे स्वय भी बोलने लगे। इस प्रकार बहुत-से चिडियाखानो में प्रयोग करने के बाद गार्नर की धारणा है कि, बदरो की भी अपनी एक भाषा है।

प्राचीन काल मे मिस्र के लोग बैबूनो को पवित्र मानते थे। अरबी बैबूनों की वे पूजा करते थे और अपने कीर्ति-स्तम्भो एव स्मृति-चिह्नो पर उनकी मूर्तियाँ अकित करते थे। प्रातःकाल मे बैबून जो बहुत अधिक आवाज करते है, वह उनके कथनानुसार बैबूनों की सूर्योपासना का एक अग है।

★

## ..... गवैये बने हैं!

एक बार 'निराला'जी और 'नवीन'जी के काशी आने पर प्रसादजी ने कुछ लोगो को ब्यालू के लिए घर बुलाया। स्वर्गीय मुशी अजमेरी भी मेरे साथ थे। हम लोग सध्या को ही जा जमे। 'निराला'जी सुदर गायक भी है। अजमेरीजी का कहना ही क्या! बालकृष्णजी का भी कठ मधुर है। कविता और गप्प-शप्पो से वातावरण गूँज उठा। 'निराला'जी से भी कोई हिन्दी या बगला गीत गाने को कहा गया, तो उन्होंने कहा—"मै क्या गाऊँ? मृदग न सही, तबला बजानेवाला भी तो कोई हो!" साज बजानेवाला कोई साहित्यिक वहाँ न था। प्रसादजी चाहते, तो तुरत किसी को बुला सकते थे, परन्तु वे मुस्कराकर रह गये। एक-दो बार फिर 'निराला'जी से कहा गया—"ऐसे ही होने दीजिये।" परन्तु वे गुरु-गम्भीर बनकर अपनी पहली ही बात दुहराते रहे। 'नवीन'जी से न रहा गया, सहसा बोल उठे—"बडे गवैये बने है। अजमेरीजी बिना तबले के गा सकते है, तुम नही गा सकते...?" क्षणभर सन्नाटा हो गया। 'निराला'जी हँसे, फिर तुरत उन्होने गाना आरम्भ कर दिया।

—मैथिलीशरण गुप्त

★

लोमा
मस्तिष्क को शांत रखता है।
लोमा
अधिक बाल उगाता है।
लोमा
सुफेद बालोंको श्याम बनाता है।
लोमा
बडी प्यारी खुशबू देता है।
लोमा
सुफेद बालोंको श्याम बनाता है।
दिल्ली एजन्ट् मेसर्स : दिल्ली मेडीकल स्टोर्स चांदनी चौक, दिल्ली
कलकत्ता एजन्ट् मेसर्स : शाह ग्यासी ऐन्ड कं.
१२०, राधा बजार स्ट्रीट कलकत्ता १
स्टोकिस्टस् : आर. पी. मेहता ऐन्ड ब्रधर्स सीनेमा रोड, अजमेर.

एक [illegible] की नजर में

# कौरव-पांडवों की द्यूत-क्रीडा

— परशुराम

कुरुक्षेत्र-युद्ध आरम्भ होने मे अभी बीस-पच्चीस दिन बाकी थे। महाराज युधिष्ठिर सवेरे की इस सुहावनी वेला मे अपने शिविर मे बैठे थे और सहदेव उन्हे सगृहीत वस्तुओ की सूची पढकर सुना रहे थे। अर्जुन उस वक्त पाचाल-शिविर की मन्त्रणा-सभा मे उपस्थित थे। नकुल सेना की कवायद का निरीक्षण कर रहे थे और भीम, विशेष रूप से आर्डर देकर बनवायी गयी सौ गदाओ की देख-भाल में व्यस्त थे। प्रत्येक गदा को वे उठाते और उसे हाथ मे उछाल कर *इस बात का अदाजा लगाते कि, किस गदा* से धृतराष्ट्र के किस पुत्र को मारना उचित होगा! ९९ गदाएँ सागवान की लकडी की बनी थीं। सिर्फ १ गदा कपडे की थी। भीम ने कपडे की इस गदा से दुर्योधन के १८-वे भाई विकर्ण को मारने का निश्चय किया था। सौ भाइयों मे यही एक लडका ऐसा था, जो 'सभ्य' कहला सकता था। द्रौपदी-चीर-हरण का अकेले इसी ने विरोध किया था।

सहदेव पढते जा रहे थे—"जौ का सत्तू १२ सौ मन, बेसन ८ लाख मन, चना ५० लाख मन ।'

युधिष्ठिर का धैर्य साथ छोड गया। सुबह से ही यह सब सुनते-सुनते वे बुरी तरह घबडा उठे थे। किन्तु आग्रह न दिखाना भी उचित नही कहा जा सकता। इसी सोच-विचार में पडे थे कि, प्रतिहारी ने उपस्थित होकर निवेदन किया—"महाराज की जय हो! एक कुब्ज पुरुष आपके दर्शनार्थ बाहर खडे है। उन्होने अपना परिचय नही दिया। कहते हैं—महाराज से कुछ गुप्त बाते कहनी हैं।"

सहदेव झुँझला पडे—"महाराज इस समय आवश्यक कार्य मे व्यस्त हैं। उनसे कहो, कभी और आयें।

*किन्तु युधिष्ठिर हिसाब किताब की इस* झझट से मुक्ति पाने का यह सुअवसर खोना नही चाहते थे। प्रतिहारी को रोकते हुए बोले—'नही, नही! उन्हे सम्मानपूर्वक यहाँ ले आओ!"

एक प्रौढ सज्जन ने भीतर प्रवेश किया—वक्र शरीर, शीर्ण-मुडित मुँह, सिर पर बडी पगडी और गले में नीलवर्ण रत्नहार! दोनो हाथ जोड कर उन्होने अभिवादन किया—"धर्मराज की जय हो!"

युधिष्ठिर ने उनकी ओर देखते हुए पूछा—"आप कौन हैं, सौम्य?"

"धृष्टता क्षमा करे, महाराज!" आगतुक ने उत्तर दिया—"मुझे जो कुछ निवेदन करना है, वह परम गोपनीय है। अत: "

युधिष्ठिर सकेत समझ गये। बोले—"सहदेव! अब तुम जा सकते हो। चने के जितने बोरे आये है, उन्हे खोलकर देख

लेना—कहीं उनमें घुन न लगे हों।'

सहदेव रुष्ट होकर, वक्र दृष्टि से आगन्तुक को देखते हुए, कमरे से बाहर चले गये। आगन्तुक ने एक बार चारों ओर देखकर एकांत होने का विश्वास कर लिया और तब धीमे स्वर में कहा—'महाराज! मैं सुबल-पुत्र मत्कुनि हूँ—शकुनि मेरा सौतेला भाई है!'

'क्या कहते हैं आप?' धर्मराज आश्चर्यचकित होकर बोले—'फिर तो आप मेरे पूजनीय मातुल हुए। प्रणाम, प्रणाम। आइये, सिंहासन पर विराजिये।'

"नहीं महाराज! मैं आपकी इस संवर्धना के अयोग्य हूँ। मेरा आसन नीचे ही है—मैं दासी-पुत्र हूँ।"

"अच्छा, अच्छा! तब आप इस मृणाल-चर्मयुक्त वेदी पर विराजिये। अब, कृपाकर बताइये कि, आपका आना किस उद्देश्य से हुआ है? यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं है कि, मैंने इसके पूर्व आपको कभी नहीं देखा!"

मत्कुनि ने सिर हिलाया—"कैसे देखेंगे, महाराज! मैं अंतराल में ही रहता हूँ। अलावे, १२ वर्ष विदेश में रहा। कुबड़ा होने के कारण क्षात्र-धर्म का पालन करने में तो मैं समर्थ हूँ नहीं, अतः तन्त्र-मन्त्र की सिद्धि कर दिन व्यतीत कर रहा हूँ। विश्वकर्मा ने मुझे वरदान भी दिया है। धर्मराज! मैंने सुना है कि, द्यूत-क्रीड़ा में आपकी प्रतिभा असामान्य है?"

युधिष्ठिर ने विरक्ति से सिर हिलाते हुए स्वीकार किया—"हूँ!.....लोग कहते तो ऐसा ही हैं!"

"फिर भी आप शकुनि से क्यों हार गये, जानते हैं?"

धर्मराज के भौंहों पर बल पड़ गये। बोले—"शकुनि ने धर्म-विरुद्ध कपट का आश्रय लेकर मुझे हराया है। लोगों की धारणा है कि, शकुनि के अक्ष के अभ्यांतर में स्वर्णपट्ट रखा है। इसी वजन के कारण वह भार हमेशा नीचे की ओर झुक जाता है और ऊपर गरिष्ठ बिंदु संख्या दीखने लग जाती है! वह ...."

मत्कुनि ने बीच में ही बात काट दी—"इन बातों में कोई सार नहीं है, पाण्डवराज! स्वर्णगर्भ और पारदगर्भ वाले पासे से खेलनेवाले हमेशा ही नहीं जीतते—दो चार बार उनकी हार निश्चित है। आप लोगों ने जाने कितनी बाजियाँ खेलीं—कभी एक बार भी जीते आप?"

दीर्घ निःश्वास लेकर युधिष्ठिर ने सिर झुका लिया—"नहीं, एक बार भी नहीं!.... किन्तु अब इन बातों में क्या रखा है? युद्ध के इने-गिने दिन बाकी रह गये हैं। अब न तो मुझे द्यूत-क्रीड़ा करने का अवकाश है और न ही मैं द्यूत-क्रीड़ा में शकुनि को कभी हरा सकता हूँ।"

"निराश न हों, पाण्डवश्रेष्ठ!" मत्कुनि ने शांत स्वर में कहा—"यह तो मेरी मात्र भूमिका थी। गूढ़ बातें तो मैंने आपसे कहीं ही नहीं। कृपया ध्यान देकर सुनें। शकुनिवाले अक्ष का निर्माता मैं ही हूँ।

उसके भीतर मन्त्र-सिद्ध यन्त्र है, इसी से उसका दाव कभी बेकार नहीं जाता। उसने मुझे आश्वासन दिया था कि आप पाँचों भाइयों के निर्वासन के पश्चात दुर्योधन से कहकर वह मुझे इन्द्रप्रस्थ का राज्य दिलवा देगा। किन्तु यन्त्र-कौशल सीखने के पश्चात उस दुरात्मा ने मेरे साथ छल किया। आप लोगों के वनवास के बाद जब मैंने दुर्योधन से शकुनि के आश्वासन की बात कही तो उसने कहा—'मुझे कुछ नहीं मालूम। मामा से मिलो!' शकुनि से मिला तो उसने भी स्पष्ट टाल दिया—'मैं कुछ नहीं कर सकता—दुर्योधन से मिलो।' इतना ही नहीं अन्त में उन दोनों पापियों ने धोखे से मुझे बाह्लीक द्वीप के कारागार में बंद कर दिया। तेरह वर्ष पश्चात किसी सूरत से भाग निकला हूँ और अब आपकी शरण में आया हूँ।

युधिष्ठिर की मुखमुद्रा कठोर हो गयी। गम्भीर स्वर में बोले—हूँ! तो अब आप मुझे अश्व-रूप में चलाकर राज्य प्राप्त करना चाहते हैं—क्यों?

धर्मपुत्र! मेरे पूर्व-अपराधों को क्षमा कीजिए। इस वक्त मैं आपका मित्र हूँ। मैं बौना होकर इन्द्रप्रस्थ रूपी चाँद को पकड़ने की चेष्टा कर रहा था। आप नाराज न हों। मुझ पर विश्वास करें और विजयी होकर शकुनि को मौत के घाट उतार दें। मुझे गांधार राज्य दे दीजियेगा बस!

धर्मराज की मुखमुद्रा अभी तक कठोर थी—इसलिए कि आपके द्वारा निर्मित अश्व मेरे सर्वनाश का कारण बना?

क्षमा धर्मराज! मत्कुनि के स्वर में कातरता थी—बीती बातों को भूल जाइये। परमात्मा साक्षी है मैं इस समय आपके भले की बात कह रहा हूँ। विश्वस्त सूत्र से मुझे ज्ञात हुआ है कि संजय धृतराष्ट्र की आज्ञा से अभी आपकी सेवा में उपस्थित हुआ ही चाहते हैं। दुर्योधन और शकुनि की मंत्रणा से धृतराष्ट्र पुनः आपको

[युधिष्ठिर ने पासा फेंका! पाण्डव चिल्लाये—'धर्मराज की जय हो!' पृष्ठ ८८]

द्यूत-क्रीडा का निमंत्रण भेज रहे हैं। दुहाई है, महाराज—इस मौके को किसी प्रकार भी हाथ से जाने न दीजियेगा।'

धर्मराज के कुछ कहने के पूर्व ही, बाहर से रथ के पहियों की घर-घर ध्वनि सुनायी पड़ी। मत्कुनि ने चौंककर कहा—"संजय आ पहुँचे। महाराज! विनती करता हूँ, इस प्रस्ताव को अस्वीकार मत कीजियेगा। कहियेगा—'मैं सोचकर जवाब भिजवा दूँगा।' संजय के जाने के पश्चात् मैं सारी बातें समझा दूँगा। तब तक मैं बगल के कमरे में छिप जाता हूँ। दुहाई है, महाराज!"

○○○ ○○○ ○○○

संजय के विदा होते ही मत्कुनि बगल वाले कमरे से बाहर निकल आया—"आपने उपयुक्त उत्तर दिया है, धर्मराज! अब मेरी राय मानिये। शाम को ही कुरुराज के पास अपना एक विश्वस्त दूत भेज दीजिये कि, पूज्य ज्येष्ठ तात! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। अति अप्रिय होने पर भी हम इस तृतीय द्यूत-क्रीडा में सम्मिलित होने के लिए प्रस्तुत हैं। आपके द्वारा निर्मित अक्ष की कोई आवश्यकता नहीं—हम अपने ही अक्ष से खेलेंगे। आपकी शर्तें भी स्वीकार हैं। सिर्फ एक शर्त हमारी है—शकुनि और हम केवल तीन बार अक्ष फेंकेंगे। जिसके अक्ष की विंदु-समष्टि अधिक होगी—वही विजेता माना जायेगा।"

युधिष्ठिर गम्भीर भाव से मुस्कराये—"हे मुबल-नंदन! आप मेरे मातुल (मामा) हैं, किन्तु इस क्षण वातुल प्रतीत हो रहे हैं। किस विश्वास पर पुनः शकुनि से मैं जुआ खेलने को तैयार होऊँ? सिर्फ तीन ही बार अक्ष-क्षेपण क्यों करूँ? और, इस बात का क्या प्रमाण है कि आप दुर्योधन के गुप्तचर नहीं हैं?"

"शांत भव, धर्मराज!" मत्कुनि ने अविचल भाव से कहा—"मैं आपके सभी संशयों का निवारण कर रहा हूँ। अगर आप धृतराष्ट्र वाले अक्ष से खेलेंगे, तो आपकी हार निश्चित है, क्योंकि धूर्त शकुनि इस अक्ष को हाथ में लेकर अवश्य ही अपने अक्ष में बदल लेगा। बाह्लीक द्वीप में मैं चुपचाप बैठा नहीं रहा हूँ। काफी गवेषणा के पश्चात् शकुनि के अक्ष से भी प्रचण्डतर अक्ष का मैंने निर्माण किया है। आप मेरे इसी नव-निर्मित अक्ष से खेलियेगा-शकुनि की हार सुनिश्चित है। एक बात और—मेरे नव-निर्मित अक्ष का यंत्र बहुत सूक्ष्म है, अतः एक दिन में अधिक बार क्षेपण करना उचित नहीं। शकुनि के अक्ष में भी यही बात है। फिर विजय प्राप्त करने के लिए तीन बार क्षेपण करना ही पर्याप्त है।... आप चाहें, तो अपने भाइयों को सब-कुछ बता दीजिये; किन्तु उनकी भर्त्सना पर अपना निश्चय नहीं बदलियेगा। हाँ, यह रहा मेरा नव-निर्मित अक्ष—स्वयं परीक्षा करके देख लीजिये।"

युधिष्ठिर ने हाथी-दाँत निर्मित उस अक्ष को हाथ में लेकर देखा—ठीक शकुनि के अक्ष के समान सुगठित और पृष्ठ-समूह

गोलाकार प्रत्यक विंदु म सूक्ष्म छिद्र। मत्कुनि के कहन पर उन्होंन क्षपण करके देखा—आश्चय ! तीनो बार छ बिंदु आय।

युधिष्ठिर न कहा— अक्ष विश्वास के योग्य ह किन्तु आप विश्वासघात नही कीजियगा इसका दायित्व कौन लेगा ?

मत्कुनि मुस्कराया— आप मुझ अभी से बदी कर ले महाराज ! जब आपकी पराजय का समाचार यहाँ आय तो मेरे पहरे पर नियुक्त सैनिक मेरा सिर उतार ले। आप उन्हे अभी से आदेश दे द।

ठीक है ! युधिष्ठिर न स्वीकार किया और कुछ क्षणो तक विचारमग्न रह कर बोले— किन्तु शकुनि का अक्ष मेरे अक्ष से पराभूत हो गया तो इसका अथ है कि यह खल धम विरुद्ध होगा—कपटता होगी एक प्रकार की ?

हाय ! हाय ! महाराज ! मत्कुनि न सिर पर हाथ दे मारा— आप भी कितन भोले ह ! आप दोनो का ही अक्ष मत्र पूत हैं—इसम कपटता का प्रश्न ही कहा उठता ? धमराज ! इस तृतीय द्यूत क्रीडा म में ही उभय पक्ष हूँ—आप और शकुनि तो निमित्त मात्र हैं !

युधिष्ठिर पुन विचारमग्न हो गय। थोडी देर बाद बोले— मातुल ! आपका वक्तव्य सुनकर मेरी अजीव स्थिति हो गयी है। धम की गति काफी सूक्ष्म है—मैं तो दुविधा में पड गया हूँ। आपका साधारण जीवन मेरे हाथ म है—जब कि मेरी बुद्धि धर्म राज्य सब-कुछ आपके हाथ म ह। फिर भी अभी आपका आज्ञा का पालन करना हा उचित प्रतीत होता है। लाइय अक्ष मुझ दे दीजिय !

धमराज की जय हो ! मत्कुनि न प्रसन्न होकर कहा— कितु महाराज ! अक्ष अभी मेरे पास ही रहन द। उचित परिचर्या के अभाव म आपके पास रहन से इसके गण नष्ट हो जायेंग। द्यूत क्रीडा म जान के दिन मझसे ले लीजियगा।

००० ००० ०००

बड समारोह के साथ द्यूत-सभा का कार्यवाही आरम्भ हुई। युधिष्ठिर न मत्कुनि से मुलाकात के दूसरे ही दिन अपन भाइयो से द्यूत क्रीडा की बात कह दी थी। भाइयो न विरोध किया था भुनभुनाय थ किन्तु अत म अपनी सम्मति दे दी थी। हा द्रौपदी न अवश्य ही कुछ नही कहा था। उल्ट सहदेव को भजकर उसन द्वारिका से वासुदेव को बुलवा लिया था। अपन बड भ्राता बलराम के साथ कृष्ण भी सभा म उपस्थित थ।

सवसम्मति से बलराम सभापति बनाय गय। बलरामजी न आसन ग्रहण करते हुए कहा— विलम्ब से कोई लाभ नही। खल आरम्भ हा। इस द्यूत म कुरु पक्ष का ओर से शकुनि और पाडव पक्ष से युधिष्ठिर एक एक अक्ष लेकर खल प्रारम्भ करेंग। तीन वार अक्ष क्षपण होगा। जिसका बिंदु-समष्टि अधिक होगी वही विजेता माना जायगा। हारे हुए पक्ष को राज्य सौंपकर वनवासी होना पडगा। युवल

# ओवरकोट

आधुनिक कहानी में कौतूहल और जिज्ञासा के तत्वों को सरस मनोवैज्ञानिक परिणति देनेवाले सुप्रसिद्ध अमरीकी कथाकार श्री ई वी ल्यूकास की एक कहानी का संक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तर

*

"इस अनधिकार चेष्टा के लिए मुझे क्षमा करें–' कोने के अंधेरे से एक आवाज आयी–"आप लोगों की वार्ता ही कुछ ऐसी मनोरंजक है कि '

क्षणभर को खामोशी छा गयी, जैसे बोलनेवाला तय नहीं कर पा रहा हो कि, आगे जो-कुछ कहने जा रहा है, वह कहाँ तक उचित है। उस छोटे-से रेस्त्राँ में रात्रि के इस वक्त आधी से अधिक मेजें खाली पड़ी थीं। हम पाँच-छः मित्र आपस में बातें करते हुए गरम-गरम काफी की चुस्कियाँ लेकर कड़ाके की ठंड को भूलने का प्रयास-सा कर रहे थे।

अंधेरे में आँखें गड़ा कर हमने देखने की चेष्टा की–स्वस्थ-गोरे शरीर पर हल्के भूरे रंग का ओवरकोट, कपाल पर घुंघराले बालों की बिखरी लटें–जाने कब और कहाँ से आकर वह हमारी मेज की उस ओर बैठ गया था। यों एक अजनबी का बीच में दखल देना हममें से किसी को न भाया, किन्तु उसके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा प्रभाव था–कहने का लहजा इतना आकर्षक था–कि, हम सभी सिर नीचा रखकर उसके कुछ आगे कहने की प्रतीक्षा करने लगे।

अपनी जेब से सिगरेट-केस निकाल, एक सिगरेट होंठों में लगाते हुए उसने सिगरेट-केस हमारी ओर बढ़ाया। फिर उसे सुलगा कर धुएँ के गोल-गोल छल्ले छोड़ते हुए उसने कहना शुरू किया–

"अगर मैंने समझने में भूल नहीं की, तो आप अपने जीवन में आयी हुई विषम परिस्थितियों की चर्चा कर रहे थे। ऐसी स्थितियों की, जब आप किसी अजीब-सी उलझन में फँस गये थे। किन्तु माफ कीजियेगा–" अजनबी ने सिगरेट का एक लम्बा कश खींचा–"आप लोगों ने जितनी घटनाओं का उल्लेख किया है, दरअसल वे उसकी तुलना में कुछ भी नहीं हैं, जो मेरे साथ घटी। फिर आपमें से हर किसी ने ऐसी ही परिस्थिति की कहानी सुनायी है, जब उसे अपनी कठिनाई से छुटकारा पाने के लिए अपनी शारीरिक शक्ति का सहारा लेना पड़ा था। किंचित स्पष्ट करने के लिए आप यों कह सकते हैं कि, वह शारीरिक दुविधा का

शिकार था। परन्तु मेरी कहानी मेरा अनुभव सर्वथा निराला है। एक ऐसी जटिल समस्या का एक बार मुझे सामना करना पड़ा कि शायद आप लोग उसे सुनना पसंद करेंगे?'

'जरूर, जरूर।' बरबस ही हमारे मुँह से निकल पड़ा।

अजनबी ने बड़ी बेतकल्लुफी से अपने पैर मेज के नीचे फैला दिये। हाथ का सिगरेट फेंककर दूसरा सिगरेट सुलगाया और कहने लगा–

"क्रिस्टी के मशहूर नीलामघर का नाम तो आप सबने सुना ही होगा? मेरी कहानी का सम्बन्ध वहीं से है।'

क्रिस्टी के नीलामघर के नाम से हमारी उत्सुकता और भी तीव्र हो उठी। प्रस्तर-प्रतिमाओं की तरह अपने-अपने स्थानों पर स्थिर होकर हम मानो अपनी समस्त इंद्रियों से सुनने का काम ले रहे थे।

अजनबी ने कहानी आगे बढ़ायी–"तीन वर्ष पहले की बात है। सेंट जेम्स स्ट्रीट के एक क्लबघर में मैं अपने एक मित्र के साथ खाना खाकर किंग स्ट्रीट से गुजर रहा था। क्रिस्टी के नीलामघर के सामने से निकलते समय अनायास ही मेरे पाँव मुड़ गये। नीलामघरों में जाने का मुझे बड़ा शौक रहा है। किसी एक ही वस्तु के लिए जब कई खरीददार भिन्न-भिन्न बोलियाँ लगाते हैं और उनमें से कोई एक सबसे अधिक कीमत देकर उसे खरीद लेता है, तो हारनेवालों का चेहरा उस समय देखते ही बनता है।

'तफरीह के लिए मैं भी कभी-कभी बोली बोल देने का आदी रहा हूँ। किन्तु इस बात की मैंने सदा सावधानी बरती है कि, मुझे वह चीज किसी भी रूप में खरीदनी न पड़ जाय।

जब की यह घटना है उन दिनों मेरी कुल जमा-पूँजी तिरसठ पौंड एक बैंक में जमा थी। बस, इसके अलावा कहीं से पाँच सौ पौंड उधार लेने लायक दस्तावेज भी मेरे पास नहीं थे। मगर मुझे कुछ खरीदना तो था नहीं। अतः लापरवाही से पेंट की जेबों में हाथ डाले, नीलामघर के भीतर वहाँ जा पहुँचा, जहाँ बोलियाँ लगायी जा रही थीं। वे वैंरविजों के चित्र बेच रहे थे। जैसा कि, आप लोग भी जानते होंगे, क्रिस्टी के नीलामघरवाले काफी पैसे ऐंठते हैं। वैंरविजों के महज-मामूली चित्र भी दो-दो हजार, तीन-तीन हजार में बड़ी आसानी से बिक रहे थे।

'कुछ देर तक तो मैं चुपचाप खड़ा रहा, फिर आदतन मैंने भी बोली लगानी शुरू कर दी। मेरे मित्र ने समझाया–'देखो, व्यर्थ ही फँस जाओगे।' किन्तु मुझे स्वयं पर भरोसा था। मैं जानता था, ऐसी स्थिति उत्पन्न होने के पहले ही मैं अपनी बोली बंद कर दूँगा। और, काफी देर तक ऐसा ही हुआ भी। मैं किसी भी वस्तु के लिए बोली लगाने में पूरी-पूरी सावधानी बरत रहा था।

सकते हैं, क्या हुआ होगा?"

हमारे चेहरे पर सीझ के चिह्न उभर आये। स्पष्ट था कि, अजनबी जानबूझ कर हमारी उत्सुकता बढ़ा रहा था, किन्तु हम चुपचाप उसके आगे कहने की प्रतीक्षा करने के अलावा और क्या कर सकते थे?

अजनबी फिर मुस्कराया–'आप लोगों का अधिक समय नहीं लूँगा। तो मैं कह रहा था, उस वक्त ऐसी घटना घटी कि, मुझे यकीन हो आया–'कहीं कोई ऐसी अलौकिक शक्ति है अवश्य, जो इन विकट परिस्थितियों में हमारी मदद किया करती है....!'

"मैं धीरे-धीरे मेज के निकट होता जा रहा था कि, एक आवाज सुनायी पड़ी–'क्षमा करेंगे, श्रीमान्! क्या आपने ही महान् 'डाविन्सी' को खरीदा है?'

"मैंने सिर हिलाकर बताया कि, उसका अनुमान ठीक था।

"उसने बड़ी नम्रता से कहा–'श्रीमान्! जिन सज्जन ने चार हजार गिनी की बोली लगायी थी, उन्होंने पूछा है कि, क्या आप अतिरिक्त पचास गिनी लेकर वह चित्र उन्हें दे सकते हैं?'

"पचास गिनी! मैं तो उस वक्त पचास फार्दिग भी लेकर चित्र उसे दे देता। जरा मेरी खुशी का अंदाज लगाइये! किन्तु हमारे भीतर जो शैतान छुपा है, वह ऐसे मौकों पर और भी प्रबल हो उठता है। कितनी मक्कारी भरी रहती है हम लोगों में भी!

"मैंने अपनी गम्भीरता कायम रखते हुए पूछा–'सिर्फ पचास गिनी?'

"वह फिर नम्रता से झुका–'यह मैं कहने की बात नहीं है, किन्तु थोड़ा और पाने के लिए प्रयास करने में मेरी समझ में कोई नुकसान नहीं है।'

"मैंने मानो अनिच्छापूर्वक कहा–"उनसे कह दो, सौ गिनी से कम में यह सौदा नहीं हो सकता।"

"और, आप यकीन करेंगे, मेरी माँग स्वीकार कर ली गयी"–अजनबी उठ खड़ा हुआ–"मुझे सौ गिनी मिल गयी?"

*

आयरलैंड के नेता डी' वेलरा एक बार समझौता-सम्बन्धी वार्ता करने के लिए ब्रिटेन के प्रधान मंत्री लायड जार्ज के पास गये। अपनी राष्ट्रीयता के उत्साह में वे लायड जार्ज से 'गैलिक' भाषा में बातें करने लगे, जिसे वहाँ उपस्थित व्यक्तियों में से कोई भी नहीं समझ रहा था।

सहसा ही, विनोदप्रिय लायड जार्ज ने ठेठ वेल्श भाषा में बोलना आरम्भ कर दिया। वेलरा भौंचक रह गये। उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। और तब, कुछ क्षणों बाद लायड जार्ज ने गम्भीर स्वर में कहा–"देखिये, यदि वस्तुतः आप किसी समझौते पर पहुँचना चाहते हैं, तो उस भाषा का प्रयोग कीजिये, जिसे सभी व्यक्ति समझ सकें।" –'पर्सनालिटी' से

★

पुरुष और नारी के सम्बन्धों के आसपास अनन्त चक्र की तरह घूमनेवाले इस जड़ चेतन-समुदाय का नाम ही 'ससार' है। "वामन भगवान के तीन कदम भी पुरुष नारी के सम्बन्ध विस्तार को नाप नहीं सके है"—व्यासजी ने स्पष्ट लिखा है। प्रस्तुत उपन्यास में बगला के यशस्वी उपन्यासकार श्री मगलामोहन ने पुरुष-नारी स्वभाव की कुछ तरग भगिमाओं को बड़े ही मनोहारी ढग से चित्रित किया है। ऊपर चित्र में शांतिनिकेतन के 'बीजारोपण महोत्सव' की एक स्फुट स्मृति है-गुरुदेव पार्श्व में खड़े ऋषि मनीषी वाणी में आशीवचन का अमृत वर्षण कर रहे है।
चित्र नदबाबू की तूलिका का पावन प्रसाद है।

*

# अभागा क्या

चिट्ठी पढ़ना समाप्त करके ओर से उसे मेज पर पटक गरजकर ऊषा ने कहा—'हजार बार कह चुकी हूँ बाबा कि, इस आदमी को भगाओ। इसको कुछ दिन और मैनेजर रखने से हमारी जमीदारी नीलाम हुए बिना न रहेगी, इतना निश्चय समझ लो। अब भी तुम मेरी बात नही सुनते, तो देखना, क्या होता है।

जगले के भीतर लो इजीचेयर पर बैठे हुए जाने कौन-सी किताब लेकर सतीनाथ

तन्मय हो रहे थे। लड़की के कंठ-स्वर की तेजी ने उनको चकित कर दिया। किताब को आँख के सामने से हटाकर स्नेह-स्निग्ध स्वर में वे बोले—"आखिर बात क्या है? तपन ने क्या लिखा है?"

"हर बार जो लिखता है, उससे भिन्न कुछ नहीं। बाढ़ में अनेक गाँव बह गये हैं, रिआयों के पास अपने खाने को भी नहीं रह गया है, जिससे लगान अदा करना असम्भव हो गया है—बल्कि 'स्टेट' से ही कुछ रुपया उनकी सहायता के लिए दे देना अत्यंत प्रयोजनीय है।"

किताब बंद करके रखते हुए सर्नीवान सीधे होकर बैठ गये। कुछ चिंतित भाव से बोले—"बहुत दिनों से तपन यह बात कह रहा है। उधर बाढ़ के कारण नुकसान भी बहुत हुआ है। सुनते हैं, काफी लोगों का सर्वस्व डूब गया है। ऐसी अवस्था में"

ऊषा के पासवाली कुर्सी पर बैठा हुआ विजन चुपचाप पिता-पुत्री की बातें सुन रहा था। मृदु विद्रूप के स्वर में छूटते ही वह बोल उठा—"ऐसी अवस्था में 'स्टेट' से उनकी सहायता करना अत्यंत प्रयोजनीय है—क्यों ऊषा ?"

शांत, नीले आसमान में अकस्मात् बादल छा जाने से जैसी अवस्था होती है, वैसे ही, सर्नीवात के प्रसन्न मुख पर क्षणभर के लिए विरक्ति की रेखा गाढ़ी हो उठी। किन्तु उनके बोलने से पहले ही ऊषा बोली—

"आप क्या समझते हैं, विजन दादा कि, बाबा ऐसा नहीं करना चाहते हैं? बाबा के मन की भी नितांत यही इच्छा है। केवल हम लोगों के कारण उतावले नहीं होते। सच कहना, बाबा! हम लोगों की बात क्या ठीक नहीं? तुम्हारे द्वारा इतना प्रश्रय पाने के कारण ही मैनेजर . .

उसकी बात खत्म होने से पहले ही क्षुब्ध स्वर में पिता बोले—' यह क्या, ऊषा! सभ्यता से बातें करो। माना, वह तुम्हारा नौकर है, फिर भी उसके पीठ-पीछे उसके सम्बन्ध में इस तरह की बातें करना तुम्हारे लिए कदापि उचित नहीं।'

ऊषा भी कुंठित हो पड़ी। जब अधिक विरक्ति से चित्त भरा हो, तब बात करने में विचार-विवेचना के लिए मनुष्य के मन में कोई स्थान नहीं रह जाता। अतएव क्रोध के आवेग में उस तरह बात करके ऊषा का शिक्षा-मार्जित भद्र मन संकोच से भर आया। पिता के अनुयोग से उसकी मात्रा और भी बढ़ गयी।

उसके मन को कुंठा देख, तुरत ही सर्नीवात का लक्ष्य करके हँसते हुए विजन बोला—"आप चाहे जो सोचें, किन्तु निश्चय ही यह अस्वीकार करने से काम नहीं चलेगा कि, वह अपना नौकर है। उसके सम्बन्ध की बातचीत में साधारणतः ऊँच-नीच मुँह से निकल जाने में कोई खास अन्याय नहीं हो जाता।"

सर्नीवात के मुख पर विरक्ति की छाया और भी घनीभूत हो उठी। वह बोले—"तुम्हारी ओर से इस प्रकार की बातें सुनने की आशा मुझे नहीं थी, विजन!

किसी भी मनुष्य का अपमान करने का अधिकार किसी को नहीं है। अपने को मनुष्य कहकर अपना परिचय देनेवाले को मनुष्य की श्रद्धा करना पहले सीख लेना आवश्यक है।"

विजन का मुख लाल हो उठा। वह कुछ कहने जा ही रहा था कि, ऊषा बोल उठी–"अच्छा, वह बात छोड़ो। यह तो बताओ, इसमें करना क्या होगा, बाबा!"

किताब फिर खोलकर सतीकांत बोले–"अब और निश्चेष्ट होकर बैठना उचित नहीं। सोचता हूँ, कुछ दे ही देना चाहिए।"

"रुपया दोगे? तुम भी अगर इस तरह चलोगे बाबा, तो सच कहो न, क्या हमें पथ का भिखारी बनना होगा? तुम उसको लिख दो–'लगान का हिसाब करके जितनी जल्दी हो सके, भेजें।' उसे बहुत प्रश्रय दे चुके, अब रहने दो।"

[ भूख और अकाल ]

"ऐसा तो नहीं है, किन्तु अधिकांश रिआया का तो सर्वस्व नाश हो गया है–लगान कहाँ से देंगे बेचारे?"

"इसकी चिंता करना हम लोगों का काम तो है नहीं!"

ऊषा की बात का समर्थन करते हुए तभी विजन बोल पड़ा–

"इक्जैक्टली! ठीक कहती हो तुम।"

अपने मन की बात सुनकर सबको खुशी होती है। ऊषा का मुख भी दीप्त हो उठा। विजन की ओर एक बार देखकर उसने कहा–"आपके कहने से क्या होगा? बाबा जो यह बात स्वीकार करना नहीं चाहते।"

सतीकांत अन्यमनस्क भाव से बाहर की ओर देखते रहे। एक अमांगलिक नीरवता से घर का वायुमंडल मानो भारी हो उठा। विजन ने विक्षुब्ध भाव से कमरे में बैठे इन दो प्राणियों को एकाधिक बार दया के भाव से देखा। उसके बाद मौन भंग करते हुए वह बोला–"अच्छा, एक काम कीजिये। चलिये, कुछ दिनों के लिए आप लोगों के देश चला जाये। क्या राय है?"

ऊषा का मुख जिस प्रकार एक आकस्मिक प्रकाश से चमक उठा, ठीक उसके विपरीत सतीकांत के मुख पर ग्लानि की एक आभा छा गयी। दूसरी ओर देखकर उन्होंने कहा–"ना, अब वहाँ मैं नहीं जाऊँगा। मेरा जी वहाँ ठीक नहीं रहता।

बुझनेवाली दीप-शिखा की भाँति ऊषा का मुख धूमिल हो उठा। फिर भी वह पिता से इस सम्बन्ध में कुछ बोली नहीं। उसकी व्यथा का लक्ष्य कहाँ है, यह वह

भलीभाँति जानती थी। उन्होंने दीर्घ दस वर्ष पूर्व अपनी जीवन-संगिनी को नदी-तीर के श्मशान पर चिता के सुपुर्द कर दिया था और तभी से देश का घर छोड़ आये हैं। फिर कभी वहाँ जाने का नाम नहीं लेते। पहले भी उषा को इसी तरह अनेक बार निराश कर चुके हैं। और, बराबर मनीकान्त से यही उत्तर पाकर वह चुप रह गयी है।

किन्तु प्रस्ताव का यों खत्म हो जाना विजन को अच्छा नहीं लगा। गम्भीर मुख करके क्षणभर तक वह चुप रहा। फिर सहसा उषा को लक्ष्य करके बोला—

"अच्छी बात है। आपको यहीं रहने दिया जाये, हम-तुम चलें, उषा! फिर कुछ दिनों में वापस आ जायेंगे। इसके अतिरिक्त मैनेजर ने जो समाचार दिया है, उसकी सत्यता की भी जाँच हो जायेगी। मेरे तो मन में होता है कि, सब बातें झूठ हैं। वसूली निश्चय ही ठीक पहले ही-सी होती है, किन्तु यहाँ न भेजी जाकर अपने घर में जमा की जाती होगी। अवश्य यही बात है।"

मनीकान्त ने एक बार विजन की ओर देखा। इतने ही में उषा बोल उठी—

"मेरे भी मन में यह बात ठीक जँचती है, विजन दादा! उनकी वहाँ नियुक्ति होने से पहले भी बाढ़ आती थी, प्रजा को दुःख और कष्ट भी थे; किन्तु पहले तो कभी हम लोग अपनी आमदनी से वंचित नहीं हुए। जाने यह क्योंकर होता है?"

"दैट्स द थिंग! वे समझते हैं, उनका काम देखने कोई जायेगा नहीं। उनके ऊपर अटल विश्वास है और इसी का अनुचित लाभ वे उठाते हैं। इसमें उनका कोई दोष भी नहीं है। निश्चय ही नहीं; क्योंकि इतना होने पर भी यदि वे अपने भविष्य के सम्बन्ध में सचेत नहीं बनें—इतने विश्वास पर भी यदि अपनी ओर ध्यान न देकर उदासीन बने रहें—तब लोग उन्हें मूर्ख ही तो कहेंगे और उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि, वे मूर्ख नहीं हैं। स्काउड्रल!" विजन हँसा।

पिता की ओर देखकर उषा बोली—"जो भी हो, बाबा, विजन दादा के साथ मैं वहाँ हो आऊँ? पलाशपुर जाने की इच्छा भी बहुत दिनों से है। तुम नहीं जाते हो, इसलिए मैं भी नहीं जा पाती हूँ और आज चूँकि साथ में विजन दादा जाना चाहते हैं, इसलिए हमारे जाने में अब कोई बाधा नहीं हो सकती। इतने दिनों तो यह कहते थे कि, किसके संग जाओगी, कौन तुम्हारी देख-रेख करेगा? अब तो देख-रेख करने के लिए विजन दादा साथ में रहेंगे। अब तुम आपत्ति न करो, बाबा!"

मनीकान्त ने चिन्ता-भाव से लड़की की ओर देखा। हृदय की प्रचंड विरक्ति और अनिच्छा आँखों में और मुख पर छा गयी, तथापि प्रकट रूप से विजन के सामने यह न कह सके कि, वह जिस प्रकार इस घर के साथ घनिष्ठ से घनिष्ठतर हो

उठा था—उससे निकट भविष्य मे ही इस घर से उसका सम्पर्क अभिन्न होकर रहेगा—इस सम्बन्ध मे जैसे उनको कोई संशय नही था, वैसे ही औरों के मन में भी नही था! इस विशाल भवन और विपुल सम्पत्ति से लेकर यह लडकी तक एक दिन उसी के हाथ समर्पित होगी, यह बात बहुत दिनों से प्राय. तय हो चुकी थी। सतीकान्त की राय स्पष्ट रूप से किसी दिन यद्यपि प्रकट नही हुई थी; फिर भी भावभंगी देख सबने अनुमान कर लिया था। इसी कारण सम्भवतः इच्छा होने पर भी बात उनके मुँह से न निकल सकी।

ऊषा ने उनके मुख की ओर नही देखा। देखती, तो उनके अंतर की वाणी वहाँ पूर्णतः परिस्फुटित देख पाती। किन्तु पिता के इस मौन को स्वीकृति समझकर वह सानंद बोली—

"तो कल ही चला जाये, विजन दादा! कल सवेरे की ट्रेन से ही।"

—२—

दीर्घ दस वर्षों के बाद ऊषा ने अपने बचपन के परिचित गाँव पलाशपुर में कदम रखा है। क्षण ही भर पहले तार द्वारा उसके आने का समाचार जानकर कर्मचारियों का दल, दासियों और नौकरों की सहायता से व्यस्त भाव से उसकी अभ्यर्थना की योजना में लगा हुआ है। जमींदारी की होनेवाली स्वामिनी के इस आकस्मिक आगमन से कर्मचारीगण कुछ भयभीत ही हैं। किस उद्देश्य से वर्षों बाद वे गाँव आयी हैं, इस सम्बन्ध मे नाना प्रकार के वाद-विवाद चल रहे हैं।

विजन को ऊषा के साथ देखकर वे लोग विस्मित अवश्य हुए; किन्तु बहुत कम। इस बीच जो लोग कलकत्ते में जमींदार के घर जा-आ चुके थे, वे विजन का परिचय जानते थे। सम्भव है, एक दिन ये ही सज्जन उनके स्वामी बन जायें—यह बात भी लोगों को अज्ञात नही थी। फलतः विजन के मनोरंजन के लिए भी उन लोगों ने अत्यधिक व्यग्रता प्रदर्शित की।

पुरानी दासी क्षेत्रमणि ऊषा के साथ आयी थी। उसकी सहायता से सफर के कपडे बदलकर थोडी ही देर बाद ऊषा बाहर के एक कमरे में आ बैठी। विजन कुछ पहले ही वहाँ आ चुका था। घर के भीतर से, बाहर के रास्ते बुआ ने दो कप चाय और कुछ जलपान भिजवा दिया था। चाय के प्याले को खाली कर हाथ के सिगार का एक लम्बा कश खींचते हुए विजन बोला—"आज की रात 'रेस्ट' लिया जाये, ट्रेन को 'जर्नी' से बुरी तरह 'टायर्ड' हो गया हूँ।"

दरवाजे पर पडे परदे को हटाकर वह बाहर हो गया। ऊषा भी उठ ही रही थी कि, सहसा उसकी दृष्टि पडी दरवाजे के ठीक विपरीत दिशा में – दीवार पर टँगे अपनी माता के आदमकद चित्र के ऊपर। उज्ज्वल आलोक की दीप्ति में चित्र की मुस्कान-रेखा मानो सजीव हो उठी थी। ममतामय नेत्र-युगल से वैसी ही

स्निग्ध ज्योति बरस रही थी। गले में पड़े तनिक मुरझाये फूलों की माला बरसाती रात की सजल हवा में मृदु-मृदु डोल रही थी।

ऊषा का विस्मय अपनी सीमा को भूल गया। इसी वेष में उसकी माँ की तस्वीर कलकत्तेवाले घर में भी रखी हुई है। यहाँ यह चित्र कौन लाया और नित्य पुष्प-हार से कौन इसकी अर्चना करता है? इस घर की अधिवासिनी बुआ, चाची आदि में क्या इतनी उदारता है? कौन जाने?

निर्निमेष नेत्रों से ऊषा देर तक तस्वीर की ओर देखती रही। माँ की याद आज भी उसके मन में अत्यंत ताजी है, यद्यपि तब वह केवल ८-९ वर्ष की बालिका ही थी। इन १० वर्षों के व्यवधान में एक भी बात उसके मन से विस्मृत न हो पायी है। आज भी इस घर के कोने-कोने में उनका स्पर्श विजड़ित है। जिधर देखा जाये, उधर ही उनका निदर्शन है। अनजाने ही ऊषा की आँखों में दो बूंद आँसू आ गये। दरवाजे के सामने परदे की आड़ में कोई आकर खड़ा था। मधुर स्वर में प्रश्न सुनायी पड़ा—"भीतर आ सकता हूँ?"

आँखों को पोंछ ऊषा बोली—"आइये।"

कमरे में प्रवेश करके जिस व्यक्ति ने ऊषा की ओर देख, दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया, उसे ऊषा ने मानो पहले भी कहीं देखा है—ऐसा प्रतीत तो हुआ, पर बहुत दिनों पहले का देखना स्वप्न ही जैसा होता है। ठीक वह पहचान न सकी। जो सज्जन आये, उनकी उम्र २५-२६ के लगभग होगी—लम्बा, गठा हुआ शरीर। रंग साफ नहीं कहा जा सकता, किन्तु ठीक सांवला भी नहीं। फिर भी उनके मुख और आँखों में एक ऐसी गम्भीरता, एक ऐसी विशेषता थी, जिससे एक बार उनकी ओर देखकर फिर दृष्टि फेरने में कुछ विलम्ब हो जाना ही स्वाभाविक है।

ऊषा नमस्कार का जवाब भी मानों भूल गयी। अत्यंत साधारण भाव से मोटे कपड़े और कुर्ता-धोती में भी वे बड़े सुंदर लग रहे थे। तुरत मुसकराकर उन्होंने अपना परिचय दिया—"मेरा नाम है तपन राय—आप लोगों का कर्मचारी।"

विह्वल भाव से व्यस्त होकर ऊषा ने नमस्कार किया और बोली—"बैठिये, कब लौटे हैं?"

एक कुर्सी खींचकर बैठते-बैठते तपन बोला—"अभी-अभी। आते ही खबर मिली कि, आप लोग आये हैं। किन्तु कलकत्ता छोड़कर आप किसी दिन यहाँ भी आ सकेंगी, ऐसी हम लोगों की धारणा बिलकुल नहीं थी। तिस पर भी ऐसा अकस्मात्! थोड़ा-सा पहले खबर देकर यदि यहाँ पर आप आतीं, तो आपको विशेष कष्ट न होने देने की जितनी भी सम्भव व्यवस्था हो सकती है, कर दी जाती। इस प्रकार आ जाने से निश्चय ही काफी असुविधा सहन करनी पड़ी होगी। इसके अलावा

में भी तो यहाँ नहीं था।"

मनुष्य का मन विचित्र है। क्षणभर पहले ही उषा निश्चय कर चुकी थी कि, तपन से भेंट होते ही कठोर स्वर में उसकी अनुपस्थिति के लिए कैफियत तलब करेगी। इसके पहले कोई और बात शुरू नहीं करेगी। कई वर्षों से वह जमींदारी का क्यों नुकसान कर रहा है, इसका जवाब भी वह साथ ही माँगेगी। किन्तु तपन की बात के साथ-ही-साथ उसके शान्तोज्ज्वल मुख के ऊपर जब उसकी दृष्टि पड़ी, तब मन-ही-मन निश्चय की हुई कठोर बातें जाने किस निगूढ़ कारण से, चंचल हवा के स्पर्श से हिम-पुंजित मेघ-स्तूप की भाँति, कहीं छिप गयीं।

[ "मेरे कहने के अनुसार काम करोगी ? तो अच्छी बात है, उन सज्जन को आज ही विदा करो।" पृष्ठ १०४ ]

उषा बोली—"ना, असुविधा हम लोगों को कुछ विशेष नहीं हुई। किन्तु सुना, आप कहीं रोगी देखने गये थे। सच ? किन्तु आपने डाक्टरी विद्या भी सीख ली है, यह तो आज तक हम लोगों ने कभी सुना ही नहीं।"

तपन हँसा। क्षणभर उषा की ओर देख दृष्टि झुकाकर बोला—"ना, डाक्टर होने का सुयोग मुझे कभी नहीं मिला। तो भी "

बात वह खतम न कर सका कि, कौतूहल से भरकर उषा बोली—"तब डाक्टर न होकर भी डाक्टरी करते हैं, ऐसा लगता है। या कविराजी करते हैं ?"

"ना, यह भी ठीक नहीं। होमियोपैथी-किताबें देखकर दवाएँ देता हूँ।"

"होमियोपैथी ? यानी उससे भी लोग अच्छे होते हैं ?"

केवल मृदु मुस्कान से ही इस बात का उत्तर देकर तपन पूछ बैठा—"आपका होमियोपैथी में विश्वास नहीं है क्या ?"

"तनिक भी नहीं। बीमार पड़ने पर मैं बिना दवा रहना पसंद करूँगी, किन्तु 'होमियोपैथिक ट्रीटमेंट' कभी न कर सकूँगी।"

तपन फिर तनिक हँसा, कुछ बोला नहीं। अविश्वास की भित्ति जहाँ इतनी दृढ़ है, वहाँ दो-एक बातों से उसे गिराने की चेष्टा एक विडम्बना ही होती है।

उसको नीरव देख उषा ने पूछा—"किन्तु आपने बतलाया नहीं कि, होमियोपैथी से रोगी अच्छे भी हो उठते हैं या नहीं ?"

"नितान्त जिसकी आयु शेष रहती है,

ऐसे ही कोई-कोई अच्छे हो उठते हैं। सम्भव है, बिना दवा के जो मर जाते हैं, वे भी इस तरह अच्छे हो उठते हों। आप लोग जमींदार हैं, दूर रहते हैं, रिआया की दुख-दुर्दशा, अभाव-अभियोग कुछ भी आप लोगों के सामने नहीं आता—कानों में नहीं पड़ता। उनके साथ आप लोगों का सम्बन्ध केवल लगान-वसूली तक ही है। कितने ही गाँवों के बीच में एक भी डाक्टर नहीं है, एक भी दवाखाना नहीं है—बीमार पड़ने पर भाग्य के ऊपर निर्भर रहकर पड़े रहने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही उनके पास नहीं है। इसलिए मेरी होमियोपैथी उनके लिए बिलकुल न होने से, कुछ होने के कारण अच्छी ही है।"

बात के साथ मृदु मुस्कान भी थी, किन्तु मुस्कराहट के भीतर कितनी व्यथा सीमित थी, ऊषा की आँखें भी स्पष्ट देख सकीं। क्षणभर के लिए उसकी नीरव दृष्टि तपन के मुख पर गड़ी ही रह गयी।

चाँदी के एक ट्रे में नवविकसित बेला के फूलों की एक माला लेकर नौकर घर में आया और उसे तपन के पास रख गया। ऊषा की ओर देखकर स्थिर मुँह से तपन बोला—"आज आप ही माँ की तस्वीर के ऊपर से सूखी माला बदल दीजिये।"

"ओह! माँ की तस्वीर पर, लगता है, आप ही रोज फूल चढ़ाते हैं। अच्छा, तस्वीर आपने कहाँ पायी, बनवायी तो?"

"अपने एक आर्टिस्ट-मित्र को देकर उतरवा ली है। सम्भव है, आप न जानती हों—आपकी माँ मेरी भी माँ थी।"

तपन का कंठ स्वर तुरत भर्रा आया। ऊषा ने नीरव भाव से माँ की तस्वीर को माला पहना दी।

–३–

तीन-चार दिनों बाद, एक दिन सवेरे विजन ने ऊषा को पुकारकर कहा—"आज कलकत्ते जाने की सोच रहा हूँ।"

अत्यन्त विस्मित हो ऊषा बोली—"क्यों?"

चाय के टेबुल पर बैठकर ही बातचीत हो रही थी। उदास भाव से बाहर की ओर देखकर विजन बोला—"और कामों का हर्ज करके अकारण यहाँ बने रहने का तो मैं कोई कारण नहीं देखता। इससे अच्छा तो "

अधीर भाव से चमचे को प्याले पर पटककर ऊषा बोली—"इससे अच्छा जो भी हो, वह मैं नहीं जानना चाहती, किन्तु हर्ज करना स्वीकार करके ही तो आप यहाँ आये थे? कुछ दिन रहेंगे, यह भी कहा था आपने!"

"यह बात मैं अस्वीकार नहीं करता, ऊषा! मैं जो अपना काम हर्ज करके भी यहाँ आया था, उसका कारण था। मैंने समझा था, यहाँ भी मुझे काम करना होगा। निकम्मे भाव से यहाँ बैठे रहने के लिए मैं नहीं आया था, किन्तु यहाँ आकर देखता हूँ कि, मानो कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं। लगता है, तुम्हें भी याद दिलानी होगी कि, तुम भी यहाँ सिर्फ घूमने नहीं आयी हो। घूमने के

लिए कही जाने की आवश्यकता यदि हो भी, तो मेरी समझ में बंगाल के गाँव इसके उपयुक्त नही है। अवश्य ही यह मेरी राय है, तुम्हारी राय इसके विपरीत होना असम्भव नही है।"

स्वच्छ सलिल की तलहटी में स्थित उपल-खंड की तरह ये बाते कितने अंतराल में निहित थी, यह स्पष्ट होकर ऊषा को दृष्टिगोचर हुए बिना न रहा। वह अप्रतिभ भी कुछ हुई। जिस उद्देश्य को लेकर वह आयी थी, उस सम्बन्ध में कुछ नही करके खूब निश्चित भाव से चारो ओर घूमती-फिरती ही वह दिन काट रही है। मृदु स्वर में हँसकर बोली—

"हाँ, कुछ भी यहाँ किया न जा सका, किन्तु एक बात मेरे मन मे आती है। विशेष कुछ शायद हम लोगो को करने की जरूरत भी न होगी। जहाँ तक समझ पायी हूँ, तपन बाबू सचमुच ही खरे आदमी हैं। लगातार कई सालो से बाढ आती है। उससे प्रजा की जो अवस्था हो गयी है, उसे मैंने देखा है। इसलिए "

बात खत्म होने से पहले ही असहिष्णु भाव से विजन बोला—"तुम्हारी चाल-ढाल, भाव-भंगी देखकर ठीक ऐसी ही बात तुम्हारे मुँह से सुनने की आशा भी थी। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ नही कहना है। सम्पत्ति तुम्हारी है, रहे या जाये। उससे न मेरा नुकसान होता है, न फायदा ही। तब भी एक व्यक्ति के अबोध होने से दूसरा खूब अच्छी तरह से अनुचित लाभ उठा रहा हो, यह देखकर ही मैंने इसका प्रतिकार करना चाहा था।'

ठीक स्थान पर चोट कर पाने से कुछ सघता ही है। अपने को अबोध कहा जाना सुनकर आदमी तुरत ही धैर्य खो बैठता है। ऊषा का सुखी-सम्पन्न मुख लाल हो उठा। आँख फाडकर विजन की ओर देखती हुई वह बोली—'क्या करने को आप कहते हैं मुझे ?"

"मेरे कहने के अनुसार काम करोगी ? तो अच्छी बात है, उन सज्जन को आज ही विदा करो यहाँ से।'

मुहूर्त भर के लिए वह सिहर उठी। पर दूसरे ही क्षण अपने को सयत करके बोली—"तपन बाबू की बात कहते हैं ? किन्तु यह क्या ठीक होगा ?"

सान चढाई छूरी की तरह प्रदीप्त दृष्टि मिलाकर कई मुहूर्त तक विजन मानो ऊषा के अतस्तल तक की खोज लेकर गम्भीर भाव से बोला—' किन्तु यह काम करने ही के लिए क्या हम यहाँ नही आये हैं ?"

ऊषा विव्रत हो पडी। दूसरी ओर देखकर केवल इतना बोली—'हाँ, किसी हद तक। तब भी क्या '

"काम करने के स्थान पर यह 'या', 'तब भी', 'किन्तु' आदि छोड देना होता है, ऊषा! अवश्य ही मैं इसके लिए तुमसे अनुरोध नही करता—तुम्हारी इच्छा हो, तो उसे रहने दो।'

दरवाजे से नौकर बोला—"मैनेजर बाबू

मिलना चाहते हैं।"

ऊषा का सारा शरीर अकारण ही काँप उठा। विजन ने जवाब दिया— "उन्हें यहीं भेज दो।"

तपन ने कमरे में आकर दोनों व्यक्तियों को नमस्कार किया। जिज्ञासु आँखों से ऊषा की ओर देखकर वह बोला—"अपने बाबा को उन रुपयों के लिए चिट्ठी लिख दी आपने क्या ?'

ऊषा तुरन्त ही उत्तर न दे सकी। अत्यंत विस्मय से भरकर विजन ने प्रश्न किया—"किसका रुपया ? किन रुपये के लिए चिट्ठी लिखनी होगी ?'

ऊषा अब की मानो कुछ कुंठित हो पड़ी, क्योंकि गाँव के निवासियों की दुर्दशा देखकर सहायतार्थ कई हजार रुपये 'स्टेट' से दिलवाने का वह एक प्रकार से वचन दे चुकी है। किन्तु इच्छा रहते हुए भी यह बात क्यों वह विजन को बतला नहीं पा रही है, यह तो वही जाने।

तपन ने विजन की बात का उत्तर दिया—'विपन्न ग्रामवासियों की सहायता के लिए इन्होंने अपने बाबा को कुछ रुपये देने के लिए चिट्ठी लिखी है।'

तीक्ष्ण दृष्टि क्षणभर के लिए ऊषा के मुख पर फेर कर विजन केवल एक बात बोल गया—"हूँ !"

चोट करनेवाला यदि निपुण हो, तो एक सुई से भी मर्मभेद कर सकना सम्भव है। कुंठा के भाव को पराभूत करके सहज भाव से ऊषा बोली—"बाबा को चिट्ठी लिखने की दरकार मैं नहीं समझती। यह रुपये देना इस समय सम्भव नहीं होगा।"

"सम्भव न होगा ?"

अप्रत्याशित आघात से आहत होकर जैसे कोई तिलमिला उठे, उसी तरह तपन तिलमिला उठा। ऊषा की ओर उसने देखा। ऊषा ने मुँह दूसरी ओर फेर लिया। विजन ने ही जवाब दिया— "ना, सम्भव न होगा ?"

क्षणभर कुछ स्तब्ध रहकर तपन बोला— "इतनी दुरवस्था आपने देखी ही है। कुछ उपाय न करने से मृत्यु के अतिरिक्त और इनका कोई चारा न होगा, यह भी आप जानती ही हैं। इनके लिए यह साधारण धन देने में आपत्ति न करें।"

"किन्तु बराबर ही तो इसी तरह ये लोग दुःख-कष्ट पाते हैं और स्वयं उसका प्रतिकार कर लेते हैं। इसके लिए जमींदार की सहायता की आवश्यकता तो कभी नहीं होती। इसी बार ऐसा क्यों होगा ? आपसे पहले जिन लोगों ने इस 'स्टेट' में काम किया है, उन लोगों ने कभी इनके दुःख-दर्द की भावना से इस प्रकार अधीरता नहीं प्रदर्शित की है। इनके लिए आप ही इतना सिरदर्द क्यों मोल लेते हैं ?"

तपन का मुँह लाल हो उठा। वह कुछ कहने जा ही रहा था कि, अवसर न देकर विजन फिर बोला—

"आपका काम शायद खतम हो गया !"

"काम ?" एक दीर्घ निःश्वास छोड़

तपन बोला– ना, काम और रह ही क्या गया है? एक बात

ऊषा को लक्ष्य करके ही वह बोला था। मधुर स्वर म ऊषा न कहा– क्या कहना ह कहिय !

आप लोगो से मासिक वेतन के नाम पर म जो रुपय पाता हूँ, दया करके वह दो साल का आप पेशगी दे दीजिय। कह तो इसके लिए म हडनोट लिख दूँ।

ऊषा न विपन्न भाव स विजन की ओर देखा। विजन भी क्षणभर के लिए कुछ *विव्रत हुआ तब भी उक्त भाव पर नियत्रण* करन म उसे बहुत देर न लगी। सरल भाव से ही वह बोला– *हाँ यह बात पहले ही से कहन को सोचा था। यहाँ काम* करन की सुविधा आपको और न होगी। कही और काम करन की चेष्टा कीजिय।

ऊषा के झुके हुए मुँह की ओर देखकर तपन बोला– अच्छी बात है। आज ही म काम को छोड देता हूँ–अभी। जमा-खाते का क्या आप ही देखगी?

उसकी ओर बिना देख हा *शीघ्र स्वर म ऊषा बोली–* विजन दादा का हा वह सब समझा दीजियगा।

अच्छा आप जरा कष्ट करके एक बार कचहरी घर में चलेंग क्या?'

सकोच स भरकर विजन बोला– वह न होगा शाम को देखा जायगा— अभी रहन दीजिय।

जो आप लोगो की इच्छा। नमस्कार!

तपन दो कदम आग बढकर सहसा ही लौट पडा। ऊषा विस्मित दृष्टि से उसकी *ओर देखन लगी। वह बोला– आपसे* एक प्रार्थना है। य रुपय हम चाहिए हा। आपको छोडकर और कोई दे नही सकता। इसीलिए आपको कष्ट देता हूँ।

उसकी बात न समझकर ऊषा और विजन दोना ही के मुख पर विस्मय की रेखाएँ खिच गयी।

*तनिक हसकर तपन बोला– यही मेरा* एक घर और कुछ सम्पत्ति है। कुछ न हान पर भी उसका दाम १० हजार रुपय *होगा*। उसके बदले म *दया करके आप* मुझ ५ हजार रुपय दे दीजिय। बधक नही म एकदम बच देन के लिए तैयार हूँ।

सुजलाम् सुफलाम्
[ चित्र हरेनदास द्वारा निर्मित एक लाइनोकट ]

"समस्त? आप सर्वस्व अंत कर देंगे?" इच्छा न होते हुए भी उषा के कंठ-स्वर में वेदना का आभास जाग उठा।

तनिक हँस कर तपन फिर बोला—"संसार में मैं एकदम अकेला हूँ। मुझे इन सबकी जरूरत नहीं। तो रुपये देने में आपको आपत्ति तो नहीं है?"

उषा के कुछ कहने से पहले ही विजन बोला—"बिलकुल ही नहीं। तब भी देखना होगा कि, सम्पत्ति सचमुच कितने दाम की होगी . . . !"

"देखेंगे क्यों नहीं? निश्चय ही देंगे। बिना देखे रुपया कैसे देंगे?"

"देख-सुनकर यदि समझेंगे कि, रुपया दिया जा सकता है, तो आपको रुपया मिल जायेगा।"

"असंख्य धन्यवाद!"

तपन कमरे के बाहर चला गया। अत्यंत तृप्ति के साथ विजन बोला—"....जाये। पर यह आदमी इतनी आसानी से चला जायेगा, ऐसा मन अभी भी स्वीकार नहीं करता।"

"कारण?"

इतनी देर बाद उषा ने मुँह उठाकर देखा। विजन ने उत्तर दिया—"कारण और क्या? ऐसा भयंकर आदमी!"

"किन्तु उसके भीतर से भयंकरता कुछ विशेष प्रकट हुई है क्या?"

—८—

सारी बातें सुन चुकने पर मनोकांत ने दीर्घ निःश्वास भरकर कहा—"बहुत बड़ा अन्याय कर आयी, ऊषा!"

उषा के अंतर में कुछ समय से यह बात सुई की तरह चुभ रही थी—"वह अन्याय कर आयी है—अन्याय कर आयी।" मन के सामने प्रतारणा नहीं चलती। इसलिए उसके अनेक यत्न करने पर भी प्रबल हवा में तृणखंड की भाँति उसकी सारी युक्तियाँ—सारे प्रयोग—उड़ जाते थे। वह सगत काम कर आयी है—मन इसे किसी तरह स्वीकार करना नहीं चाहता था। और, आज उसके ठीक उसी पीड़ित मर्मस्थल पर मर्माघात का यह आघात!

पुत्री के पाण्डु मुख की ओर देख पिता बोले—"सम्भव है, तुम समझ गयी हो कि, वह हम लोगों के सर्वनाश की योजना बनाया करता था। परन्तु बात यह है कि, हम लोगों का जो कर्त्तव्य था, वह हम लोगों ने तो किया नहीं—हाँ, यह अवश्य हम लोगों के बदले करता जाता था। उसके ऊपर अकारण ही तुम लोगों का विद्वेष था। इसीलिए उस दिन मैंने अत्यंत अनिच्छा से तुम लोगों को पलाशपुर जाने दिया था। सोचा था—वहाँ जाकर, उसका काम देखकर, उसके सम्बन्ध में तुम्हारी धारणा बदल जायेगी; किन्तु मेरे समझने में भूल हुई थी। उषा! मैंने एक बार भी न सोचा था कि, सचमुच तुम लोग उसे काम से छुड़ा दोगी। कम-से-कम इस तरह का कुछ करने के पहले मेरी अनुमति लेने की आवश्यकता होगी—यह भी मेरी धारणा थी।"

ऊषा का सिर झुकता जा रहा था। मन को जितना ही समझाया जाये, अपराधी मन अपने को निर्दोष करके सब समय खड़ा नहीं हो सकता।

सतीकांत बोले–"उसने एक बार भी नहीं पूछा कि, किस अपराध पर उसका काम छूटा? कोई बात?"

"ना, एक बात भी न बोले।"

ऊषा का कंठ स्वर भर्राया प्रतीत हुआ। भरे गले से सतीकांत बोले–"मुझको भी एक बार न बतलाया उसने। सम्भव है कि, सोचा हो, मेरे इशारे से ही सब-कुछ हुआ है? घर-द्वार जो-कुछ भी था, सब-कुछ बेच दिया है और कुछ नहीं . किन्तु अब वह गया कहाँ? पलाशपुर में नहीं है–ठीक जानती हो?"

"हाँ, वहाँ से आने के दिन भी उनको खोज लिया था। घर-द्वार बेचकर जो रुपये मिले थे, वह सब अपने सेवा-संघ को दे गये थे। उन्होंने जिस दिन घर-बिक्री के रुपये पाये, उसके दूसरे ही दिन देश छोड़कर चले गये।"

"किन्तु वह गया कहाँ? मेरे पास भी तो एक बार नहीं आया। किन्तु आता भी क्यों? यहाँ उसके आने का मार्ग भी तो बंद है। बिना दोष के ही इतने बड़े अपमान का बोझ जब तुम लोगों ने उसके माथे पर डाल दिया . "

बात खत्म होने से पहले ही सतीकांत दृष्टि फेरकर दूर मेघाच्छन्न आकाश की ओर देखने लगे। ऊषा ने स्तब्ध भाव से पिता के व्यथा-आहत मुँह की ओर देखकर दूसरी ओर दृष्टि कर ली।

दरवाजे पर पड़े परदे के पीछे से आने की सूचना देते हुए विजन कमरे में आ गया। सतीकांत ने पूछा–"आज घूमने नहीं जा रहे हो, विजन?"

ऊषा की ओर इशारा करके विजन बोला–"इनसे कहता था, कितने दिन बाद आज कलकत्ते आये हैं–एक बड़ा-सा 'ट्रिप' कर आवें। चलो, ऊषा!"

पुत्री की ओर देख सतीकांत बोले–"बहुत अच्छा तो है। जाओ, घूम आओ।"

पिता की ओर बिना देखे ही ऊषा बोली–"मुझे अच्छा नहीं लगता, बाबा!"

सतीकांत ने विस्मय से भरकर लड़की के गम्भीर मुख की ओर देख मानो कुछ समझने की चेष्टा की। ऊषा विजन के रुष्ट मुँह की ओर बिना देखे ही कमरे के बाहर हो गयी।

विजन का मुँह काला हो उठा। बोला–"कई दिन से यह देख रहा हूँ कि, ऊषा में एक बड़ा परिवर्तन हुआ है। मन की गति उसकी बहुत बढ़ती जा रही है। यह तो ठीक नहीं है।"

सतीकांत ने जवाब नहीं दिया। क्षण-भर प्रतीक्षा करके अधीर भाव से विजन बोला–"इसका कारण आप कुछ अनुमान कर सकते हैं?"

उसके बात करने के ढंग से विचलित होकर भी सतीकांत ने स्वाभाविक प्रशान्त भाव से ही जवाब दिया–'ना।'

होती हैं, वहाँ शुभ्र के ऊपर काले धब्बे की तरह बिंदुमात्र त्रुटि भी बहुत बड़ी होकर सामने आती और मन को क्षुब्ध करती है। विस्मित मुख से वह बोला–'भाग्य ही से आज आपके साथ भेंट हो गयी। न होती, तो . "

"न होती, तो बाबा के सम्बन्ध में यह गलत धारणा आपके मन में रह जाती। अन्याय मैंने किया और दोषी हो बाबा! क्या ही अच्छा विचार आपने किया था!"

बात करते-करते वह अग्रसर हो रहा था। थोड़ी ही दूर आगे सतीकांत का घर था। घर का कुछ भाग दिखलायी भी पड़ने लगा था। एक दुविधा के साथ तपन बोला–"मुझे क्या सचमुच ही आपके घर जाना होगा?"

"वाह! इतनी देर बाद यह बात? आप भी अच्छे आदमी हैं!"

"किन्तु लगता है यह ठीक न होगा।'

"क्यों, बतलाइये तो सही।" ऊषा कुछ विस्मय और कुछ विरक्ति के साथ उसकी ओर देखने लगी।

क्षणभर चुप रहकर तपन बोला–"विजन बाबू क्या मुझे देखकर खुश होंगे?"

ऊषा रुकी। कंठस्वर में तनिक शक्ति भरकर बोली–"आपको अपने घर में चलने को कह रही हूँ–विजन बाबू के घर में नहीं।"

तपन कुछ बोला नहीं। विजन के इच्छानुसार ही वह काम से छुड़ाया गया था, यह बात कहना याद करके भी वह रुक गया और ऊषा के साथ-साथ चलता गया।

–६–

घर के सामने ही लान पर बैठकर सतीकांत अपने एक पुराने मित्र के साथ बातचीत कर रहे थे। विजन भी अनुपस्थित न था। तभी उनकी मिनर्वा कार पोर्टिको में रुकी और ऊषा व तपन के ऊपर कितनी ही आँखें एक साथ जा पड़ीं। विजन का सारा मुख लाल हो उठा। उच्छ्वसित स्वर में ऊषा निकट आकर बोली–"तपन बाबू को पकड़ लायी, बाबा! कहते थे, आने की इच्छा न थी। यदि मैं न जाती, तो न-मालूम कितने दिनों तक यहाँ न आते। कालेज से लौटते समय इनके घर चली गयी थी।'

स्नेहभरे स्वर में सतीकांत ने कहा–"ऐसी बात! तपन तुम्हें हुआ क्या है? इतने दिनों तक आये क्यों नहीं?"

"कहिये, कहिये कि, समय नहीं था। जानते हैं बाबा! मुझसे कहा था, आने का समय न मिला, किन्तु इनके घर से खबर मिली कि, समय के अभाव में केवल सोये रहकर ही इन्होंने ये कई दिन काट दिये हैं।'

सतीकांत हँस पड़े। विजन को छोड़कर सबके मुख पर हँसी की रेखाएँ खिंच गयीं। ऊषा ने एक बार पिता की ओर देखकर कहा–"बाबा! मालूम होता है, तुम्हें चाय नहीं मिली? मैं अभी आयी।'

तेजी से वह घर के भीतर चली गयी। सतीकांत के पास ही खाली कुर्सी खींचकर

तपन बैठ गया।

उषा थोड़ी ही देर बाद वापस आ गयी। नौकर चाय का सामान रख गया था।

उषा खाली कपों में चाय डालने लगी। विजन एकाएक ही उठकर बोला—"मुझे काम है, मैं चला।"

"चाय तो पीते जाओ। उषा, विजन को सबसे पहले दे दो।" उसके व्यवहार से सतीकान्त का मन विस्मय के भार से दबा होने पर भी वे सहज भाव में ही बोले।

जोर से सिर हिलाकर विजन बोला—"ना, मैं देर नहीं कर सकता। चाय रहने दीजिये और देखिये ..." सतीकान्त की ओर देखकर ही वह बोला—"माँ ने आपको एक बार बुलाया है। आज शाम तक आ सकेंगे न आप?"

सामने के टी-प्वाय पर से हैट उठाकर वह चला गया। उसके इस भाँति जाने से सबके मन में विक्षोभ जाग्रत् हुआ। तपन का माथा और भी नीचे झुक गया।

अस्फुटित स्वर में उषा बोली—"अभद्र!"

बातचीत फिर उस तरह न चल सकी। चाय पीकर अपने मित्र के विदा हो जाने पर सतीकान्त बोले—"विजन की माँ ने मुझे बुलाया है, न हो अभी ही मिल आऊँ।"

पिता की ओर देखकर शान्त स्वर में उषा बोली—"हठात् तुम्हें अपनी माँ के पास आने को कहने का कारण क्या है?"

"वह विजन की शादी के लिए अत्यन्त ही व्यग्र हो उठी है।"

"किन्तु उसके लिए उन्हें तुम्हारी आवश्यकता क्यों होगी, बाबा!"

सतीकान्त हँस पड़े—"मेरी आवश्यकता न होगी? तुम्हीं उसकी बहू जो होगी . !"

बात खत्म होने के पहले ही तीक्ष्ण स्वर में उषा बोली—"ना, बाबा! ना, यह होगा नहीं। तुम उन लोगों से कह दो।"

थोड़ी देर तक निर्वाक् हो पुत्री की ओर देखते रहकर सतीकान्त बोले—"क्या कहती हो उषा? यह कैसे होगा? यह बात तो प्रायः स्थिर हो चुकी है।"

"ना, ना! क्यों नहीं होगा? तुमने तो कभी उन्हें वचन नहीं दिया?"

"वचन तो नहीं दिया, किन्तु किन्तु तू क्या विजन को पसन्द नहीं करती?"

पिता की ओर फिर देखकर स्थिर स्वर में उषा बोली—"ना, बिलकुल नहीं।"

विजन के जाने के व्यवहार को ही सब का कारण समझकर एक बार हँसकर बात को छोटी करने के लिए सतीकान्त कुछ कहने जा ही रहे थे कि, पुत्री का पत्थर की तरह कठोर मुख देखकर रुक गये। कारण जो भी हो; किन्तु यह आपत्ति अविचल रहेगी—यह समझने में उन्हें तनिक भी देर न लगी।

—३—

तपन कलकत्ते के एक स्कूल में मास्टर है। सतीकान्त बाबू के आग्रह करने पर भी पलाशपुर आने की बात उसके स्वाभिमान को स्वीकार नहीं थी। उनके घर पर भी उनसे मिलने वह कभी-कदाच ही जाता। उस दिन भी जब वह वहाँ

पहुँचा, ऊषा कालेज जाने के लिए घर से बाहर निकल रही थी। प्रसन्नमुख से उसका स्वागत करते हुए वह घर के भीतर आ गयी। अकारण ही उसका मुख दीप्त हो उठा। तपन बैठ गया। ऊषा के कुछ बोलने से पहले ही वह बोला—"कुछ दिन के लिए बाहर जा रहा हूँ। न आने से आप बाबू चिंतित होंगे–इसीलिए उनको सूचित करने आया हूँ। वे घर में हैं तो ?"

ऊषा का प्रसन्न मुख सहसा म्लान हो उठा। वह बोली–"कहाँ जा रहे हैं ? सहसा बाहर जाने की क्या आवश्यकता हो आयी ?"

"आवश्यकता ?" तपन क्षणभर तक इधर-उधर करके बोला–"यहाँ से कुछ दूर पर एक गाँव में चेचक का भारी प्रकोप फैला हुआ है, ऐसा सुनने में आया है। हैजा भी फैल रहा है। वहाँ के रहनेवाले बहुत ही गरीब हैं, इसलिए भगवान का नाम लेकर पड़े रहने के अतिरिक्त उनके पास और कोई चारा नहीं है।"

बात खत्म करके तपन हँसा। प्रकाश के नीचे छिपे अंधकार की तरह इस हँसी के अंतराल में जो घनीभूत वेदना निहित थी, उसे समझने में ऊषा को देर न हो सकी। बोली–"इसीलिए क्या आप उनकी सेवा करने जा रहे हैं ?"

"एकदम सेवा तो नहीं, किन्तु मैं जा रहा हूँ . . ."

"एकदम सेवा तो नहीं, फिर भी आप जा रहे हैं ! अच्छी बात है। . . . किन्तु क्या आपका जाना बिलकुल तय है ?"

"तय ही है। और, लगभग घंटे ही भर बाद मेरी गाड़ी है।"

ऊषा क्षणभर मौन रहकर न-जाने क्या सोचती रही। फिर बोली–"जरा बैठिये, तपन बाबू ! मेरे आने से पहले चले न जाइयेगा।"

व्यस्त पद से वह कमरे से बाहर हो गयी। तपन ने टेबुल पर से अखबार उठा लिया। ऊषा को लौटने में देर न लगी। उसके पाँव के शब्दों से चौंककर मुँह उठाते ही असीम विस्मय से तपन स्तम्भित रह गया। कीमती साड़ी, ब्लाउज आदि को त्याग कर नितांत सीधी-सादी एक काले किनारे की साड़ी और साधारण ब्लाउज ऊषा ने पहन रखा था। हाथ में था सूटकेस। बोली–"चलिये, तपन बाबू !"

तपन आश्चर्य के साथ बोला—"कहाँ?"

"कहाँ ? यह तो आप जानें। जहाँ चल रहे थे, वहीं ?"

अवाक् होकर कई क्षण उसकी ओर देखते रहकर तपन बोला–"दिमाग खराब हो गया है न क्या? आप कहाँ जायेंगी?"

"आपके साथ। आप जहाँ जायेंगे।"

"मेरे साथ ?"

"हाँ, आपके साथ। आपने क्या सोच रखा है कि, मैं आपको इतने भयानक असुख के बीच अकेले छोड़ दूँगी ? आपने मुझे कैसी समझ लिया है? एक

दिन जो कर चुकी हूँ, उसी लिए आपने क्या मुझे अत्यंत हीन समझ रखा है?'

उसकी बातचीत और बोलने के ढंग, दोनों ने तपन को हतबुद्धि कर दिया। थोड़ी देर बाद बोला—"यह सब आप क्या कह रही है? आपके सम्बन्ध में किसी दिन मैंने कोई भावना नहीं बनायी। किन्तु ये सब बात आज के दिन जरा सोचिए तो—तनिक भी विचार करने पर आप स्वयं समझ सकती हैं। क्षणिक उत्तेजना ही जीवन का चरम सत्य है क्या? ना, ना! आकाश में इंद्रधनुष देखकर यदि कोई उसको चिरस्थायी समझ ले "

कम्पित स्वर में उषा बाधा देती हुई बोल उठी—"बस, बस! किन्तु कितने प्रकार से तथा कितने आघात और आप मुझे देना चाहते हैं? कहिये!'

क्षणभर स्तम्भित रहकर तपन बोला—"आप क्या कह रही हैं? इस बात पर ठंडे दिल से जिस समय विचार करेंगी, उस समय स्वयं ही आपकी कुंठा की सीमा न रह जायेगी। एक दिन आपने मेरे ऊपर कुछ अविचार किया था, यह मान भी लिया और उसके पश्चात्ताप में स्वयं इतना बड़ा त्याग स्वीकार करने में भी आप दुविधा नहीं कर रही हैं। किन्तु मैं तो आपकी इस क्षणिक दुर्बलता का अनुचित लाभ न उठा सकूँगा?"

"केवल मेरी दुर्बलता ?"

जाने कैसी दृष्टि से उसकी ओर देखकर सहसा रोते-रोते उषा ने दोनों हाथों के आवरण में अपना मुख ढक लिया। विस्मय से भरकर तपन बोला—"यह क्या? आप रो रही हैं? चोट पहुँचानेवाली कोई बात तो मैंने कही नहीं!"

मुख के ऊपर से हाथ हटाकर उषा बोली— ना, आपसे और कुछ कहना मैं नहीं चाहती। आपको मैंने गलत समझा था। आप पत्थर के बने हैं। नहीं तो, इस तरह कभी मुझे अपमानित नहीं कर सकते। जाइये, आप जाइये "

अपमान करता हूँ?' विह्वल भाव से तपन ने उषा की ओर देखा।

भरी हुई दोनों आँखों को पोंछती हुई भरायी हुई आवाज में उषा बोली—"कर ही तो रहे हैं! कैसी समझ रहे हैं आप मुझे? आपने मुझे अत्यंत हीन समझ लिया है तभी तो इस तरह छोड़ जाना चाहते हैं अन्यथा "

उषा ने अपनी सजल दृष्टि दूसरी ओर फेर ली। व्यस्त भाव से तपन ने कहा—"यह सब क्या कह रही है आप? जानती नहीं हैं, आपका मैं किन्तु. . ."

बात समाप्त किये बिना ही वह रुक गया। उषा का मुख सहसा उज्ज्वल हो उठा। बोली—"चलिये, सब चला जाये।'

"और, बाबा बाबू?"

"बाबा से मैं कह आयी हूँ।"

तपन नीरव भाव से घर के बाहर निकला। ऊपर के बरामदे से सतीकांत हँसकर बोले—"तुम्हारी यात्रा शुभ हो!"

★

बालकोकी
तन्दुरुस्ती और
बढाता है. ताकत
हरेक केमिस्ट और स्टोरसे मीलता है
GUJARAT
बी. ए. ऐन्ड ब्रदर्स : बम्बई-२
कलकत्ता, पटना और गौहाटी

मुलायम
और
सुन्दर बालों के लिए
स्वस्तिक
परफ्यूम्ड केस्टर ऑइल
सर्वोत्तम है।
यह स्वस्तिक ऑइल मिल्स का उत्पादन है।
SHILPI. S O.M. 536

# क्या ड्यूमेक्स महँगा है?

नहीं!

आप देखेंगे कि बाजार में मिलनेवाले आम बेबी फूड की तुलना में ड्यूमेक्स के लिए एक पाई भी ज्यादा खर्च नहीं करनी पड़ती। इसका टिन कुछ छोटा तो होता है, लेकिन माल का वजन पूरा होता है। इसका कारण यह है कि ड्यूमेक्स बेबी फूड परिष्कृत महीन पाउडर के रूप में मिलता है और इसीलिए स्वाभाविक रूप से कम जगह में बन जाता है। यह अत्यधिक महीन इसलिए होता है ताकि आप इसे आसानी से घोल सकें और आपका बच्चा भी आसानी से पचा सके।

और याद रखिए, ड्यूमेक्स केवल 'टुबरकुलिन-टेस्टेड' गायों के दूध से ही तैयार किया जाता है। इसमें विटामिन अधिक और चर्बी कम होती है। इसका अर्थ है आपके बच्चे के लिए विशेष रूप से निरापद एवं विशुद्ध पदार्थ-विशेष रूप से निरापद पोषण और वह भी बिना किसी अतिरिक्त खर्च के। इसीलिए इसमें अचरज की कोई बात नहीं कि ड्यूमेक्स बच्चों को स्वस्थ रखता है।

बच्चों को ड्यूमेक्स दीजिए और उन्हें फलता-फूलता देखिए।

मोहक
रुचिकर
तृप्ति-पूर्ण
Vanasda
वनस्पति
वनस्पति में पकाइए

विटामिन 'ए'
" 'बी१'
" 'बी२'
" 'सी'
गोला
मिठाइयाँ और टॉफ़ियाँ
Gola
Gola
Gola
गोला
मिठाइयाँ
और
टॉफ़ियाँ
दी हिन्दुस्थान शुगर मिल्स लि.

शुद्ध चीनी
शरीर की प्रथम आवश्यकता
दैनिक श्रम के लिए हमारे शरीर को शक्ति की जरूरत होती है। यह शक्ति चीनी से हमें बड़ी सुगमता से मिल सकती है। किंतु यदि चीनी शुद्ध न हो, तो यह हमारे लिए हानिकर हो सकती है। अवध शूगर मिल्स लि. की चीनी शत प्रति शत शुद्ध होती है। यही कारण है कि बरसों से लोग इसे ही पसंद करते आ रहे हैं।

श्री रतनलाल जोशी द्वारा 'नवनीत प्रकाशन' लि०, २४१, ताडदेव, बम्बई ७, के लिए प्रव

रोमाञ्चपूर्ण कौशल
7
के प्स्टे न
दूसरों से मीलों आगे
क्यों न केप्स्टेन खरीदें
इसका मिश्रण अच्छा है
CAP/304B

भारतीय उद्योगों की

के लिए

- कापट पेपर सादा और धारीदार
- वाटरप्रूफ पेपर
- बोर्ड–सिम्प्लेक्स, डुप्लेक्स, ट्राइप्लेक्स
- और रंगीन ट्राइप्लेक्स

खाद के थैले

[illegible]

स्टोरेज

सड़क निर्माण

रनवे

## ओरियंट पेपर मिल्स लि०

मैनेजिंग एजेन्ट्स

**बिड़ला ब्रदर्स लि०**

८, रॉयल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

श्री रतनलाल जाला द्वारा 'नवनीत प्रकाशन लि०, ३४१, ताड़देव, बम्बई ७, के लिए प्रकाशित तथा एसोसियेटेड एडवरटाइजर्स ऐंड प्रिंटर्स लि० ५०५, आर्थर रोड बम्बई में मुद्रित

अक्टूबर
नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]
१९५५

अपनी रक्षा कीजिए
'पैल्युड्रीन'
खाने से मलेरिया नहीं होता
ICI

कलकत्ता ▾ बम्बई ▾ न्यु दिल्ली ▾ मद्रास ▾ कानपूर ▾ गौहती

मुलायम
और
सुन्दर बालों के लिए
स्वस्तिक
परफ्यूड केस्टर ऑइल
यह सर्वोत्तम है।
यह स्वस्तिक आइल मिल्स का उत्पादन है।
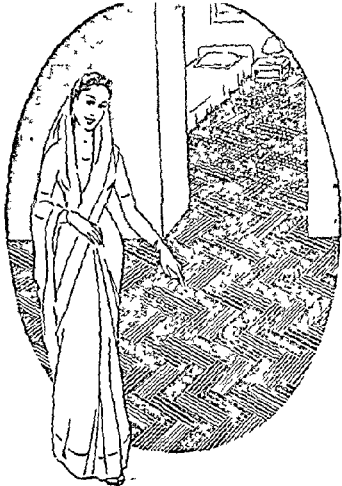
इन्डिया लिनोलियम से हमारे घर अधिक चमकदार बनाये जा सकते हैं।

अन्दर की सजावट के लिए अद्वितीय। अस्पतालों, स्कूलों होटलों, सिनेमा दफ्तरों, बसों, रेलगाड़ियों को अधिक सुविधाजनक चमकदार और आरामदेह बनाता है

**इन्डिया लिनोलियम लिमिटेड**

८, रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता, १
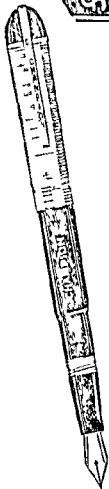
चेम्पियन
फाउन्टेन पेन्स
(रजिस्टर्ड)
चेम्पीअन एडमीरल
चेम्पीअन १०१
चेम्पीअन १०५
डीलक्स
चेम्पीअन १५१
एवरशार्प टाइप
१२१
चेम्पीअन
१०२-१०३
अेरोमेटीक
वेक्युम

ताजगी और जीवनी शक्तिके लिये . . .
GG
BRAND
चाकलेट, लौलीपोप, ताजे फलों के जाम, टमाटर-संजीवनी तथा रस, आम, पेथा, इत्यादि व्यवहार करें, ये स्वादिष्ट और पुष्टिकर होते है।
जी० जी० ब्राण्ड मुरब्बे, चाकलेट्स, शर्बत तथा मिठाइयाँ आदि का पैकिंग आधुनिक ढग से होता है। यही कारण है कि ये हर समय ताजी रहती है।
JAM
जी० जी० इराडस्ट्रीज — आगरा
अन्यान्य कारखाने—दिल्ली - हल्द्वानी - बंगलोर ४

स्वादिष्ट रसोई के लिए
कुसुम
पाक–प्रणाली
अभी ही एक प्रति मँगाइये !
कुसुम खाद्य–पदार्थों की पोषण-शक्ति बहुत

शुद्ध चीनी
शरीर की प्रथम आवश्यकता
दनिर धम के लिए हमारे शरीर को नवित की जरूरत होती ह। यह नवित चीनी से हम बडी सुगमता से मिल सकती ह। किंतु यदि चीनी शुद्ध न हो तो वह हमारे लिए हानिकर हो सकती ह। अवध शूगर मिल्स लि की चीनी सात प्रति नत शद्ध होती ह। यही कारण ह कि बरसो से लोग इसे ही पसन्द करते आ रहे ह।

मोहक
रुचिकर
तृप्ति-पूर्ण
Vanasda
आपके बनाए भोजन भी
इसी तरह के होंगे—
आप भी
वनस्दा
वनस्पति में पकाइए
बरार ऑयल इण्डस्ट्रीज—अकोला

अक्टूबर **नवनीत** १९५५

[हिन्दी डाइजेस्ट]

संचालक
श्रीगोपाल नेवटिया

सम्पादक
रतनलाल जोशी

प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

सहकारी
रमेश सिन्हा : ज्ञानचन्द्र

चित्र शिल्प गोपालकृष्ण भोबे


## लेख-सूची


| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | आत्म-विराट | महर्षि रमण | १ |
| २ | जाकी रही भावना जैसी | योगवासिष्ट से | २ |
| ३ | स्वर्ग सौरभ . | रवीन्द्रनाथ ठाकुर | ५ |
| ४ | मेरे पिताजी | मोनिका मान | ७ |
| ५ | अमृत पुत्र | मैथिलीशरण गुप्त | ८ |
| ६ | कथा-कहानियों की आदि जननी | भुवनेश्वर झा | ११ |
| ७ | मुझे मेरे गुरू मिले | महात्मा गाधी | १८ |
| ८ | यह मिट्टी का सब खेल है | जूलियन हक्सले | २१ |
| ९. | ब्रह्मपुत्र हमारी राष्ट्रधात्री | प्रासगिक सामग्री से | २५ |
| १० | जब प्राणदीप बुझ ही गया था | 'सोवियत् मेडिसिन से | २९ |
| ११ | अफीका प्रकाश म | चेस्टर बाउल्स | ३४ |
| १२. | हार्मोन्स - स्थायी शांति के उपासक | सेरा रीजमों | ४० |
| १३ | मानिये या न मानिय | नारायण भक्त | ४३ |
| १४ | ढोल खरीदा मुनादी करो | महावीर त्यागी | ४७ |
| १५ | मृत्युंजय | सत विनोबा | ५१ |
| १६ | पेड-पौधों की परिक्रमा | के रामनाथन् कुट्टैया | ५३ |
| १७ | न्याय-दड | रवीन्द्रनाथ ठाकुर | ५४ |
| १८ | बदीगृह में लखपति बननेवाले | एथानी बेल्स | ५६ |
| १९ | उल्कापात | रिचार्ड एफ विग्फ | ५९ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २०. | हमारा स्वभाव | आर्नल्ड हट्सनीकर | ६२ |
| २१ | खुदा आबाद रखे लखनऊ को | अमृतलाल नागर | ६५ |
| २२ | अपनी शक्ति का सदुपयोग | 'साइकोलॉजिस्ट' से | ७० |
| २३ | अबाध बच्चे : व्यापार की सामग्री | एलन मैसन | ७२ |
| २४ | बाझ नदियाँ जलवती बनेंगी | वी वी पाटनकर | ७५ |
| २५ | आत्म-निर्माण की प्रयोगशाला | सत्यराम, बी ए | ७८ |
| २६ | खून के आँसू | कर्नल जोगवर सिंह | ८१ |
| २७ | अमृत का संसार (कहानी) | लक्ष्मणराव सरदेसाई | ८३ |
| २८ | आरोवार चलता ही रहा (कहानी) | जकी अनवर | ८८ |
| २९ | भाग्यलिपि (कहानी) | राजगोपालाचारी | ९२ |
| ३० | सफर और शिकार (पुस्तक-संक्षेप) | डा० मुहम्मद अली शाह | ९३ |


बहनें

[ चित्रकार महेन्द्रनाथ सिंह ]

## विज्ञप्ति

देश-विदेश के मनीषी विचारकों एवं साहित्य-स्रष्टाओं की शब्द-साधना से विभूषित 'नवनीत' का दीपावली-विशेषांक भारतीय पत्रकारिता के इतिहास का एक स्वर्ण-पृष्ठ होगा। जीवन के प्रत्येक अंग प्रत्यंग का स्पर्श करनेवाली अत्युत्तम सामग्री के प्रतिनिधि इस संग्रहणीय विशेषांक से आप कहीं वंचित न हो जायें; अतः अपनी प्रति आज ही सुरक्षित करवा लीजिये। सामान्य अंकों की भाँति इस अंक का मूल्य भी सिर्फ १) ही है।




वार्षिक मूल्य : दस रुपये | नवनीत प्रकाशन लि० | प्रति अंक : एक रुपया
विशेष संस्करण : पन्द्रह रुपये | ३४१, तारदेव, बम्बई ७ | विशेष संस्करण : डेढ़ रुपया

संचालक:
श्रीगोपाल नेवटिया

सम्पादक.
रतनलाल जोशी

वर्ष ४ : : अंक १०

अक्टूबर, १९५५

# आत्म-विराट्

एक भेड़ को मार्ग में एक अनाथ सिंह-शावक मिल गया। उसका मातृ-वात्सल्य उमड़ा। अपने बच्चों के साथ उसे भी वह दूध पिलाने लगी। सिंह-शावक बड़ा हुआ; किन्तु सिंह के व्यक्तित्व में नहीं, भेड़ के व्यक्तित्व में। भेड़ों की तरह वह भी घास चरता और जंगली जानवरों को देखकर सभीत भागता। एक दिन सिंह ने भेड़ों पर छापा मारा। भेड़ों के साथ सिंह-शावक भी भागा। भागते-भागते जब वे एक जलाशय के पास पहुँचे, तो शावक ने पानी में अपना प्रतिबिम्ब देखा—हैं, मैं भी सिंह ? तत्काल एक वन-वनांतर-प्रकम्पिनी गर्जना उसके कंठ से फूट पड़ी।

आत्मज्ञान होने पर व्यक्ति भी अपने भीतर के विराट् को इसी प्रकार पा जाता है !

—महर्षि रमण

# जाकी रही भावना जैसी

योगवासिष्ठ की परम तत्त्वबोधिनी कथा शुक्रोपाख्यान का सरस संक्षिप्त हिन्दी-रूपांतर

*

एक समय की बात है कि, मंदराचल पर्वत पर भृगु ने उग्र तप करना प्रारम्भ किया। उनके समीप उनकी देख-भाल और सेवा करने के लिए उनके प्रिय और सर्वगुणसम्पन्न पुत्र शुक्र रहने लगे। भृगु ने निर्विकल्प समाधि लगायी, तो शुक्र को सेवा-कार्य से थोड़ा अवकाश मिला।

एक समय जब शुक्र शांत चित्त बैठे हुए प्रकृति की शोभा का निरीक्षण कर रहे थे, तो उनको आकाश-मार्ग से जाती हुई एक रूप-लावण्य-सम्पन्ना अप्सरा दिखायी पड़ी। उसे देखते ही शुक्र के मन में कामवासना उदय हो आयी और उस अप्सरा को प्राप्त करने की उन्हें परम वेगवती इच्छा हुई। उन्हें ध्यान आया कि, यह अप्सरा देवलोक की है। अतः उन्होंने सोचा कि, देवलोक जाना चाहिए। इस संकल्प के होते ही उनका सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर को छोड़ कर देवलोक पहुँचा और शुक्र ने अपने-आपको इन्द्रलोक में पाया। वहाँ पर चारों ओर ऐश्वर्य और भोग, सौंदर्य और आनंद का साम्राज्य दिखायी पड़ता था। इन्द्र ने शुक्र का बड़ा आदर-सत्कार किया और उन्हें स्वर्ग में रहकर वहाँ के आनंद का भोग करने के लिए निमंत्रण दिया।

पर शुक्र का मन तो उसी अप्सरा पर लगा था, जिसे देखकर वे कामग्रस्त हुए थे। अतः स्वर्ग में वे उसकी तलाश में फिरने लगे। आखिर एक दिन वह एक वाटिका में विहार करते हुए मिल गयी। आँखें चार होते ही दोनों में परस्पर स्नेह का उदय हो गया और आनंद से एक-दूसरे के साथ रहने लगे। इस प्रकार उस विश्वाची नाम की देवसुंदरी के साथ आनंद का उपभोग करते-करते शुक्र को देवलोक में बहुत समय बीत गया।

इस तरह भोग-लिप्सा के कारण जब उनके पूर्व-संचित पुण्यों का क्षय हुआ, तो वे स्वर्ग से गिर पड़े और वह अप्सरा भी पुण्य क्षीण होने के कारण गिरी। कुछ समय तक दोनों के सूक्ष्म शरीर चंद्रमा की किरणों पर रहे। फिर अनाज के पौधों में आकर रहे।

उस पौधे के धान्य को, जिसमें शुक्र का जीव था, दशारण्य देश के एक ब्राह्मण ने खाया और उसी धान्य को, जिसमें विश्वाची का जीव था, मालव देश के राजा ने खाया। अतः शुक्र का जन्म उस ब्राह्मण के घर हुआ और विश्वाची राजकन्या के रूप में जन्मी।

जब राजकन्या वयस्का हुई, तो मालव-

नरेश ने उसे स्वयंवर-द्वारा वर चुनने की आज्ञा दे दी। दैवयोग से वह ब्राह्मण पुत्र भी स्वयंवर में आ गया था। दोनों में पूर्व-स्नेह अदृष्ट रूप से उदय हो आया और उस कन्या ने निर्धन ब्राह्मण पुत्र को अपना पति बना लिया।

कुछ समय पश्चात मालव-नरेश अपने जामाता को राज्य सौंप कर वन में चले गये। इस प्रकार बहुत दिनों तक राज्य और राजतनया का उपभोग करने पर शुक्र के जीव ने उस देह का त्याग कर दिया।

तब वह वंग देश में एक धीवर हुआ। फिर सूर्यवंशी राजा हुआ। फिर बड़ा ही विद्वान गुरु हुआ। फिर विद्याधर हुआ। फिर मद्रास में राजा हुआ। फिर वासुदेव नाम का तपस्वी बालक हुआ। फिर विंध्याचल में एक किरात हुआ। फिर सौवीर और विराट देश में मंत्री हुआ। फिर त्रिगर्त देश में एक गधा हुआ। फिर किरात देश में बाँस का पौधा हुआ। फिर चीन के जंगल में हरिण हुआ। फिर ताड़ के वृक्ष में वास करने वाला सर्प हुआ। फिर एक वन में मुर्गा हुआ। इस प्रकार अपनी वासना और कर्म नियमानुसार शुक्र का जीव बहुत-से रूपों को धारण करता हुआ एक ब्राह्मण-कुमार होकर गंगा-तट पर तपस्या करने लगा। उसका शुक्र-शरीर विकृत होकर क्षीण होने लगा।

[त्रिवांकुर के पद्मनाभपुरम् मन्दिर में अंकित धनुर्धारी राम के एक भित्तिचित्र की रेखानुकृति]

इधर बहुत काल पीछे जब भृगु की समाधि टूटी तो उन्होंने शुक्र को अपने पास न पाया। तलाश करने पर जब उसके शरीर को मृत अवस्था में पाया तो उन्हें काल के ऊपर बहुत क्रोध आया और वे काल को शाप देने के लिए तैयार हो गये।

इतने ही में काल ने स्थूल रूप धारण कर के भृगु को प्रणाम किया और कहा—"महाराज! यह आप क्या कर रहे हैं? मैं काल तो भगवान का नियत किया हुआ हूँ और सदा अपने धर्म का पालन करता हूँ। मुझे आप शाप नहीं दे सकते। मैं सब प्राणियों की वासना और कर्मों के अनुसार उनके स्थूल शरीर का परिवर्तन किया करता हूँ। आपका पुत्र शुक्र अपनी वासनाओं और संकल्पों के अनुसार ही अगण्य योनियों में भ्रमण करता फिर रहा है।" काल ने सब जन्मों का वृत्तांत सुनाकर भृगु को बताया कि शुक्र का जीव इस समय ब्राह्मण-बालक बना हुआ

गंगा-तट पर तप कर रहा है। विश्वास न हो, तो चलकर आप स्वयं देख लें।

भृगु मुनि बालक को लेकर उसके समीप गये। ब्राह्मण-बालक ने दोनों को देखा, पर पहचाना नहीं। भृगु ने उसे ध्यान लगा कर देखने को कहा। तब उसे अपने पूर्व-जन्मों का स्मरण हो आया। पिता के आज्ञानुसार उसने फिर पुत्र होने की तीव्र वासना की और उसके फलस्वरूप ब्राह्मण-बालक के शरीर को छोड़कर उसकी पुर्यष्टक (सूक्ष्म देह) ने पुत्र-शरीर में प्रवेश करके उसे जीवित किया।

वसिष्ठजी ने राम से कहा—"वत्स! पुत्र ने जो रूप धारण किया, अपनी वासना के अनुसार किया। हर एक जीव की हर वासना उसे बाँधनेवाली डोरी है, जो कुछ काल के लिए अवश्य ही उसे उस विषय मे बाँधेगी, जिसकी उसे कामना, होती है। कठोपनिषद् में इसी कारण से कहा गया है—

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिश्रिता।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥

—जब इस जीव के हृदय में वास करनेवाली वासनाओं का परित्याग हो जाता है, तभी मर्त्य (मरनेवाला) जीव अ-मृत होकर ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है।"

★

## मैं नहीं चाहता था कि......

महान् वैज्ञानिक लुई पास्चर ने जैसे ही निश्चित योजना के अनुसार वस्तुओं को गरम करके 'प्रासेस' करने की विधि ('पास्चोराइजेशन') का आविष्कार किया, वैसे ही भागे हुए उसे 'पेटेंट' कराने के लिए गये। और, ज्यों ही उनके नाम से उक्त आविष्कार 'पेटेंट' होने की सूचना उन्हें मिल गयी, त्यों ही उन्होंने अपनी विधि को प्रकाश में लाते हुए घोषणा कर दी—"जो भी इस विधि का इस्तेमाल करना चाहे, वह इसे बे-रोक-टोक इस्तेमाल कर सकता है।"

उनके मित्रों ने आश्चर्य-स्तम्भित हो पूछा—"यदि आप इस विधि के इस्तेमाल पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाना चाहते थे, तो आपने इसे अपने नाम पर 'पेटेंट' क्यों कराया?"

पास्चर गम्भीर भाव से मुस्कराये—"मैं नहीं चाहता था कि, कोई दूसरा व्यक्ति अपनी जेब भरने के लिए इस प्रकार के आविष्कार का 'पेटेंट' अपने नाम पर करवा ले....!"

—"द' ग्रेट मेन् आफ लाइफ टैट" से

★

# स्वर्ग-सौरभ हमें यहीं खिलाना है

स्वर्ग क्या है ? कहाँ है ? रवीन्द्रनाथ की कवि चेतना के सम्मुख एक दिन ये प्रश्न आकर अड़ गये। और, अन्तःकरण के द्वार पर आयी जिज्ञासा का कवि ने भी अनादर नहीं किया। हृदय का मधु देकर उन्होंने उनको तृप्ति दी। इस लेख में इसी 'मधुदान' की व्याख्या है।

★

एक समय मनुष्य के मन में स्वर्ग-प्राप्त करने की कल्पना आयी। उसी की चिंता में वह न जाने कितने तीर्थों की खाक छानता फिरा, ब्राह्मणों की चरण-रज समेटता फिरा और न जाने कितने व्रत-अनुष्ठान उसने कर डाले। केवल यही एक विचार सदा उसके मन में बना रहता कि, आखिर अपने किस कर्म के प्रताप से वह स्वर्गलोक का अधिकारी हो सकता है ? लेकिन बना-बनाया स्वर्ग तो कहीं है नहीं—उन्होंने स्वर्ग गढ़ कर कहीं भी तो नहीं रख छोड़ा—बल्कि मनुष्य से उन्होंने यही कहा कि, स्वर्ग तो तुम्हें खुद ही बनाना पड़ेगा। इसी संसार को स्वर्ग बना डालना होगा।

धर्मराज युधिष्ठिर की स्वर्ग-यात्रा [चित्र नंदलाल बसु के एक चित्र की सरल रेखानुकृति]

किन्तु यह स्वर्ग-सृष्टि क्या अकेले हो सकती है ? नहीं। वे कहते हैं, हम और तुम दोनों मिल कर ही स्वर्ग गढ़ेंगे। बाकी सारी सृष्टि मैंने अकेले गढ़ी है, लेकिन तुम्हारे ही कारण मेरी स्वर्ग-सृष्टि आज भी अधूरी पड़ी रह गयी है।

जब तक उनकी सर्वाधिक दुर्बल संतान अपने समस्त उपकरणों को हाथ में लेकर सामने उपस्थित नहीं होती, तब तक स्वर्ग की रचना अधूरी ही पड़ी रहेगी। इसीलिए वे युग-युगांतव्यापिनी प्रतीक्षा किये हुए हैं। इस पृथ्वी के लिए क्या वे अनंत काल से प्रतीक्षा नहीं कर रहे ? आज हम इस पृथ्वी को कितनी सुंदर, कैसी शस्य-श्यामला देख रहे हैं, किन्तु कितने वाष्प-दहन के भीतर से गुजरकर ही क्रमशः शीतल होते होते, तरल होते-होते, पृथ्वी इतनी दृढ़ हो सकी कि, आज उसकी छाती पर अद्भुत

श्यामलता दिखायी दे रही है।

पृथ्वी युग-युग से तिल-तिल करके रचित होती आयी, लेकिन स्वर्ग की रचना आज भी बाकी पड़ी है। जिन दिनों धरती वाष्प के रूप में थी, उन दिनों तो उसमें ऐसा सौंदर्य कभी प्रस्फुटित नहीं हुआ। किन्तु आज नीलाकाश के तले उसका कैसा अपरूप सौंदर्य बिखरा पड़ा है। इसी प्रकार स्वर्गलोक भी वाष्प के आकार में हमारे हृदय में विराजमान है, लेकिन उसके कणों ने मिलकर ठोस होना—साकार होना—आज भी शुरू नहीं किया। अपने इस रचना-कार्य के लिए वे तो हमारे साथ आ विराजे, लेकिन हम हैं कि, आज भी खाने-पहनने-बटोरने की चिंता में ही सब-कुछ भूल कर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे हैं। तथापि मरने से पहले इतना कहने-योग्य तो हमें बनना ही होगा कि, इसी पृथ्वी पर, इसी जीवन में, स्वर्ग का तनिक आभास मैं छोड़े जाता हूँ।

मेरे अपराधों के स्तूपों की तो कमी नहीं है और समय की बर्बादी भी कम नहीं की है; लेकिन तब भी बीच-बीच में क्षण-भर के लिए सौंदर्य भी खिल ही उठा था। दुनिया को क्या एकबारगी वंचित करके जाऊँगा? नहीं! यह जरूर कह सकूँगा कि, इसके अभाव को तनिक-सा तो पूरा किया ही है, अज्ञान को तनिक-सा तो दूर कर ही पाया हूँ।

आज के ये दिन कभी बीत जायेंगे। यह प्रकाश किसी दिन पलकों पर विलीन हो जायेगा। संसार अपने द्वार बंद कर लेगा और मैं बाहर ही रहूँगा। तो क्या इससे पूर्व इतना भी नहीं कह पाऊँगा कि, मत्सामान्य कुछ थोड़ा-बहुत तो संसार को दे ही पाया हूँ?

शिल्पी क्या किया करता है? वह क्यों शिल्प की सृष्टि करता है? विधाता कह गये हैं—समूचे आकाश में मैंने उत्सव के प्रदीप जला कर सजा रखे हैं, क्या तुम चौक पूरने नहीं आओगे? मेरी रोशन-चौकी तो बज ही रही है, तुम क्या अपना तानपूरा या वह नहीं, तो एकतारा ही छेड़ोगे नहीं? शिल्पी ने कहा—हाँ, छेड़ूँगा क्यों नहीं? गायक के गान के साथ जहाँ विश्व के प्राण मिलते हैं, वहीं यथार्थ गान की सृष्टि होती है। जो आदमी मानव-समाज के बीच इसी आशा से खड़ा रहता है कि, मनुष्य कब उसे जयमाला पहनायेंगे, वह आदमी तो कुछ भी न ठहरा। किन्तु शिल्पी ने केवल रेखा के सौंदर्य को ही स्वीकार कर लिया, कवि ने केवल सुर से—रस से—ही संतोष कर लिया। ये लोग कोई भी पूरा-पूरा न ले सके। पूरा-पूरा तो पाया जा सकता है, जीवन को पूरा-पूरा देकर ही। उन्हीं की वस्तु उन्हीं के साथ मिलकर हमें उपभोग करनी होगी!

हम लोग बर्फ की मूर्तियाँ बनाते हैं और जब वे पिघलने लगती हैं, तो बैठकर रोने लगते हैं।

—नवियर आडेन

*

# मेरे पिताजी

"इस पीढी के साहित्यकारों में मान की तरह सुललित गद्य लिखनेवाला मुझे और कोई नहीं दीख पडता !" सन् १९२५ में सुप्रसिद्ध आलोचक जान मेके द्वारा प्रकट किये गये ये उद्‌गार मान के अंतिम क्षणों तक सत्य प्रमाणित हुए। अभी हाल ही—१२ अगस्त को—स्वर्ग के देवदूतों ने श्री थामस मान को हम धरतीवासियों के बीच से अपने पास बुला लिया है। इस युगमान्य साहित्य स्रष्टा की पुनीत स्मृति को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए 'नवनीत' उनकी पुत्री मोनिका मान द्वारा लिखित एक मर्मस्पर्शी संस्मरण यहां प्रस्तुत कर रहा है।

गत ६ जून को मेरे पिताजी की ८०-वीं वर्षगांठ थी। उनकी एक एक स्मृति मेरे मानस में आज भी अंकित है। जब कभी मैं शरारत करती, तो वे शांत भाव से एकटक मेरी ओर देखते। सीधी अंतस्तल *को स्पर्श करनेवाली उनकी पैनी निगाहें*—मैं स्वयं शर्म से सिर झुका लेती।

उनकी इन आंखों की कल्पना आज भी मुझ पर एक विशिष्ट प्रभाव रखती है। मेरे पिताजी का व्यक्तित्व कुछ ऐसा ही प्रभावशाली था। यहां तक कि, उनके व्यवहार में आनेवाली सभी चीजों में उनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट प्रतिबिम्बित हो उठी थी – उनकी अनोखी कार्यक्षमता, स्वच्छता, विलक्षण दृढता और उनके अंतर में निर्बाध रूप से प्रवाहित होनेवाला स्नेह स्रोत–इन सबकी झलक निहित थी। आभूषणों व पात्रों से भरी हुई उनकी दराज भी मानो, सुनहरी कमानीदार चश्मा पहने उनके चौडे व स्वप्निल चेहरे का प्रतिरूप थी। उनकी पीले रंग की कुर्सी, उनके सिगार से निकलती हुई धूम्र-पंक्ति, उनकी संगीतमय तीव्र सीटी की आवाज, उनकी चाय का प्याला और पूर्ण आराम के साथ उसकी चुस्की लेने का उनका ढंग—इन सबमें मुझे अपने पिताजी के अनोखे *व्यक्तित्व की झलक स्पष्ट दीख पडती थी।*

उनकी हर वस्तु का उनसे अलग रहकर मानो कोई अस्तित्व ही नहीं था। उनका छाता, उनकी छडी, वाटरमैन कलम, जिजर-केक–सब जैसे उनकी बाट जोहते रहते थे। लीना जब उनके जूतों पर पालिश करती रहती — साधारण-से जूते–तो मुझे ऐसा प्रतीत होता, मानो वे जूते भी सजीव हो उठे हों। मैं इस कल्पना में खो जाती कि, किस प्रकार वे जूते सडकों पर एक तीव्र गति और बंधी हुई लय में बढते चले जा रहे हैं!

उनके कमरे में टंगी काले व सुनहरे रंग की पेंडुलमवाली घडी भी जैसे उस क्षण की प्रतीक्षा ही करती रहती, जब पिताजी की आत्मनिर्भर व स्नेहिल बांहें

उसे अपना स्वर्ग दे। जब कभी पिताजी अस्वस्थ हो जाते, तो ऐसा भास होता, मानो उस घड़ी घर भी उदासी का आवरण छा गया हो। उस क्षण पिताजी भी कम उदास नजर नहीं आते, क्योंकि उनके नियम में इससे अ-व्यवस्था आ जाती थी—वह प्रति दिन की तरह काम नहीं कर पाते थे। बढ़ी हुई दाढ़ीवाले उनके दुर्बल व कुछ काँपते-से चेहरे पर, एक धूमिल-सा रंग घिर आता था।

मेरे पिताजी सदा काम करते रहना चाहते थे। काम उनका एक ऐसा अभिन्न मित्र था, जिससे पल-भर का भी बिछोह उन्हें सह्य नहीं था। जब से मैंने होश सँभाला, एक दिन भी ऐसा नहीं बीता था, जब मेरे पिताजी अपने इस उपास्य मित्र को लेकर व्यस्त न रहे हों।

प्रत्येक इच्छा में आनंद की भावना निहित रहती है। बिना आनन्द-प्राप्ति की कल्पना किये, आप किसी प्रकार की इच्छा नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ, जीवित रहने की इच्छा को ले लीजिये। स्पष्ट करने के लिए इसे यों कहा जा सकता है कि, आप जीवन से प्यार करते हैं, तभी जीवित रहने की इच्छा भी करते हैं। इसी प्रकार कार्य करते रहने की इच्छा का अर्थ है, कार्य से प्यार।

### अमृत पुत्र

अमर पुत्र यशस्वी तुम
पाकर तुम्हें पुण्यात्म —
कर रहे वन्य व मृतजन
नव्य जीवन-दान!
हम तुम्हारे स्वार्थ
तुम आये हमारे अर्थ!
मर्त्य-पुत्र तुम, आज के
शिव के स्वत्व समर्थ!
व्याप्त वसुधा में तुम्हारा
मोह-मुक्त ममत्व,
क्रांति-दर्शी, सिद्ध तुम्हारा
श्रेष्ठ योग महत्त्व!
धन्य निर्गुण-रूप में
तुम यहाँ रहे हो दान!
श्री निराला मन,
मरके श्रेय एक समान!

—मैथिलीशरण गुप्त

यह इच्छा मेरे पिताजी के जीवन में प्रवेश पा गयी थी और अतल उनकी आदत बन गयी थी। अन्तर से वे बड़े ही सरल और विनोदी थे। वह कहीं भी रह लेते थे और किसी भी वस्तु के प्रति उनके हृदय में प्यार उमड़ता रहता था। जब वे लिखना आरम्भ करते, तो जीवन की गहरी अनुभूतियों में मानो खो जाते थे।

जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण, एक गरुड़ पक्षी के प्रति किसी शिकारी के दृष्टिकोण के समान ही था। वे इस जीवन-रूपी गरुड़ पक्षी का शिकार कर उसके रक्त में अपनी कलम की नोक डुबो कर लिखते थे, किन्तु ऐसा वे इसके प्रति अपने असीम प्यार के वशीभूत होकर

ही करते थे। यद्यपि इस खूबसूरत गरुड की मृत्यु अवश्यम्भावी थी, किन्तु इसका रक्त पिताजी की पुस्तकों के पृष्ठों पर अमिट हो जाता। और, यही कारण है कि, मेरे पिताजी की रचनाओं में उनके जीवन की सभी अनुभूतियाँ एवं दुर्बलता में पिरोयी हुई मिलती हैं।

जब कभी मैं अपने पिताजी के साथ बैठती थी, तो मुझे सर्दैव उनकी गहरी आतरिक उत्सुकता प्रकाशित देखने को मिलती थी–उनके जिज्ञासु स्वभाव की एक झलक। निश्चय ही, यह विलक्षण था। वे बहुधा चुप्पी साध मेरी बातें सुनना ही पसंद करते थे, किन्तु उनकी यह चुप्पी वस्तुतः स्पष्ट कर देती थी कि, जो-कुछ वे सुन रहे हैं, उसे पहले से ही जानते हैं। वे उस भोले व अबोध बच्चे की तरह बन जाते थे जो पहली बार किसी वस्तु को देख रहा हो और उसकी जानकारी प्राप्त कर रहा हो।

एक बार हम लोगों ने 'हैमलेट' के उस द्वंद्व युद्ध का अभिनय देखा था, जिसमें हैमलेट की बाँह में घाव लगने से खून बहने लगता है। खेल की समाप्ति पर मेरे पिताजी ने हैमलेट का अभिनय करनेवाले अभिनेता से पूछा–"तुम्हारी बाँह से वह खून ही बह रहा था न?" अभिनेता आश्चर्यचकित हो मुस्कराया–"वह तो 'टूथपेस्ट' था।" मेरी समझ से मेरे पिताजी ने उस क्षण एक भ्रम-जाल से मुक्ति पाने के सच्चे आनंद का अनुभव प्राप्त किया। यद्यपि अभिनय-कला के इन 'टेक्निकल स्टंटों' से वे भलीभाँति परिचित थे फिर भी उन्होंने उसे पूरे विश्वास के साथ वास्तविक रूप में ग्रहण किया था और इसी से अभिनेता के जवाब से उन्होंने स्वयं को छले जाने का अनुभव किया। किन्तु अभिनेता के सत्य स्वीकार कर लेने से उन्हें हार्दिक संतोष की भी अनुभूति हुई थी।

नोबेल पुरस्कार-सम्मानित थामस मान
[चित्र की पन ब्लोक]

मेरे पिताजी सिर्फ कीमियागिरी के एक विशेषज्ञ ही नहीं थे, बल्कि उन्होंने जीवन को सही अर्थों में समझा भी था। उनके समान जीवन को प्यार करनेवाले बहुत कम ही व्यक्ति होंगे। दूर देहातों की ओर प्रकृति की गोद में घूमना, किसी शिशु की उन्मुक्त हँसी, किसी वृद्ध महिला का आक्रोश या किसी बच्चे का मधुर संगीत सुनना, विकसित-सुगंधित पुष्पों को मुग्ध भाव से निहारना उन्हें बहुत ही पसंद था। किन्तु वे इसके कण-कण में बसी एक अव्यक्त सी उदासी से भी परिचित थे।

मेरे पिताजी जब भी लिखने बैठते थे, तो संयोग कुछ ऐसा रहा कि, मैं कभी उनके सामने न रह सकी। फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत होता है, मानो अपने लेखन-कार्य के लिए वे किसी जादुई कागज का प्रयोग करते थे, जो उनके कुछ गलत लिखते ही, उसका बोध करा देता था, क्योंकि जिस कागज पर वे लिखते थे, उसके प्रति उनके दिल में अपार श्रद्धा थी। उनकी लिखावट बड़ी ही स्वच्छ और सुंदर हुआ करती थी और वे जो कुछ भी लिखते थे, उसमें कभी संशोधन करने की जरूरत उन्होंने नहीं समझी। प्रथम प्रयास में ही वे अपने भावों को सही रूप में व्यक्त कर लेते थे।

उन्होंने लेखन-कार्य के लिए कभी टाइपराइटर की सहायता नहीं ली—उन्होंने कभी कोई मोटर स्वयं नहीं चलायी—किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि, मेरे पिताजी प्राचीन परिपाटी के थे। वे तो इतने साहसी और आधुनिक विचारों के थे कि, एक बार मंगल ग्रह की यात्रा पर जाने में भी न हिचकते।

मेरे पिताजी को कभी किसी युद्ध में जाने का अवसर भी नहीं मिला, किन्तु उनका उत्साह, उनकी स्फूर्ति किसी योद्धा से कम नहीं थी। निश्चय ही, कला में सौंदर्य की स्थापना के लिए उन्हें अपने ही अंतर्द्वंद्वों से युद्ध करना पड़ा होगा। एक बार किसी सज्जन ने इस बात के लिए उनकी बड़ी प्रशंसा की थी कि, किसी भी काम को वे बड़ी धीरता और शांति से सम्पन्न करते हैं। पिताजी का जवाब मुझे आज भी याद है —"धैर्य ही शौर्य है।"

समय मेरे पिताजी पर कभी अपना प्रतिबंध न लगा सका— न ही उन पर अपना प्रभाव डाल सका। वृद्धावस्था में भी किसी युवक के समान ही शरीर से वे पूर्ण स्वस्थ थे —उनका मस्तिष्क सदा की भाँति सुलझा हुआ और उनकी आवाज बिल्कुल स्पष्ट और स्थिर थी। सम्भवतः समय बीतने के साथ-साथ जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण में उनकी आस्था दृढ़तर होती चली गयी थी।

किन्तु उनके अंतिम दिनों में ही उनके जीवन और उनके कार्यों का पूर्णरूपेण गठबंधन हो पाया था और वे एक हो सके थे। सम्भव है कि, इसके पूर्व उनके हर प्रयास के बावजूद, उनके जीवन और कार्य में एक-दूसरे के प्रति एक प्रकार की ईर्ष्या और दुराव रहा हो। परन्तु एक लम्बे अर्से तक दोनों का अस्तित्व साथ-साथ कायम रह जाने से हो अंततः वे दोनों एक हो गये थे। उन दोनों की समझ में आ गया था कि, वे एक-दूसरे के लिए ही निर्मित किये गये हैं —जीवन के लिए कार्य और कार्य के लिए जीवन! और, इस अनुभूति से ही अंतिम दिनों में पिताजी की आँखों में आंतरिक संतोष की झलक थी।

*

योग्य शिक्षक महँगे अवश्य होते हैं, लेकिन अयोग्य शिक्षक तो उनसे भी अधिक महँगे पड़ते हैं।
—मेड्रिन वाकर

*

# बृहत्कथा

## कथा कहानियों की आदि जननी

'बृहत्कथा' संसार के कथा-साहित्य का आदि-स्रोत है। 'कादम्बरी,' 'बेताल पंचविंशतिका,' 'पंचतंत्र और हितोपदेश' आदि विश्व विख्यात ग्रंथों का ही नहीं, वरन् भवभूति के 'मालती-माधव,' विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' एवं श्रीहर्ष के 'नागानंद' का उद्गम स्रोत भी 'बृहत्कथा है। 'बृहत्कथा' के एक अंग—उदयन-कथा—की व्यापकता का उल्लेख तो स्वयं कालिदास ने अपने 'मेघदूत' काव्य में किया है। महाकवि भास के 'प्रतिज्ञायौगंधरायण,' 'स्वप्नवासवदत्ता' एवं श्रीहर्ष की 'प्रियदर्शिका,' 'रत्नावली' आदि रूपकों के आधार सूत्र भी 'बृहत्कथा' के ही अंग हैं। यही कारण है कि, संस्कृत साहित्य में 'बृहत्कथा' के प्रणेता गुणाढ्य की प्रतिष्ठा वाल्मीकि एवं व्यास के ही समकक्ष है। 'आर्याशप्तशती' में गोवर्धनाचार्य ने गुणाढ्य को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा है—

"रामायण, महाभारत और 'बृहत्कथा' के प्रणेताओं को मैं नमस्कार करता हूं।"

इस महामहिम 'बृहत्कथा' का प्रणयन क्यों और कैसे हुआ, इसका रोचक वृत्तांत सोमदेव भट्ट ने 'कथासरित्सागर' में किया है। 'कथासरित्सागर' 'बृहत्कथा' के ही आधार पर प्रणीत है। श्री भुवनेश्वर झा ने 'कथासरित्सागर' के इसी वृत्तांत को संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत किया है।

एक दिन जगत्पिता महेश्वर जगद-म्बिका के साथ हिमालय के कैलास नामक शिखर पर बैठे हुए थे। एकाएक अम्बिका ने कहा—

"हे नाथ! आप हमें एक ऐसी अपूर्व कथा सुनाइये, जो अश्रुतपूर्व हो और जो किसी को अवगत नहीं हो।"

शंकरजी ने कहा —"भूत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञान रखनेवाली तुम्हारे लिए कौन-सी बात छिपी हुई है?"

पार्वती फिर भी अपने हठ पर अड़ी रहीं और एक नवीन कथा कहने का आग्रह करती रहीं। अंत में देवाधिदेव ने कहा—

"प्रिये! अच्छी बात है। आज मैं तुम्हें एक अत्यंत रोचक कथा सुनाता हूँ। यह देवताओं की कथा नहीं होगी। कारण कि, देवताओं की कथा ऐकांतिक सुखमय हुआ करती है। मानवों की कथा तो दुःख-मूलक है ही। अतः इसे क्या कहूं! आज मैं तुमसे विद्याधरों की कथा कहूंगा। इसमें

पार्थिव और अपार्थिव दोनों प्रकार की घटनाओं का मिश्रण होगा।"

परन्तु कथा प्रारम्भ करने के पहले भूतनाथ ने नंदी को द्वार पर बिठला दिया और यह आदेश दे दिया कि, जब तक कथा समाप्त नहीं हो, तब तक मेरे पास कोई भी नहीं आ सकेगा।

इसी बीच, पुष्पदत नामक एक 'गण' वहाँ पहुँचे। नंदी ने उन्हें द्वार पर ही रोक दिया। पुष्पदत सोचने लगे—शंकरजी के पास मेरा जाना तो कभी निषिद्ध नहीं था। आज क्यों? अलक्ष्य रूप में वे वहाँ जा पहुँचे और शंकरजी के मुख से कही गयी सारी कथा को सुन लिया।

कथा की रोचकता और मनोहारिता ऐसी थी कि, पुष्पदत को इसे दूसरे को सुनाने की इच्छा जाग्रत हुई। भला अर्द्धांगिनी के सिवा और दूसरा उपयुक्त पात्र वहाँ मिलता? 'अथ' से 'इति' तक उसी रात उन्होंने अपनी पत्नी को शंकरजी के मुख से सुनी हुई कथा को सुना दिया।

पुष्पदत की स्त्री पार्वती की सेविका थी। उसे भी इस कथा को दूसरे से कहने का कौतूहल हुआ। वह दूसरे ही दिन जगदम्बिका के पास पहुँची और पतिदेव से जिस रूप में कथा को सुना था, उसी रूप में सांगोपांग पार्वतीजी को सुना दिया। पार्वती को बड़ा क्षोभ हुआ। वे आवेश में आकर शंकरजी के पास पहुँचीं। कहने लगीं—"हे देवाधिदेव! क्या आप मुझसे भी असत्य भाषण करते हैं? आपने तो मुझसे यह कहा था कि, जो कथा मैंने तुमको सुनायी है, वह बिलकुल नयी है। परन्तु बात तो ऐसी नहीं है। दूर से कहाँ जाऊँ? मेरी प्रतिहारी जया तक को इस कथा की जानकारी है।"

शंकरजी ध्यानस्थ हो सोचने लगे। अलक्ष्य भाव से पुष्पदत ने कथा के समय उपस्थित होकर जिस तरह इसे सुना था, उसका वृत्तांत पार्वती को बतलाया। पार्वतीजी पुष्पदत के इस अशिष्टाचरण पर बहुत अप्रसन्न हुई। उनकी रोषाग्नि में मानो आहुति डाल दी गयी। पुष्पदत बुलाये गये। वे उन पर बरस पड़ीं। और, अंत में यह वह कर शाप दे दिया—"पुष्पदत! तेरा अपराध बहुत बड़ा है। जा, तुझे मनुष्य-योनि में जन्म लेना पड़ेगा और वहाँ मानव-जीवन की सारी चिंताओं को सहना पड़ेगा।"

पुष्पदत का भाई माल्यवान भी वहीं उपस्थित था। अपने भाई के प्रति दिये गये इस शाप को सुन कर वह बड़ा खिन्न हुआ। जगन्माता से भाई के अपराधों को क्षमा करने के लिए विनय करने लगा। पार्वतीजी का क्षोभ बहुत अधिक बढ़ा हुआ था। इस हस्तक्षेप को भी वे नहीं सह सकीं। माल्यवान को भी उसी तरह शापित होना पड़ा। अब जया से नहीं रहा गया। वह विरक्तनी हुई माता पार्वती के चरणों पर गिर पड़ी और क्षमा की याचना करने लगी। उसकी दयनीय अवस्था देख पार्वती का क्षोभ शांत हो गया। वे आदवासन के स्वर में कहने लगीं—

"जये ! कुबेर के शाप से अभिशप्त सुप्रतीक नामक यक्ष विंध्यारण्य म पिशाच-योनि में रहता हूँ। पिशाच-योनि का उसका नाम काणभूति है। काणभूति से साक्षात्कार होने पर पुष्पदत को पूर्व-जन्म की सारी बाते स्मरण हो जायेगी । जब पुष्पदत काणभूति को शकरजी के मुख से सुनी हुई कथा को कहेगा, तो उसकी मानव लीला समाप्त हो जायेगी। और, जब काणभूति पुष्पदत से सुनी हुई इस कथा को माल्यवान से कहेगा, तो उसे पिशाच-योनि से निष्कृति मिल जायेगी। और, माल्यवान जब इस कथा का प्रचार करेगा तब उसे पुन दिव्य शरीर की प्राप्त होगी।'

कालातर मे पुष्पदत ने कौशाम्बी नगरी म सोमदत्त नामक सद्-ब्राह्मण के घर जन्म लिया। वररुचि के नाम से वे प्रसिद्ध हुए। आगे चल कर उनका नाम कात्यायन पडा। वे श्रुतिधर थ। जिस विषय को एक बार सुनते, वही उनके स्मृति-पट पर सदा के लिए अकित हो जाता। कहते है कि, वीणापाणि ने उनके समक्ष प्रत्यक्ष हो, उन्हे आशीर्वाद दिया था। उन्ही के कृपा-कटाक्ष का फल था कि, नदवश के अतिम सम्राट् योगानद का मन्त्रित्व भी उन्होने किया।

विष पान

[ चित्र आचार्य नदलाल बसु के एक चित्र का सरल रेखांकन ]

नदवश का उच्छेद होने पर उन्हे विराग हो गया और विंध्यारण्य मे प्रविष्ट हो गये। काणभूति वही पिशाचो की मडली म रहा करते थे। काणभूति से साक्षात्कार होने के साथ ही वररुचि को पूर्व-जन्म की सब बाते स्मरण हो आयी। वररुचि न सात लाख श्लोको म सात विद्याधरो की कथाओ को काणभूति को सुना दिया। साथ-ही-साथ यह भी कहा कि, आप कुछ दिनो तक यही रहकर माल्यवान की प्रतीक्षा करे। आप हमसे सुनी हुई यह समस्त कथा जब माल्यवान को कहेगे, तो पिशाच-योनि से आपको मुक्ति मिल जायेगी।
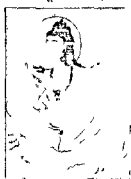
यह कह कर वररुचि बद्रीकाश्रम की ओर चले पडे। जगदम्बिका का ध्यान करते हुए उन्होने अपनी मानव-लीला का सवरण किया और पुन दिव्य शरीर उन्हे प्राप्त हो गया।

इधर, माल्यवान प्रतिष्ठान देशातर्गत सुप्रतीक नगर में गुणाढ्य के नाम से पृथ्वी-मडल पर अवतीर्ण हुए। सोमदत्त शर्मा नामक सद्ब्राह्मण की कुमारी कन्या श्रुतार्था के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई। गुणाढ्य की बाल्यावस्था म ही श्रुतार्था परलोक सिधार गयी। गुणाढ्य निस्सहाय हो गये। वे विद्योपार्जन के लिए दक्षिण के

देशों की ओर चले गये। पूर्व-जन्म के संस्कारों ने साथ दिया। थोड़े ही दिनों में सब विद्याओं में निष्णात हो गये और दक्षिण के देशों में बड़ी ख्याति प्राप्त की। बहुत दिनों तक वहाँ रह कर अपने दो पट्ट शिष्यों—गुणिदेव और नन्दिदेव के साथ सुप्रतीष्ठ नगर में लौट आये।

इस बीच में सातवाहन सार्वभौम सम्राट् की पदवी प्राप्त कर चुके थे। शर्ववर्मा उनके प्रधानामात्य के पद पर सुशोभित थे। गुणाढ्य का यश सौरभ सातवाहन के यहाँ तक पहुँच चुका था। वहाँ इनका बड़ा आदर-सत्कार हुआ और गुणाढ्य भी मंत्रिमंडल में ले लिये गये।

यों सातवाहन बड़े तेजस्वी और पराक्रमी थे, परन्तु उनका विद्या-विषयक ज्ञान नहीं के बराबर था। विद्वत्समाज में वे अल्पज्ञ ही समझे जाते थे। महाराज की एक महारानी, जो विष्णुशक्ति की कन्या थी, बड़ी विदुषी थी। उसे अपने विद्या-वैभव का बड़ा अभिमान था। इस बात को लेकर महाराज और भी खिन्न रहा करते थे।

एक दिन वसन्त का सुहावना समय था। प्रकृति अपनी लोकोत्तर शोभाओं के साथ राजोद्यान की रमणीयता को बढ़ा रही थी। महाराज अपने महिषी-मंडल के साथ प्रमदोद्यान में विहार कर रहे थे। उद्यान में एक सुंदर सरोवर था, जिसके एक पार्श्व में जगमगाती महामाया का मंडप था। सरोवर स्फटिकोपम जल से भरा हुआ था। सहसा महाराज को जल-विहार की इच्छा हुई और वे प्रमदाओं के साथ जल में प्रविष्ट हो गये। जलक्रीड़ाएँ होने लगीं। एक-दूसरे के ऊपर जल के छींटे दिये जाने लगे। विष्णुशक्ति-दुहिता जल की इस मार को नहीं सह सकी। दोनों हाथों से अपनी आँखों को मूँद लिया और खिन्न स्वर में कहने लगी —

"मोदकैर्देव ! परिताडय।"

'मोदकैः' इस पद ने महाराज को भ्रम में डाल दिया। उन्हें लड्डुओं का बोध हुआ। समीपस्थ दासियों को लड्डुओं को लाने का आदेश दिया गया। विदुषी रानी महाराज की इस अल्पज्ञता पर बहुत दुःखित हुई और हँस पड़ी। रानी ने कहा—"देव ! जलक्रीड़ा के समय लड्डुओं का क्या प्रयोजन है ? मैंने तो यह कहा था —

"मा उदकैः देव ! परिताडय।

अर्थात्, जलों से मुझे न मारें।"

सभी रानियाँ खिलखिला कर हँस पड़ीं।

महाराज सातवाहन को यह हँसी बहुत लगी। इस अपमान को वे नहीं सह सके। तत्काल क्रीड़ा-सरोवर से निकल पड़े। मुखमुद्रा गम्भीर हो गयी। सीधे अंतःपुर में जाकर पलंग पर लेट गये। लोगों से बोलना बंद कर दिया। भोजन तक का परित्याग कर दिया, मानो आमरण अनशन का व्रत ले लिया हो। उनके हृदय में भयंकर अन्तर्द्वंद्व मचा हुआ था। सोचा कि, इस शरीर को उसी दशा में धारण करूँगा, जब विद्वन्मंडली में बैठने की योग्यता हो, अन्यथा इस शरीर का पात

ही समुचित है।

राजमहल म हाहाकार मच गया। शव वर्मा के पास यह वृत्त पहुचा। जब उन्हे यह समाचार मिला कि विदुषी महारानी के परिहास न महाराज को पीडा पहुँचायी हैं तो वे उसके प्रतिकार के उपायो के विषय म सोचन लग।

*शव वर्मा गुणाढच को साथ लेकर अत* पुर म पहुँचे। डरते डरते महाराज के पलग के पास तक गय। बहुत देर तक मौन रहन के बाद कहन लग —

देव! एक दिन श्रीमान न मुझसे पूछा था– क्या हम पडित बन सकते है? इसी प्रश्न को अपन ध्यान का विषय बना कर मन स्वप्न साधना की और स्वप्न म उत्तर की प्रतीक्षा की। उसी रात म एक स्वप्न देखा। देखा कि आकाश मडल से एक श्वेत कमल पृथ्वी-तल पर गिरा। थोडी देर के बाद एक तेजस्वी रुपवान राजकुमार वहाँ आया। उसन हाथ म उस श्वेत कमलको जो अविकसित अवस्था म था उठा लिया और उसे प्रस्फुटित कर दिया। उस कमल के गभ से एक श्वेताम्बरा दिव्य रमणी निकली। वह महाराज के मुखमडल में प्रविष्ट हो गयी। तत्पश्चात *मेरी निद्रा भी भग हो गयी।*

इस स्वप्न के फलाफल पर बहुत देर तक म सोचता रहा। अत म इस निष्कष पर पहुँचा हूँ कि, महाराज अवश्य सरस्वती के कृपापात्र बनग।

यह सुन कर महाराज कुछ आश्वस्त हुए। सतोष के स्वर म गुणाढच से पूछा– यदि लगन से पढा जाय तो पडित बनन म कितन दिन लगग?

करबद्ध हो गुणाढच न उत्तर दिया —

महाराज! सब विद्याओ को समझन के लिए व्याकरण ही प्रवेश द्वार माना गया ह। एक व्याकरण का ही ज्ञान बारह वर्षों *म प्राप्त किया जाता ह। परन्तु प्रभो!* म इससे आध काल अर्थात छ वर्षो में आपको व्याकरण शास्त्र म प्रवीण बनान की प्रतिज्ञा करता हूँ।

इस पर शव वर्मा बोल उठ– छ साल की अवधि बहुत बडी है। श्रीमान से इतना परिश्रम नही उठाया जा सकता। म छ महीनो म महाराज को पडित बना दूँगा।

गुणाढच को यह बात बहुत लगी। उन्होन इसे चुनौती समझा। वे आवेश में आ गय और सहसा बोल उठ– सम्य मानव-समाज म तीन प्रकार की भाषाएँ बोली जाती ह--सस्कृत प्राकृत और ग्रामीण। यदि छ महीनो की अवधि म महाराज को कोई पडित बना दे तो म तीनो भाषाओ में बालना बद कर दूँगा।

शव वर्मा भी आवेश म आ गय। उन्होंन उत्तजित होकर कहा – यदि छ महीनो *म महाराज को पडित नही बना पाऊँ तो* आपकी चरण पादुकाओ को बारह वर्षों तक मस्तक पर धारण किय रहूँगा।

बात यही समाप्त हो गयी। शव वर्मा अपन निवासस्थान पर लौट आय और अपनी प्रतिज्ञा के पालन म जुट गय।

वे कार्तिकेय की आराधना में लग गये। साधना फलवती हुई और स्वामि-कार्तिक के प्रसाद से उन्होंने एक संक्षिप्त, परन्तु पूर्ण व्याकरणशास्त्र की रचना कर डाली। इसका नाम उन्होंने 'कालापक तंत्र' रखा। और, इसी व्याकरण की सहायता से महाराज सातवाहन को उन्होंने सचमुच ही छ महीनों में विशिष्ट वैयाकरण बना दिया।

गुणाढ्य के आत्मसम्मान को गहरा धक्का लगा। वे अपनी प्रतिज्ञा से आबद्ध थे। उन्हें मौन धारण कर लेना पड़ा। सुप्रतिष्ठानपुर को छोड़ दिया। घूमते-घूमते विन्ध्य-क्षेत्र में पहुँचे। विन्ध्याचल की अधित्यकाओं में पिशाचों से मिलने का सुयोग हुआ। उनकी बोल-चाल की भाषाओं को सुनकर उन्हें सहसा यह प्रेरणा मिली कि, 'संस्कृत-प्राकृत-देशिक' भाषाओं से भिन्न यही हमारी बोल-चाल की भाषा है।

वे पिशाचों में हिल-मिल गये। उनके साथ रह कर पैशाची भाषा सीख ली। पिशाचों की-सी वेष-भूषा बना ली। एक दिन उन्हीं के साथ यात्रा कर रहे थे कि, काणभूति से भेंट हुई। गुणाढ्य ने उन्हें अपना परिचय दिया। काणभूति तो उन्हीं की प्रतीक्षा में काल-यापन कर रहे थे। वररुचि से उन्हें समस्त वृत्त अवगत हो चुका था। उन्होंने बड़े प्रेम और उत्साह से गुणाढ्य को पूर्व-जन्म की सारी घटनाओं से परिचित करा दिया। सात लाख श्लोकों में वररुचि से सुनी हुई सात विद्याधरों की कथाओं को पैशाची भाषा में गुणाढ्य को सुना दिया और स्वयं मुक्त हो गये।

जगन्माता पार्वती ने यह कहा था कि, इन कथाओं के प्रचार और प्रसार करने पर माल्यवान की मुक्ति होगी। यह सोच कर गुणाढ्य ने काणभूति से सुनी हुई इन कथाओं को पैशाची भाषा का कलेवर पहना कर सप्तलक्षात्मक एक कथा-ग्रंथ अपने शरीर के शोणित से लिख डाला। विद्याधर-गण इस ग्रंथ को चुरा न लें, इस भय से शोणित से ही यह विशालकाय ग्रंथ लिखा गया था।

'बृहत्कथा' बन कर तैयार हो गयी। परन्तु इसका प्रचार कैसे हो, यह चिंता गुणाढ्य को सताने लगी। यह ग्रंथ किसे समर्पित किया जाये, यह भी एक चिंता का विषय था। गुणाढ्य के दोनों शिष्य गुणदेव और नन्दिदेव गुरुदेव के साथ थे। विपत्ति के दिनों में भी उन्होंने गुरु का साथ नहीं छोड़ा था। बराबर एकांत भाव से उनकी सेवाएँ करते आ रहे थे।

गुणाढ्य ने सोचा कि, महाराज सातवाहन को ही यह ग्रंथ समर्पित किया जाये। 'बृहत्कथा' के साथ गुणदेव और नन्दिदेव को महाराज सातवाहन के पास भेजा। उनका रहन-सहन भी पिशाचों की तरह बन गया था। वे इसी वेष-भूषा में सुप्रतिष्ठानपुर पहुँचे और अपने गुरुदेव का सन्देश महाराज को सुनाया। सातवाहन ने सब सुन कर तिरस्कार के स्वर में कहा—"सात लाख श्लोकों में लिपिबद्ध यह कथा-ग्रंथ अवश्य

सग्रहणीय है, परन्तु शोणित के द्वारा पैशाची भाषा में लिखी हुई होने के कारण सभ्य-समाज में इसका समादर कौन करेगा? अरे! इसे तो कोई स्पर्श भी नही करना चाहेगा।"

गुणाढच इस सम्वाद को सुन कर बहुत दुखी हुए। विंध्याद्रि की तल्हटी में एक बड़ा-सा कुड बनाया और उसमें अग्नि प्रज्ज्वलित किया। अपन इस विशाल-काय ग्रथ को होम करन का सकल्प कर लिया। एक-एक पन्ना पढ कर वन्य पशु-पक्षियो को पहले सुनाते और उसकी समाप्ति पर उसे अग्निकुड म होम कर देते। असख्य पशु-पक्षी श्रोता के रूप में वहाँ इकट्ठे हो गय। यह क्रम अबाध गति से चलने लगा। धीरे-धीरे समाचार महाराज सातवाहन के पास तक पहुँचा। महाराज को कौतूहल हुआ और वे शर्व वर्मा को साथ लेकर वहाँ पहुँचे। लेकिन तब तक ग्रथ का अधिकाश अग्निशिखा में भस्मीभूत हो चुका था। केवल लक्ष श्लोकात्मक 'नरवाहनदत्त-चरित' शेष बचा हुआ था। गुणाढच ने सातवाहन को आया हुआ देख कर उनका सत्कार किया और कहा —

"राजन्! यह अवशिष्ट ग्रथ मैं सप्रेम आपको समर्पण करता हूँ। मेरे दोनो शिष्य इसकी व्याख्या करके इसे आपको समझा देंगे। सातो कथाओं म यही कथा मेरे दोनो शिष्यो को अधिक प्रिय थी। इसी कारण से यह अब तक बची हुई भी है।"

सातवाहन न इस उपहार को सहर्ष स्वीकार कर लिया। गुणाढच ने योगारूढ हो वही अपने नश्वर शरीर को छोड दिया। गुणिदेव और नदिदेव को साथ लेकर महाराज अपनी राजधानी में लौट आये और उनसे आद्योपात इस कथा को सुना। उन्ही दोनो शिष्यो से इस अवतारक कथा को पैशाची भाषा म लिखवा कर ग्रथ के साथ सन्निविष्ट करवा दिया और 'बृहत्कथा' का नाम देकर ससार में प्रसिद्ध करवाया।

यही 'बृहत्कथा' सैकडो वर्षो तक विद्वज्जनमडली म समादृत हो जन-समाज का मनोरजन करती हुई अत म, काल के मुख में तिरोहित हो गयी।

✶

## छः विचार

सुप्रख्यात वैज्ञानिक अल्बर्ट आइस्टीन के पास एक बार एक महिला-क्लब की अध्यक्षा ने निम्न आशय का पत्र भेजा —"मैंने सुना है, आप विश्व के माने हुए विचारक हैं। अगर अपने छ विचार आप हमें लिख भेजें, तो बडी कृपा होगी!"

आइस्टीन ने जवाब में जो पत्र भेजा, वह यह था — 'ईश्वर, देश, पत्नी, गणित, मनुष्य और शाति!"

—'इन्स ट्र' से

★

नवजीवन-प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद द्वारा संकलित गांधीजी के अस्फुट-अप्रकाशित लेखों की

सुमिरनी का सुमेरु

★

एक विचित्र गुमनाम पत्र मुझे मिला है। जो कार्य लोकमान्य को प्राणों से भी प्रिय था, उसे उठा लेने के लिए पत्र-लेखक ने मेरी प्रशंसा की है। इसके बाद मुझे इस पत्र में हिम्मत न हार कर स्वराज्य के कार्यक्रम में आगे बढ़ते जाने का उपदेश किया गया है। और, अंत में मुझे साफ सुनाया गया है कि, मैं राजनैतिक क्षेत्र में हमेशा जो गोखले का शिष्य होने का दावा करता हूँ, वह सिर्फ मेरा दम्भ-मात्र है।

मैं चाहता हूँ कि, पत्र-लेखक गुमनाम पत्र लिखने की भयपूर्ण गुलामी से मुक्त हो जाये। स्वराज्य का जोश अपने भीतर बढ़ा रहे। हम लोग यदि आगे आकर निर्भयतापूर्वक अपने मन की बात स्पष्ट कह देने की हिम्मत नहीं दिखा सकें, तो हम अपना काम कैसे करेंगे?

तो भी इस पत्र में उठायी हुई बात सार्वजनिक महत्त्व की होने के कारण मैं उसका उत्तर देना जरूरी मानता हूँ। स्वर्गीय लोकमान्य के अनुयायी-पद के सम्मान का दावा मुझसे किया ही नहीं जा सकता। लाखों-करोड़ों भारतीयों की तरह मैं भी उनके अजेय मनोबल, उनकी अगाध विद्वत्ता, उनकी देशभक्ति और उनके सर्वोच्च चारित्र्य और स्वार्थ-त्याग के लिए उन्हें पूजता हूँ। इस काल के सारे राष्ट्रपुरुषों में सबसे ज्यादा स्थान जनता के हृदय में उन्होंने ही पाया है। लेकिन साथ ही, मुझे इस बात का भी पूरा-पूरा भान है कि, मेरी कार्य-पद्धति लोकमान्य की कार्य-पद्धति नहीं है। तो भी मैं सच्चे दिल से मानता हूँ कि, लोकमान्य को मेरी पद्धति में अश्रद्धा नहीं थी। मुझे उनका विश्वास प्राप्त था।

अपनी दूसरी कमियों से भी मैं अनजान नहीं हूँ। विद्वत्ता का मैं कोई दावा नहीं कर सकता। लोकमान्य में जो योजनाशक्ति थी, वह भी मुझमें नहीं है। फिर भी हम दोनों में दो बातें एक-सी कही जा सकती हैं—देश का प्रेम और स्वराज्य के लिए सतत प्रयत्न। और, इस आधार पर मैं इस गुमनाम लेखक को विश्वास दिलाता हूँ कि, लोकमान्य के प्रति अपने पूज्य भाव में किसी से पीछे न रहकर मैं स्वराज्य की लड़ाई के मार्ग में उनके सबसे अग्रगण्य शिष्यों के कदमों-से-कदम

मिलाकर आगे बढ़ता जाऊँगा।

लेकिन शिष्यत्व निराली ही वस्तु है। वह एक पवित्र वैयक्तिक वस्तु है। ठेठ १८८८ में मैं दादाभाई के चरणों मे बैठा। लेकिन मुझे वे अपने से दूर मालूम हुए। मैं उनका पुत्र हो सकता था। लेकिन शिष्य का पुत्र से अधिक निकट का सम्बन्ध है। शिष्य होना नया जन्म लेने-जैसा है। वह स्वेच्छा से किया हुआ आत्मसमर्पण है।

१८९६ में मुझे दक्षिण अफ्रीका के अपने कार्य के निमित्त हिन्दुस्तान के तत्कालीन सभी प्रसिद्ध नेताओ के सम्पर्क में आने का मौका मिला। न्यायमूर्ति रानाडे के सामने तो मैं एकदम हतप्रभ हो गया था। उनके समक्ष बोलने मे भी मैं काँपता था। स्व बदरुद्दीन तैयबजी ने मेरे ऊपर पिता-जैसा स्नेह दिखाया, मुझे रानाडे और फीरोजशाह की सलाह के अनुसार चलने की सीख दी। सर फीरोजशाह ने तो मेरे साथ घर के बुजुर्ग जैसा ही बर्ताव किया। उनका शब्द तो कानून ही था-"गाँधी, तुम्हे २६ सितम्बर को भाषण देना है। और देखो, वक्त की पाबदी रखना।" मैंने आज्ञा स्वीकार की। २५ की शाम को फिर मिलने का आदेश था। २५ की शाम आयी और मैं हाजिर हुआ।

"भाषण लिखा है कि, नही ?"

"नही साहब !"

"भले आदमी, यह नही चलेगा। आज रात को लिख डालोगे ?"

"मुशी, तुम गाधी के यहाँ जाना और ये जो भाषण दें, उसे रातो-रात छपवाकर उसकी एक नकल मुझे देना।" फिर मेरी तरफ मुड़कर कहा-"देखो गाधी, बहुत गहराइयो में मत जाना। तुम्हे शायद पता नही होगा कि, बम्बई के लोग लम्बे-लम्बे भाषण नही सुनते।"

मैंने फिर सिर झुका कर उनकी बात स्वीकार की। बम्बई के सिंह ने मुझे आज्ञा पालन करना सिखाया। उन्होंने मुझे शिष्य नही बनाया, बनाने का प्रयत्न भी नही किया।

गोखले

[चित्र: बम्बई स्थित एक अभिनव शिल्प का सरल रेखाचित्र]

वहाँ से मैं पूना गया। बिल्कुल अपरिचित था। जिनके यहाँ ठहरा, वे भाई पहले मुझे तिलक महाराज के घर ले गये। मैंने उन्हे मित्रो से घिरा हुआ देखा। मेरी बात उन्होंने ध्यानपूर्वक सुनी और कहा-"तुम्हारे काम के लिए हमें एक सभा तो बुलानी ही चाहिए। लेकिन शायद तुम नही जानते होगे कि, दुर्भाग्य से हमारे यहाँ दो पक्ष है। मुझे तुम्हे ऐसा सभापति खोज देना चाहिए,

जो दो में से किसी पक्ष का न हो। तुम डाक्टर भाडारकर से मिलोगे?"

उसके बाद मैं डा भाडारकर के यहाँ पहुँचा। जिस तरह कोई वृद्ध गुरु शिष्य का स्वागत करता है, उसी तरह उन्होंने मेरा स्वागत किया—

"तुम उत्साही और लगनवाले युवक मालूम होते हो। मैं आजकल सार्वजनिक सभाओं म बिलकुल नही जाता। लेकिन तुमने जो बात सुनायी, वह इतनी हृदयद्रावक है कि, मुझसे इनकार नही हो सकता।"

गम्भीर मुद्रावाले इन ज्ञानवृद्ध विद्वद्वर्य की मन ही-मन मैंने पूजा की। लेकिन अपने हृदय सिंहासन पर मैं इन्हे नही बिठा सका। वह अभी खाली ही रहा। अभी तक सत तो बहुत मिले, परन्तु मेरा गुरु मुझे नही मिला था।

किन्तु गोखले की बात इन सबसे निराली थी। क्यो, यह मैं नही बता सकता। फरग्यूसन कालेज के कम्पाउंड म उनके घर में उनसे मिला। मुझे ऐसा अनुभव हुआ, मानो किसी पुराने मित्र से मिलाप हुआ हो अथवा इससे भी ज्यादा सार्थक शब्दों में कहूँ, तो मानो, वर्षों से बिछुडे हुए माँ-बेटे मिले हो। उनकी प्रेम-भरी मुखमुद्रा ने एक क्षण में मेरे मन का सारा भय दूर कर दिया। जब मैंने विदा ली, तो उस समय मन में एक ही ध्वनि उठी— "यही है मेरा गुरु।"

उस घडी से गोखले ने किसी दिन भी मुझे भुलाया नही। सन् १९०१ में मैं दक्षिण अफ्रीका से दुबारा हिन्दुस्तान आया और हम लोग ज्यादा निकट समागम में आये। उन्होने मुझे अपने हाथ में लिया और गढ़ना शुरू किया। मैं कैसे बोलता हूँ, कैसे खाता-पीता हूँ—हर बात की चिंता वे रखते थे। मेरी माँ ने भी शायद ही मेरी इतनी चिंता की हो।

वे स्फटिक के समान निर्मल, गाय-जैसे सौम्य और सिंह-जैसे शूर थे। उदार इतने कि, उसे दोष भी मान सकते है। हो सकता है, किसी को इन गुणो में से एक भी गुण नजर न आया हो। मुझे उससे कोई मतलब नही। मेरे लिए तो इतना ही बस है कि, मुझे उनमें कही उँगली दिखाने के लायक भी खामी नजर नही आयी। मेरी दृष्टि में तो राजनैतिक क्षेत्र में आज भी वे आदर्श पुरुष ही है।

इसका अर्थ यह नही कि, हमारे बीच कोई मतभेद नही था। ठेठ १९०१ में भी हमारे बीच सामाजिक सुधारो के सम्बन्ध में मतभेद था। मेरे अहिंसा-सम्बन्धी कठिन आदर्श से भी उनका स्पष्ट मतभेद था। लेकिन ऐसे मतभेद हममें से किसी के मार्ग में बाधक नही हुए। हमें एक-दूसरे से अलग कर सके, ऐसी कोई चीज नही थी। आज वे जीवित होते, तो क्या करते, इस प्रश्न को लेकर कल्पना की तरगें दौडाना मैं पाप और नास्तिकता समझता हूँ। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि, आज भी मैं उनकी ही छत्रछाया में काम कर रहा होता।

✖

# शब्द
# मिट्टी का सब खेल है

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जूलियन हक्सले ने अपनी रोचक लेखमाला "रिमेकिंग द' अर्थ" (धरती का पुनर्निर्माण) में लिखा है—"जरा भूमि का चमत्कार देखिये। अफ्रीका के सिंहों को आप केलिफोर्निया प्रांत या साइबेरिया में भेज दीजिये। वे अपनी हिंसक वृत्ति भूल जायेंगे और गाय बकरी की भाँति पालतू बन जायेंगे।' नीचे हम इसी लेखमाला के एक अध्याय का संक्षिप्त हिन्दी रूपांतर प्रस्तुत कर रहे हैं।

★

विनोबाजी द्वारा लिखी गयी 'पृथ्वी सूक्त' की नयी व्याख्या को पढ़कर मन-ही-मन धरती को नमस्कार कर ही रहा था कि, अचानक एक वृद्ध सज्जन (वेश-भूषा से तो ऐसा ही मालूम पड़ता था) सामने खड़े दिखायी दिये। तर्जनी के लक्ष्य से वे मुझसे पूछ रहे थे–

"बच्चे मिट्टी क्यों खाते हैं, जानते हो?"

"बच्चे नासमझ होते हैं, इसलिए।" मैंने चिढ़कर कहा।

" और जानवर देह में मिट्टी क्यों पोतते हैं?" उनके दृढ़, परन्तु शांत स्वर से मैं चौंक उठा।

"इसलिए कि, जानवर भी नासमझ ही होते हैं।' मैंने सरल कटाक्ष के साथ कहा। मगर वे अब भी शांत एवं अविचलित थे।

"मैं झुककर क्या देखते चलता हूँ?" प्रश्न शुद्ध वैयक्तिक था। मैं भी अब तक संयमित हो चुका था।

"यह तो आप ही जानें। अगर यही प्रश्न मैं आपसे करूँ, तो क्या उत्तर देंगे?"

"मेरे बच्चे, इसका उत्तर मैं तुम्हें क्या दूँ? इस धरती की महिमा को कोई कभी गा सका है क्या? कदम-कदम पर मैं तो इस भूमाता का स्तवगान करता चलता हूँ–भगवान ने भी जिसके धारणा-तत्व को लेकर अपनी देह बनायी, उस भूमि को अपने प्रणाम चढ़ाता चलता हूँ। महाकाल की बेला निकट है। उस समय यही स्नेहमयी भूमि मुझे आत्मरूप बना लेगी।"

अशोक

भारत भूमि में जन्मा, भारतीय वसुधरा के मांगल्यपूर्ण संस्कारों का यह प्रियदर्शी प्रतिनिधि [चित्र: तिब्बत में प्राप्त एक प्राचीन चित्र की सरल रेखानुकृति]

उनका एक-एक शब्द मुझे हृदय की एक ऐसी गहराई में डुबो रहा था कि, मैं दिक्-काल की समस्त चेतना ही भूल गया—इतना आत्मस्थ हो गया कि, मुझे स्मरण ही नहीं रहा, शब्दों की ध्वनि के साथ वे भी मेरी आँखों से अंतर्धान हो चुके थे। श्रद्धा-विह्वल मन से मैं उठा और उनके चरणों-तले पड़ी मिट्टी माथे से लगा ली।

मिट्टी से हमें प्रेम भी होता है और घृणा भी। उसी से हम जीते हैं और उसी के लिए मर भी मिटते हैं। यह सब क्यों होता है? इसका उत्तर जानने की शायद हमने जरूरत नहीं समझी। किन्तु उत्तर कठिन नहीं। जैसी मिट्टी होगी, वैसे ही हम होंगे। वास्तव में, भूमि की भिन्नता से ही हममें भिन्नता है, नहीं तो समस्त पृथ्वी की मानव-जाति एक ही रूप होती।

जितनी मिट्टी मैंने चरणरज के रूप में शिरोधार्य की थी, यदि उसकी भाषा मेरी समझ में आ सकती, तो वह अपनी कहानी यों कहती—"केवल तुम्हारे रूप-रंग एवं आकार-प्रकार को ही नहीं, तुम्हारी भावनाओं को भी मैंने सँवारा है। तुम्हें सोचने की शक्ति भी मुझसे प्राप्त हुई। सरहदी पठान को लम्ब-तड़ंग मैंने बनाया और नेपाली को ठिगना। प्रताप को प्रण-शौर्य की घुट्टी मैंने पिलायी थी। शिवाजी को देश-मुक्ति का स्तनपान मैंने कराया था। 'घुटुरन चलत रेनु तनुमंडित' में श्रीकृष्ण के संकेत से सूरदास ने मेरी ही महिमा गायी है। दांडी-मार्च के लिए गांधी को मैंने ही पैदा किया था। मैं अनंतरूपा हूँ। अयोध्या में मैं राम हूँ। गोकुल में कृष्ण हूँ। हस्तिनापुर में धर्मराज हूँ। वैशाली में बुद्ध हूँ। अवंतिका में कालिदास हूँ। दक्षिण में शंकराचार्य हूँ। काशी में तुलसी हूँ। बंगाल में रवीन्द्र हूँ—पग-पग पर मेरे सहस्र-सहस्र रूप हैं!"

आज के भू-वैज्ञानिकों ने भूमि की इस भाषा को अपने ढंग से समझा है। अमेरिका के भू-वैज्ञानिक डा० चार्ल्स कैलाग अमरीकी गृह-युद्ध का कारण 'भूमि' को ही मानते हैं। उत्तर अमेरिका की भूरी मिट्टीवाली वन-स्थली, जहाँ जाकर लाल-पीली होना आरम्भ करती है, वही उत्तर और दक्षिण की वास्तविक सीमा है। इन दो भूमियों में सदैव संघर्ष एवं स्पर्द्धा चली है। आज भी आप इसे वहाँ देख लीजिये। अब्राहम लिंकन को उत्तरी भूमि के खिलाफ दक्षिणी भाग से ही सैनिक मिले थे।

हमारे पंजाब की तरह न्यू-इंग्लैंड (अमेरिका) की भूमि पर सब-कुछ पैदा किया जा सकता है। वहाँ के निवासी स्वयं-सम्पूर्ण हैं। विशेषज्ञों का मत है कि, सम्पूर्णता से ही अनुदार भावना पैदा होती है। यही कारण है, वहाँ के लोग भी भारत के पंजाबियों की भाँति काफी सहिष्णु नहीं हैं। इसके विपरीत प्रेयरिज के मैदानों में केवल गेहूँ की ही फसल हो सकती है। वहाँ के किसान सहकारी भावना को अधिक प्रश्रय देते हैं। न दें, तो कर भी क्या? सहकारी-आंदोलन को जीवित रखने के लिए संघबद्ध होना

दाते
[इटली की भूमि सदैव ही कला प्रेरणा का अजस्र स्रोत रही है। युद्ध हिंसा एवं छल प्रपंच उसके स्वभाव के अनुकूल नहीं रहे। अमर काव्य 'डिवाइन कामेडी' का प्रणेता दाते इसी भूमि का शुक्रतारा है।]

आवश्यक है। सघवद्धता राजनीतिक चेतना के बिना असम्भव है। यही कारण है कि, वहाँ वामपक्षी आदोलन अधिक सफल होते है। नेब्रास्क म ही जार्ज नारिस पैदा हो सकता है, जिसे जनता 'जनार्दन' से भी ऊपर दिखायी दी और कोई आश्चर्य की बात नही, यदि महान् रूसी क्रांति का जनक लेनिन भी गेहूँ की आगार भूमि उलियानोव्स्क में पैदा हुआ व माओत्सुग सिर्फ चावल की अन्नपूर्णा भूमि यालू घाटी म।

कुछ भूमि वैज्ञानिको का तो यहाँ तक कहना है कि, वश-परम्परा अथवा कुडली मिलान के पहले भावी वर-वधू के माता या नगरो की मिट्टी का परीक्षण कर लीजिए। मिट्टी-से मिट्टी न मिली, तो शेष सारी शोध ताक म रखी रहेगी।

मिट्टी को हम जड अथवा मृत मानते हैं —पूर्णतया अचल, स्पदनहीन। परन्तु सत्य इसके विपरीत है। पेंसिल की नोक से जितनी मिट्टी उठ सकती है, उतन म २ अरब कीटाणु होते हैं। पृथ्वी पर मानव भी लगभग इतने ही हैं। किन्तु इससे भी महत्वपूर्ण है—मिट्टी में स्वय चालित प्रकृति के प्रयोग, जो इतने जटिल एव विशाल है कि, आज इस अणु युग में पहुँचकर भी मानव अपनी अन्वेषणशालाओ में वैसे

बिस्मार्क
[ और, जर्मनी की धरती! इसे तो नीत्शे ने 'प्रचड चडिका' के नाम से सम्बोधित किया है। इतिहास साक्षी है, यह भूमि कितनी बार श्मशान क्षेत्र नहीं बनी है। बिस्मार्क इसी भूमि का भौगोलिक नियामक था।]

प्रयोग नहीं कर सकता।

वैज्ञानिकों का मत है कि, भूगर्भ में प्रतिक्षण एक अरब से भी अधिक स्पंदन एवं परिवर्तन हुआ करते हैं। इस प्रक्रिया को हम अपनी आँखों से नहीं देख सकते। एक छोटा-सा ही उदाहरण ले लीजिये। वर्षा, वायु में निहित कारबन-डाइ-आक्साइड को तेजाब में परिवर्तित कर देती है, जिससे विशाल चट्टानें धीरे-धीरे गलती जाती हैं और मिट्टी बनती जाती है। पेड़-पौधे पम्प का कार्य करते हैं। जहाँ वे भूगर्भ से जीवन-तत्व खींच कर अपने अंग-प्रत्यंगों का निर्माण करते हैं, वहीं वे मृत होने पर अपनी पत्तियों-द्वारा मिट्टी को उपजाऊ भी बना देते हैं। प्रकृति में विनिमय का सिद्धान्त कितने आश्चर्यजनक ढंग से चरितार्थ होता है! प्रेयरिज के मैदानों और दोआबा की मिट्टी की उत्पादन-शक्ति इसीलिए अधिक है कि, वहाँ हजारों वर्षों से घास और छोटे-छोटे पौधे सड़ते आ रहे हैं।

१७वीं शताब्दी में हालैंड के एक वैज्ञानिक डा० जोनवान हेल्माट ने सिद्ध किया कि, एक पौधा अपने पाँच वर्ष के जीवन-काल में केवल दो औंस मृत्तिका अपने जीने के लिए ग्रहण करता है। लगभग एक शताब्दी-बाद जर्मनी के वान लिबिग ने इसी अन्वेषण को आगे बढ़ाकर यह सिद्ध किया कि, मनुष्य जहाँ पेड़, पौधे, खाद्यान्न इत्यादि पैदा कर धरती की उर्वरा-शक्ति को नष्ट करता है, वहीं वह उसमें खाद देकर उसकी क्षतिपूर्ति भी करता रहता है। परन्तु जब यह डेन्यूब की तराई में अनुसंधान करते-करते पहुँचा, तो उसे अपने सारे अन्वेषण गलत मालूम पड़े, क्योंकि बिना खाद के ही वहाँ फसलें होती आ रही हैं। उसके हिसाब से तो रोमन साम्राज्य के अंत होते ही इस तराई को बंजर हो जाना चाहिए था। ऐसा क्यों नहीं हुआ? इसका कारण वह सोच नहीं सका।

आखिर, एक शताब्दी-पश्चात् उसे कारण को रूस के भू-विशेषज्ञ डोकुचेव ने बताया। डोकुचेव ने अपना अनुसंधान कलम से नहीं, फावड़े से किया। भूमि का एक-एक स्तर हटाते हुए वह चट्टानों तक पहुँचा, जहाँ प्रकृति की रसायनशाला में अनवरत प्रयोग हो रहे थे—बिना किसी वैज्ञानिक सहायता के। उसने देखा कि, मानव-वंश के समान ही मिट्टी के स्तर भी जन्म लेते और मरते रहते हैं। ये चट्टानें बाबा आदम के समान अनेक प्रकार की मिट्टियों के वंश तैयार करती जा रही हैं। परीक्षण के बाद उसे पता चला कि, यूक्रेन और भारत के गेहूँवाले क्षेत्रों की मिट्टी करीब-करीब एक ही है। यद्यपि ये अनुसंधान १८७० में ही पूर्ण हो चुके थे, फिर भी भाषा की दीवारों को लाँघकर ये अन्य देशों तक न पहुँच सके। विश्व को इनका ज्ञान बीसवीं सदी से आरंभ हुआ। भूमि-विज्ञान या मिट्टी-विज्ञान की नींव तभी से पड़ी। आज तो १०,००० प्रकार की मिट्टी का अन्वेषण पूरा हो चुका है, जिन्हें ५० कुलों या समूहों में विभक्त कर दिया गया है!

✱

तिब्बत की एक जनश्रुति के अनुसार ब्रह्मपुत्र नदी जगदम्बा भगवती दुर्गा का अवतार है। इस पूर्वांचल पर जगदम्बा एक बार बड़ी प्रसन्न हुईं और यहाँ के निवासियों की वर-याचना के अनुसार यहीं नदी-रूप में प्रतिष्ठित हो गयीं। प्रस्तुत लेख में ब्रह्मपुत्र के भौगोलिक व्यक्तित्व पर विशेष प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

★

गत वर्ष की भाँति इस वर्षा में भी पूरे आसाम प्रांत में हाहाकार मचा हुआ है। ब्रह्मपुत्र की बाढ ने पिछले दो वर्षों में आसाम प्रांत को जितनी क्षति पहुँचायी, उतनी उसने इस पूरी शताब्दी में भी कभी शायद ही पहुँचायी हो।

पर यह सब होते हुए भी जवाहरलालजी ने इस बार फिर गोहाटी की एक सभा में भाषण करते हुए कहा है —"यह भारत देश ब्रह्मपुत्र की मैत्री का सदैव ऋणी रहा है और रहेगा। इस बाढ के बावजूद ब्रह्मपुत्र नदी हमारे लिए प्रकृति का महान् वरदान है।" पंडितजी के उक्त कथन में किंचित् मात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है।

नदियों की भारत पर कुछ ऐसी कृपा रही है कि, हिमालय के उत्तरी ढाल का कुल पानी समेट कर वे अनंत काल से भारत की भूमि को सींचती हैं। सिंधु, उसकी शाखाएँ तथा ब्रह्मपुत्र का उद्गम हिमालय के उत्तर में है। पर उनका प्रवाह भारतीय सीमा में है और उनमें ब्रह्मपुत्र सबसे बडी है —१,८०० मील लम्बी, अर्थात् गंगा से २५० मील अधिक लम्बी।

आसाम में चावल, चाय, जूट, तेलहन आदि की जो भी खेती है अथवा आसाम में जो भी उपजाऊ भूमि है, वह सब ब्रह्मपुत्र की ही कृपा का फल है। यदि ब्रह्मपुत्र न होती, तो आसाम भी वैसा ही ऊबड-खाबड होता जैसा कि, तिब्बत अथवा भारत-बर्मा-सीमा का भाग। ब्रह्मपुत्र ने ही मिट्टी ला-लाकर उस पहाडी भाग में २४,२८३ वर्ग मील की वह उपजाऊ पट्टी बनायी है, जिसे 'आसाम की घाटी' कहते हैं और वही अपने जल से उक्त भाग का सिंचन करके उसमें खाद्य-पदार्थों का उत्पादन कराती है। इसीलिए यह नदी आसाम की 'प्राण-पयस्विनी' कही जाती है।

ब्रह्मपुत्र केवल सबसे बडी नदी ही नहीं है, उसकी कुछ अपनी अन्य विशेषताएँ भी हैं। यही एक ऐसी नदी है, जिसमें

४०० मील तक बड़ी किश्तियाँ समुद्र-तट से १२,००० फुट की ऊँचाई तक चली जाती हैं। इसकी दूसरी विशेषता इस नदी का मजुली द्वीप है—५६ मील लम्बा और १० मील चौड़ा। बच्छे मीठे पानी में इतना बड़ा द्वीप विश्व में कहीं भी नहीं है। और, इसकी तीसरी विशेषता है कि, अब तक इस नदी पर पुल ही नहीं बन सका है—गंगा पर लगभग आधे दर्जन रेलवे के पुल हैं, सिंध पर बाँध बन गया है, पर ब्रह्मपुत्र अभी तक पूर्ण स्वच्छंद है। सैन्य-संरक्षण की दृष्टि से पिछली दोनों विशेषताएँ भारत की पूर्वी सीमा के लिए ब्रह्मपुत्र की सबसे मूल्यवान देन है।

यह नदी तिब्बत के दक्षिणी-पश्चिमी भाग के कुबी गांगरी नामक हिमालय के उत्तरतम शृंखला के एक 'ग्लेशियर' से निकली है। लगभग ७०० मील यह नदी तिब्बत में बहती है, जिसमें लगभग १०० मील तो इसका बहाव हिमालय के समानांतर है। तिब्बत में इसका नाम 'त्सांगपो' है, जिसका अर्थ होता है—'पवित्र करनेवाली'। तिब्बत में ही इसमें कई सहायक नदियाँ भी आ मिलती हैं, जिनमें सबसे प्रमुख एरा-त्सांग्पो है, जो ब्रह्मपुत्र से शिगत्से के पश्चिम में मिलती है। दूसरी प्रमुख सहायक नदी है क्यी चु, जो टेम्स से दुगनी चौड़ी और उससे दूनी लम्बी है। तिब्बत का पवित्रतम नगर ल्हासा इसी के तट पर बसा है। तीसरी सहायक नदी है—न्यांगचु, जिसके तट पर ग्यान्त्सी का व्यापार-केंद्र तथा शिगत्से नगर हैं, जो ताशी लामा के विहार से केवल आधा मील दूर है।

ल्हासा से लगभग ५० मील दक्षिण-पश्चिम की दूरी पर स्थित त्से-ताग के निकट ब्रह्मपुत्र बड़ी किश्तियों के आने-जाने योग्य हो जाती है। ब्रह्मपुत्र को छोड़कर ऐसी कोई नदी नहीं है, जहाँ इतनी ऊँचाई पर किश्तियाँ चल सकती हों।

त्सेता-द्जांग नामक स्थान पर उसमें शाम्दा नामक एक नदी मिलती है, जो अपने मुहाने पर लगभग २ मील चौड़ी है। फिर थाग 'प' नामक स्थान के निकट भी ब्रह्मपुत्र लगभग ६६० गज चौड़ी है। वहाँ आसानी से किश्तियाँ चलायी जा सकती हैं। फिर ग्याला-पेरी (२३,७८० फुट) तथा नामचाबरवा (२५,४४५ फुट) की चोटियों की बगल से होती हुई ब्रह्मपुत्र सदिया के निकट आसाम में प्रवेश करती है।

संसार की नदियों के इतिहास में ब्रह्मपुत्र 'सहस्र नामवाली' नदी के रूप में प्रसिद्ध है। बाबा काकेलकर ने अपनी यात्रा-पुस्तक 'स्मरणातो आनंद' में ब्रह्मपुत्र के नामों का विस्तृत उल्लेख किया है— . . "अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ब्रह्मपुत्र सानपो, दिहांग, लौहित आदि नामों से विख्यात है। जहाँ यह गंगा से मिलती है, वहाँ उसका नाम 'यमुना' है। प्रसिद्ध है कि, जब तुलसीदास वृंदावन गये, तो उन्होंने कृष्ण से कहा—"तुलसी मस्तक तब नवे, धनुष-बाण लो हाथ"—उसी प्रकार जब ब्रह्मपुत्र गंगा

से मिलने बढी, तो गगा ने भी कहा होगा कि, यदि मुझसे मिलना हो, तो तुम्हे हमारी सखी यमुना बनना पडेगा। आगे वह पद्मा नाम से विख्यात है और समुद्र में गिरने के समय उसका नाम मेघना हो जाता है।'

ब्रह्मपुत्र शब्द, 'ब्रह्मकुड' का विकृत रूप है—कहा जाता है कि, परशुराम ने इसी स्थान पर एक वृहत् यज्ञ किया था, तभी से उस स्थल को 'ब्रह्मकुड' कहते है।

सहायक नदियो के इस विवरण से ही स्पष्ट है कि, ब्रह्मपुत्र कितनी सबल नदी है और कितना पानी वह लाती होगी। विशेषज्ञो का कहना है कि, अपनी सहायक नदियो-समेत सिंध नदी प्रति सेकेड अधिक से-अधिक ३,८०,००० घन फुट पानी समुद्र में पहुँचाती है, पर यह ब्रह्मपुत्र की तुलना में नगण्य है। ब्रह्मपुत्र प्रति सेकेड ५ लाख घन फुट पानी समुद्र में गिराती है—सिंध नदी से १ लाख २० हजार घन फुट प्रति सेकेड अधिक।
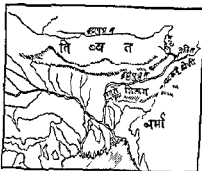
[ ब्रह्मपुत्र पोषित भूखड का मानचित्र ]

ब्रह्मपुत्र बहुत दिनो तक बडी रहस्यमय नदी रही है और इसके सम्बध में भूगोल-वेत्ताओ में तरह-तरह के विश्वास रहे है। तटवर्ती आदिवासियो और पहाडी दुर्गम रास्ते के कारण इस नदी के उद्गम तक भूगोलवेत्ता बहुत दिनो तक पहुँच ही नहीं सके। काफी अर्से तक भूगोलवेत्ताओ का यह अनुमान रहा है कि, ब्रह्मपुत्र इरावदी का दूसरा स्रोत है।

सबसे पहले १८८४ म किंतुप नामक एक सर्वे-कर्ता ने पेमाकोचुग नामक स्थान तक ब्रह्मपुत्र का 'सर्वे' किया। फिर १८८६ में नीडहैम नामक एक यूरोपीय डिहग तक गया। फिर १९०४५ में कैप्टेन सी जी. रोलिंग, कैप्टेन सी एच डी रायडर, कैप्टेन एच वुड तथा लेफ्टिनेंट एफ बली की टोली रसाग्यो तक गयी। इस टोली के किसी सदस्य को उसके आगे जाने की हिम्मत ही नही पडती थी।

लोगो का अनुमान था कि, आगे पहाडी क्षेत्र में भयकर झरने होंगे। पर १९१३ में कैप्टन एफ एम बली तथा कैप्टन एस टी मोर्सहेड की टोली कुछ आगे गयी और उसने अपनी यह रिपोर्ट दी कि, यद्यपि नदी की धारा उस क्षेत्र में तेज अवश्य है, पर एक भी झरना ३० फुट स अधिक ऊँचा नही है। फिर भी ब्रह्मपुत्र के उद्गम का लगभग

५० मील अनदेखा ही था। ब्रह्मपुत्र के उद्गम तक पहुँचने का श्रेय कैप्टेन किंगडम वार्ड नामक एक यात्री को प्राप्त है, जिन्होंने १९२४ में उक्त क्षेत्र की यात्रा की थी।

१९५० में जो भूकम्प आया, उससे इस नदी में बड़े परिवर्तन आये। आसाम में लगभग २०० मील और ६० मील चौड़े खंड में बहुत जगह पहाड़ टूट गये। आसाम के उत्तरी-पूर्वी भाग के ६,००० वर्ग मील के क्षेत्र में पहाड़ बहुत ही भयंकर रूप से टूटे। वेधशाला के संचालक डा. एस. के. बनर्जी का कहना है—"इस भूकम्प से लगभग ६० अरब घन गज भूमि ही खिसक गयी, जिसका फल यह हुआ कि, ब्रह्मपुत्र १० फुट और गहरी हो गयी तथा ब्रह्मपुत्र की घाटी भी १० फुट नीचे धँस गयी।"

इस भूकम्प के बाद पहाड़ों के टूटने से ब्रह्मपुत्र की सहायक नदियों का पानी अवरुद्ध हो गया। जिन विमान-पर्यवेक्षकों ने इस क्षेत्र को देखा, उनका कहना है कि, एक स्थान पर टिडिंग नदी के मार्ग में ८ मील लम्बी और १/४ मील चौड़ी एक ही चट्टान आ गिरी थी। इस चट्टान के गिरने के कारण ब्रह्मपुत्र की धारा ने भी स्थान-परिवर्तन किया। चट्टान गिरने से पानी की धारा में तेजी आयी और उस समय ब्रह्मपुत्र का प्रवाह लगभग ५० मील प्रति घंटे था।

वस्तुतः इस भूकम्प का ही यह फल है कि, गत दो वर्षों में ब्रह्मपुत्र ने इतना विकट रूप धारण किया है।

ब्रह्मपुत्र सम्बन्धी इस सारे विवरण को दृष्टि में रखकर अब आप जवाहरलालजी के शब्दों पर विचार कीजिये। ब्रह्मपुत्र विराट् शक्ति की खान है। जब छोटी नदियों पर बाँध बाँधने से अभूतपूर्व लाभ के स्वप्न संजोये जा रहे हैं, तब ब्रह्मपुत्र को नियंत्रण में करके क्या नहीं किया जा सकता!

★

## एक ही पेड़ में मौसम्बी, नीबू और संतरे

कैलिफोर्निया में आजिया के अर्द्ध-ग्रीष्म कटिबंधीय क्षेत्रों की सामूहिक और सरकारी कृषिशालाओं के बागों में मौसम्बी, नीबू और संतरों से लदे हुए पेड़ देखे जा सकते हैं। ये मौसम्बी के पेड़ हैं, जिन पर नीबू और संतरों की कलमें लगी हुई हैं। इन पेड़ों में एक ही साथ मौसम्बी, नीबू और संतरे के फल लगा करते हैं।

मौसम्बी के ऊपर नीबू और संतरे की कलमें लगाने से बड़े परिमाण में फलों की फसल पैदा होती है। कलम लगाने के दो-तीन साल के अंदर उनमें बड़े-बड़े और रसीले फल लगने लगते हैं। इस प्रकार के हर पेड़ से एक हजार से ऊपर फल तोड़े गये हैं।

—'सोवियत् समाचार' से

★

# जब प्राणदीप बुझ ही गया था...

रोगों के विरुद्ध मानव-बुद्धि के उत्तरोत्तर विजय विभूषित अभियान की एक महत्वपूर्ण मंजिल का इस लेख में विवरण है। लेख 'सोवियत मेडिसिन' से साभार उद्धृत है।

★

ल्येनोच कुद्रयाशोवा नामक उस छोटी-सी बातूनी लड़की से मेरा परिचय उसके जीवन के सबसे महत्वपूर्ण दिन—आपरेशन से फौरन पहले—हुआ।

वह छोटी-सी बच्ची बहुत बीमार है। किसी भी दिन किसी भी घड़ी, उसकी मृत्यु हो सकती है। ल्यना चार वर्ष की है, पर उसका वजन १५ पौंड ही है—सिर्फ दस महीने के बच्चे के बराबर। उसने अभी तक चलना नहीं सीखा है और वह सहारे के बिना चारपाई से उतर भी नहीं सकती। पिछले कई वर्षों से उसका शरीर बिल्कुल ही नहीं बढ़ा है। और, इन सबका कारण उसका हृद पिंड है।

मांस पेशियों का बना हुआ हमारा यह हृद पिंड अंदर से चार भागों में विभाजित है—दाहिना हृतकर्ण (आरिकिल) तथा क्षपक-कोष्ठ (वेंट्रिकिल) तथा बायां हृतकर्ण तथा क्षपक-कोष्ठ। नसों में से इस्तेमाल किया हुआ खून, जिसमें कार्बन-डाइ-आक्साइड गैस मिली होती है दाहिने हृतकर्ण में बहकर जाता है। जब हृद-पिंड सिकुड़ता है, तब यह रक्त बहकर दाहिने क्षपक-कोष्ठ में पहुँच जाता है, जहाँ से यह चौड़ी फुप्फुसीय धमनी के रास्ते फफड़ों में पहुँचता है। यहाँ रक्त में से कार्बन डाइ-आक्साइड फौरन श्वास के साथ शरीर के बाहर निकल जाती है और श्वास के साथ,
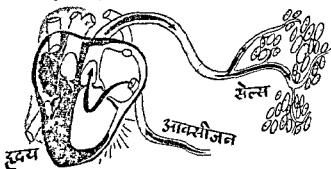
[ आक्सीजन ग्रहण करनेवाली शिराएँ, रक्तवाहिनी नाड़ियाँ और हृदय ]

जो आक्सीजन हम शरीर के भीतर खींचते हैं, वह शुद्ध रक्त में मिल जाती है। हृद-पिंड के फैलने पर बायें हृत्पर्ण में आक्सीजन-युक्त रक्त पहुँचता है। जब हृद-पिंड दुबारा सिकुड़ता है, तब यह रक्त दबाव के कारण बायें क्षेपक-कोष्ठ में पहुँच जाता है, जहाँ से वह स्वयं अपने दबाव से, धमनियों के रास्ते, पूरे शरीर में सचारित होता है और कोषाणुओं को नितांत आवश्यक आक्सीजन प्रचुर मात्रा में प्रदान करता है।

जब डाक्टरों ने ल्येना के हृद-पिंड की जाँच की, तो उन्होंने वहाँ बिल्कुल ही दूसरा नक्शा देखा।

एक प्रकृत स्वस्थ हृद-पिंड में दाहिने और बायें क्षेपक-कोष्ठों के बीच एक अखंड परदा होता है। ल्येना के उदाहरण में इस परदे में एक दरार थी। एक स्वस्थ व्यक्ति की फुप्फुसीय धमनी इतनी चौड़ी होती है कि, उसमें दो उँगलियाँ जा सकती हैं। ल्येना के शरीर में फुप्फुसीय धमनी विहीन थी और उसमें रक्त के निकलने के लिए केवल एक छोटा-सा छेद था। इसके फलस्वरूप शरीर के रक्त-संचार में समस्त अवरोध था और फुप्फुसीय धमनी में जाने के बजाय, नसों का बहुत-सा खून परदे की दरार के रास्ते सीधे बायें क्षेपक-कोष्ठ में पहुँच जाता था। इस प्रकार फेफड़ों से होकर गुजरे बिना आक्सीजन-रहित रक्त बृहत् धमनी में से होकर पूरे शरीर में फैल जाता था। और, केवल रक्त की वही अल्प मात्रा, जो संकुचित फुप्फुसीय धमनी के उस छोटे-से छेद में से निकल कर फेफड़ों में होती हुई आती थी, शरीर में प्राणों को बनाये रखती थी।

फलतः हृद-पिंड को अपनी क्षमता से काफी अधिक रफ्तार से काम करना पड़ता था। उसे प्रति मिनट १४० बार सिकुड़ना पड़ता था। रक्त की रचना बदल गयी थी। लाल रक्ताणुओं (आक्सीजन-वाहकों) की मात्रा बढ़ गयी थी और रक्त गाढ़ा होकर जम-सा गया था। इसके कारण त्वचा का रंग कुछ नीलवर्ण हो गया था। हृद-पिंड के लिए इस गाढ़े रक्त को सचारित करना कितना कठिन था?

पिछले वर्ष जनवरी में ल्येना कुद्रयाशेवा को 'लेनिनग्राद सर्जिकल क्लीनिक' में भरती कराया गया, जिसके प्रधान प्रोफेसर आन्द्रेयेविच कुप्रियानोव हैं। डाक्टरों ने यह फैसला कर लिया कि, कोई भी दवा या इलाज हृद-पिंड को दुबारा स्वस्थ नहीं कर सकता और न रक्त-संचार की दिशा ही बदल सकता है—केवल आपरेशन के द्वारा ही यह सम्भव हो सकता है।

बच्ची के प्राण बचाने के लिए एक नया मार्ग खोजना आवश्यक था। ऐसा करने के लिए फुप्फुसीय धमनी तथा बृहत् धमनी की दीवारों को एक-दूसरे से सिलकर उनमें एक दरार बनाने

की जरूरत थी। उस दशा मे रक्त दबाव के कारण बृहत् धमनी म से फुप्फुसीय धमनी म बहगा (पुप्फुसीय धमनी म दबाव बृहत् धमनी की अपेक्षा कम होता है) और इस प्रकार अतत वह फफडो म पहुँचगा और वहाँ उसमें आक्सीजन मिलेगी। परन्तु बच्ची का शरीर, जो आक्सीजन के अभाव के कारण शिथिल हो गया था इतन लम्बे और जटिल आपरेशन को सहन नही कर सकता था। बेहोशी की दवा के प्रभाव में वक्ष स्थल को चीर देने के कारण लडकी आधे घटे म मर जा सकती थी।

अत जब एक महीना गुजर गया तब डाक्टर किरा पलिकसोवना शियोयवा को ल्यना की माँ से कहना पडा—

"आप इसे घर ले जाइये। हम लोग कुछ नही कर सकते।"

अत ल्यना फिर घर ले आयी गयी। उसके माता पिता न उसके जीवन की अवधि को बढाने का प्रयत्न किया— कुछ महीनो कुछ सप्ताहो या कुछ दिनो के लिए ही सही।...

एक वर्ष तक वह आक्सीजन के बल पर जिदा रही।

प्राय इसी समय क्लीनिक की वैज्ञानिक प्रयोगशाला म शोध और प्रयोग होने लग और दिसम्बर के आरम्भ मे ही प्रोफसर कुप्रियानोव ने पहली बार कृत्रिम रूप से शरीर का तापमान घटाकर (हाइपोथर्मिया) हृद-पिंड का आपरेशन किया।

उस रोगी की उम्र तीन वर्ष थी और उसका नाम लुदा मेदवेदेवा था। वह बिलकुल चगी होकर क्लीनिक से घर गयी। उसके बारे में एक और भी दिलचस्प बात मैंने सुनी थी। तीन वर्ष की उम्र तक लुदा न तो बोल सकती थी और न चल सकती थी। आपरेशन के तीन सप्ताह बाद वह बोलने और भली प्रकार भागने दौडन लगी।

दूसरा आपरेशन १५-वर्षीया वाल्या स्लेपानोवा पर किया गया। वह भी अब बिलकुल स्वस्थ अनुभव करती है।

तीसरी ल्यना कुद्रयाशवा थी, जिसे दुबारा क्लीनिक म ले जाया गया। यह आपरेशन शल्य चिकित्सा के इतिहास की बडी महत्वपूर्ण घटना है। इसका पूरा ब्यौरा यहाँ दिया जाता है—

..... ल्येना को बेहोशी की दवा दी

[वैज्ञानिकों ने मुर्गी का हृदय लेकर अपनी प्रयोगशाला में २०वर्षों तक उसे जीवित रखा। और, इतने वर्षों तक उसकी धड़कन पूर्ववत् बनी ही रही।]

जा रही है। यह काम बड़ी सावधानी से किया जा रहा है—आपरेशन के कमरे में नहीं, बल्कि अस्पताल के वार्ड में। पहले फेफड़ों में शुद्ध आक्सीजन पहुँचायी जाती है और इस जीवन-दायिनी गैस की प्रचुरता के कारण बच्ची पर नशा-सा छा जाता है और उसे नींद-सी आने लगती है। इसके बाद आक्सीजन में धीरे-धीरे ईथर मिलाया जाता है। ल्येना गहरी नींद में सो जाती है।

१०॥ बजे नब्ज प्रति मिनट की रफ्तार से चल रही है और श्वास की गति ३६ है। हाइपोथर्मिया का प्रभाव होने लगा है। बड़ी सावधानी से बच्ची को पानी के एक हौज में उतारा जाता है, जिसकी सतह पर बर्फ के छोटे-छोटे टुकड़े तैर रहे हैं। दो थर्मामीटर इस्तेमाल किये जा रहे हैं—एक पानी का तापमान देखने के लिए और दूसरा ल्येना के शरीर का।

प्रोफेसर लिबोव बिना किसी उतावली के अपने हाथ धोते हैं। कल उन्होंने स्वयं एक-एक औजार और एक-एक सुई करके वे तमाम चीजें जमा की थी, जिनकी इस आपरेशन के समय जरूरत पड़ सकती थी।

११॥ बजे पानी का तापमान शून्य से छ डिग्री ऊपर है और शरीर का तापमान २०५ डिग्री ऊपर।

ल्येना को हौज में से निकाल लिया जाता है। वह निश्चित सो रही है। पर उसकी नब्ज की रफ्तार १४० से घटकर ९८ हो गयी है। श्वास की गति और भी धीमी हो गयी है। इसका मतलब है, हर चीज प्रकृत रूप से चल रही है। मैं बड़ी सावधानी से उसके नन्हें-से माथे को अपने हाथ से छूता हूँ। वह असाधारण रूप से ठंडा है।

११॥ बजे शरीर का तापमान अपने-आप घटकर शून्य से २६ डिग्री ऊपर रह गया है। नब्ज और श्वास की गति और भी धीमी हो गयी है। बूंद-बूंद करके एक पतली-सी नली में से रक्त एक नस में पहुँच रहा है। रक्त-वाहिनियों में प्रकृत दबाव बनाये रखने के लिए यह नितांत आवश्यक है। एक डाक्टर बड़ी चौकसी के साथ बच्ची की श्वास-गति को नियन्त्रित किये हुए है। एक विशेष यन्त्र की सहायता से वह उसे घटाता-बढ़ाता भी जाता है। एक दूसरा यन्त्र—एलैक्ट्रोकार्डियाग्राफ—हृद-पिंड की क्रिया पर नियन्त्रण रखता है। एक छोटे-से परदे पर हम स्पष्ट देखते हैं कि, ल्येना के हृद-पिंड में रक्त किस प्रकार पहुँच रहा है।

११ बजकर ३७ मिनट—सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी हैं। सर्गेई ल्यिानोदोविच आपरेशन आरम्भ करते हैं।

११ बजकर ४५ मिनट—तापमान में आधा डिग्री की कमी और हो गयी है। नब्ज की गति घटकर ५५ प्रति मिनट और श्वास की गति १० प्रति मिनट रह गयी है। अब श्वास का स्वर सुनायी

"सुंदरता का यह साबुन निराला है"
नया! सुगंधित!
ब्रीज़
BREEZE
"इस में ऍक्टमर मिला है"
* शरीर-गंध को रोकता है
आप को तरोताज़ा रखता है!
* जिल्द के कीटाणुओं का नाशक
जिल्द को तंदुरुस्त रखता है!
ऍक्टमर (हाईधिमनॉल) मोन्सान्टो का महान नया 'बैक्टिरिओस्टेट' है—यह एक ऐसा रसायनिक पदार्थ है जिस की कीटाणुनाशक शक्ति उच्च कोटि की है और साथ ही इस की क्रिया नरम और शांतिकारक है।
BREEZE
केवल ८ आने
स्थानीय टैक्स अतिरिक्त
ब्रीज़-ऍक्टमर युक्त सौंदर्य साबुन

नहीं देता, वक्षोदर-मध्यस्थ पेशी के क्षीण स्पंदन से उसका केवल अनुमान लगाया जा सकता है।

प्रोफेसर हृद्-पिंड के निकट आपरेशन कर रहे हैं। मुझे दिखायी दे रहा है कि, हृद् पिंड कैसे सिकुड़ता है, कैसे वह उनके हाथ से छू जाता है।

तीसरे पहर, २ बजकर ५ मिनिट—रक्त के लिए नया मार्ग खोल दिया गया है। बस, अब केवल जख्म में टांके लगाना बाकी रह गया है।

आपरेशन सफल हो गया है। बिजली के हीटर जल्दी से ल्येना के शरीर का तापमान बढ़ाकर प्रवृत्त कर देते हैं। थर्मामीटर में पारा ३६.८ डिग्री पर है। ल्येना न अपनी आँखें खोल दी है।

वह आक्सीजन के तम्बू के अंदर लेटी थी। उसके फफड़े ताजी हवा अंदर खींच रहे थे और उसका पुनर्नवीकृत हृद् पिंड नयी शक्ति के साथ उसके शरीर में रक्त संचालित कर रहा था, जिसमें अब आक्सीजन घुली हुई थी।

मैंने ल्येना से पूछा कि, उसका जी कैसा है अब ?

"बहुत दर्द हो रहा है"—उत्तर मिला।

निःसंदेह दर्द होता है। सचमुच बहुत दर्द होता है। लेकिन कुछ दिन बीतने पर दर्द खत्म हो जायेगा। और, तब ल्येना उठकर चलने लगेगी—नहीं, भागने-दौड़ने लगेगी। कुछ वर्षों बाद वह स्कूल जायेगी और भूल जायेगी कि, कभी उसके हृद् पिंड में पीड़ा होती थी।

ल्येनोच बुद्रयाशोवा, तुम्हारा
जीवन सुखी हो!

★

## व्यापारी सूझ

प्रख्यात वैज्ञानिक सेर्गेई चापलिगिन को एक बार जार-सरकार की ओर से महिलाओं के हाई स्कूल की इमारत बनवाने की इजाजत मिल गयी। उनके पास इमारत बनवाने के लिए एक अधेला भी न था, किन्तु वे निरुत्साहित न हुए। स्कूल के प्रिंसिपल की हैसियत से उन्होंने इमारत के लिए दी गयी जमीन बैंक को गिरवी रखकर इमारत बनवानी शुरू कर दी, पर इस प्रकार प्राप्त धन से सिर्फ दो मंजिलें ही बन पायीं। अब चापलिगिन ने इस अधबनी इमारत को गिरवी रखकर पूरी इमारत बनवाने लायक धन प्राप्त कर लिया। इमारत बन जाने के बाद उसकी सजावट का प्रश्न था और वैज्ञानिक चापलिगिन ने इसके लिए भी धन की व्यवस्था कर ली—उन्होंने गिरवी के दस्तावेजों को ही इस बार गिरवी रख दिया।

★ —'वैन यू डू दिस' से

# [illegible] आशा [illegible] के प्रकाश में

युद्धोत्तर अफ्रीका में महान् परिवर्तन हो रहे हैं। 'अंधियारे ने आँखें खोलीं' शीर्षक एक लेख में सरदार पणिक्कर ने अफ्रीका के इस चतुर्दिक चैतन्य के बारे में लिखा है—"... ...भावी काल गति की प्रत्येक पदचाप पर अफ्रीका के नवजाग्रत् चैतन्य की छाप रहेगी। अफ्रीकी मानव के अंतर्मदेश की अवज्ञा करके कोई भावी विश्व पंचायत में अपना ध्येय सिद्ध नहीं कर पायेगी!" यहाँ हम इसी नवोदित अफ्रीका महाद्वीप के विषय में चेस्टर बाउल्स (भूतपूर्व भारत-स्थित अमरीकी राजदूत) का रोचक मूल्यांकन दे रहे हैं।

★

हाल ही में मैंने अपनी पत्नी के साथ अफ्रीका की यात्रा की है। अपनी इस यात्रा के दौरान में हमें कई देशों से गुजरने का मौका मिला। हर देश के यूरोपीय व अफ्रीकी अधिकारियों ने इसे स्वीकार किया कि, युद्ध से पूर्व और अब की स्थिति में काफी परिवर्तन हो गये हैं। उनकी जिम्मेदारियों का रूप भी बदल गया है। युद्ध से पूर्व उनकी जिम्मेदारी थी, कर वसूल करना और अपने सुव्यवस्थित शासन के जरिये अमन-चैन बनाये रखना, पर अब उन्हें अधिक अनाज उपजाना, पाठशालाएँ खोलना, कुएँ खुदवाना, बीमारियों से सुरक्षा, टी सी मक्खियों का विनाश और गाँव के सामान को बाजार तक भेजने के लिए मजबूत सड़कें बनवाना—आदि सुधार-कार्यों की ओर अपना सारा ध्यान—अपनी सारी शक्ति व्यय करनी पड़ती है। 'अंधकारमय अफ्रीका' में होनेवाले महत्वपूर्ण परिवर्तनों का इससे अधिक ठोस प्रमाण और क्या हो सकता है?

उसकी इस नयी जाग्रति का राजनीतिक महत्व भी कुछ कम नहीं है। निश्चय ही, वह दिन अधिक दूर नहीं है, जब अफ्रीका के निवासी नागरिकता के समान व सम्पूर्ण अधिकारों की जोरदार माँग करेंगे। आज ही हर जगह अफ्रीकी यह प्रश्न पूछने लगे हैं कि, जब अफ्रीका की बहुमूल्य निधियों के बल पर यूरोप-निवासी दिनों दिन सम्पन्नता की ओर अग्रसर हो रहे हैं, तो स्वयं अफ्रीका-निवासी ही दारिद्र्य की छाया में घुट-घुट कर जीवित रहने के लिए क्यों बाध्य किये जा रहे हैं? जब ईसाई-धर्म मानव-मात्र को भाई-भाई बताता है, तो उसी धर्म के उपासक अधिकांश यूरोपीय और अमरीकी, आर्थिक व राजनीतिक मामलों में अफ्रीका-वासियों से भेद-भाव क्यों रखते हैं?

अमेरिकावालों से उनकी विशेष रूप से शिकायत है—"आप लोग सदा से 'उपनिवेश-

वाद' के विरोधी रहे है, फिर भी आपकी सरकार अफ्रीकी स्वतत्रता की समस्या पर मौन क्यो है ? आप लोग राष्ट्रसघ में यह प्रश्न क्यो नही लाते ? उनके इन प्रश्नो को उपेक्षित नही किया जा सकता, किन्तु इनका उत्तर देना भी इतना आसान नही है।

अफ्रीका-निवासी इस बात को स्वीकार करते है कि, यूरोप की सहायता के अभाव में वे प्रगति-पथ पर अग्रसर नही हो सकते। किन्तु वे इस सत्य से भी अपरिचित नही है कि, यूरोप को अफ्रीका के सहयोग की उतनी ही आवश्यकता है। और, उनकी माँग उचित ही है कि, यूरोपवासी इसे मुक्त कठ से स्वीकार करे। यूरोप-अफ्रीका का परस्पर सहयोग नितात आवश्यक है।

उत्तर और दक्षिण अफ्रीका की समस्याएँ–जो एक-दूसरे से बहुत दूर और भिन्न-सी है–आज बहुत ही जटिल और विस्फोटक है। उत्तरी फ्रेंच अफ्रीका की स्थिति–जहाँ २५,००,००० यूरोपीय तथा २,२५,००,००० अरब-बर्बर निवासी बसते है–बहुत ही अशातिपूर्ण है। दक्षिण अफ्रीकी सघ मे उतनी ही सख्या में रहनेवाले यूरोपियो की स्थिति भी आज अफ्रीकियो व एशियावालो के बीच चिंता का विषय बन बैठी है।

लाइबेरिया, एबिसीनिया, मिस्र तथा लीबिया के स्वतत्र राज्यो में कई प्रकार की जातियाँ बसती है। अन्य अज्ञात क्षेत्रो की अपेक्षा यहाँ की स्थिति कुछ भिन्न है। पर यहाँ भी कई समस्याएँ मौजूद है। तीन भूतपूर्व ब्रिटिश उपनिवेश, सूडान, गोल्ड कोस्ट व नाइजीरिया स्वतत्रता प्राप्त करने के लिए बेचैन हो उठे है। शीघ्र ही इनकी समस्याएँ भी उपर्युक्त स्वतत्र राज्यो से सयुक्त हो जायेंगी। सोमालीलैंड पर इटली की ट्रस्टीशिप की अवधि समाप्त होने मे अभी ५० वर्षों की देरी है। पश्चिमी फ्रेंच अफ्रीका, मध्य अफ्रीका तथा बलिजयन कागो के उपनिवेश अमेरिका से बडे है, परन्तु उनकी राजनीतिक प्रगति बहुत ही कम हो पायी है। पूर्वी तट पर मोजम्बिक तथा पश्चिम मे एगोला पर आधिपत्य जमाये हुए पुर्तगालियो का कथन है कि, वे सबसे पहले यहाँ आये थे और सबसे अत में ही अफ्रीका छोडेंगे।

दक्षिण रोडेशिया का केंद्रीय फडरेशन,

[ भय, भूख और शोषण से पीड़ित अफ्रीका के निवासियों को श्वेताग स्वामियों के अत्याचारों से जगलों में भी त्राण नहीं मिलता ! ]

उत्तरी रोडेशिया, न्यासालैंड, टैंग्यानिका, यूगांडा, केन्या तथा जंजीबार की समस्याएँ भी धीरे-धीरे उग्र होती जा रही हैं। दक्षिण रोडेशिया में यूरोप-वासियों और अफ्रीका-वासियों के बीच सदैव झगड़ा होता है।

अफ्रीका में ईसाई-धर्म का काफी प्रचार हुआ है। वहाँ की १/८ जनसंख्या ईसाई है और सहारा से दक्षिण के लगभग हर अफ्रीकी नेता ने क्रिश्चियन स्कूल में शिक्षा प्राप्त की है। क्रिश्चियन मिशनरियों ने ही अफ्रीका में सबसे पहले शांति पैदा की और लोगों को गुलामों के व्यापार, बीमारी और अज्ञान के प्रति सचेत किया। उन्होंने ही व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आत्म-सम्मान तथा स्वराज्य की भावना अफ्रीका-वासियों में जाग्रत् की।

किन्तु इस शक्ति को अभी कई कठिनाइयों का सामना करना है। बहुत थोड़े अफ्रीका-वासियों को ही संतुलित भोजन प्राप्त हो पाता है। व्याधियों से छुटकारा पा लेनेवाले अफ्रीकियों की संख्या भी नगण्य-सी है। फिर अफ्रीका-वासियों को उनकी प्राचीन परम्पराओं से अलग कर, शहर के सक्रिय जीवन व नौकरी के अनुकूल बनाना बड़ा ही कठिन है। अपने जातीय संघ, रीति-रिवाज, धर्म आदि में अविश्वास पैदा होने पर अफ्रीकी उनसे अलग तो हो जाते हैं, पर साथ ही, उनमें एक निराशा और जीवन के प्रति लापरवाही भी घर कर लेती है। यूरोप निवासी इन्हीं बातों का सहारा लेकर अपने तर्क की पुष्टि करते हैं कि, अफ्रीकियों में शासन-भार संभालने की क्षमता नहीं है। पर वे यह सम्भवतः देखकर भी नहीं देखते कि, जिन-जिन देशों में अफ्रीकियों को कार्य करने का मौका दिया गया है, उनमें वे अपनी योग्यता सिद्ध करने में असफल नहीं रहे हैं।

हाँ, पश्चिमी ब्रिटिश अफ्रीका में निश्चय ही यूरोपवासियों और अफ्रीकियों में ऐसी कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। पहले यह प्रदेश बीमारियों के कारण 'श्वेत लोगों की कब्र' कहलाता था। यूरोप-वासी यहाँ गुलामों और सोने के व्यापार के उद्देश्य से आये थे। प्रारम्भ में कुछ अर्से तक रहने के बाद वे पुनः अपने देश लौट जाते थे। किन्तु आज यहाँ १०,००० ब्रिटिश निवास करते हैं और यहाँ के ३,८०,००,००० अफ्रीकियों से उनके सम्बन्ध बहुत ही मैत्रीपूर्ण हैं।

यहाँ के ब्रिटिश अधिकारी अपने सुयोग्य शासन तथा कठिन परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता के बलपर पश्चिमी अफ्रीका के उपनिवेशों को दिनो-दिन प्रगति-पथ पर आगे बढ़ा रहे हैं। गोल्डकोस्ट और नाइजीरिया में सभी राजकीय विभागों के प्रमुख अधिकारी अफ्रीकी ही हैं। गोल्डकोस्ट के प्रधान मंत्री क्वामे न्क्रूमा ने अमेरिका के लिंकन विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की है और अमरीकी श्रमिक-संघ के सदस्य भी रह चुके हैं। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि, दो वर्षों में ही उनका देश स्वतंत्रता प्राप्त कर लेगा। नाइजीरिया भी आंतरिक झगड़ों के बावजूद स्वतंत्रता

की ओर अग्रसर हो रहा है।

ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका में अच्छे जलवायु के कारण काफी यूरोप-वासी बस गये हैं। उन्होंने यहाँ अपना व्यापार भी जमा रखा है। इन यूरोप वासियों में गिनती के व्यक्तियों को छोड़कर शेष अपने आर्थिक और राजनीतिक महत्वपूर्ण स्थान को किसी हालत में नहीं छोड़ना चाहते। दक्षिण रोडेशिया की पाँच करोड़ एकड़ अच्छी व बहुत ही उर्वर जमीन यहाँ के सिर्फ २५ ००० यूरोपियों की सम्पत्ति है और इस भूभाग का केवल दस प्रतिशत हिस्सा ही खेती के काम आता है। जो यहाँ के सत्रह लाख अफ्रीकियों के पास लगभग तीन करोड़ ६० लाख एकड़ जमीन है, किन्तु इस भूभाग का अधिकांश रेतीला और बंजर है। अमीरी किसान यूरोपियों की इस नीति से भीतर-ही-भीतर काफी क्षुब्ध हैं और उनका असंतोष बढ़ता ही जा रहा है।

उत्तरी रोडेशिया में ताम्बे की खदान में काम करनेवाला एक अफ्रीकी मजदूर किसी यूरोपीय मजदूर की तुलना में उसके वेतन का सिर्फ बीसवाँ हिस्सा पाता है। केन्या और दक्षिणी रोडेशिया के यूरोप-निवासी कुछ सुधारक अवश्य हैं, पर वे भी राजनीतिक और आर्थिक मामलों में दूरदर्शिता की नीति नहीं अपनाना चाहते। अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाये रखने के वे भी उतने ही इच्छुक हैं। परिणामस्वरूप केन्या में हिंसा व क्षोभ की जबर्दस्त भावना फैली हुई है। आज यहाँ के ४०,००० यूरोपीय व १,२०,००० एशियाई ५०,००,००० अफ्रीकियों के कोप सदा सशंकित रहते हैं। क्षणभर के लिए भी वे स्वयं को अपनी पिस्तौल से अलग रखने का साहस नहीं कर पाते।

['माऊ माऊ' आंदोलन के नेता जोमो केनियाटा]

केन्या में अच्छी व उर्वर जमीन केवल छः या सात हजार यूरोपीय परिवारों के अधिकार में है, पर उसका अधिकांश भाग बेकार ही पड़ा रहता है। एक शिक्षित किकुयू नवयुवक ने मुझसे कहा—"ये यूरोप निवासी हजारों एकड़ जमीन के मालिक बने, हमें कोई एतराज नहीं है किन्तु वे सारी जमीन का उचित उपयोग तो करें। आधी से कहीं अधिक जमीन तो वे बेकार ही रखते हैं और इधर हम लोग सीमित-पथरीली जमीन पर ही अपना खून पसीना एक कर अन्न उपजाने का व्यर्थ प्रयास-सा करते हैं।" बात सर्वथा सत्य है। यूरोप-निवासियों को समय रहते चेत जाना चाहिए, अन्यथा यहाँ के निवासियों का विरोध और भी उग्र हो उठेगा।

मध्य अफ्रीका में फ्रांस अपनी संस्कृति व शिक्षा के प्रसार में जुटा हुआ है। फ्रेंच भाषा की शिक्षा प्राप्त करने पर अफ्रीकी, फ्रांसीसी विदेश-विभाग के नागरिक मान लिये जाते हैं और उन्हें पूर्ण सामाजिक अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। कुछ पदों के लिए स्वतन्त्र चुनाव भी हुए हैं जिनमें चार लाख लोगों ने मतदान दिया। पर फ्रेंच लोग वहाँ की जनता से समानता का व्यवहार बरतने को अभी भी तैयार नहीं हैं।

बेल्जियन कांगो में आर्थिक उन्नति की बहुत सम्भावनाएँ हैं। बेल्जियन सरकार वहाँ की आर्थिक उन्नति में जी-जान से संलग्न भी है। वहाँ अफ्रीकियों को विकास का पूरा-पूरा अवसर दिया जा रहा है।

अफ्रीका-वासियों का ध्यान बाहरी दुनिया की ओर भी आकर्षित हो उठा है। 'बांडुंग-सम्मेलन' इसका ठोस प्रमाण है।

एक रात मैं गोल्डकोस्ट-मन्त्रि-मंडल के अफ्रीकी सदस्यों के साथ भारतीय कमिश्नर के निवासस्थान पर कुछ भारतीय चलचित्र देख रहा था। एक चित्र में भारत के प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू से लन्दन में एक रिपोर्टर प्रश्न कर रहा था—"क्या आपकी यह धारणा है कि, भारत के प्रधान मन्त्री की हैसियत से अफ्रीका की स्वतन्त्रता का प्रश्न बार-बार उठाकर आप अफ्रीका की समस्या सुलझाने में सहायता कर रहे हैं?" श्री नेहरू का उत्तर था—"मैं अफ्रीका में वर्तमान असंतोषपूर्ण स्थिति नहीं बनी रहने देना चाहता हूँ और यदि मैं भारत का प्रधान मन्त्री न होता, तो इस सम्बन्ध में अपनी आवाज और भी बुलन्द करता।"

गोल्डकोस्ट-मन्त्रि-मंडल के सदस्यों को इस बात से बहुत प्रसन्नता हुई कि, आखिर किसी एशियाई देश के नेता ने उनके विचारों व आकांक्षाओं को समझा तो सही।

दूसरे चलचित्र में इंडोनेशिया के प्रधान मन्त्री अली शास्त्रमिजोजो का दिल्ली में श्री नेहरू द्वारा भव्य स्वागत का दृश्य था। भारतीय सेना उन्हें सलामी दे रही थी। सुदृढ़-सबल भारत के दृढ़ आत्मविश्वास का प्रतिनिधित्व करनेवाले इस दृश्य से अफ्रीकी दर्शक बहुत प्रभावित हुए।

तीसरी फिल्म में उत्तरी भारत में दामोदर नदी के बढ़ते पानी से बरबादी का दृश्य दिखाया गया था। दृश्य बदला और अब यह दिखाया जा रहा था कि, किस प्रकार भारत अपनी नदी-घाटी-योजनाओं-द्वारा प्रकृति के इस कोप के विरुद्ध सफलतापूर्वक लड़ रहा है। अफ्रीका-निवासियों पर इस चित्र का आशानुकूल प्रभाव पड़ा। उनमें दृढ़ आत्मविश्वास की एक लहर दौड़ गयी। उनके सामने यह प्रत्यक्ष हो उठा था कि, एशिया का एक नव-जागरित राष्ट्र किस तरह प्रगति-पथ पर अग्रसर हो रहा है।

इस बढ़ते अफ्रीकी-एशियाई सम्बन्ध के फलस्वरूप दो वर्ष के भीतर ही ब्रिटिश सत्ताधारियों के सामने एक समस्या खड़ी हो जायेगी। गोल्डकोस्ट स्वतन्त्रता प्राप्त करते ही ब्रिटिश कामनवेल्थ की सदस्यता

की माँग करेगा। रंग-भेद के पक्षपाती दक्षिण अफ्रीका का कथन है कि, यदि गोल्डकोस्ट को कामनवेल्थ में स्थान दिया गया, तो वह अपनी सदस्यता त्याग देगा।

ब्रिटेन के लिए वस्तुत यह कठिन परीक्षा का अवसर उपस्थित होगा। दक्षिण अफ्रीका एक ओर होगा और दूसरी ओर, गोल्ड-कोस्ट, भारत, पाकिस्तान तथा लंका होंगे।

अफ्रीकी आज अमेरिका की ओर आशा-भरी दृष्टि लगाये हैं। हमें भी अफ्रीका की ओर ध्यान देना ही चाहिए।

इस सम्बन्ध में मुझे यह स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं है कि, अफ्रीका के सम्बन्ध में हमारी अब तक कोई नीति नहीं है। वर्षों से हमारी यह धारणा रही है कि, अफ्रीका ब्रिटेन, फ्रांस, पुर्तगाल और बेल्जियम का विस्तारित रूप है और उसके सम्बन्ध में यूरोपीय नीति ही उपयुक्त है। इसी तर्क के अनुसार हमने यह मान लिया था कि, हिंदचीन एकमात्र फ्रांस की समस्या है, पूरे एशिया की नहीं। अब अगर यही नीति हमने अफ्रीका में बरती, तो यहाँ भी हमें काफी महँगी कीमत चुकानी पड़ेगी।

अफ्रीकी एक दिन अपनी शासन-नीति स्वयं निर्धारित करेंगे, यह तय-सी बात है। यदि अमेरिका, अफ्रीकियों के हृदय में यह विश्वास दिला देता है कि, वह उनकी स्वतंत्रता-प्राप्ति के पक्ष में है, तो हम अफ्रीकियों की उन माँगों को, जिनके योग्य अब तक वे नहीं बन पाये हैं, वापस ले लेने की बात भी समझा सकते हैं।

यदि गोल्डकोस्ट और नाइजीरिया भारत के समान स्वतंत्र गणतंत्र राष्ट्र के रूप में अपनी योग्यता प्रमाणित कर देते हैं, तो अफ्रीकियों की शासन भार सँभालने की योग्यता में अविश्वास प्रकट करनेवालों को अपने विचार बदलने होंगे। इन पश्चिमी अफ्रीकी राष्ट्रों को अपने उद्देश्य में सफल होने के लिए अमेरिका जो भी सहायता करेगा उसका परिणाम निश्चय ही उत्तम और अनुकूल होगा।

हम आज एक ऐसे क्रांतिकारी युग में रह रहे हैं, जिसमें आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति को किसी प्रकार नहीं रोका जा सकता। एक बेल्जियन अधिकारी ने कहा था—"हम अफ्रीकियों की माँगों को पूर्ण रूप से पूरा करना होगा, अन्यथा वे क्रांति की आग में हमें भस्म कर देंगे। उनकी माँगों को पहले से ही समझ लेना बुद्धिमत्तापूर्ण नीति होगी।"

इस दिशा में अमेरिका को भी महत्वपूर्ण कार्य करना है। हम सूझबूझ की नीति से यूरोप तथा अफ्रीका, दोनों में प्रगतिशील सौहार्द्र स्थापित करने में काफी सहायक हो सकते हैं। इससे स्वतंत्र क्षेत्र का विस्तार बढ़ेगा और सबकी आर्थिक उन्नति होगी।

जो लोग केवल अपने स्वार्थ के लिए अफ्रीका से मैत्री बनाये रखना चाहते हैं, उन्हें भी यह नहीं भूलना चाहिए कि, अफ्रीका की बहुमूल्य खनिज सम्पत्ति उन्हें तभी तक प्राप्त हो सकती है, जब तक कि, वहाँ के महान् निवासी उनके मित्र हैं।

★

# हार्मोन्स : स्थायी शांति के स्थापक

सेरा रीजमो द्वारा लिखित 'डिरकमराज महेश' नामक शोधपूर्ण पुस्तक की भूमिका का संक्षिप्त हिन्दी रूपांतर

*

पिछली ८ जुलाई को तुमुल-करतल-ध्वनि के बीच बर्लिन के जीवतत्व-विशेषज्ञ डा शवफान ने 'जीवतत्व-विज्ञान-परिषद्' के अध्यक्ष-पद से घोषित किया—"मेरा विश्वास है, राजनीति, व्यापार एवं धर्म जहाँ असफल हो गये हैं, वहाँ हार्मोन्स विश्व-शांति की स्थायी परिस्थितियाँ पैदा करने में सफल रहेगा।"

एक विश्वमान्य जीव-विशेषज्ञ के मुख से निकले इन शब्दों ने सारे वैज्ञानिक एवं गैर-वैज्ञानिक विश्व को हर्ष-प्रेरित आश्चर्य में डाल दिया—क्या यह भविष्यवाणी सम्भाव्य है?

लेकिन ये हार्मोन्स वस्तुतः हैं क्या? शरीर की कुछ ग्रंथियाँ अपने छिद्रों द्वारा एक प्रकार का स्राव शरीर के बाहर बहाती हैं। मनुष्य के शरीर में इस प्रकार की सर्वाधिक ग्रंथियाँ पसीने की हैं। लेकिन कुछ ग्रंथियाँ ऐसी भी हैं, जो छेद न होने के कारण अपना स्राव शरीर के भीतर ही रक्त में प्रसारित करती हैं। इनमें थाइरायड, मुत्रारोनल एवं कफ-प्रधान ग्रंथियाँ मुख्य हैं। ये ग्रंथियाँ एक अंग से दूसरे अंग तक रक्त प्रवाह के द्वारा कुछ रासायनिक द्रव्य भेजती हैं। इसी स्राव को हार्मोन्स कहते हैं।

ये हार्मोन्स रक्त-नालियों में इतनी कम संख्या में पाए जाते हैं कि, वहाँ उनको ढूँढ निकालना मुश्किल है। लेकिन किसी ग्रंथि को शरीर से विच्छेद कर देने पर या ग्रंथि-रस को इंजेक्शन द्वारा शरीर में पहुँचाने पर रोगी के स्वास्थ्य में जो परिवर्तन होता है, उससे इस ग्रंथि-स्राव की उपस्थिति भलीभाँति सिद्ध की जा सकती है।

वैज्ञानिकों को इस अद्भुत ग्रंथि-स्राव (हार्मोन्स) पर अनुसंधान करते हुए पचास से भी अधिक वर्ष हो गये हैं और आज भी इस विषय पर अधिकाधिक खोज हो रही है। सबसे पहले तो उन्होंने यह मालूम किया कि, रक्त में पाचन-रस का जो स्राव होता है, वह भी हार्मोन्स के ही कारण होता है। उसके बाद एड्रेनेलिन ग्रंथि, जो गुर्दे के ऊपर रहती है, उसके रस का इंजेक्शन देकर उन्होंने यह बताया कि, उससे धमनियों में रक्त का दबाव बढ़ जाता है। थाइरायड

ग्रंथि से जिस हार्मोन्स का स्राव होता है, उससे शरीर को पोषण-तत्व मिलता है, यह भी अब सिद्ध हो चुका है।

गत महायुद्ध के पूर्व वैज्ञानिकों न यह खोज कर ली थी कि, नारी के अंडाशय से जिस हार्मोन्स का रक्त में स्राव होता है, उससे केवल स्त्री-मात्र के ही शरीर की गठन एवं अभिवृद्धि नहीं होती, बल्कि पौधों तक म वह पोषण देता पाया जाता है। अल्प मात्रा में इस हार्मोन्स को पौधों की देन पर वे खूब बढ़ते हैं। पौधों की नस्ल सुधारने में प्रयोग करते समय ही वैज्ञानिकों को—पौधों के निकट जो फालतू घास उग आती है और जो पौधों की वृद्धि के लिए अत्यंत ही हानिकारक है—उसे नष्ट करने म हार्मोन्स की सहायता लेने की बात सूझी।

सन् १९४० में तीन अंग्रेज वैज्ञानिक जई की फसल पर जब हार्मोन्स का प्रयोग कर रहे थे, तो उन्होंने देखा कि, अधिक मात्रा में यही हार्मोन्स यदि बेकार घास पर डाल दिये जायें, तो जई की फसल को तो कोई नुकसान नहीं पहुँचता, लेकिन घास नष्ट हो जाती है।

गत वर्ष आक्सफोर्ड में, सर राबर्ट रोबिन्सन के तत्वावधान में कुछ वैज्ञानिकों ने 'डायसन पेरिन्स लेबोरेटरी' में रासायनिक ( सिंथेटिक ) पुरुष-हार्मोन्स बनाने म सफलता प्राप्त कर ली है। औषध-आविष्कारों के क्षेत्र म यह निर्माण सर्वोपरि महत्व का है। इससे हार्मोन्स का उपयोग समाज के प्रत्येक स्तर के लोग कर सकेंगे—यों कहिये कि, हार्मोन्स केवल कुबेरों का ही कल्पवृक्ष न रहकर साधारण-से साधारण मजदूर के रोग की भी अब दवा बन गया है।

[ जीवन और मृत्यु की गुत्थी सुलझाने में तल्लीन स्वीडिश वैज्ञानिक डा० टार्नवार्न ओ० कैसपरसन ]
चित्र हावर्ड साइमन

सर रोबिन्सन का विश्वास है कि, भविष्य में तपेदिक, कैंसर, हृदय-रोग-जैसे साघातिक रोगों के प्रतिकार में ही नहीं, बल्कि हार्मोन्स मानस-रोगों पर भी रामबाण साबित होंगे। 'लेंसेट' में इसी प्रसंग पर लिखते हुए उन्होंने घोषित किया है—"युद्ध की जड़ें, मनुष्य के स्वभाव में हैं और वहाँ वे इसलिए हैं कि, पुरुषों के भीतर नारी-हार्मोन्स की कमी है और महिलाओं के भीतर कुछ खास प्रकार के पुरुष हार्मोन्स की। हम इसी कमी को पूरा करने की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। इस ध्येय की पूर्ति के बाद मेरा तो अनुमान है कि, गृहस्थी के ही झगड़ों से नहीं, वरन्

सांसारिक झगडों में भी यह नर-नारी-जगत मुक्त हो जायेगा।"

डा राबिन्सन का स्वप्न चाहे जितना दूरस्थ हो, किन्तु हार्मोन्स की वर्तमान देनें भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

इधर, हार्मोन्स की सहायता से अधिक अन्न-उत्पादन में बहुत सफलता मिली है। बहुत सम्भव है कि, वनस्पति एवं प्राणियों की संवृद्धि में भी वह बहुत लाभदायक सिद्ध हो।

संयुक्त राज्य अमेरिका में तो कहा जाता है कि, भेडों को पुरुष-हार्मोन्स के इंजेक्शन देने पर वे साल में दो बार बच्चे देती हैं। इसके अलावा गाय के बच्चा देने पर कुछ काल तक जो बांझ-अवस्था रहती है, हार्मोन्स के इंजेक्शन से वह अब नहीं रहती और सूअरियों का बांझपन भी अस्सी प्रतिशत मिट गया है।

★

## तुम्हीं बता दो न !

आखिर हरफोर्ड का नाम अमेरिका के विख्यात हँसोडों में सदा अमर रहेगा। एक बार उनके सम्मान में एक प्रकाशक ने पार्टी दी। पार्टी एक शानदार होटल में हुई थी। वह स्थान हरफोर्ड को इतना पसंद आया कि, पार्टी खतम होने और दूसरे सभी मेहमानों के चले जाने पर भी वह वहीं टिका रहा। कुछ दिन रहने के बाद, जब वह वहाँ से जाने लगा, तो होटल के कर्मचारी ने उसे पार्टी के पश्चात् वहाँ ठहरने का बिल पेश किया। हरफोर्ड हैरान था। उसने सोचा था कि, सारा खर्च प्रकाशक बर्दाश्त करेगा। लेकिन पार्टी खतम होने के बाद उसके वहाँ ठहरने का खर्च प्रकाशक क्यों देता? होटलवालों ने कहा कि, यह रकम तो उसे ही चुकानी पड़ेगी।

"लेकिन मेरे पास इतने रुपये नहीं हैं।" हरफोर्ड ने कहा।

"कोई बात नहीं—आप चेक लिख दीजिये।" होटल-मैनेजर ने कहा।

"लेकिन चेकबुक भी मेरे पास नहीं है।" हरफोर्ड ने बताया।

होटल-मैनेजर ने अपने पास से एक सादे चेकबुक का पन्ना निकाल कर दे दिया। हरफोर्ड ने चेक पर अपने हस्ताक्षर कर दिये। रकम भी लिख दी।

"लेकिन जनाब! आपने बैंक का नाम नहीं लिखा।" मैनेजर ने आपत्ति की।

हरफोर्ड का जवाब था—"तुम्हीं किसी अच्छे-से बैंक का नाम बता दो न!"

★

—'न्यूयार्कर' से

# सनकियाँ या न सनकियाँ
## यह साहित्य का प्रेरणालोक है

" सोचने और लिखने के बीच में जितना अंतर है, उतना जमीन आसमान के बीच में भी नहीं। मन का निराकार जगत अक्षरों में साकार होकर बोलने लगे, मानो एक समूचे विश्व का निर्माण है। मनुष्य-सृष्टि के निर्माता और इस शब्द सृष्टि के निर्माता में कौन श्रेष्ठ है, क्या कभी किसी भी मृण्मय मुख ने इसका तुष्टिजनक उत्तर दिया?" साहित्य स्रष्टाओं के विषय में ये हैं महर्षि इमर्सन के उद्गार। अब जरा नीचे इन स्रष्टाओं की सनक भी देख लीजिए। इस लेख के लेखक हैं श्री नारायण भक्त।

*

फ्रांस का अद्वितीय कथाकार बालजाक तड़क-भड़क खूब पसंद करता था। जिस समय वह लिखने बैठता था, नाना रंगों की रंगीन पोशाक और लाल रंग का जूता पहन लेता था। दिन में वह बिल्कुल नहीं लिखता था। शाम होते ही सो जाता और रात में बारह बजे उठता और उस समय, जब सारा पेरिस शहर निद्रा की गोद में सोता रहता, वह लिखना शुरू-कर देता।

लिखते समय उसकी मेज पर छः मोमबत्तियाँ जलती रहतीं—ठीक छः—न एक कम, न एक अधिक! लिखने के लिए बढ़िया कागज सुंदर कटा हुआ वहाँ रखा रहता। इसके साथ पाँच-छः बोतलों में स्याही और पाख के दस-बारह कलम।

ज्यों-ज्यों रात बीतती, उसकी बुद्धि का स्फुरण होता और विचार-धारा के मोती अविराम गति से प्रवाहित एवं लेखनी द्वारा लिपिबद्ध होते रहते। हाँ, लिखते समय काफी का प्याला भी अवश्य होना चाहिए। कहते हैं कि, सारे जीवन में उसने कम-से-कम पचास हजार काफी की प्यालियाँ को गटका होगा। इस प्रकार काफी की प्यालियों के साथ भोर तक लिखना चलता रहता। कमरे में प्रकाश पहुँचने पर नौकर उसमें प्रवेश करता और मेज पर लिखे हुए कागज के पन्नों को समेटकर ठीक से रख देता।

जे बी प्रिस्टले उन प्रसिद्ध लेखकों में से हैं, जो लिखते समय बहुत ही सिगरेट पीने के आदी हैं। जान इरविन ने एक बार बताया कि, किस प्रकार मैंने प्रिस्टले की नकल करनी चाही। लेकिन पहली ही बार धुँआ मेरी आँखों में घुस गया और मैंने उसी क्षण तम्बाकू सहित पाइप हमेशा के लिए बाहर फेंक दिया।

अंग्रेजी साहित्य का धुरंधर विद्वान जानसन जब रास्ते से होकर गुजरता, तब सड़क के दोनों तरफ के प्रत्येक लैम्प-पोस्ट का स्पर्श किये बिना नहीं रहता। यदि स्पर्श करने से कोई छूट

[ विक्टर ह्यूगो ]

जाता, तो फिर लौटकर उसे छूता और तब आगे बढ़ता। इससे भी बढ़कर एक विचित्र बात उसमें यह पायी जाती थी कि, वह जिस समय लिखने बैठता, मेज पर एक बिल्ली को अवश्य बैठा लेता।

एल्यर मक्केन ऐसे वातावरण में बहुत अच्छा लिखते थे, जब रेडियो खूब जोर से बज रहा हो--घर के आदमी शोर मचा रहे हों। लेकिन ठीक इसके विपरीत थामस कार्लाइल थे। उनके लिखते समय बिल्ली भी आ जाये, तो वे सारा मानसिक सतुलन खो बैठते थे।

ए. डी. डब्ल्यू. मैसन की स्मरण-शक्ति बहुत तेज थी। वर्षों की लिखी हुई चीजों को वे ज्यों-की-त्यों लिख देते थे। लार्ड बायरन कहा करते थे कि, मैं अपनी सभी रचनाएँ जबानी सुना सकता हूँ। लेकिन सर वाल्टर स्काट का हाल बिल्कुल उल्टा था। उनकी स्मरण-शक्ति बहुत कमजोर थी। यहाँ तक कि, एक बार अपनी ही लिखी एक कविता को बायरन की रचना समझ उन्होंने उसकी बड़ी प्रशसा की।

लार्ड बेकन के बारे में कहा जाता है कि, वे अपनी एक पूरी पुस्तक स्मृति के बल पर लिखते गये। लेकिन 'रिप-वान विकिल' नाटक के रचयिता जोसेफ जेफ्सन की स्थिति इससे उल्टी थी। वे प्राय बारह साल तक इस नाटक का अभिनय करते रहे, पर नित्य इसकी पंक्तियाँ भूल जाते थे।

विख्यात नाटककार इब्सन अपने सामने नाना प्रकार के जीव-जंतुओं के चित्र रखकर तब लिखने बैठते। अंग्रेज उपन्यासकार डिकेन्स अपने कमरे को अच्छी तरह सजाकर तब उसमें लिखने बैठते। उन्हें जवाहरात के गहने पहनने का बड़ा ही शौक था।

फ्रांसीसी उपन्यासकार अलेक्जेंडर ड्यूमा की आदतें तो और भी विचित्र

[ ड्यूमा ]

प्रेमचन्द
[चित्र : एक जापानी चित्र-कार द्वारा निर्मित स्केच]

थी। जब कुछ लिखने की तरंग उनके मन में उठती, तो वे अपने कमरे में प्रवेश करते और कपड़ा-जूता खोलकर दरवाजा बंद कर लेते। केवल एक कमीज और पाजामा पहने रहते। नौकर को सावधान कर देते—"लाख बार चाहने पर भी मुझे कोट और जूता नहीं देना।" इसका मतलब यह था कि, इच्छा करने पर भी वे बाहर न जा सकें। इस प्रकार वे घर में रुकने पर लगातार चार-पाँच दिनों तक बाहर नहीं निकलते और लिखते चले जाते। वे सफेद कागज पर कभी नहीं लिखते। उनका विश्वास था कि, वे उपन्यास सिर्फ नीले, कविता पीले और लेख गुलाबी कागज पर ही लिख सकते हैं।

ड्यूमा के ही देशवासी विक्टर ह्यूगो ने लिखने के लिए कंधे तक की ऊँचाई की एक मेज तैयार करवायी थी। खड़ा रहकर लिखने का उन्हें अभ्यास हो गया था। इस रूप में ही उन्होंने अमर उपन्यास—'ला मिजरेबुल'—की रचना की थी। जब वे लिखना शुरू कर देते, तो बाहरी दुनिया के साथ उनका सम्बन्ध सम्पूर्ण विच्छिन्न हो जाता। कभी-कभी वे लगातार चौदह-पन्द्रह घंटों तक लिखते ही रहते।

अमरीकी हास्यरस के लेखक मार्क ट्वेन बिछौने पर लेटे हुए लिखते रहते थे। वे दिन में देर तक सोये रहते। बिछौने के पास ही लिखने के सारे सामान रखे रहते। उठते ही लिखना शुरू कर देते।

सुनते हैं कि, शरत्चन्द्र ने भी अपनी अधिकांश रचनाएँ एक ही आरामकुर्सी पर बैठकर पूरी की थीं। ऐसी ही आदत के शिकार सामरसेट माम भी हैं। अभी तक अपना सारा लेखन-कार्य वे उस पुरानी कुर्सी पर बैठकर ही करते हैं, जिस पर बैठकर सन् १८६६ में उन्होंने अपना पहला उपन्यास 'लिज़ा आव लैम्बेथ' पूरा किया था।

[सुमित्रानन्दन पंत]

'गोदान' के अमर लेखक मुंशी प्रमचन्द के बारे में कहा जाता है कि, उनके लिखने का कोई खास समय नहीं रहता था। यों तो उन्होंने लेखनी को कभी विश्राम ही नहीं लेने दिया और मृत्यु-शैया पर पड़े हुए भी साहित्य-सर्जन में दत्तचित्त रहे। शोरगुल कितना भी रहे, उनके लिखने में बाधा नहीं पहुँचती थी। ऐसा सुना जाता है कि, उनकी अधिकाश रचनाएँ पुरानी खाट पर बैठकर लिखी गयी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की आदतें बड़ी विचित्र थी। वे लिखने के समय अपने कमरे को खूब सजाकर राजसी वस्त्र धारण करके और धूप जलाकर एकात में लिखना पसद करते थे। चारो ओर पुस्तकों के ढेर लगे रहते और उसी के बीच वे साहित्य प्रणयन में ध्यानमग्न रहते।

कवीन्द्र रवीन्द्र किसी गीत की पंक्ति को गुनगुनाते हुए लिखने के आदी थे। मौन होकर उनसे लिखा नहीं जाता था। थोड़ी देर लिखने के उपरात लेखनी अवरुद्ध हो जाती थी। उनके मस्तिष्क में जब लिखने का विचार आता, तभी उन्हें लिख लेने का अभ्यास था। दूसरो को बोलकर लिखाना भी उन्हें पसद था, परन्तु गलतियाँ निकलने पर लिखनेवाले का उनका मधुर डॉट भी सुननी पड़ती थी।

उपन्यासकार बकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय अपने लिखने के कमरे को खूब तस्वीरो से सजाकर रखते। नौकरों को एकदम मनाही रहती थी कि, लिखने के समय कोई भी बाहरी व्यक्ति वहाँ पर नहीं पहुँचने पाये।

कविवर सुमित्रानन्दन पत पलग पर लेटकर लिखते हैं। प्रकृति के खुले वातावरण में मद गति से लिखने का उनका अभ्यास है। इसी प्रकार महाकवि 'निराला' को जब लिखना होता है, तब वे कुटी से सटी हुई गली में चहलकदमी करने लगते हैं। किन्तु अब नहीं; क्योंकि इन दिनों वे चलने-फिरने से लाचार हैं।

मगर विचित्र आदतों में सबसे बाजी मार गये हैं, प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक पियर लोनी। उनका दृढ़ विश्वास था कि, उच्च विचारों के लिए उच्च आसन चाहिए। इसलिए पेड़ की सबसे ऊँची डाल पर बैठकर यदि लिखा जाये, तो मस्तिष्क को पूरी खुराक मिल सकती है। इसके लिए उन्होंने अपने घर के अदर ही एक नकली पेड़ तैयार करा लिया था और उसकी एक ऊँची डाल पर बैठकर वे लिखा करते थे।

★

कहते हैं कि, डा० हजारीप्रसादजी का पहला नाम बैजनाथप्रसाद था। एक बार आपके पिताजी को कहीं से अचानक एक हजार रुपये प्राप्त हो गये। पिता ने इसे बच्चे का सौभाग्य समझा और तभी से आपको 'हजारीप्रसाद' कहने लगे। —रामनारायण उपाध्याय ('सरस्वती' से साभार)

★

# एक ढोल खरीदो और मुनादी करो

नचिकेता और एकलव्य की मन्त्रदीक्षा प्रसिद्ध है। आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए नचिकेता को यमराज के पास जाना पड़ा और एकलव्य को मृत्तिका की गुरु मूर्ति बनाकर धनुर्विद्या का अभ्यास करना पड़ा। गांधीजी ने भी श्री महावीर त्यागी को ऐसा ही व्यंग वैचित्र्यपूर्ण काम सौंपा था—"एक ढोल खरीदो और मुनादी करो।" प्रस्तुत लेख में स्वयं श्री महावीर त्यागी ने इस मन्त्रदीक्षा का विवरण दिया है।

★

आज राष्ट्र-निर्माण की बहुत चर्चा है। नेतागण बड़ी आसानी से कह देते हैं कि, आपस में मेल कर रचनात्मक कार्य में जुट जाओ। मेरी राय में, यह सब व्यर्थ की बात है। भला, प्रस्तावों द्वारा आज तक कभी आपस में मेल हुआ है? क्या मेल और मैत्री पर मनुष्य का ऐसा अधिकार है, जैसे उसको अपनी जबान या कलम पर है कि, चाहे जब लिख दिया और चाहे जब काट दिया? मैं बहुत पढ़ा-लिखा नहीं हूं; पर मेरा अनुभव है कि, मनुष्य को व्यक्तिगत रूप से अपने चलन पर पूरा अधिकार प्राप्त नहीं है। करोड़ो व्यक्तियों का किसी एक मार्ग पर चलाने के लिए एक विशेष प्रकार का वातावरण बनाने की आवश्यकता है। सहयोग जन-समूह का स्वाभाविक लक्षण है, इसलिए देशवासियों में मेल और सहयोग की भावना जाग्रत् करने के लिए हमें उपयुक्त वातावरण बनाना पड़ेगा। और, उस वातावरण के अन्तर्गत हममें स्वभावत मेल हो जायेगा।

यह समझ लीजिये, मनोविज्ञान के शास्त्र के अनुसार यह खयाल बिल्कुल गलत है कि, व्यक्तिगत रूप से हम लोग जानबूझकर झगड़ा या मेल करते हैं।

[चौराहे पर श्री महावीर त्यागी अपने ढोल के साथ]

यदि आप पूरी छान-बीन करें, तो यह सिद्ध हो सकता है कि, आपमें से कोई भी अपने विचारों में स्वतंत्र नहीं है। जो लोग अपने को स्वतंत्र मानते हैं, उन्हें भी आंतरिक दिग्दर्शन करने पर यह मानना पड़ेगा कि, वे १६ आने स्वतंत्र नहीं हैं। अव्वल तो जिन्हें वे विचार कहते हैं, उनमें लेशमात्र उनका योग नहीं है। उनके सब विचार और सारी बुद्धिमत्ता तथा ज्ञान या तो दूसरों से माँगे हुए, चुराये हुए या उधार ली हुई सम्पत्ति है। विचार, व्यवहार और चलन की स्वतंत्रता तो सिवाय पागल के इस दुनिया में किसी दूसरे मनुष्य को प्राप्त नहीं है। हमारे व्यक्तिगत चलन को संचालित करनेवाली एक शक्ति है, जिसे 'सामूहिक व्यक्ति' कह सकते हैं। इस 'सामूहिक व्यक्ति' के व्यवहार और चलन हमसे भिन्न हैं। 'सामूहिक व्यक्ति' की सभ्यता और नैतिक स्तर भी हमसे भिन्न है।

मोटी मिसाल के तौर पर आप किसी फुटबाल-मैच का ध्यान करें, जहाँ हजारों की भीड़ जमा हो। उस भीड़ का नैतिक शास्त्र आप लोगों के नैतिक शास्त्र से बिलकुल भिन्न होता है। फुटबाल के मैच में तो प्रत्येक व्यक्ति तालियाँ बजा सकता है। "गो ऑन", "वेल प्लेड" वगैरह चिल्ला सकता है, अपनी टोपी तक उछाल सकता है। बड़े-से-बड़ा नेता या मिनिस्टर भी कुर्सी पर खड़ा होकर तरह-तरह की आवाजें कर सकता है, किलकारी मारकर शाबाशी दे सकता है—बिना इस डर के कि, लोग उसकी खिल्ली उड़ा देंगे। लेकिन अगर उन दर्शकों में से कोई भी सड़क पर अकेला कुर्सी बिछाकर "गो ऑन", "गो ऑन" चिल्लाने लगे, तो लोग समझेंगे—कोई पागल है।

मेरा तात्पर्य यह है कि, जब हम सब मिलकर एक समूह बनाते हैं, तो तुरत ही हमारे चलन के ढंग और नियम बिलकुल बदल जाते हैं। युक्तियों के निजी ढंग से और बिना किसी परिश्रम या आश्चर्य के हमारा चलना-फिरना, हँसना-बोलना एकदम बदल जाता है तथा हम उस सामूहिक अन्तःकरण के गुलाम बन जाते हैं। चूँकि इस तरह के व्यवहार में हमें बड़ा मजा आता है, इसलिए हमें भ्रांति हो जाती है कि, हम जान-बूझकर अटपटी बात कर रहे हैं।

इसलिए आप मानें कि, व्यक्तिगत जीवन सामूहिक जीवन से पृथक् है। सामूहिक जीवन में व्यक्तिगत जीवन का समावेश तो है; परन्तु उसका हिसाब जमा-खर्च के अनुपात से नहीं बनता। उसमें व्यक्तियों का समावेश तो है; पर यह मत समझिये कि, 'सामूहिक व्यक्ति' में सब अच्छे-बुरे, पढ़े-बेपढ़े, नेक और बद व्यक्तियों का सत जोड़कर औसत निकाला जाता है। जमा-खर्च के हिसाब से जो औसत निकलेगा, उससे कहीं अधिक दूर की छटाएँ 'सामूहिक व्यक्ति' में मिलेंगी। यह व्यक्ति भावना-प्रधान, अत्यन्त उदार, महावीर, त्यागी, दयालु और साथ ही पैशाचिक वृत्तिया-

डालडा
मेरे लिये
अच्छा है
DALDA
डालडा
हर एक के लिये अच्छा है...
★ क्योंकि यह शुद्ध है
★ क्योंकि यह पौष्टिक है

वाला होता है। दलीलों से इतना दूर कि, वकील भी इसके प्रभाव में आकर भावात्मक हो जाते हैं। श्रद्धा और विश्वास इस व्यक्ति की जान है और भय और आशा के साँस भरता हुआ यह व्यक्ति सब पर अपना जादू किये रहता है। वैसे इस व्यक्ति का स्वभाव बालकों जैसा खेल-कूद, हँसी-ठट्ठा और दिल्लगीवाला होता है। जितना ही यह व्यक्ति हम पर अपना आधिपत्य जमाये रहता है, उतना ही यह हमारे इशारों पर भी चलता है। पर केवल उन इशारों पर, जो मौके पर दिये जायें और इशारा करनेवाला व्यक्ति सर्वसाधारण से जरा ऊँचा हो।

'सामूहिक व्यक्ति' का शासन जिस 'कोड' के अनुसार होता है, उसकी धाराओं का उल्लंघन सिवाय पागल के दूसरा नहीं कर सकता। हम कैसे कपड़े पहनें, भाई-बहन का सम्बन्ध कैसा हो, दोनों पैरों में एक-से जूते हों और बाजार में नंगे न घूमें—इस प्रकार की छोटी-छोटी बातों पर भी 'सामूहिक व्यक्ति' का आधिपत्य है।

[लय और ताल]

यह सब वातावरण का खेल है। जैसी आबहवा होगी, वैसा ही व्यक्तियों का चलन होगा। आजकल भारत का वातावरण राजनीति-प्रधान है। एक जमाना था, जब धार्मिक मेले, कथाओं और धर्म की चर्चाओं का जोर था। इन दिनों इस दिशा में लोगों की दिलचस्पी फीकी पड़ गयी है। कभी विज्ञान और कभी साहित्य की ही चर्चा जोर पकड़ जाती है। कभी त्याग के दिन आते हैं, तो कभी भोग की प्रवृत्ति हो जाती है।

आजादी की लड़ाई के जमाने में गांधीजी ने एक अजीब युग त्याग-तपस्या का उत्पन्न कर दिया था जिसके अंतर्गत लाखों व्यक्ति अपनी जान और माल को खतरे में डालकर देश-सेवा के कार्य को महत्व देते थे, जेलखाने जाते थे और पुलिस की लाठी-डंडे खाने में गौरव समझते थे। पंडित गोविंदवल्लभ पंत और जवाहरलाल नेहरू को लखनऊ की पुलिस के घुड़सवारों ने 'साइमन-कमीशन' के बायकाट के समय इतने डंडे मारे कि, उम्र-भर याद रखेंगे। जवाहरलाल की कमर पर लगी चोट के निशानों के फोटो अखबारों में छपे थे। उन दिनों यही रिवाज था। सन् १९२१ में मुझे भी भरी अदालत में थप्पड़ों से पिटवाया गया था। पर अब यह रिवाज बंद हो गया है। उन दिनों थप्पड़ में मान था, आज अपमान।

इसलिए मेरी धारणा है, हमें कोई तरीका निकालना चाहिए, जिससे वातावरण ऐसा बन जाये कि, आपस में मिलकर देश-सेवा करने का फैशन बन जाये। आज जो मतभेद नजर आते हैं, उनका असली कारण क्या है? पुराने जमाने में हम सब मिलकर जो आंदोलन करते थे या रचनात्मक कार्य करते थे, उनमें किसी की भी स्वार्थ भावना नहीं थी। सब काम सामूहिक था, स्वराज्य-प्राप्ति के लिए था। जैसे छप्पर उठाते समय जो भी हाथ लगा दे, सब लोग मिलकर उसका आदर और स्वागत करते हैं—कोई किसी से ईर्ष्या नहीं करता।

जब तक गांधीजी जिंदा थे, वे हमारे सामने कोई-न-कोई ऐसा कार्य रख देते थे, जो सार्वजनिक हित का हो। जब-जब हम सार्वजनिक हित का कार्य करेंगे, हममें निश्चय ही आपसी मेल, मोहब्बत और सहयोग की भावना बढ़ेगी, क्योंकि वातावरण ही इस प्रकार का होगा।

हमारी आपस की फूट का मूल कारण है, सार्वजनिक आंदोलन की कमी। आजकल जो व्यक्ति परोपकार का कार्य करते हैं, उनके अलग-अलग कार्यक्षेत्र बन जाते हैं और एक के क्षेत्र में दूसरे का प्रभाव पड़ जाने से कार्य में बाधा पड़ती है। इसलिए सार्वजनिक कार्य करनेवालों में भी अपने-अपने क्षेत्र के लिए मोह उत्पन्न हो जाता है और यही झगड़े का कारण है। हम यह स्वीकार कर लेना चाहिए — स्वराज्य होने के बाद राजनीतिक दलों के नेतागण इस बात में विफल हो गये हैं कि, वे अपने कार्यकर्ताओं के लिए कोई ठोस कार्य १,२,३ करके बता सकें। केवल यह उपदेश देना कि, रचनात्मक कार्य करो— इससे काम नहीं चलेगा। कोई ऐसा काम निकाल लीजिये कि, जिसमें हम सब लोग जुट सकें, तो फिर उपदेश और प्रस्तावों के बिना ही दलबंदी बंद हो जायेगी।

जब मैं शुरू-शुरू में कांग्रेस में आया था, तो महात्मा गांधी से मिलने के लिए इलाहाबाद पहुंचा। 'आनंद-भवन' में वे ठहरे थे। अभी मुझे खद्दर के कपड़े सिलवाने का अवकाश नहीं मिला था, क्योंकि मैं पहली लड़ाई के सिलसिले में फौजी नौकरी पर ईरान भेज दिया गया था और समाचारपत्रों में महात्मा गांधी की अपील पढ़कर इस्तीफा देकर सीधे वहीं से आया था। 'आनंद-भवन' में पंडित मोतीलाल नेहरू, महात्मा गांधी, मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली आपस में परामर्श कर रहे थे, तभी मुझे उन तक पहुंचने की आज्ञा मिल गयी। कुर्सी पर बैठते ही मैंने महात्माजी से अपना सब वृत्तांत कहा और प्रार्थना की कि, मुझे कुछ काम बताइये।

महात्मा गांधी ने हंसकर उत्तर दिया— "जो काम बताऊंगा, करोगे?"

"जी, करूंगा।"

तब गांधीजी ने आज्ञा दी—"जाओ,

एक ढोल खरीदो और मुनादी करो।" मैंने नमस्कार किया और लौट आया। अपने मन में सोचा कि, काम तो बहुत आसान है। इसमें कोई अक्ल की बात भी ज्यादा नहीं है—सिर्फ एक ढोल खरीदने की देर है मुनादी करना शुरू कर दूँगा। पर किस बात की मुनादी करूँगा, यह सोचता हुआ मैं अपने घर चला आया। गांधीजी के आज्ञानुसार मुनादी करना आरम्भ कर दिया। तब से आज तक निरंतर मेरा काम कांग्रेस में मुनादी करने का रहा है।

अब मैं यह सोचता हूँ कि, यह काम भी बहुत जिम्मेदारी का और अच्छा काम था, जो मुझे सौंपा गया था। मैं इसी काम के द्वारा 'लीडर' बन गया। काम 'पापुलर' (लोकप्रिय) भी है। पुराने जमाने में गरीब मेहतर लोग मुनादी किया करते थे। जब से मैंने मुनादी शुरू कर दी, मुनादी के काम में महत्व आ गया। आहिस्ता-आहिस्ता देहरादून के सभी लोग मुझे जान गये। हर चौराहे पर एक मोढा या कुर्सी बिछा कर और उस पर खड़ा होकर या तो ढोल बजाकर या घंटा या बिगुल द्वारा कुछ भीड इकट्ठी कर ली और महात्मा गांधी के आदेशों का प्रचार आरम्भ कर दिया। जब भीड ज्यादा इकट्ठी होने लगी, तो एक भोंपू खरीद लिया, ताकि उसके द्वारा दूर-दूर तक आवाज पहुँच जाये। इस तरह थोडे दिन में मेरे शहर के लोग मुझे पहचानने लगे। बाजार के लोग तो चेहरे से पहचानते थे, औरतें जो छत पर से देखती थी, वह मेरे गंजे सिर से मुझे पहचानने लगी। 'लीडर' के लिए इससे अच्छी क्या बात है कि, चारों तरफ से लोग उसे पहचानें! मेरी 'लीडरी' का आरम्भ मुनादी से हुआ।

सन् १९२१ में खद्दर १२ गिरह अर्ज का होता था और उत्तर प्रदेश की औरतों को मोटा कातने की आदत थी। इसलिए हम सब घुटने तक की धोती पहनते थे, जिसे नहाने के बाद निचोडने के लिए या तो किसी साथी की मदद लेनी पडती थी या एक सिरा पैर के नीचे दबाकर ५ इंच मोटा रस्सा मरोडना पडता था। उन्हीं दिनों की बात है कि, महात्मा गांधी ने कांग्रेस के एक करोड सदस्य बनाने और

## मृत्युंजय

हनुमान और रावण दोनों के पास शक्ति थी, लेकिन लोग आज तक सिर्फ हनुमान का ही नाम स्मरण करते हैं। संकट-काल में हनुमान के नाम का जप किया जाता है, रावण के नाम का नहीं। हनुमान ने अपनी ताकत सेवा में लगायी और रावण ने स्वार्थ में। अब इसमें हनुमान ने क्या खोया और रावण ने क्या पाया? आखिर दोनों मर गये; परन्तु हिन्दुस्तान के लोग कबूल नहीं करेंगे कि, हनुमान मर गया।

—विनोबा

एक करोड़ रुपया 'तिलक-स्वराज्य-फंड' में जमा करने का आदेश दिया था। उस साल हमारी प्रांतीय कांग्रेस-कमेटी के मंत्री थे—स्वर्गीय कपिलदेव मालवीय, श्री गौरीशंकर मिश्र, श्री जियाराम सक्सेना और जवाहरलाल नेहरू। उन दिनों मेरा कार्य-क्षेत्र, जिला बिजनौर था। जवाहरलाल नेहरू हम सबसे ज्यादा 'फैशनेबुल' समझे जाते थे। जब वह दौरे पर बिजनौर आये, तो हमने देखा कि, उन्होंने डेढ़ पाट की धोती पहन रखी थी। यानी १२ गिरह के अर्ज के थान में ६-७ गिरह का एक और पाट जोड़ दिया, जिससे उनकी धोती तगड़ीनुमा हो गयी थी और घुटने से नीचे तक आती थी। उनको देखकर हम लोगों ने भी अपनी-अपनी धोतियाँ फाड़कर डेढ़ पाट की सिलवा ली थीं।

मुझे ठीक याद है, कांग्रेस का सदस्य बनने से लोग बहुत घबड़ाते थे और औसतन ५० घरों में ४ या ५ सदस्य बन पाते थे। सुबह-से-शाम तक घूमकर ४ या ५ सदस्य भी बन जाते, तो हम अपने को धन्य समझते। जवाहरलाल के आ जाने से हमारी हिम्मत बढ़ी और वे हमारे सदस्य बनाने के लिए बाजार में निकल पड़े। एक दूकान पर जाकर जवाहरलाल ने चंदे के लिए कुरता सामने फैला दिया, जैसे भिक्षा माँगते हैं। इसका असर इतना पड़ा कि, हम पागल-से बन गये। दिन-रात निरंतर काम करते थे। उन दिनों मोटरों का रिवाज तो था नहीं, अधिकतर पैदल ही जाते। अभी वे आँखें जिंदा हैं, जिन्होंने प्रधान मंत्री नेहरू को रायबरेली, प्रतापगढ़ आदि क्षेत्रों में मामूली चप्पल पहने गाँव, जंगल और झाड़ियों में पैदल सफर करते देखा है। क्या जोश था, क्या उमंग थी?

मेरा यह कहना है कि, किसी सार्वजनिक आंदोलन उठाने के लिए यह आवश्यक है कि, हम उस आंदोलन के निमित्त किसी भी छोटे-से-छोटे काम के करने में अपमान न समझें। दुनिया-भर में घूमकर देखिये, जितने महत्वपूर्ण आंदोलन संसार में हुए, चाहे पैगम्बरों ने चलाये हों या राजनीतिक नेताओं ने—वह सब भिक्षुकों द्वारा चले हैं, त्याग के बल पर चले हैं। मोटरों, होटलों और भजन-चाय-द्वारा भी देश-निर्माण का प्रचार हो सकता है; पर वह प्रचार सार्वजनिक प्रचार नहीं हो सकता और न वह सामूहिक आंदोलन का रूप ले सकता है। मैं इस बात का उदाहरण हूँ कि, मुनादी-जैसे निकृष्ट कार्य-द्वारा भी एक व्यक्ति ऊँचे-से-ऊँचा पद प्राप्त कर सकता है, बशर्ते वह इस निकृष्ट कार्य में रत हो जाये।

मेरी यह धारणा है कि, मुनादी करने का काम मैं जीवन-भर करूँगा। मुनादी महात्मा गांधी का दिया हुआ 'पोर्टफोलियो' है, 'मिनिस्ट्री' का 'पोर्टफोलियो' जवाहरलाल का है। अगर इन दोनों में झगड़ा आयेगा, तो मैं जवाहरलाल का 'पोर्टफोलियो' छोड़ दूँगा, गांधीजी का नहीं!

# पेड़-पौधों की परिक्रमा

श्री के. रामनाथन् कुट्टैया के एक शोधपूर्ण कन्नड लेख का संक्षिप्त हिन्दी-रूपांतर

★

पशुओं और वृक्षों में एक बड़ा अंतर यह है कि, वृक्ष एक स्थान पर ही रहते हैं, जब कि, पशु इधर-उधर आ-जा सकते हैं। परन्तु यह बात सदा ही सत्य नहीं है। बहुत-से ऐसे जीव-जंतु हैं, जो पूरी उम्र एक ही स्थान पर पड़े रहते हैं। उदाहरण के लिए, हम समुद्री 'एनोमीन' (एक प्रकार का पौधा) को ले सकते हैं, जो जीवन-भर समुद्र की तह में किसी चट्टान पर पड़ा रहता है। अगर इसको कोई केकड़ा या कछुआ अपनी पीठ पर न उठा ले, तो यह आजीवन किसी दूसरी जगह नहीं जाता। इसके विपरीत, वृक्ष-बीज इधर-से-उधर आते-जाते रहते हैं। एक वृक्ष के बीज उड़कर बहुत दूर तक चले जाते हैं। पानी में होनेवाली कई घासें, जिनमें जड़ें नहीं होतीं, दूर तक तैर कर चली जाती हैं। यही क्या? अभी-अभी कई ऐसे पौधों का पता चला है, जो पूरे-के-पूरे एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलते रहते हैं।

बहुधा सड़क पर ऐसे बीज बेचनेवाले मिलते हैं, जिनके पास बहुत-से रंगों के बीज होते हैं और उन्हें पानी में डालने से उनमें से छोटे-छोटे कृत्रिम फूल निकल आते हैं। इससे भी अधिक आश्चर्य की वस्तु है, एक सूखी और भूरी गेंद की आकृति का पदार्थ, जो पानी में डालते ही एक पौधे के रूप में विकसित हो जाता है और उसमें सिरस-वृक्ष की-सी पत्तियाँ निकल आती हैं। यह वृक्ष बहुत दिन तक सूखा रहने के बाद भी फिर से हरा हो जाता है।
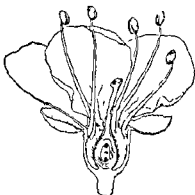
इस तरह के दो वृक्ष और होते हैं, एक तो 'रिजरे-क्शन'-वृक्ष, जो एक प्रकार की काई होता है और दूसरा 'गैरिको या गुलाब', जिसमें

[बीजांकुर]

बीज होते हैं। यह दोनों ही मरुस्थल के वृक्ष हैं, जो वर्षों सूखे रहने के बाद भी अनुकूल स्थिति पाते ही हरे हो जाते हैं।

'जैरिको का गुलाब' तो बहुत घूमने-वाला पौधा है। सूखे समय में जब कि, इसके बीज पकते हैं, तो पत्तियाँ गिर जाती हैं और डाले फलों की रक्षा करने के लिए अंदर को मुड़ जाती हैं। जड़ें भी सूख जाती हैं और उखड़ा हुआ वृक्ष मरुभूमि-भर में इधर-से-उधर लुढ़कता रहता है—जब तक कि, हवा इसको किसी नम स्थान में नहीं पहुँचा देती है अथवा वर्षा आरम्भ नहीं हो जाती। और, वर्षा होते ही यह फिर सरसब्ज हो जाता है। इसी प्रकार ऐसे बहुत-से बीजों का भी पता चला है, जो वर्षों गड़े रहने के बाद फिर से उगे हैं।

एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक की खोज से ज्ञात हुआ है कि, कुछ ऐसे बीज भी हैं, जो अस्सी से अधिक वर्ष तक रखे रहने के बाद उग आया करते हैं। यह भी कहा जाता है कि, भारत का सुप्रख्यात कमल जिन बीजों से अंकुरित होता है, वह सौ-सौ वर्ष तक उगने की शक्ति रखते हैं।

अक्सर ऐसा होता है कि, कुछ वृक्ष अपने बीज अपने पास ही गिरा देते हैं। उदाहरण के लिए, 'पोपी' के फूल को लीजिये। इसका बीज-कोष बहुत बड़ा होता है और उसके ऊपर छेददार ढक्कन होता है। यह फूल अपने को नीचे झुका देता है, जिससे सब बीज गिर पड़ते हैं। इनमें से कुछ बीज वायु-द्वारा उड़कर दूर भी चले जाया करते हैं।

प्रकृति का न्याय बड़ा सधा हुआ होता है—यदि वृक्षों के सभी बीज वृक्ष के पास ही पड़े रह जायँ, तो वे बीज उग कर एक-दूसरे को नष्ट कर देंगे। इसीलिए प्रकृति ने बीजों की यात्रा का विधान किया है। ये बीज कभी-कभी तो अकेले यात्रा करते हैं और कभी कोष में बंद रह कर। बीजों को दूर भेजने का एक मार्ग यह भी है कि, जब फल जोर से फूटता है, तो उसके अंदर के बीज छिटक कर दूर चले जाते हैं। अमेरिका में एक ऐसा वृक्ष होता है, जिसके फल को जरा-सा दबाने से ही उसके बीज बाहर निकल पड़ते हैं। गर्मी के दिनों में ऐसे बहुत-से

## न्याय-दंड

अन्याय ये करे आर अन्याय ये सहे,
तव घृणा येन तारे तृणसम दहे।

—जो अन्याय करता है और जो अन्याय सहता है, हे भगवान! उन दोनों को तुम कभी क्षमा न करना। आग जैसे तृण को जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार तुम भी अपनी घृणा की अग्नि में उन दोनों को भस्म कर देना।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

वक्ष है जिनके बीज-काप धप लगने म जोर की आवाज करके फट जाते है और उनके अदर के बाज दूर-दूर तक छिटक जाते ह स्वाद पा जिगनियम पजी और वायलेट के पौध बहुत कुछ इमी भाति आचरण करत ह

जब बन्द-म बीज वायु-द्वारा उडाये जात ह वहा स्वय उडन के लिए विभिन्न अग प्रयुगा की आवश्यकता पडता ह मध्य एशिया म एक एमा वक्ष भी ह जिसके बीज परदार होते ह। बहुत-म वक्ष-जम भाजपत्र गाखरू गारखमडी आदि के बाज किमा हद तक पखवाले भी होते ह। बिलो नामक घास के बीज म भा पर होने ह। भारताय मेवक आक मदासिगी आदि के बीजा म भा एमे रोय लग रहते ह जिनके द्वारा व उड कर बहुत दूर-दूर चले जाते ह।

य ा राम मा ह्व तु परागट का काम दते ह बाज वायु म दूर तक तरता जाता ह और जब अत म यह पथ्वी पर गिर जाता ह तो उसके रोमा नतु इम नम पथ्वी पर स्थिर कर देत ह

इसके पश भ अधिकतर बाजा को इधर उधर ल जाने म सहायक होते ह। कभी कभा जानवरा के परो म लग हुए कीचड म बीज भा छिप रहते ह और उनके एक स्थान म दूसरे स्थान पर जाने म बाज भा साथ-ही-साथ चले जाते ह। इसी प्रकार चिडिया भा बीजो को दूर-दूर तक ले जाती ह व दे व रा पर अक्सर जा एक प्रकार का वह उगा हुई मिलती ह उसके बाज भा इन्ही चिडिया द्वारा वहा पहुचाये जाते ह

★

## भगवान के नाम का पत्र

एक डाकघर के डन लेटर आफिस म एक क्लक पत्रो को उलट-पलट रहा था कि उसे स्वगवासी भगवान क नाम एक पत्र मिला। उसम लिखा था–ह भगवान यदि आपन पाच पौंड का शाघ्र प्रबध नही किया तो म अपन घर स बाहर निकाल दा जाऊगा वह वरुण सम्वाद एक वद्धा का था। बचारे क्लक न पेरिस चच-द्वारा चार पाच दस शिलिंग तक चदा जमा कर उस वद्धा का भज दिया। कुछ समय बाद फिर एक पत्र आया। उसम लिखा था– भगवन आपन जा पसे भज वा मिल गय धयवाद। लेकिन विनती ह कि इस बार पसे पेरिस चच द्वारा न भज क्योकि पिछली बक्त उन्होन दस शिलिंग अपन लिए रख लिय थ

– परा मच (फ्रच साप्ताहिक)स

★

एन्थोनी नेल्सन द्वारा लिखित एवं 'दस्टा प्रेस सर्विस' द्वारा प्रकाशित 'दे मेड फार्चुन्स इन प्रिजन' का संक्षिप्त हिन्दी रूपांतर

★

कुछ समय पूर्व अमेरिका में एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी—'कावर हिल'। प्रकाशित होते ही पुस्तक की लाखों प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक गयीं। सभी लेखक की अपूर्व लेखन-शैली से प्रभावित थे, किन्तु मजे की बात तो यह थी कि, उक्त पुस्तक का लेखक एडविन ज बेकर, कौन है, कहाँ रहता है, क्या करता है—यह किसी को ज्ञात नहीं था। साहित्यिक सभा-गोष्ठियों में भी वह कभी नहीं देखा गया था। सिर्फ दो-तीन वर्ष पहले उसकी रचना एक प्रमुख पत्र में प्रकाशित हुई थी। तभी से उसकी रचनाओं की माँग बढ़ती गयी और इस छोटे-से अर्से में ही वह एक ख्यातिप्राप्त लेखक हो गया।

ऐसे उत्कृष्ट साहित्यिक के जीवन से अपरिचित रहना साहित्य प्रेमियों को खलने लगा। वे इस सम्बन्ध में आवश्यक छान-बीन में जुट गये और एक दिन उन्हें पता लगा कि, बेकर ने अपनी सारी कहानियाँ व उपन्यास कारागार में ही लिखे थे। मजाक की बात तो यह निकली कि, बेकर को लिखने का काम जेल में ही सजा मिली थी। और, वह काम था, जालसाजी—जाली चेक देना!

उपन्यास या कहानियाँ लिखना शुरू करने के पहले बेकर जालसाजी के अपराध में बार बार जेल जा चुका था। वास्तव में, उसे शराब पीने की लत थी और नशे में जाली चेक लिखने का लोभ वह सवरण नहीं कर पाता था।

जेल में रहकर उसने समय काटने के लिए अपनी लेखन-प्रतिभा का उपयोग किया और परिणामस्वरूप सारा अमेरिका उसका प्रशंसक बन बैठा। किन्तु जालसाजी की आदत छूटी नहीं और एक दिन अपनी

ओ' हेनरी
विस्मय कौतूहल के रोचक तत्वों से पूर्ण विख्यात कथाशिल्पी
[ चित्र : वी. एन. ओके ]

इस आदत से तंग आकर क्षोभ के मारे इस प्रतिभा-पुत्र ने आत्महत्या कर ली। उस वक्त उसकी उम्र ३८ वर्ष की थी।

*जल जीवन का सदुपयोग कर* इस प्रकार लाखो की सम्पत्ति अर्जित करने के कई उदाहरण मिलते है। जर्मनी के एक जेल में सन् १९२० से लेकर सन् १९३० के बीच एक बंदी ने जेबी विश्वकोश' तैयार किया था। उसकी इस पुस्तक के ३० सस्करण प्रकाशित हुए और उसका अनुवाद कई विदेशी भाषाओ मे हुआ।

*सुप्रसिद्ध उपन्यास* 'सेल २४५५, डेथ रो' की रचना भी जेल म ही की गयी थी। इस पुस्तक का लेखक था एक ३४-वर्षीय व्यक्ति साइरिल चेसमैन, जिसे हत्या के अपराध मे फाँसी की सजा दी गयी थी। अपने अतिम क्षण की प्रतीक्षा की घडियो मे उसने इस उपन्यास की रचना कर डाली। उसकी इस कृति ने उसके जीवन का रुख ही बदल डाला। इस पुस्तक से जनता इतनी प्रभावित हुई कि, उसे मृत्यु-दंड से बचाने के लिए कई लोगो ने अपील की। अपील मजूर कर ली गयी और साइरिल फाँसी के तख्ते से बच गया।

रार्बट स्ट्राउड नामक एक अमरीकी भी साइरिल के समान ही हत्या के अपराध में आजीवन कारावास भोग रहा था। अपने एकाकी जीवन से ऊबकर उसन जेल-अधिकारियो से प्रार्थना की कि, उसे कुछ पशु-पक्षियो को पालने की अनुमति दी जाये। अधिकारियो ने प्रार्थना स्वीकार कर ली और स्ट्राउड न कुछ केनेरी व अन्य पक्षी पाल लिये।

सर्वेंटीस
व्यग्य कटाक्ष की अमर-प्राण पुस्तक 'डान क्यूक्ज़ोट' का लेखक
[चित्र वी एन ओके]

३३ लम्बे वर्षो तक उन पक्षियो में दिलचस्पी लेते रहने से वह उनके जीवन से भलीभाँति परिचित हो गया। उसे कई रोचक जानकारी और अनुभव प्राप्त हुए। स्ट्राउड ने इन पक्षियो के सम्बन्ध म एक पुस्तक लिखने का विचार किया और 'स्ट्राउड्स डाइजस्ट आव डिजीजज आव बर्ड्स' के नाम से जब उसके द्वारा लिखित कोई ५०० पृष्ठो की पुस्तक प्रकाशित हुई, तो उसकी ख्याति का क्या कहना! एक स्वर से इस विषय के विशेषज्ञो ने पुस्तक को सर्वोत्कृष्ट करार दिया। स्ट्राउड देखते-ही-देखते एक बडी-सी धनराशि का स्वामी बन बैठा।

किन्तु डाक्टर विलियम सी माइनर की कहानी इन सब कहानियो से कही अधिक रोचक है। पागलपन के दौरे में

डाक्टर माइनर ने सन् १८७२ में एक व्यक्ति को बदूक से मार डाला था। इस अपराध के कारण उन्हें ब्राडमूर के पागल अपराधियों के कारागृह में बंदी बना दिया गया। कुछ समय बाद ही उनका पागलपन दूर हो गया, किन्तु एक तो इसे प्रमाणित करना कठिन था, दूसरे हत्या का अपराध! डाक्टर माइनर ने समय काटने के लिए पुस्तकों को अपना साथी बनाया।

एक दिन उन्हें ज्ञात हुआ कि, सर जेम्स मरे को 'आक्सफोर्ड डिक्शनरी' तैयार करने के लिए शब्दों के प्राचीनकालीन उपयोग-सम्बन्धी उद्धरणों की आवश्यकता है। डाक्टर माइनर ने अपने अध्ययन से लाभ उठाकर कई ऐसे उद्धरण सर मरे के पास भेजे। पत्र-व्यवहार करते समय अपने बंदी होने की बात को गुप्त रखने की पूरी सावधानी उन्होंने बरती। अधिकारियों की मिन्नतें कर डाक्टर ने उन्हें इस बात के लिए राजी कर लिया था कि, क्रोयार्न (ब्राडमूर के निकट का गाँव) के पते पर आनेवाले सभी पत्र उनके पास पहुँचा दिये जायें।

सर जेम्स मरे को जब डाक्टर माइनर से आठ हजार उद्धरण प्राप्त हो गये, तो उन्होंने इस विलक्षण प्रतिभा-पुरुष से मिलने का निश्चय किया और जब उन्हें यह पता चला कि, भाषाशास्त्र का यह विशारद पागल अपराधियों के जेल में बंद है, तो उन्हें जबर्दस्त आघात लगा। फिर भी उनके हृदय में डाक्टर माइनर के प्रति किसी प्रकार के असम्मान का भाव नहीं आया। कई बार वे डाक्टर माइनर से मिलने बंदीगृह गये और शब्दकोश के प्रकाशन में डाक्टर माइनर के प्रति अपनी कृतज्ञता उन्होंने मुक्त कंठ से स्वीकार की।

अमेरिका के दक्षिणी राज्यों में "द प्रिजनेरीज" नामक पाँच गायकों की बहुत ही ख्याति फैली हुई है। ये पाँचों गायक रेडियो और टेलिविजन के कार्यक्रमों में भाग लिया करते हैं। इन्हें अपार यश और धन दोनों की प्राप्ति हुई है। किन्तु यह इनका दुर्भाग्य ही है कि, उस अपार धन का उपभोग नहीं कर सकते, क्योंकि ये हत्या व बलात्कार के अपराध में आजीवन कारावास का दंड भोग रहे हैं।

ऐड थर्मन, जानी ब्रेग, विली स्टुअर्ट, जानी ड्र और मार्सेल साइर्स नामक ये पाँचों अपराधी टेनेसी राज्य के कारावास में अपनी सजा के दिन पूरे कर रहे हैं। जेल की मोटरगाड़ी इन्हें रेडियो और टेलिविजन-स्टूडियो तक पहुँचाती है। वहाँ पहुँचने तक ये कैदियों की पोशाक पहने रहते हैं, किन्तु रेडियो व टेलिविजन पर गाने के समय अन्य मुक्त नागरिकों के समान वेशभूषा धारण करने की छूट इन्हें दे दी जाती है। रेडियो व टेलिविजन के कार्यक्रमों के अलावा इनके गाये हुए गीतों के ग्रामोफोन-रिकार्ड भी तैयार किये गये हैं। ये रिकार्ड इतने लोकप्रिय हुए हैं कि, रायल्टी से प्राप्त रकम से ही काफी बड़ी धनराशि एकत्र हो गयी है।

*

रिचार्ड एफ विल्फ की सुप्रख्यात पुस्तक 'मिरटोज आव हेवेन' के एक अध्याय का संक्षिप्त भावान्तर

★

३० जून १९०८ प्रातःकाल ७ बजे का समय। साइबेरिया के वनिवासी प्रदेश के आश्चर्य चकित लोगों ने आकाश में एक अत्यंत उद्दीप्त प्रकाश राशि देखी और प्रत्येक ने समझा जैसे वह प्रचंड प्रकाश ठीक उसी के सिर पर गिरेगा। उधर इर्कुट्स्क के भूकम्प द्योतक यंत्र में भी उसी समय पृथ्वी के कम्पन का आलेखन हुआ।

पर वह करिश्मा था क्या और वह प्रकाश-पुंज गिरा कहाँ यह किसी को भी पता नहीं चल सका।

प्रथम महायुद्ध के बाद वैज्ञानिकों ने पुनः उस प्रकाश-पतन के सही स्थान की खोज शुरू की। कुलिक नामक एक रूसी वैज्ञानिक खोज करनेवाले दल का नेता था। उस खोज में कुलिक को कितने ही उल्काखंड मिले पर जिसकी खोज थी वह उसे नहीं मिला।

१९२७ में फिर दूसरी बार वह उसे खोजने निकला और मार्ग की अनेक कठिनाइयों को झेलता हुआ अंत में उस स्थान पर पहुँच ही गया, जहाँ १९०८ में वह भयंकर उल्कापात हुआ था। उसने अपने यात्रा वृत्तांत में लिखा है—

उस उल्कापात से वह घना जंगल एकदम नष्ट हो गया और आज भी वहाँ की धरती तृण रहित है। कई मील तक वहाँ की धरती इस रूप में फट गयी है मानो एक प्रचंड भूकम्प ने उसको चीरफाड़ दिया हो। यत्र-तत्र कितने ही गड्ढे ज्वालामुखी के मुख के समान बन गये हैं—ठीक वैसे ही जैसे चंद्रमा में हमें दिखलायी पड़ते हैं। इस क्षेत्र के एक आदिवासी ने बताया कि जहाँ उल्कापात हुआ था वहाँ उसका एक सम्बन्धी रहता था जिसके पास १५०० मवेशी थे। उल्कापात के बाद उनमें से एक का भी पता नहीं चला।

किन्तु इस सफल यात्रा में भी कुलिक को उल्का का मूल प्रस्तर-खंड नहीं मिला। उसका अनुमान है कि वह मूल उल्का प्रस्तर जमीन में काफी नीचे धँस गया है।

वैज्ञानिकों ने अमेरिका के अरिज़ोना नामक स्थान पर भी एक ऐसे ही भयंकर उल्कापात का पता लगाया है। उस जगह

४,००० फुट व्यास का एक गड्ढा बन गया है, जिसकी दीवारें बाहर से १५० फुट और गड्ढे के पेंदे से लगभग ६०० फुट ऊँची हैं। मगर उस जगह भी वैज्ञानिकों को उल्का-प्रस्तर नहीं मिले। वैज्ञानिकों ने वहाँ की जमीन की मिट्टी नीचे से निकाल कर जाँच की। उनका कहना है कि, उल्का के वेग से वहाँ की मिट्टी बिलकुल जल-भुन गयी है।

२३ सितम्बर, १९२८ के 'भारत' में भी एक ऐसी ही उल्कापात की घटना छपी है। घटना २० सितम्बर की है। जालौन (उत्तर प्रदेश) के कत नामक गाँव के पास उल्कापात से, खेत नापने में व्यस्त एक अमीन और उसके सहायक की मृत्यु हो गयी और एक तीसरा व्यक्ति भी बुरी तरह घायल हुआ। उस उल्का-प्रस्तर का वजन ५० मन था और उसके गिरने के समय आकाश में भयंकर गड़गड़ाहट सुनायी पड़ी थी।

प्राचीन ग्रंथों में भी उल्कापात के कितने ही उल्लेख आये हैं। बाइबिल में एक स्थान पर उल्लेख आया है कि, ईश्वर ने आकाश से बड़े-बड़े पत्थर गिराये। यह संकेत भी सम्भवतः उल्कापात की ही ओर है। इसके अतिरिक्त रोमी ग्रंथकार लेवी ने ६५० ई. पूर्व में एक उल्कापात का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि, जब राजा से दरबारियों ने एल्बन पर्वत पर पत्थर बरसने की बात कही, तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ। उसने कुछ व्यक्तियों को जाँच के लिए भेजा, तो उनके सामने भी पत्थर आकाश से गिरे और भयानक नाद सुनायी पड़ा।

चीनी ग्रंथों में एक स्थान पर उल्लेख आया है कि, ६८७ ई. पू. को अर्धरात्रि के समय आकाश के तारे पानी की तरह बरसने लगे थे। आलिवर नामक विद्वान का मत है कि, आकाश से गिरे इन पत्थरों की बहुत प्राचीन काल में पूजा हुआ करती थी। उसने लिखा है–

"अमेरिका के आदिवासियों की कब्रों में बहुत से उल्का-प्रस्तर मिले हैं। एक उल्का-प्रस्तर अजटेकों के मंदिर में है, जिसे यहाँ की अर्धसभ्य जातियाँ आज भी पूजती हैं। २०४ ई. पू. में जो 'देवताओं की माता' की मूर्ति रोम में लायी गयी थी, वह उल्का के पत्थर की है। ट्राय का पलेडियम, रोम-स्थित नूमा की प्रसिद्ध ढाल और साइप्रस-स्थित वीनस की मूर्ति भी उल्का प्रस्तर की ही है। एफिसस नगर की डिमाना की मूर्ति भी उल्का-प्रस्तर ही रही होगी, क्योंकि उसके वर्णन में आता है कि, वह बृहस्पति से गिरी थी।"

आलिवर ने यह भी लिखा है—"यह अच्छी तरह से मालूम है कि, वह पवित्र पत्थर जो काबे के उत्तर-पूर्व में लगा हुआ है, उल्का प्रस्तर है। यह प्रस्तर सन् ७०० से पूर्व गिरा होगा।"

सबसे पुराना उल्का-प्रस्तर, जिसके गिरने की तिथि वैज्ञानिकों को ज्ञात है, चेकोस्लोवाकिया के एल्बोगेन नामक

नगर के दाउहाल में रखा हुआ है। यह उल्कापात १४०० के लगभग हुआ था।

अलसेस के एनसिसहाइम के गिरजाघर म भी एक उल्का-प्रस्तर है, जिसके सम्बन्ध मे उक्त गिरजाघर की पुस्तिका में लिखा है —"१४ नवम्बर, १४९२ को एक आश्चर्यजनक चमत्कार हुआ। मध्याह्न के ११-१२ बजे के बीच अचानक बादल कडकने लगे और नगर म १३० सेर का एक पत्थर गिरा। एक लडके ने इसे गिरते देखा। जहाँ यह गिरा था, वहाँ ५ फुट गहरा गड्ढा हो गया था। यहाँ के तत्कालीन नरेश मैक्समिलियन ने उस पत्थर के दो टुकडे करवा दिये। एक टुकड आस्ट्रिया के एक राजपुरुष के पास भेज दिया और दूसरा गिरजे म टँगवा दिया।'

ये उल्का-प्रस्तर एक-दो की सख्या में ही गिरते हो, यह बात नही। १८३० मे प्राय म एक ही स्थान पर २-३ हजार पत्थर गिरे थे। पोलैंड के पुल्टुस्क नगर मे एक बार एक लाख के करीब पत्थर के टुकडे बरसे और इसी प्रकार की प्रस्तर-वर्षा एक बार हगरी में भी हुई थी। १९ जुलाई १९१२ को अरिजोना म लगभग १४,००० प्रस्तर गिरे थे।

कभी-कभी आकाश इन उल्काओ से भर जाता है और घटो तक उल्काओ की वर्षा हुआ करती है। एलियट नामक विद्वान ने लिखा है—"१२ नवम्बर, १७९९ को तीन बजे तडके लोगो ने मुझे उल्कापात देखने के लिए जगाया। दृश्य बडा भयानक था। सारा आकाश ऐसा दिखायी पडता था मानो आतिशबाजी के बाणो से प्रकाशित हो उठा हो।

पहले लोगो का ऐसा विचार था कि, उल्काएँ पृथ्वी से अत्यत निकट दिखायी पडती हैं और पृथ्वी से निकली गैसा के जल उठने से बनती है। पर १८-वी शताब्दी में दो जर्मन वैज्ञानिको ने उल्कापात की ऊँचाई नाप कर यह पता लगाया कि, छोटी उल्काओ की औसत ऊँचाई ७० मील होती है और उनका अत लगभग ५० मील की ऊँचाई पर होता है।

वैज्ञानिको का कथन है कि, सभी प्रकार की उल्काएँ छोटे छोटे पत्थर के टुकडे है। जब ये चलते-चलते पृथ्वी के पास आ जाते है, तो पृथ्वी उनको आकर्षित कर लेती है और भयकर वेग के कारण वायु-मडल के घने भाग में पहुँचते ही, उनम इतनी गरमी पैदा हो जाती है कि, वे या उनसे निकली हुई गैसे जल उठती है। इस प्रकार उल्काओ की क्षुद्र जीवन-लीला साधारणत एक या दो सेकेंड में ही समाप्त हो जाती है।

अभी तक की उल्काओ मे जो सबसे बडी उल्का है, वह न्यूयार्क के 'अमेरिकन म्यूजियम आव नेचुरल हिस्ट्री' में रखी है। उसका वजन लगभग एक हजार मन है।

★

ताँगे में जोता जानेवाला घोडा भी कभी-कभी विद्रोह कर बैठता है। —शरत्

★

# अमृत भी : हलाहल भी

आर्नल्ड हट्समनीकर लिखित पुस्तक 'लव ऐंड हेट इन ह्यूमन नेचर' के आधार पर

सन् १९४० में जर्मन-सेना ने जब फ्रांस पर आक्रमण कर दिया, तो स्वभावतः ही हम लोगों की चर्चा का मुख्य विषय वही हो गया। हमारे मित्रों में एक व्यक्ति भूतपूर्व जर्मन-सेना में अफसर रह चुका था। एक दिन जब हम आपस में बैठे बातें कर रहे थे, तो अचानक ही वह पूछ बैठा—"यदि आपके सामने एक ऐसा बटन रखा हो, जिसे दबाने-मात्र से ही पूरे जर्मनी का खात्मा हो जाये, तो क्या आप यह बटन दबाना पसन्द करेंगे? साथ-ही-साथ, थोड़ी देर के लिए यह भी मान लें कि, आपके सभी बन्धु-बान्धव जर्मनी में हैं।"

[ अहंकार मौत से भी बड़ा अत्याचारी है। जब वह अपने दर्प में चरितार्थ होता है, तो चराचर-सृष्टि तो क्या, स्रष्टा को भी चुनौती देता है। ]

सभी ने अपने-अपने विचारों के अनुसार उत्तर दिये। अधिकांश व्यक्तियों के उत्तर आवेगपूर्ण थे। यद्यपि उन्होंने अपने उत्तर के समर्थन में यथेष्ट तर्क भी उपस्थित किये, लेकिन स्पष्ट था कि, वे भावनाओं के ज्वार में बह रहे थे। जो बटन दबाने के पक्ष में थे, उनका तर्क था—"सिद्धांतों की रक्षा के सम्मुख किसी के जीवन का प्रश्न कोई महत्व नहीं रखता। किसी महान् एवं अभीष्ट कार्य की सिद्धि में गिनती के कुछ निर्दोष व्यक्तियों को भी कष्ट पहुँचे, तो वह बिलकुल नगण्य-सा है।"

एक वकील साहब ने तो यहाँ तक कह दिया कि, विश्व-कल्याण के लिए बटन दबाना परम आवश्यक है। जब तक जर्मनी का विनाश नहीं हो जाता, शांति की आशा दुराशा है। विनाश के बाद ही निर्माण सम्भव है। इसके विपरीत, कुछ लोगों की दृष्टि में यह घोर अपराध एवं निकृष्टतम कार्य था।

जिन लोगों ने बटन दबाना उचित समझा, उनके निर्णय के पीछे वास्तव में, न्याय, तर्क या बुद्धि कार्य नहीं कर रही थी, बल्कि नाजियों के प्रति उनकी प्रति-

हिंसा की भावना ही प्रबल थी और वे किसी प्रकार भी अपनी घृणा को नियंत्रित नहीं कर पा रहे थे। जो लोग बटन दबाना अनुचित समझते थे, वे अधिक दयावृत्ति के थे और नाजियों के प्रति उनकी घृणा या तो इतनी प्रबल नहीं थी या वे उसे नियंत्रित करने में समर्थ थे। सम्भवतः उन वकील साहब को, जिन्हें बटन दबाना परम कर्तव्य जान पड़ा, सदैव से मार-काट, खून आदि कार्यों के प्रति एक आकर्षण सा रहा था।

मनुष्य यह सोचकर भले ही अपने मन को संतुष्ट कर ले कि, जो कुछ वह सोचता या करता है, वह न्याय बुद्धि और तर्क के तराजू पर तौलकर, लेकिन वास्तव में उसका आचरण बहुत कुछ उसकी भावनाओं से रंजित रहता है। हिंसा और निर्दयता के प्रति आकर्षण केवल असभ्य व जंगलियों में ही नहीं पाया जाता, बल्कि अपने को अति सभ्य कहनेवाले जज, बैरिस्टर, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ और बड़े-बड़े विद्वानों में भी पाया जाता है। जिसके भावों का जितना कम विकास होगा, उतना ही अधिक क्रूर और हिंसा-प्रेमी उसका स्वभाव होगा। बगीचे में से पौधे उखाड़ना, पेड़ों को काटना, गेंद को जोर से मारना या सिनेमा, नाटक अथवा उपन्यास के कल्पित पात्रों की दुखगाथाओं में खो जाना—ये सभी कार्य हमारी आंतरिक हिंसा भावना को निर्दोष व अप्रत्यक्ष रूप से संतुष्ट करते हैं।

'जो तोको काँटा बुवे, ताहि बोय तू फूल'
[चित्र जैक डैम]

भाव विकास बौद्धिक विकास का अनुयायी नहीं कहा जा सकता। कभी-कभी अत्यंत कुशाग्र बुद्धि के लोग भी भावशून्य पाये जाते हैं। न्याय और औचित्य—यहाँ तक कि, प्रशंसनीय सिद्धांतों की ओट लेकर भी वे अपनी क्रूर हिंसा-वृत्ति को संतुष्ट करते हैं।

हमारे भीतर प्यार और घृणा की भावनाएँ उसी समय घर कर जाती हैं, जब बाल्यकाल में हमारे व्यक्तित्व का निर्माण होने लगता है। बाद में चलकर अक्सर उनकी जड़ों को उखाड़ फेंकना कठिन हो जाता है। वे हमारे अचेतन मन में निरंतर वास किया करती हैं और जाने-अजाने हमारी चेतना पर

प्रभाव डालती रहती है। परन्तु हमारे अधिकांश निर्णय और आचार-विचार इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होते हैं।

अत हमारी स्वाभाविक प्रवृत्ति का सामाजिक औचित्य से संघर्ष यदि अत्यंत प्रखर हो जाये और बारम्बार होता रहे, तो हम या तो मानसिक निराशा के शिकार बन जायेंगे या अस्वस्थ — अथवा हममें कोई एक ऐसी सनक भी पैदा हो सकती है, जिसके कारण आग लगाने, उत्पात मचाने, चोरी करने या अन्य किसी गैर-सामाजिक कार्य करने की तीव्र इच्छा हमारे मन में घर कर जाये।

निर्माण और विध्वंस की विरोधी प्रवृत्तियाँ प्रत्येक व्यक्ति, समाज और राष्ट्र में पायी जाती हैं। तानाशाह तो लोगों की घृणा-प्रवृत्ति को उकसा कर ही राष्ट्र का शासन अपनी मुट्ठी में रखते हैं।

फिर भी यह हर्ष का ही विषय है कि, विध्वंस या विनाश की प्रवृत्ति मनुष्य में प्रमुख नहीं। इस संसार में एक ओर जब एटम बम के ढेर लगाये जा रहे हैं, तो दूसरी ओर 'सेंट लुई कंस्ट्रक्शन कम्पनी' नामक एक संस्था ने ५,००,००० डालर की लागत का मकान बनाना कुछ दिनों के लिए सिर्फ इसलिए रोक दिया था कि, मकान के कोने में एक चिड़िया ने अंडे दे रखे थे। जब तक बच्चे नहीं निकल आये, निर्माण-कार्य पूर्ण स्थगित रहा।

आधुनिक मनोविज्ञान में शायद सबसे बड़ी खोज जो हुई है, वह यह कि, वास्तविक भाव को दबा कर जब हम उसके विपरीत आचरण करते हैं, तो हमारा स्वभाव उग्र और विद्रोही बन बैठता है। अभी तक इस विपरीताचरण से उत्पन्न रोगों को मिटाने का सम्पूर्ण ज्ञान हमें प्राप्त नहीं हुआ है, किन्तु इस विषय में अनुसंधान चल रहे हैं। पक्षाघात, कँपकँपी, बेहोशी इत्यादि स्नायुतन्तु विषयक अनेक रोगों से पीड़ित बीमारों की मूल व्याधि समझने और चिकित्सा करने की ओर अब तक काफी उन्नति की जा चुकी है।

आज तो दिन-पर-दिन हमें इस बात के ठोस प्रमाण मिलते जा रहे हैं कि, हम तभी किसी बीमारी का शिकार बन जाते हैं, जब अपराध, भय या विद्रोह की भावना प्रबल रूप से पैदा होकर हममें एक असाधारण मानसिक तनाव की स्थिति पैदा कर देती है। हमारा भाव-सन्तुलन बिगड़ जाता है और परिणामस्वरूप स्वास्थ्य।

इस प्रकार बुद्धि और भाव-जगत की बारीकियों को जैसे-जैसे हम समझते जायेंगे, वैसे-वैसे हमें मालूम होगा कि, घृणा की भावना किस प्रकार हमारे प्यार की भावना को दबा देती है। मानव-स्वभाव को अधिक समझने से ही हम सामाजिक अथवा नैतिक मान्यताओं का सही मूल्यांकन कर सकेंगे और स्वयं तथा संसार को तटस्थ होकर निष्पक्ष भाव से देख सकेंगे—समझ सकेंगे एवं भावी मनुष्य के लिए हिंसाविहीन स्नेहमय संसार का सफलतापूर्वक निर्माण कर सकेंगे!

★

[illegible]

[illegible]

दिल्ली एजन्ट् मेसर्स : दिल्ली मेडीकल स्टोर्स चांदनी चौक, दिल्ली
कलकत्ता एजन्ट् : मेसर्स : शाह बाबोसी अेन्ड क १२९, राधा बजार स्ट्रीट
कलकत्ता १ स्टोकिस्टस् : आर. जे मेहता अेन्ड ब्रधर्स सीनमा रोड, अजमेर.

# खुदा आबाद रखे लखनऊ को

स्वभाव के वैभव विलास और जीवन के आनंद मधुर पक्ष को लेकर लखनऊ की अपनी निजी शान है, अपना खास तौर-तरीका है, अपनी निराली आन बान है। नीचे की पंक्तियों में अमृतलालजी नागर ने लखनऊ के 'तीन लोक से न्यारे' व्यक्तित्व की जो सतरंगी रेखाएँ खींची है, वे उन जैसे एक सिद्ध 'लखनवी' की ही लेखनी से प्रसूत हो सकती हैं। इस लेख के लिए हम आकाशवाणी, लखनऊ के आभारी हैं।

★

खुदा आबाद रखे लखनऊ को, फिर गनीमत है ये मौजूदा जमाने मे जब कि, चारो तरफ मारो-काटो का शोर मच रहा है, रियासती बटेरे चोचे लड़ा रहे हैं—अब ये बस आया और अब वो आया। हम फलां को अपनी जमात में बैठने देंगे, फलां को नही—इस बात पर बड़े-बड़ो की चोचे खुलने लगी और बातो की रफ्तार इस कदर तेज हुई कि, अब तो खबरो की दुनिया पकड़ाई में नही आती। ऐसे वक्त में यह लखनऊ का ही रंग है कि, जमाने को टंगड़ी मार कर थोड़े वक्त के लिए जहाँ-का-तहाँ रोक दे। आज अट्ठारह रोज से लखनऊ की एक खबर ने सारे आलम को कच्चे धागे से बाँध रखा है। गली-सड़क, टोले-मुहल्ले, पड़ोस, सात समदर पार तक, जिधर देखिये, उधर इस बात की चर्चा छिड़ी हुई है कि, लखनऊ में शाही खजाना निकल रहा है।

इन अट्ठारह दिनों में हर दिन में जाने कितनी बार हमारे यह चौक, नक्खास और हुसैनाबाद में यह सनसनीखेज खबर फैली है कि, खजाना निकल आया। किसी ने नौ लाख निकाल कर दिखा दिये, तो किसी ने नौ करोड़। जमाना चूँकि साइंटिफिक है, इसलिए शाही खजाना भी साइंटिफिक तरीके से ही निकल रहा है—यानी अपनी हिस्ट्री के साथ-साथ!

['जिसको न दे मौला उसको दे आसफुद्दौला' —इसी रूप में प्रसिद्ध थे आसफुद्दौला, लखनऊ के एक लोकप्रिय नवाब।]

यकीन न हो, तो लखनऊ तशरीफ लायें, चारबाग स्टेशन पर किसी इक्केवाले का दामन थामें, चौक आयें। रास्ते-भर में इक्केवाला, जो यकीनन कोई नवाब

होगा, आपको शाही खजाने का सब हाल बतला देगा—"आसफुद्दौला के जमाने के पूरे एक दर्जन तो हुजूर, ऐसे हीरे निकले हैं, जिनका वजन ढाई-ढाई सेर है। और सरकार, वाजिदअली शाह के जमाने का एक बटेर है, कदानवाज, लाले यमन का बना हुआ। देखने में तो सरकार, छटकी-भर का लगता है, मगर उसमें कोई ऐसा जादू का जोर है कि, हर बाटे को भारी पड़ता है—तोला माशा, रत्ती की तो बात ही क्या अजी, मनों में तुल गया, मगर नवाबी जमाने का लखनवी *बटेर अब भी सारी दुनिया के लिए भारी है!* और, फावड़ा चलता है, हुजूर कि, हर चोट पर एक नौलखा हार निकल आता है। आज अट्ठारह रोज से दिन *और रात खुदाई हो रही है, गरीबपरवर!* जिधर देखिये, उधर दौलत ही-दौलत बिखरी है। दस्तावेजें निकली हैं, नक्शे निकले हैं। हर नक्शे से एक-एक खजाने का *पता लगता है और हर खजाना* हुजूर, खुदा झूठ न बुलवाये...आपके बेटे जीते रहें, पहले खजाने से बड़ा होता है। अब तो सुना है, कदानवाज कि, पूरा लखनऊ खुदने वाला है, क्योंकि कलकत्ते में एक बंगाली नजूमी आया है, जो उल्लू की आंख का सुरमा आजकर हर तरफ खजाने ही-खजाने देखता है।"

*लखनऊ की तहजीबो-तमद्दुन के* पढ़े तो दरअसल यहाँ के इक्के-तांगेवाले हैं, जो चारबाग स्टेशन से बाहर निकलते ही परदेसी मुसाफिरों को अपनी लच्छेदार जबान के जाल में फंसा कर उसके मंजिले-मकसूद तक पहुँचते-पहुँचते अपने किराये की चवन्नी में अपने बीड़ी-टैक्स की इकन्नी भी जोड़ ही देते हैं और रसीद के तौर पर दुआए-खैर देकर कहते हैं— "अल्ला आपको जीता रखे, सरकार! दम सलामत रहे, परवार में बेला-गुलाब फूले। आप ही की जूतियों के तुफैल से लखनऊ आबाद है, कदानवाज!"

और, अपने ठहरने के ठिकाने तक पहुँचते-पहुँचते परदेसी मुसाफिर लखनऊ *के बारे में अपना जो कल्पना चित्र बनाता* है, वह काफी हद तक नयी इमारतों से भरा-पूरा न होकर खंडहरों के आलम में सजता है। इक्केवाला हरचंद *कोशिश करके उसके मन में यह बैठा ही* देता है कि, आज का लखनऊ लखनऊ ही नहीं। जो शहर था, वह सन् ५७ में *तबाह हो चुका—अब तो फकत उसके नाम का साइनबोर्ड चारबाग स्टेशन* पर लगा रह गया है। इसके अलावा वह यह समझता है कि, लखनऊ के रहनेवाले सब नवाबों की औलाद हैं।

यहाँ की गली-गली में शायरों का हुजूम है, सवायफों की महफिलें हैं। जिधर देखिये, रक्सो-गीत का आलम है। यहाँ तीतर लड़ते हैं, बुलबुल अड्डों पर चहचहाती हैं और यहाँ बटेरों की बादशाहत है। यहाँ के बांके ऐसे हैं कि, एक-एक उस्ताद का नाम रूमो-यूनान तक रोशन है

और उनके पट्ठे चीनो-जापान तक सरनाम हैं। यहाँ के कनकौवेबाजो का यह हाल है कि, दुनिया के सात परदो मे ऐसे हुनरमद न निकलेगे। बडे-बडे हिटलर, मुसोलिनी तक उनका लोहा मान गये। यही एक एसा शहर है, जहाँ अफीमचियो का मेला-का मेला लगता था और नवाबी में आलसियो की परवरिश के लिए एक अहदीखाना भी आबाद किया गया था।

इन तमाम बातो को समेट कर गौर करने पर जो नतीजा निकलता है, वह यह है कि, लखनऊ की सम्यता बदचलनो, बेकारों और आवारागर्दों की सम्यता हैं। मगर जनाब हम भी किस फिलासफी के चक्कर मे पड गये! जमाना अगर हमारे खिलाफ सिर उठा रहा है, तो क्या यह मुनासिब है कि, हम भी अपने ऊपर उँगली उठाये? घडूखानो के जमाने से आज के काफी हाउसो तक, शाही चौक की रौनक से लेकर आज के हजरतगज के शबाब तक, लखनऊ से हमें यही सीखने को मिला है कि, मिया इल्म न देखो दिल देखो। यह दिल जो कि, जरा जोश में आकर हिस्ट्री को लतरानी बना देता है।

हमसे जब कभी कोई लखनऊ की हिस्ट्री के बारे मे कुछ पूछता है, तो यकीन मानिये, हम झुँझला उठते है। भला पूछिय कि, लखनऊ का हिस्ट्री से क्या काम? हिस्ट्री अपने कायदे और कानून से बनती रहती है। हम तो उससे भी घडी भर को जी बहला लेते हैं–हिस्ट्री को भी लतरानी बना लेते हैं!

एक बार एक परदेसी दोस्त न सवाल किया कि, भाई साहब, लखनऊ की इमारतो पर मछलियाँ क्यो बनी हुई हैं? हम चक्कर में पड गये। अगर हम इतिहास के जानकार होते, तो शुजाउद्दौला, आसफुद्दौला की पच्चीस पीढियो का पीछा कर डालते और मोहनजोदाडो के खडहरो म से लखनऊ की मछली खोज निकालते। मगर यह कि, हम ठहरे लखनऊ के काबिल-नवीस—किस्से कहना हमारा काम, लतरानियाँ उडाना हमारा पेशा। एक धुन आयी, एक शेर याद आया। हम उड चले।

इतिहासकार की गम्भीरता अपने चेहरे

मुर्गों की लड़ाई
[नवाबों के शासन में सरसब्ज लखनऊ का यह भी एक आम शगल था!]

पर लाद कर हमने कहा कि, भाई साहब, लखनऊ की हिस्ट्री सिर्फ दो जगह ही मिल सकती है---एक तो यहाँ के दिलफेंक जवानों की आह में, दूसरे परियों की सुरमीली-कटीली निगाह में! और, मछलियों के बारे में कहा जाता है कि, वाजिदअली शाह के पुरखे जब दिल्ली के घाम से घबड़ा कर लखनऊ की नवाबी करने आये, तो गोमती में परियों की रेस हुई। जुल्फें मौजों से अठखेलियाँ करने लगीं। उस वक्त की मीनरी देखकर एक शायर बेसाख्ता दिल थाम कर चीख उठे--

"नहाने में जो लहराती
है, जुल्फे-यार दरिया में।
तड़पने लगती है पानी में
मौजें मछलियाँ बनकर॥"

सुनते हैं और आहों-निगाहों की तवारीख में पढ़ा भी है कि, वाजिदअली शाह के पुरखे अपने खानदान में आनेवाले कोहेनूर-दरख्त का खयाल करके कुछ इस कदर खुश हुए कि, जुल्फे-यार की मछली बनाकर घर-घर में तड़पा दी।

खैर, जाने दीजिये। नया जमाना हिस्ट्री को कहानियों के रूप में नहीं देखना चाहता और अफीम की जगह भी अब कार्फी ने ले ली है। लिहाजा, मजबूर होकर हमें भी नये जमाने के साथ-साथ तरक्की-पसन्द होना पड़ता है। हिस्ट्री को हिस्ट्री के ही रूप में देखना पड़ता है। नवाबी में क्या होता था, इस किस्से को छोड़िये। और, जो-कुछ भी होता रहा हो; मगर यह सच है कि, दिल-दिमाग और जिस्म की बरबादी होती थी और दौलत के खजाने गोमती के पानी की तरह बहते थे। अपने बुजुर्गों की बरबादियों को हम आज तक ढोते चले आ रहे हैं।

पचास साल पहले कार्फी का चलन तो नहीं चला था, मगर आज के कार्फी पीनेवालों के बुजुर्ग नये मैदान में ढलने लगे थे। अफीम के अड्डे बहुत कम हो गये थे। अंग्रेजी के स्कूल नये जमाने के मैखाने बनकर लखनऊ में आबाद हो चुके थे। अंग्रेजी पर इतना जोर दिया जाता था कि, दर्जे में जो न बोले, उस पर फाइन। अंग्रेजी के बाद उर्दू फारसी का बोलबाला था, उसी तरह जैसे साहब के बाद मेम का रुतबा होता है। हिन्दी खानसामों की तरह कहीं पड़ी हुई थी। पढ़नेवाले लड़कों को असवार से उतनी ही दूर रखा जाता था, जितना नन्हे-मुन्ने बच्चों को आग से रखा जाता है। और, मिडिल-पास की शान उस वक्त में सबसे निराली थी। घरों में औरतें ढोलक के गीत जोड़-जोड़ कर गाती थीं--"भैया हमारे मिडिल पास अंग्रेजी बिगुल बजाते हैं!"... जिसके घर का लड़का मिडिल पास हो जाता था, उस घर की शान बढ़ जाती थी--दावतें हुआ करती थीं।

अंग्रेजों की ताकत पर गैबी अकीदा था। हिन्दू कहते थे कि, अशोक-वन में सीताजी ने त्रिजटा को वरदान दिया था कि, कलजुग में तुम्हारा राज होगा,

तो इसीलिए सात समुदर पार वाली मल्का टूरिया सीता-राम के देश में राज करने आयी। मुसलमानो मे भी राज-भक्ति कुछ कम नही थी। हिन्दू-मुसलमान इस मामले में करीब-करीब एक-से थे।

और, यही नही, उनमें हर तरह मे आपस में बडा इत्तफाक था। सन् सात की बात है—मुहर्रम के दिन थे। हिन्दू की बारात उठने को थी। लोगो ने समझाया कि, न उठाइये—दिलाजारी होगी। हिन्दू मान गये। मुसलमानो को खबर लगी, तो डेपुटेशन लेकर पहुँचे कि, बारात जरूर निकालिये, साहब!

पहले की तो बात ही जान दीजिये सन् उन्नीस तक यही हाल था। म्यूनिसिपैलिटी के इलेक्शन म चौक के वकील केदारनाथ और नवाब फिद्दन साहब खडे हुये। जीते फिद्दन साहब और वह भी हिन्दुओ के वोटो से। वैसे पालिटिक्स चर्चा कोई आम चर्चा न थी। लोग दूर ही रहते थे। फिर भी जमाना आग तो बढ ही रहा था और बढते हुए जमाने में आजादी की आवाज भी बढ रही थी।

शहर के पेशो के तौर पर यहाँ बदला, तारकशी, नक्की, उत्तू, सोजनकारी, वसूली, मिट्टी के खिलौने, फर्शी, आतिशबाजी वगैरह का काम खूब चलता था। लखनऊ के बदले में यह एक खास बात थी कि, छ माशे सोने में कई सौ गज बदला निकल आता था। नक्की गोटे की किस्म की चीज होती थी, जिसका बनानेवाला आखिरी खानदान मुहम्मद इसहाक, मुहम्मद इस्माइल और मुहम्मद इब्राहम के साथ चला गया। नया लखनऊ इस फन को नही जानता।

फर्शी आतिशबाजी ऐसी बनती थी कि, कपडे या हाथ पर रख कर जलाओ, मगर कपडा या हाथ न जले। भौंडो में खिलौना और फजले हुसैन मशहूर थे और नक्कालो म बडे पेट वाले कदर और मुकद्दर।

पचास बरस पहले लखनऊ की आँखें आधी खुली हुई और आधी खुमारी से बद थी। फिर भी जनता में जोश था। सन १९०२ के प्लेग में यहाँ के हेल्थ-अफसर डाक्टर किशोरीलाल ने जनता की सेहत का सवाल करके यह हुक्म निकाला कि, लोग गोमती पर जाकर रहें। हिदायतुल्ला तवायफ का भाई था। उसने इसके खिलाफ बडी जोर से आवाज उठायी। जहाँ आज मेडिकल कालेज बना हुआ है, उसी जमीन पर उसने बडी भारी सभा की। डाक्टर साहब के हुक्म के खिलाफ रेजोल्यूशन पास किये। गीत जोड कर मखौल उडाया—'रेती में बगला छवा दे किशोरीलाल।' सरकार ने इस आदोलन को अहमियत न दी। हाँ, हिदायतुल्ला कोई वावेला न मचा सके, इसके लिए पुलिस-कान्स्टेबिल उसके साथ कर दिये। मिर्या हिदायतुल्ला कहा करते

'मल्का मेहरबान है, दो नौकर दिये हैं!"

✶

# अपनी शक्ति का सदुपयोग आप कितना करते हैं ?

**जीवन एक व्यापार है, साँसों का सौदा है। इसे व्यापार के रूप में ही ग्रहण करना चाहिए। हानि-लाभ सन्तुलित रहे और व्यापार चलता रहे—इसकी शिक्षा प्रकृति से अधिक और कौन दे सकता है? ध्वंस निर्माण का शाश्वत क्रम वहाँ कभी टूटता नहीं। इसलिए तो वहाँ अस्तित्व है, गति है, सृजन है और जीवन है!**

★

जीवन का आनंद एवं उन्नति तभी सम्भव है, जब अपनी शक्ति का आप सदुपयोग करें। शक्ति का अपव्यय करने वाला व्यक्ति सदा आकाश के तारे गिनने की ही कोशिश करता हुआ दिखायी देता है। अपने ध्येय की वह कभी पूर्ति नहीं कर सकता। भाग्यवश उसे कभी सफलता मिली भी, तो वह इतना जीर्ण-शीर्ण एवं अस्थिर होता है कि, उससे प्राप्त सुख का उपभोग वह कर ही नहीं सकता।

नीचे दी हुई प्रश्नावली में आप स्वयं अपनी परीक्षा कीजिये कि, आप अपनी शक्ति का सम्पूर्ण सदुपयोग कर रहे हैं या नहीं? प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 'हाँ' या 'ना' में निकाल लीजिये।

१ क्या आप प्रत्येक कार्य के लिए एक निश्चित अवधि निर्धारित करते हैं और उसी समय में उस कार्य को सम्पन्न करने की चेष्टा करते हैं?

२ क्या आप अपना कार्यक्रम एक दिन पहले बना लेते हैं?

३ क्या आप काम करते समय आवश्यक सामग्री अपने पास लेकर बैठते हैं, ताकि बार-बार उठना न पड़े?

४ क्या आप कार्य की बाहुल्यता में न घबड़ा कर उसे शान्तिपूर्वक एवं स्थिर-चित्त रह कर करते हैं?

[ शक्ति संचय ]

५ आलोचना, दोषारोपण—अपने काम की निंदा के प्रसंगों में भी क्या आप अपने-आपको सन्तुलित रख पाते हैं?

६. क्या अपनी महत्वकांक्षाओं को आप विवेक में

नियंत्रित रखते हैं और अवसर की कमी या साधारण असफलताओं से मन को निराश होने से बचा लेते हैं ?

७. क्या आप बातचीत करते समय स्थिर रहते हैं ?

८ सोने के समय क्या आप अपने दिमाग को चिंताओं से मुक्त कर पाते हैं ?

९. क्या आप अपने क्रोध या चिड़चिड़ेपन को दबा सकते हैं ?

१०. क्या आप दूसरों की प्रसन्नता या अप्रसन्नता से स्वयं को चिंतित अथवा दुःखी होने से बचा लेते हैं ?

११. क्या आप अपनी सामर्थ्य-भर चेष्टा कर सन्तुष्ट हो जाते हैं और आगे क्या होता है, इस चिंता से मुक्त रहते हैं ?

१२ क्या आप दूसरों के मामलों में तटस्थ रह पाते हैं ?

१३ क्या आप साधारण कष्ट या मामूली मतभेद को असाध्य रोग और गम्भीर स्थिति न समझ कर छोटी-छोटी बातों से मन को दुःखी होने से बचाते हैं ?

१४ क्या आवश्यकता से अधिक प्रसन्नता अथवा निराशा से आप बचते हैं ?

१५ मौसम या वातावरण प्रतिकूल होने पर क्या आप प्रसन्न रह पाते हैं ?

प्रत्येक स्वीकारात्मक उत्तर के लिए आप ५ अंक गिन लीजिये। यदि आपके अंकों की संख्या ५० या उससे अधिक है, तो आपकी शक्ति का अच्छा उपयोग होता है। ४५ से ५० अंक भी संतोषजनक हैं और ३५ से ४५ सामान्य, लेकिन यदि आपने ३५ से भी कम अंक प्राप्त किये हैं, तो आपको अपनी शक्ति बरबाद करने से बचना चाहिए। शक्ति का सदुपयोग तभी सम्भव है, जब आपकी इच्छाएँ व महत्वकांक्षाएँ आपकी सामर्थ्य के योग्य हों। व्यर्थ ही आकाश के तारे गिनने की चेष्टा करने में आप दुःखी व निराश ही होंगे।

## कविवर पंतजी का नामकरण

पंतजी ने स्वयं अपना नामकरण किया। एक बार उनके बड़े भाई श्री हरदत्त पंत मेरे मेहमान थे। उन्होंने बताया कि, पंतजी के बचपन का नाम था—श्री गोसाईंदत्त पंत। इनके और दो भाई थे, जिनके नाम थे—श्री रघुवरदत्त पंत और श्री देवीदत्त पंत। श्री हरदत्त पंत के कोई बिहारी मित्र थे, जिनका नाम था—सुमित्रानंदन सहाय। उनके पत्र अक्सर आया करते थे। गोसाईंदत्त पंत को यह नाम इतना पसंद हुआ कि, उन्होंने अपने को 'सुमित्रानंदन पंत' लिखना शुरू कर दिया और अब तो लोग इनके पुराने नाम को जानते भी नहीं।

—'बच्चन'जी ('सरस्वती' से साभार)

# अबोध बच्चे व्यापार की सामग्री

एलन मैसन द्वारा लिखित, युग की हृत्कम्पी समस्या का एक सिंहावलोकन देनेवाले लेख का संक्षिप्त हिन्दी रूपांतर

★

रोम और मिस्र में गुलामों के क्रय-विक्रय की कहानी तो आज सम्भवतः बहुत पुरानी हो चुकी है, किन्तु आज के इस 'सुसभ्य' युग के 'सुसंस्कृत' कहलाने का दावा करनेवाले राष्ट्रों में भी मनुष्य का क्रय-विक्रय अन्य किसी व्यापार के समान ही जारी है। पूर्व के जापान, चीन, इंडोनेशिया, ईरान, अरब आदि देश तो बच्चों, किशोरों व युवतियों के छुपे-छुपे व्यापार के लिए बदनाम हैं ही, पर पश्चिम के देश भी इस दोष से मुक्त नहीं हैं। किसी-न-किसी रूप में वहाँ बच्चों का क्रय-विक्रय आज भी चलता ही है।

इंग्लैंड, अमेरिका और यूरोप में बच्चों को गोद लेना इतना आसान नहीं, क्योंकि गोद लेनेवालों की संख्या अधिक होती है और बच्चे बहुत कम मिलते हैं। इसी कारण वहाँ कई ऐसी संस्थाएँ हैं, जो बच्चों को गोद देने का व्यापार ही करती हैं। अपने इस व्यापार का ये नाजायज फायदा उठाने से नहीं चूकतीं। बच्चे गोद लेनेवाले इच्छुक व्यक्तियों में ये संस्थाएँ ऐसे व्यक्तियों का चुनाव करने में काफी सावधानी बरतती हैं, जो मुँहमाँगी रकम दे सकें। और, जब तक गोद लेनेवालों की संख्या अधिक होगी और बच्चों की संख्या कम, तब तक सम्भवतः इन संस्थाओं का यह चोर-बाजार का व्यापार चलता ही रहेगा।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि, बच्चे गोद में देनेवाली संस्थाएँ कानूनन कोई रकम गोद लेनेवाले इच्छुक व्यक्तियों से अपने स्वयं के लिए नहीं माँग सकतीं—न ही बच्चे की कोई कीमत आँकी जा सकती है। परन्तु कानून अपनी जगह है और इन संस्थाओं का व्यापार अपनी जगह!

इंग्लैंड की एक महिला इस तरह के व्यापार में अन्य सभी व्यक्तियों से बाजी मार ले गयी है। वह तो खुलेआम बड़े गर्व के साथ कहती है कि, उसने ४०० से भी अधिक बच्चों की बिक्री की है।

इस महिला ने अविवाहित माताओं के लिए एक 'आरोग्य-केंद्र' खोल रखा था और इस तरह इसे काफी बच्चे मिल जाया करते थे। इस 'आरोग्य-केंद्र' में कोई भी बिना किसी पूछताछ के शिशु खरीद सकता था। यह स्वाभाविक ही है कि, कोई अविवाहित माता अदालत में इस महिला के विरुद्ध गवाही देने के लिए तैयार नहीं होती थी और इसी कारण इस महिला के विरुद्ध अब तक कोई कार्रवाई नहीं की

जा सके। कुँवारी कन्याएँ अपनी नाजायज संतान से छुटकारा पाने के लिए, इसी 'आरोग्य-केंद्र' का सहारा लेती थी, *क्योंकि वे जानती थी कि, उनके बच्चे यहाँ* गोद ले लिये जायेंगे। पर उनमें से किसी को भी यह नही मालूम हो पाता था कि, उसके बच्चे को 'गोद' देने के लिए कितनी रकम इस महिला ने वसूल की।

इस महिला के 'आरोग्य केंद्र' की सबसे बड़ी खूबी यह थी कि, मरीज से लेकर परिचारिकाएँ तक अविवाहित माताएँ ही हुआ करती थी। यह महिला मुसीबत मे पड़ी हुई युवतियो की सहायक होने का ढोंग रचकर बड़ी होशियारी से अपने जाल में फँसाकर उन्हे अपनी इच्छा पर चलने के लिए मजबूर कर देती थी। स्थानीय डाक्टरो व पार्लमेंट के सदस्यो को भी बेवकूफ बनाने में यह पीछे नही रहती। समय-समय पर चंदे के नाम पर काफी रकम ऐंठ लाया करती थी।

इस महिला को अपने इस अनैतिक व्यापार से काफी आमदनी थी। प्रति बच्चे पीछे कम-से-कम ५० पौंड यह कमा लेती थी। कई बार तो यह रकम २०० पौंड तक पहुँच गयी थी। किन्तु पुलिस को अतत शक हो ही गया। जाँच-पड़ताल आरम्भ हुई। 'आरोग्य-केंद्र' का चप्पा-चप्पा छान मार गया। फाइले उलटा कर देखी गयी, परन्तु यह महिला अपने इस व्यापार में इतनी चतुर है कि, पुलिस को कोई प्रमाण नही मिल सका। आजकल यह एक ऐसे कलब का सचालन कर रही है, जहाँ कुँवारी माताएँ घरेलू कामकाज मे हाथ बटाने की नौकरी पा सकती है।

*पश्चिम के कई देशो मे यह घृणित* व्यापार जारी है। यह सत्य है कि, ऐसे व्यापार में स्त्रियो की संख्या अधिक है, किन्तु ऐसे पुरुषो की भी कमी नही है, जो पुलिस की आँखो में बड़ी सफाई से धल झोंककर बच्चो, किशोरो व बच्चियो का क्रय-विक्रय किया करते है।

पूर्वी एशिया बच्चो के व्यापार की बहुत बड़ी मंडी माना जाता है। यहाँ बच्चो के दाम भी बहुत कम है। सिंगापुर म बच्चे अकसर इसलिए बेचे जाते है कि, उनके माता-पिता अपनी गरीबी के कारण उनके भरण-पोषण का भार वहन करने म असमर्थ होते है। सिंगापुर मे लगभग ८,५०,००० चीनी व्यक्ति अपनी सतानें प्रति वर्ष बच डालते है। बच्चो की खरीद-फरोख्त की इस मंडी मे बालक या बालिका की कीमत १२ पौंड से लेकर ५ पौंड तक होती है। *कभी-कभी तो इससे भी कम* मूल्य में बच्चे मिल जाते है।

सिंगापुर मे इस व्यवसाय को रोकने के लिए कोई कानून नही है। पर उपनिवेश-दफ्तर इस विषय मे आवश्यक जाँच-पड़ताल कर रहा है, ताकि इस अमानुषिक व्यवसाय को बद किया जा सके।

सिंगापुर में बच्चियो की इस बिक्री को *'स्थानातर करना' कहते है और जहाँ तक सम्भव होता है, इनकी खरीद-बिक्री का*

पूरा विवरण रखा जाता है। कानूनन ऐसा करना आवश्यक है। यह कानून मुई साई (नन्ही परिचारिकाओं) की बिक्री को रोकने के लिए बनाया गया है, क्योंकि घर का काम करनेवाली इन बालिकाओं से उनके मालिक व मालकिन बड़ा ही बुरा व्यवहार करते थे।

इस बात के भी पर्याप्त प्रमाण अब प्रकाश में आये हैं कि, कई निकृष्ट प्रवृत्ति के लोग गोद लेने के नाम पर बालिकाओं को वेश्यावृत्ति कराने के विचार से ही खरीदते हैं। वेश्याएँ भी बालिकाओं को इसी इरादे से खरीदती हैं कि, वे बड़ी होने पर उनके व्यापार को आबाद करेंगी। इस तरह वेश्याएँ अपनी गोद ली हुई पुत्रियों की कमाई पर जीवन-निर्वाह करती हैं। ये युवतियाँ उन वेश्याओं के वश में रहती हैं और अपनी इन 'माताओं' को काफी बड़ी रकम देने पर ही उनसे छुटकारा पाती हैं।

यह कुछ आश्चर्य की ही बात है कि, छोटे लड़कों की बिक्री पर यहाँ कोई नियन्त्रण नहीं है। यद्यपि अधिकारियों का कहना है— छोटे बच्चों का क्रय विक्रय बच्चियों की अपेक्षा अधिक होता है। यह बात भी छिपी नहीं है कि, भीख माँगने का पेशा अपनाने के लिए ही अधिकतर बच्चे खरीदे जाते हैं। इनका मालिक प्रति दिन इन्हें विभिन्न स्थानों पर भीख माँगने के लिए भेजता है और इसके बदले इन्हें केवल भोजन देता है। इस तरह भीख माँगकर ये बच्चे बहुत पैसे या अनाज एकत्र कर लेते हैं, जो इनके मालिकों को धनवान बना देने के लिए पर्याप्त है।

बिक्री के लिए बाजार में पेश किये जानेवाले बालकों की उम्र अधिक-से-अधिक बारह बरस की होती है। चीनी लोग बहुत छोटे बच्चे खरीदना पसंद नहीं करते। पर मलाया-निवासी छोटे-छोटे चीनी बच्चों को ही खरीदते हैं। बालक को खरीदने के लिए दी गयी रकम के सम्बन्ध में चीनी व्यक्तियों की धारणा है कि, यह रकम माँ के प्रसूति-गृह में रहने के खर्च के बदले दी गयी है, अतः इसे नाजायज नहीं कहा जा सकता।

बच्चों का क्रय-विक्रय केवल सिंगापुर में ही सीमित नहीं, सारे मलाया में प्रचलित है। कुछ हिस्सों में तो गरीब माँ-बाप बारह शिलिंग और छः पैंस-जैसी छोटी रकम में ही बच्चों को बेच देते हैं।

*

## आदर्श मंत्री

आदर्श मंत्री वह है, जिसकी खाल भैंसे-सरीखी हो तथा ऊँट के समान भोजन करता हो, गधे के समान काम करता हो और कुत्ते के समान सोता हो।

—एस वी कृष्णप्पा (उप-खाद्य-मंत्री)

*

# शुष्क नदियाँ जलवती बनेंगी

सरकारी गणना के अनुसार बरसात के बाद सूखी पड़ी रहनेवाली नदियों की संख्या ३४६ है। कितनी बड़ी तादाद है यह! इनको वर्ष-भर जलपूर्ण बनाये रखना देश की समृद्धि एव जलवायु के लिए कितना हितकर है! प्रस्तुत लेख में श्री वी वी पाग्नकर ने इसी दिशा में कुछ उपयोगी सुझाव रखे हैं।

★

संसार के विभिन्न प्रदेशो म बहुत-सी 'सूखी' नदियाँ हैं। जो नदियाँ बड़े-बड़े रेगिस्तानो में बह कर विलीन हो जाती हैं, वे भी इसी श्रेणी म आती हैं। लेकिन रेगिस्तान में बालू बहुत जल्द पानी को सोख लेती है और अत्यधिक गरमी के कारण भी उन नदियो का जल भाप बन कर बड़ी तेजी से उड जाता है। उत्तर-पश्चिम पाकिस्तान के 'थार' रेगिस्तान में ससार में सबसे अधिक गरमी पड़ती है। वहाँ का तापमान १४८ डिग्री फरनहैट (६४ डिग्री से ) हो जाता है जब कि, उत्तर-अफ्रीका और मध्य आस्ट्रेलिया में १२० से १३० डिग्री फे के तापमान का ही 'रिकार्ड' है। फिर भी रेगिस्तान की नदियो से अधिक मात्रा म जल प्राप्त करने के कई तरीके है, जिन्हे आज की सरकारे और वैज्ञानिक मूर्त रूप में देखने का विचार कर रहे हैं।

दक्षिण-भारत की पलार नदी का उदाहरण लेकर हम इन तरीको को समझने की कोशिश करेंगे। दक्षिण-भारत की ओर सभी नदियो की तरह पलार का भी मुख्य जल-स्रोत वर्षा है। समुद्र-स्तर से २००० फुट ऊँचे मैसूर के पठार पर इसका उदगम है। ३०० मील से भी अधिक दूरी का चक्कर काट कर वह मद्रास राज्य में बहती हुई बगाल की खाड़ी म गिरती है। उसके आसपास करीब २० से ३० इच तक वार्षिक वर्षा होती है और जून में ९६ डिग्री फे के करीब तापमान हो जाता है।

वर्षा ऋतु म बरसात अधिक होने पर उसम कई बार अचानक बाढ आ जाती है और उसके कारण काफी नुकसान पहुँचता है। स्वय नदी का प्रवाह भी इतना तेज है कि, उसका जल शीघ्रातिशीघ्र समुद्र म पहुँच जाता है। किन्तु उसका तला गहरी बालू का होने के कारण जमीन के ऊपर और भीतर भी काफी जल जमा रहता है। इस प्रकार वेलोर, चिंगलपुर इत्यादि कई नगर और बहुत-से गाँव जो उसके तट पर बसे हैं, उनको जमीन से छना हुआ यह पानी मिलता है। इसे प्राप्त करने के लिए वे नदी

के तले पर ढालू क्यारियाँ बाँधते हैं और उसके तले में काफी श्रम कर बहुत-से कुएँ भी खोद डालते हैं।

लेकिन जमीन के भीतर का पानी समुद्र की ओर और भी जल्दी बहता है—खासकर ऐसे स्थानों पर, जहाँ नदी के तले में गहरी बालू रहती हो। इसका परिणाम यह होता है कि, जो गाँव और शहर ऐसी नदी के किनारे पर बसे होते हैं, उन्हें गरमी के दिनों में, जब पानी की सबसे ज्यादा जरूरत रहती है, बिलकुल पानी ही नहीं मिलता।

जमीन के भीतर का यह पानी तेजी से समुद्र की ओर दौड़ने के कारण नदी की सतह भी नीची हो जाती है। इन नदियों में पानी की सतह वैसे भी नीची होती है और प्रति बरसात में पानी के दबाव के कारण लगातार नीची होती जाती है। ऐसी नदियों पर ऊपर से बाँध बाँधना भी किसी रूप में हितकर नहीं हो सकता।

किन्तु इस लेख के लेखक की दृष्टि में इन नदियों से अधिक मात्रा में जल प्राप्त करने का अधिक लाभदायक और सफल तरीका, नदी के नीचे-स्थान-स्थान पर जमीन के भीतर-बाँध बाँधना है। इससे पानी की सतह भी ऊँची हो सकेगी और जमीन के भीतर का जो पानी समुद्र की ओर दौड़ता है, वह भी रुक जायेगा। फलत उस नदी पर बसे गाँवों और शहरों को काफी अधिक पानी मिलना निश्चित हो जायेगा।

दो बाँधों के बीच जमीन का पानी जब रुक जायेगा, तो वह दोनों ओर बहेगा और जमीन की कड़ी-नरम होने के अनुसार जमीन के भीतर भी जायेगा। इस प्रकार एक ओर तो आस-पास के कुओं-तालाबों को ज्यादा पानी मिलेगा तथा दूसरी ओर, पानी के और नीचे धँसने के कारण उसका समुद्र की तरफ का बहाव भी काफी हद तक नियन्त्रित हो जायेगा।

[७ सितम्बर १९५५ को राष्ट्रपति से 'भारतरत्न' का सम्मान ग्रहण करते हुए ९५ वर्षीय अभियन्ता विश्वेश्वरैया]

दूसरा फायदा जमीन के भीतर इन बाँधों को बाँधने का यह होगा कि, नदी का बहाव धीरे-धीरे कम हो जायेगा। फलत उसके आस-पास बने तालाबों और बाँधों में अधिक पानी रहेगा। गणित-द्वारा यह बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी।

मान लीजिये कि, बाँध १० मील या ५०,००० फुट के फासले पर बने है, नदी की चौडाई १०० फुट है और वालुमय परत करीब १० फुट गहरी है। रोका हुआ जल जल्हीन स्थानो के केवल १० प्रतिशत भाग में फैला है। याने पचास लाख क्यूबिक फीट या तीन करोड गैलन पानी वहाँ प्राप्य होगा!

हमारे दक्षिण-भारत की ही अधिकाश सूखी नदियाँ ५०० से १,५०० फुट या अधिक चौडी है। इनका वालुमय तला ही १० या ३० फुट या उससे भी अधिक गहरा होता है और जल्हीन स्थान १० फी-सदी से भी अधिक होते है। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि, इन नदियो की गोद में कितना पानी प्राप्य है!

कोई शायद यह कहे कि, जमीन के अदर ऐसे धँसे बाँध बनाने में बहुत खर्च होता है, लेकिन नदी का रेतीला तला इतना मुलायम होता है कि, केवल सीमेंट भीतर डालने से ही काम चल सकता है।

इसके अतिरिक्त ऐसे बाँधो के दोनो ओर समान दबाव होने के कारण उनके अधिक चौडे होने की भी आवश्यकता नही। ५ से लेकर २० फुट तक इनकी चौडाई हो सकती है। इन योजनाओ को और भी अधिक सस्ती बनाने के लिए बालू और सीमेंट के अनुपात में भी फेर-फार किया जा सकता है।

★

कुछ साल पहले गुजरात के कई समाचार-पत्र अपने दिवाली-अक का सम्पादन करने के लिए प्रमुख साहित्यकारो को आमत्रित किया करते थे। ऐसे ही एक पत्र के दिवाली-अक के प्रथम पृष्ठ के लिए उसके साहित्यिक-सम्पादक ने एक विख्यात और जनप्रिय कवि की रचना मँगवायी। गत वर्ष भी यही साहित्यिक सज्जन सम्पादक थे।

रचना आते ही प्रेस में कम्पोज होने के लिए भेज दी गयी। रात में जब वह फर्मा मशीन पर जानेवाला था कि, समाचार-सम्पादक की दृष्टि उस कविता पर पड गयी। उन्हे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि, यह तो वही कविता थी, जो पिछले दिवाली-अक में, उसी पत्र मे छपी थी। उनको वह कविता अस्वीकार करने का अधिकार तो नही था, लेकिन वह फर्मा उन्होने रात में छापे जाने से रोक दिया। सवेरे जब उन्होने पिछले दिवाली-अक में वही कविता छपी हुई सम्पादक को बतायी, तो सम्पादक महोदय अत्यत लज्जित हुए। कविजी को लिखा गया, तो उन्होने उत्तर दिया— "मै तो यह देखना चाहता था कि, आप लोग अपने काम के प्रति कितनी ईमानदारी बरतते है!"

—'अखड आनद' से साभार

★

# आत्म-निर्माण की प्रयोगशाला

"दुनिया एक असीम जंगल है और इंसान एक जलती मोमबत्ती। कुछ मोमबत्तियाँ जंगल को जलाकर चारों तरफ दोजख पैदा करती हैं और कुछ स्वयं जलकर अंधेरे में भटकनेवालों के मार्ग को रोशन करती है। साधु और असाधु लोगों में यही फर्क है।" संत फरीदुद्दीन अत्तार का यह रूपक बुद्ध के 'अप्प दीपो भव' सूत्र का एक स्पष्टीकरण है। नीचे की पंक्तियों में संतरामजी ने ऐसे ही महापुरुषों की छिटपुट जीवन रेखायें प्रस्तुत की हैं।

★

मनुष्य एक शून्य के सदृश्य है। उसका तब तक कुछ भी मूल्य नहीं, जब तक उसके आगे कोई अंक न रखा जाये। और, वह अंक सदा कोई ऐसी चीज होनी है, जिसका वह प्रतिनिधि होता है। महात्मा गांधी से उस काम को अलग कर लीजिये, जिसके वे प्रतिनिधि हैं। शेष कुछ नहीं रह जायेगा। न उनमें शारीरिक सौंदर्य था, जिससे लोग आकर्षित होते, न कोई विलक्षण प्रतिभा थी, जिससे लोग उनका सम्मान करते। उनकी सत्यनिष्ठा और पर-दुःखकातरता ही उनकी महत्ता का मुख्य कारण था। जिस प्रकार एक साधारण-सा तार बिजली की धारा से चमक उठता है, उसी प्रकार यह मुट्ठी-भर हड्डियों का पंजर अपनी देश-सेवा के प्रताप से चमक उठा था।

ऐसे महान् व्यक्तियों में हमारे द्वारा सिद्धांत की क्रिया को देखना कठिन नहीं। परन्तु हममें से अधिकांश के लिए इससे भी अधिक महत्व की बात यह देखना है कि, हममें बहुत ही छोटे मनुष्य भी बड़ी-बड़ी बातों के प्रतिनिधि हो सकते हैं।

जल एक आवश्यक पदार्थ है। समूचे संसार की उर्वरता इसी पर आश्रित है, परन्तु इसके प्रतिनिधियों के परिमाण एक-दूसरे से बहुत ही भिन्न हैं। न केवल महासागर, न केवल बड़े-बड़े सरोवर और महानद, वरन् प्रत्येक छोटा नाला, प्रत्येक पहाड़ी, प्रत्येक झरना और प्रत्येक वर्षा-बिंदु इस आवश्यक पदार्थ का जल-रूप में प्रतिनिधि है। इसी प्रकार हममें छोटे-से-छोटा बड़ी-से-बड़ी बातों का प्रतिनिधि हो सकता है।

व्यक्तित्व का निर्माण कोई स्वार्थपरता की बात नहीं। इसलिए इसकी प्राप्ति के लिए अहंतामय विधियों का विफल होना अवश्यम्भावी है। कुछ लोग जीवन को एक व्यवसाय समझते हैं और कुछ इसे एक कला समझते हैं। पहले प्रकार के मनुष्य जितना कुछ हो सके, जीवन में से निचोड़ कर निकाल लेना चाहते हैं और दूसरे, जितना कुछ हो सके, उसमें लगा देना चाहते हैं। पहले प्रकार के लोग दिन-पर-दिन छोटे एवं संकीर्ण होते जाते हैं, दूसरे प्रकार के फैलते और बढ़ते जाते हैं।

जीवन में सबसे गहरा आनंद निर्माणक

या रचनाकारी होने में है। किसी अविकसित स्थिति को ढूँढना, सम्भावनाओं को देखना, किसी ऐसी चीज के साथ जो करने योग्य हो, अपने को मिला देना, अपने को उसमें डाल देना और उसका प्रतिनिधि बन जाना—यह एक ऐसी सतुष्टि है, जिसकी तुलना में बाह्य सुख तुच्छ है।

यह बात उस दशा में भी सत्य ही रहती है, जब निर्माणकता को वायु पर विजय पाने जैसी भौतिक बातों की ओर फेर दिया जाता है। कुछ समय हुआ, एक अमरीकी उडाकू पेनसिलवेनिया के पर्वतो मे गिर कर मर गया। उसकी मृत देह पर एक पत्र मिला। वह वायुयान-चालको और सहवासियो के नाम था। उस पर चिह्न किया हुआ था—"मेरे मृत्यु के बाद ही खोला जाये।" सुनिये, उसमे उसने क्या कहा था—

"मैं पश्चिम जा रहा हूँ, परन्तु मेरा हृदय आनदपूर्ण है। मैं आशा करता हूँ कि, जो भी थोडा-सा आत्मोत्सर्ग मैंने किया है, वह इस कार्य के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। जब हम उडते है, तो लोग कहते हैं, ये मूर्ख है, परन्तु वायुयान द्वारा इस आश्चर्यजनक उडान में वही मनुष्य जगत का सबसे अधिक उपकार कर सकता है— जितना कि, जनता उसका उपकार मान सकती है। हम अपने प्राणो को जोखम में डालते है, हम अपना जीवन दे देते हैं। हम अपने उडने की कला को मनुष्य-यात्रा के लाभार्थ पूर्ण जानते है। परन्तु मित्रो! हमको छोडना मत। मैं अभी तक तुम्हारे साथ हूँ। तुम सबसे एक बार फिर मिलूँगा।"

आपके हृदय में क्या उस साहसी युवक के लिए करुणा का भाव उत्पन्न होता है?

मेरे हृदय में तो बिलकुल नही। उसके छोटे-से जीवन मे, उन सब ऊबे हुए आनद के खोजको से कही अधिक रसिकता थी, जो अपनी आत्मा को छिछली फेन से तृप्त करने का यत्न करते हैं। उसे अपने से बाहर किसी बात में दिलचस्पी हो गयी। उसके लिए उसने साहस किया और आत्म-त्याग भी किया।

कन्फ्यूशस
[ये हैं चीन के पतंजलि, जिन्होंने वाम पथ की ओर भागते चीन के मानव समाज को यम नियम का महत्व समझा-कर आत्मशिल्पी बनाया।]

इस लेख के कई पाठक ऐसे होग, जिन्हे इस लेख को पढकर अपने-आपसे लज्जा होने लगेगी। इन लोगो का मस्तिष्क ठिकाने नही रहता और इनके चित्र-विचारो में गडबडी हो जाती है। बहुधा ये लोग गरीब और तग हालातवाले नही होते, वरन् खाते-पीते, सुख-समृद्धिशाली, स्वार्थी एव अपने तक ही सीमित रहनेवाले परातजीवी होते हैं। इनको अपने से परे कभी भी कोई बात ऐसी नही मिलती, जो इनके विचारो

को इनके अपने-आपसे बाहर ले जाये। मनुष्य उतना ही बड़ा होता है, जितने बड़े कामों के लिए वह अपने-आपको निवेदित करता है।

जिनको अपने सिवा और किसी बात में दिलचस्पी नहीं, ऐसे जीवन से ऊबे हुए और बहके हुए आधुनिक स्वार्थी लोगों के विपरीत और उनसे उच्चतर एक और प्रकार है। इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध राजमंत्री विलियम हेवार्ट ग्लैडस्टन की मृत्यु नब्बे वर्ष की आयु में हुई थी। वे कहा करते थे कि, यदि मैं ७० वर्ष की आयु में मर जाता, तो मेरे जीवन-कार्य का उत्तम अर्धांग अधूरा ही रह जाता। बुढ़ापे में उन-जैसा उत्साह रखना एक बड़ी शान की बात है। उन्होंने अपने व्यक्तित्व को फैलाकर उन कार्यों से अभिन्न बना दिया था, जिनमें उनका विश्वास था और जो उनको प्रिय थे।

दूसरे शब्दों में, हम स्त्रियाँ और पुरुष बहुत-कुछ पताका के बांस के सदृश्य हैं। कई बांस बहुत ऊँचे होते हैं और कई छोटे। परन्तु झंडे की बल्ली की महत्ता उसकी छुटाई और ऊँचाई पर नहीं, वरन् उस पर लगी हुई पताका पर है। ठीक पताकावाला छोटा बांस, गलत पताका-वाले बहुत ऊँचे बांस से कहीं अधिक मूल्यवान होता है। जब मनुष्य अपना जीवन प्रायः समाप्त कर चुके, तो मैं समझता हूँ, उसके लिए सबसे अधिक संतोषजनक बात यह है कि, वह यह कह सके—"मुझे लज्जा है, मैं अधिक उत्तम व अधिक ऊँचा और अधिक सीधा बांस नहीं था। पर मुझ पर जो पताका लहराती थी, उसके लिए मैं किसी भी हालत में लज्जित नहीं!"

✱

## खोयी हुई आँख

हम लोगों का काम भी बड़ा ही दिलचस्प है। गत वर्ष की एक घटना तो मुझे आज भी स्मरण है। एक महिला मेरे दफ्तर में आयी और बोली—"इंसपेक्टर! अभी-अभी जब मैं तैर रही थी, तो मैंने शीशे की बनी अपनी एक आँख कहीं खो दी। क्या मैं यह आशा रखूँ कि, आप इसे ढूँढ़ निकल-वाने का प्रयास करेंगे?" अब आप स्वयं सोचिये—इस बात की कितनी कम आशा थी कि, वह आँख लहरोंद्वारा किनारे पर ले आयी गयी हो? किन्तु नहीं, दो दिनों बाद ही, मेरे एक सहकारी ने मुझे बताया कि, समुद्र-किनारे उसे एक खूबसूरत संगमरमर मिला है .... परन्तु यह तो उस महिला की खोयी हुई आँख थी!

—ई. एस. बील्स, 'बीच ऐंड बोट-इंसपेक्टर', पारमाउथ

★

मैं टूथ पेस्ट
व्यवहार करता हूँ
मै टूथ-पावडर व्यवहार करती हूँ
मैं तो अपना
ही बनाया
हुआ मंजन व्यवहार करता हूँ
लेकिन हम सभी
Aryan
टूथ ब्रश व्यवहार करते हैं

# खून के आँसू

कर्नल जोरावर सिंह की शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तक 'भ्राइ सा देम' के एक अध्याय का सक्षिप्त हिन्दी रूपातर

★
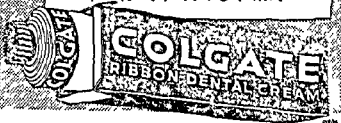
आँखो में खून उतर आया—यह बात तब कही जाती है, जब किसी को बहुत क्रोध आता है और क्रोध के कारण आँखें सुर्ख हो जाती है। परन्तु हाल ही में एक अद्भुत प्राणी का पता चला है, जो सताये जाने पर अथवा क्रुद्ध होने पर आँखो से खून की वर्षा करता है। इस प्राणी का नाम 'हार्नटोड' ('शृगी मेढक') है। यह लाखो वर्ष से उसी आकार प्रकार का है। किसी प्रकार का परिवर्तन अभी तक इसमें नही हुआ है।

इस प्राणी का सिर बडा भयानक दीखता है। उसमें काटे लगे होते है और सारे शरीर पर बिंदु बिखरे होते है। इसकी आकृति भयानक अजगर की-सी है और लम्बाई केवल ३-४ इच होती है। यद्यपि इसका रूप बडा भयानक होता है, तथापि इस प्राणी-सा धोखे में डालनेवाला जीव शायद ही ससार म कोई दूसरा होगा। इसके सिर पर के काटे या सीग देखने भर के ही होते है। यदि कोई मासाहारी इसे समूचा निगल जाये, तो भी उसे किसी प्रकार की हानि न होगी। इसकी त्वचा ढाल की-सी प्रतीत होती है, किन्तु वस्तुत बडी कोमल होती है। चीटी, मक्खी, मच्छर आदि प्राणियो के मारे इसका सदा नाक में दम रहता है।

[आँखों से खून की वर्षा करनेवाला 'शृगी मेंढक']

इच्छानुसार 'हार्नटोड' फूलकर दुगुना हो जाता है। यह विचित्र प्रकार का 'पफ-पफ' शब्द या बडी तीव्र पुकार भी कर सकता है। जब यह अपनी पूछ हिलाता है, तब ऐसा मालूम होता है कि, रेंटिल-स्नेक' चल

रहा हूँ। चौंकने पर या क्रोध आने पर यह प्राणी आँखों से खून फेंक कर मारता है। कभी-कभी तो इसकी आँखों से चौथाई चाय-चम्मच खून निकलता है और वह उसे १५ इंच की दूरी तक फेंकता है। आश्चर्य यह है कि, इस कार्य से 'हार्न-टोड' को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचती। न-जाने उसकी आँख में कौन-सा ऐसा यंत्र है, जिससे रुधिर की बौछारें इतनी दूर तक फेंकी जा सकती हैं। इस 'यंत्र' का पता लगाने के लिए काफी प्रयत्न किये गये, किन्तु 'प्रकृतिजयी मानव' को प्रकृति के इस रहस्य-भेद में अब तक सफलता नहीं मिल सकी है।

परीक्षण करके देखा गया है कि, निकले हुए रुधिर में किसी प्रकार का विष नहीं होता। किन्तु जब आक्रमणकारी के मुँह पर रुधिर के छींटे पड़ते हैं, तो यह स्वाभाविक है कि, वह ग्लानि का अनुभव करे और इस जीव से बचे।

सूक्ष्म अध्ययन एवं प्रयोगों से पता चला है कि, सींगी-मेंढक की आँखों के किनारे-किनारे चारों तरफ लम्बी-लम्बी केशिकाएँ होती हैं, जिनमें रुधिर बहता है और जो इस प्राणी के इच्छानुसार खूब फूल सकती हैं। जब यह प्राणी भयभीत या क्रुद्ध होता है, तो इसका हृदय वेग से धड़कने लगता है। फलतः रुधिर का दबाव बढ़ जाता है और स्वभावतया रुधिर इन केशिकाओं में भरने लगता है। इस प्रकार रबर के समान लचीली ये केशिकाएँ बहुत-सा खून ग्रहण कर लेती हैं-यहाँ तक कि, खून के भरने से केशिकाओं की दीवार फैलकर फट जाती है और रुधिर आँख के कोने की एक नाली में आकर, जिधर यह प्राणी देखता है, उसी दिशा में पिचकारी के पानी की भाँति गिरने लगता है। प्रायः 'सींगी मेंढक' आक्रमणकारी के मुँह की ओर ताकता है। अतएव आक्रामक के मुँह पर ही खून के छींटे पड़ते हैं। यह खून ऐसा चिपचिपा और दुर्गंधयुक्त होता है कि, मनुष्य तो क्या, सूअर-जैसा गंदा प्राणी भी उससे दूर भागता है! कैसी विचित्र लीला है प्रकृति की! निर्बल-से-निर्बल प्राणी को भी उसने आत्मरक्षा के साधन से सुसज्जित कर दिया है! इसकी केशिकाओं के चिपचिपे रुधिर में ऐसे तत्त्व रहते हैं, जिनके द्वारा केशिकाओं का घाव फौरन ही भर जाता है।

लन्दन के डा० विगली नॉविन ने इन मेंढकों की कई वर्ष तक वैज्ञानिक जाँच की थी। उनका कथन है कि, एक बार तो एक मेंढक ने १५ इंच की दूरी तक खून फेंका था। एक मिनिट बाद उसने दूसरी आँख से फिर खून फेंका और इस प्रकार ३ मिनिट के भीतर ही उसने ५ बार उनके ऊपर खून फेंका।

उनका कुत्ता एक मेंढक के पास गया और उसे सूँघने लगा। किन्तु इतने में ही उसके मुँह पर खून का एक फव्वारा आ गिरा। कुत्ता वहाँ से घबड़ाकर ऐसा भागा कि, फिर इस जन्तु के निकट नहीं गया!

★

मुकुद ने जब देखा कि, उसकी लह-लहाती फसल का कुछ हिस्सा ढोर चर गय, तो वह आपे से बाहर हो गया। दिन-रात परिश्रम कर उसने बीज बोय थे और पहरा दिया था। आज वह किसी कार्यवश बाहर चला गया था। आने पर फसल की यह हालत देखते ही उसका खून खौल उठा। आँख लाल-पीली करते हुए उसने शाति से पूछा– "तुम्हारे रहते हुए ढोर अनाज कैसे खा गये? तुम्हे अपने घर की कोई चिंता नही है?"

शाति से गलती अवश्य हो गयी थी, लेकिन उसे मुकुद का इस बुरी तरह पेश आना अच्छा नही लगा। जवाब देने में वह पीछे हटनेवाली नही थी। उसने मानो आत्मरक्षा करते हुए कहा—" दिन-भर ढोरो को सँभाल कर रखना सरल काम है क्या? बच्चे नदी पर भाग जाते हैं। उनकी सँभाल रखूँ या ढोरो की? इसके अलावा घर का काम भी पूरा करना ही चाहिए। काम पूरा न हो, तो फिर तुम्हारी बाते जो सुननी पडें।"

"फसल न होगी, तो कर्ज कैसे चुकाओगी? हैं तुम्हारे पास पैसे?" मुकुद उसी स्वर में बोल रहा था।

'मैं क्या पैसे जोडती हूँ? जबसे तुम्हारे पास रहन लगी हूँ, एक पैसा नही बचता।" शाति न उत्तर दिया।

"शायद तुम्हे अपन पुराने जमाने की याद आ रही है।" मुकुद ने व्यग्य कसा।

"याद क्यो न आये? सुख पाने के लिए तुम्हारे साथ रहन लगी थी। ब्याही औरत की तरह तुम्हारे साथ रही, लेकिन भाग्य में तो लिखा था दुख।"

दोनो म बहुत देर तक झगडा होता रहा। मुकुद जब इस झगड से ऊब गया, तो उसने मछली पकडने का जाल तथा अन्य सामान लिये और भूखे पेट घर से बाहर निकल गया। जाते समय दुखी होकर उसने शाति से केवल इतना कहा– 'रह तू अब इस घर मे। समझ ले, मैं तेरा अब कुछ नही लगता।" रोष और दुख से भरा मुकुद नाव में बैठ गया। उसने सोचा कि, कही दूर – बहुत दूर—चला जाना चाहिए। इतनी दूर कि, जहाँ घर, औरत, बच्चे—सब भुला दिये जा सके।

टेकडी के नीचे वह छोटा-सा गाँव बसा हुआ था। तीन दिशाओं में सरिता

कलकल-छलछल करती हुई बहती थी। नदी के किनारे ही मुकुंद का घर था। उसके चार बच्चे थे। तीन बच्चे नदी-किनारे खेल रहे थे और चौथा घर में रो रहा था। सन्ध्या हो चुकी थी। गाँव में दीये टिमटिमा रहे थे और नदी में तीस-चालीस नावें चल रही थीं। मछलीमार इन नावों में बैठे हुए थे और जाल पानी में फेंक-फेंक कर मछलियाँ पकड़ रहे थे।

मुकुंद आगे बढ़ रहा था, लेकिन उसे मालूम नहीं था कि, वह कहाँ जा रहा है। जब नदी में कुछ ज्वार आने लगा, तो वह नाव में सीधा लेट गया। ऊपर नीला नभ था, दोनों तरफ नारियल के झाड़ और झाड़ों के पीछे मनोहर टेकड़ियाँ। उसे अपने पुराने दिन याद आने लगे। उस समय वह बीस वर्ष का नवयुवक था। माँ-बाप कोई न थे। मछलियाँ मार-मार कर वह अपनी जीविका अत्यंत आनंदपूर्वक चलाता। एक दिन जब वह मछलियाँ पकड़ रहा था, उसकी दृष्टि एक कोमल वदना कुमारिका पर पड़ी। वह किशोरी—शांति-पानी में पैर धो रही थी। उसका अनुपम सौंदर्य निहार मुकुंद मन्त्रमुग्ध बन गया। धीरे-धीरे दोनों का परिचय हुआ। परिचय की सीमा पार कर दोनों प्रेम के प्रांगण में खेलने लगे। तभी मुकुंद को मालूम हुआ कि, शांति ने कुछ दिन पहले ही वेश्यावृत्ति स्वीकार की थी।

दोनों पति-पत्नी की तरह रहने लगे। शांति ने वेश्यावृत्ति छोड़ दी। समाज को तिलांजलि देने में मुकुंद ने भी आगा-पीछा नहीं किया। लगभग दो वर्ष तक चैन की बंसी बजी। मुकुंद मछलियाँ बेच कर लाता और दोनों आनंदपूर्वक रहते। लेकिन जैसे-जैसे बच्चे होते गये, उनका सुख-स्वप्न बालू की दीवार बन गया। दोनों में झगड़े होने लगे, कई बार दोनों एक-दूसरे से बोलते नहीं, कभी हाथापाई भी हो जाती और कभी खाना ही नहीं खाते। कई बार मुकुंद उससे कहता कि, मैं घर छोड़ कर चला जाऊँगा, मैं इस घर से तंग आया हूँ। शांति भी कब पीछे नहीं रहती—"मैं नदी में जाकर डूब मरूँगी। तुम्हारे लिए मैंने अपनी माँ, मौसी और मामा को छोड़ा। मैं ही उनके जीवन का आधार थी। तुम्हारे पास न आकर यदि मैं उनकी सेवा करती, तो मुझे कम-से-कम मानसिक सुख तो मिलता। तुम्हारे साथ रहकर मेरे इहलोक-परलोक दोनों ही बिगड़ गये।" और, इसके बाद वह घंटेभर घंटों रोती। मुकुंद भी इसका करारा जवाब देता। वह कहता—"तुझे आने-जानेवालों की आवभगत अच्छी लगती थी। अब वह आवभगत होती नहीं, इसलिए तू तड़प रही है। मैं भी एक वेश्या से विवाह कर डूब गया। लोग ठीक कहते थे, तेरी जल्दी ही आँखें खुलेंगी। कोई साड़ी लानेवाला मिल जायेगा, तो यह इसके पास थोड़े ही रहेगी।"

क्रोध के आवेश में मुकुंद अनाप-शनाप जाने क्या-क्या बोल जाता था! लेकिन

जब वह होश म आता, तो उसे अपनी गलती मालूम हो जाती। शांति भले ही प्रथम मुलाकात से अब तक अनेक बार मुकुद से झगड़ी हो, शायद कभी गालियाँ भी दे दी हो, अपने पुराने जमाने की याद भी की हो लेकिन पर-पुरुष के सम्पर्क में वह कभी खड़ी नही रही। मुकुद भी उतना ही सच्चरित्र था। पैसे उसके हाथो में खलते थे, लेकिन उसन कभी शराब का नाम नही लिया। अन्य औरतो की तरफ वह आँख उठा कर भी नही देखता था।

इस प्रकार कई अच्छे-बुरे प्रसग आकाश की ओर देखते-देखते मुकुद को इस क्षण याद हो आये और उसका मन अस्वस्थ हो गया। अस्वस्थता से मुक्ति पाने के लिए उसने अपना जाल पानी में फेंक दिया और मछलियाँ पकडने लगा। वह सोच रहा था कि, कहाँ जाना चाहिए? शांति और उसके बच्चो की क्या दशा होगी? अचानक उसे याद आया कि, पिछले दो-तीन वर्षों में शांति और उसके बीच अनेक बार झगडे हुए और जब-जब वह घर से बाहर गया, पुन लौट भी आया। इस समय उसे अपनी इस प्रवृत्ति पर वास्तव में आश्चर्य हुआ। उसने ऐसे कई घर देखे थे, जिनमें एक बार झगडा हुआ और पति-पत्नी सदा के लिए अलग हो गये। लेकिन उसका अपना घर ?

किनारा पास आने लगा। मुकुद पीलगाँव पहुँच गया। मछलियो से भरा हुआ टोकरा उसने एक तरफ रखा। इस गाँव में उसका एक घनिष्ठ मित्र रहता था—श्यामू। इस बार बाढ आने के कारण श्यामू के खेत नष्ट हो गये थे।

[मुकुद घर छोड़कर चले जाने की धमकियाँ देता और शांति बठकर घंटों रोती।]

मुकुद जब किनारे पर पहुँचा, तो ऊषा की लाली गगन को मोहक बना रही थी। सूर्यदेव आने की प्रतीक्षा में थे। मुकुद ने ज्योंही मछलियो का टोकरा सिर पर रखना चाहा, एक व्यक्ति अचानक उसके सामने आकर खडा हो गया। इतनी सुबह श्यामू को वहाँ देखकर मुकुद को आश्चर्य हुआ। घर के झगडे और अपने निर्णय के सम्बन्ध म क्या कहा जाये, यही उसकी समझ में नही आ रहा था।

"इतनी मछलियाँ किस लिए लाये हो? क्या किसी ने तुमसे कहा है कि, मेरे घर मछलियो की कमी है?" श्यामू ने प्रश्न किया। मुकुद ने श्यामू के चेहरे को देख

कर ताड़ लिया कि, वह बेहद दुखी है।

"घर पर जितनी मछलियों की जरूरत होगी, उतनी रख लेंगे और बाकी बेच देंगे।" मुकुंद ने जवाब दिया।

"लेकिन तू इतने सवेरे यहाँ आ कैसे गया? मालूम होता है, सारी रात पानी में बिता दी है।" श्यामू ने कहा।

"मुझे तो आश्चर्य होता है कि, फिर भी मैं जीवित बच गया हूँ।"

"ऐसे क्यों बोलता है, रे? कहीं पागल तो नहीं हो गया?" श्यामू ने आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखते हुए कहा।

"पागल हो जाता, तो भी छुट्टी मिलती" मुकुंद ने दुःख-भरे स्वर में कहा—"सच कहता हूँ, दुनिया में मन नहीं लगता। घर से तो ऊब गया हूँ।"

"अरे, घर-घर में मिट्टी के चूल्हे हैं। इस तरह पागल बनने से पर चलता है?" श्यामू ने बुजुर्गों की तरह सांत्वना दी।

"लेकिन मैं तो घर छोड़ कर आ रहा हूँ। कुछ दिन तेरे यहाँ रहूँगा और इसके बाद कहीं और.... एक जान की चिंता भी क्या हो सकती है भला?"

"अरे-अरे! तू क्या बोल रहा है? कहीं मेरा मजाक तो नहीं कर रहा? हमारे घर के झगड़े की बात तो तुझसे किसी ने नहीं कह दी? ऐसा ही हुआ होगा। नहीं तो इतनी मुसीबतों का सामना कर रात-भर जग कर तू मेरे यहाँ क्यों आता? यही बात है।... मुकुंद! मैं घर से तंग आ गया हूँ। सारी रात नदी के किनारे घूमता रहा हूँ। मस्तिष्क में तरह-तरह के विचार आते रहे हैं। एक बार ऐसा भी सोचा कि, महीने-भर तुम्हारे यहाँ आकर रह जाऊँ। कल रात गोपी से बहुत लड़ाई हुई– बहुत!" श्यामू एक सांस में बोलता जा रहा था और धीरे-धीरे दोनों घर के समीप पहुँच रहे थे। घर आते ही श्यामू ने थोड़ी-सी मछलियाँ चबूतरे पर रख दीं और बची हुई बाजार में बेचने के लिए लेकर निकल गया।

चबूतरे पर रखी मछलियों को मुकुंद एक छुरी से साफ करने लगा। कुछ ही देर में घर के सब बच्चे मुकुंद के पास आकर बैठ गये और आश्चर्य से मछलियों की ओर देखने लगे। थोड़ी देर में ही श्यामू की पत्नी—गोपी—एक कप चाय और पाँच-पाँच चार केले ले आयी। बोली—"भाईजी! पहले चाय पीजिये। मछलियों का काम मैं कर लेती हूँ।"

मुकुंद ने गर्दन उठा कर देखा, तो मालूम हुआ कि, गोपी की आँखें सूजी हुई हैं, बाल और वस्त्र अस्त-व्यस्त फैले हुए हैं तथा चेहरा मलिन है। उसे श्यामू की बातें याद आ गयी और वह तत्काल समझ गया कि, गोपी ने भी सारी रात बिछौने पर रो-रो कर बितायी है। उसने गोपी से कहा—"बहन! मालूम होता है, तुम्हारी तबीयत खराब है।"

मुकुंद के मुँह से सहानुभूति के ये शब्द सुनने पर गोपी के संयम का बाँध टूट गया। वह बोली—"भाईजी! अब सहन नहीं

होता। मैं इस घर से ऊब गयी हूँ।" गोपी के होंठ काँप रहे थे। हिचकियाँ लेते हुए उसने कहा–"आपके भाई मुझे घर में नहीं रहने देते।" मुकुंद के दिमाग में विचारों का तूफान-सा आ गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि, किस तरह वह गोपी को धीरज बँधाये। *जहाँ जाओ, वही बस* यही बात। क्या यही अमृतमय संसार है? लेकिन इतना होने पर भी बच्चे होते हैं और गृहस्थी चलती रहती है!

केले वह छील चुका था लेकिन अब उसके लिए खाना मुश्किल हो गया। किसी तरह उसने चाय पी और गोपी को धीरज बँधाकर बाजार की ओर चल पड़ा।

लेकिन तभी शांति की स्थिति का कल्पना-चित्र उसके सामने आ गया। अचानक उसके मस्तिष्क में आया कि, यदि वह अभी जाकर बिछौने पर रोती हुई शांति को अपने बाहुपाश में आबद्ध कर ले, तो प्रलय-काल, शांति-काल में बदल जायेगा। शांति का वही मुस्कराता और प्रसन्न मुखड़ा *दिखायी देगा। इस कल्पना-मात्र से ही* मुकुंद का सर्वांग पुलकित हो उठा। उसके हृदय पर छायी विषाद की घटाएँ छिन्न-भिन्न हो गयीं। जल्दी जल्दी नाव लेकर उसने नदी पार की और उसके पाँव तेजी से घर की ओर उठने लगे–उसकी आँखों के सम्मुख अपने अंतर के समस्त स्नेह की आभा से प्रज्ज्वलित शांति का मुस्कराता हुआ चेहरा नाच रहा था।

★

## ... ..उस तरफ, महाशय!

एक आदमी तार देने के लिए पोस्ट-आफिस गया। अपने पास कलम न होने के कारण उसने पोस्ट-आफिस की कलम से तार लिखना शुरू किया। दो-तीन फार्म बिगाड़ने के बाद उसने तार भेजनेवाले क्लर्क से पूछा–"क्या यह वही कलम है, जिससे क्लाइव ने मुगल बादशाह के साथ संधि-पत्र लिखा था?" क्लर्क ने जवाब दिया– "पूछताछ की खिड़की उस तरफ है, महाशय!"

★

## डाक्टर, पहले अपना इलाज कीजिये!

अपनी कक्षा के विद्यार्थियों की कापियाँ जाँचने के बाद शिक्षक ने कहा–"अपनी-अपनी कापी में मेरा लिखा हुआ नोट पढ़कर विद्यार्थी अपनी भूलें सुधार लें।" एक विद्यार्थी ने डरते-डरते पूछा–"साहब, आपने मेरी कापी में क्या लिखा है?" शिक्षक ने कापी देखने के बाद कहा–"तुम यह भी नहीं पढ़ सकते? मैंने लिखा है कि, अपने अक्षर सुधारो।" —आर पी कपूर

★

# कारोबार चलता ही रहा

जकी अनवर

धूप निकलते ही उसने एक बड़ी दूकान के सामने फुटपाथ पर अपनी दूकान फैला दी। एक खूबसूरत-सी शाल कंधे पर डालकर, दूसरी शाल हाथ में लेकर उसे हिला-हिला कर चिल्लाने लगा—"मेरा नाम सत्यदेव है बाबूजी, सत्यदेव! मुझे शहर में कौन नहीं जानता? एक बार आजमाइश शर्त है, फिर आप इस गुलाम को कभी नहीं भूलेंगे।" और, वह अपने आगे फैले हुए शाल, मफलर और मोजों की तरफ इशारे कर-कर के कहने लगा—"काश्मीर ऊन की शालें हैं, सरकार—आ-हा! कितनी नरम और कितनी गरम! बस, एक नजर देख लीजिये, सरकार—है देखने की चीज, इसे बार-बार देख . ."

जब कोई लड़की पास से गुजरती, तो वह पुकारता—"मेम साहब, अजी माल-किनजी—ओ बहनजी, यह शालें देखिये। पाउडर, स्नो और लिपस्टिक एक तरफ! जो मेरी शाल ओढ़ ले, अपना जल्वा आप ही देखे, लेकिन कीमत! है—है! कहते शर्म आये, सुनते शर्म आये, लेते शर्म आये, देते शर्म आये—मेरे मालिक! २५ रुपये—सिर्फ २५ रुपये।"

देखते-ही-देखते लोग इकट्ठे होने लगे और चीजें उठा-उठाकर देखने लगे। लोगों की भीड़ में से किसी ने कहा—"सत्यदेव की तो बस बोलियाँ बिकती है, माल-वाल तो खाक नहीं होता...।"

सत्यदेव ने कोई जवाब नहीं दिया, उसी तरह चिल्लाता रहा, लेकिन तभी दूसरे आदमी ने कहा—"आजकल सत्यदेव की बोलियाँ भी ठंडी पड़ गयी हैं। सत्यवती ने तो इसका दिवाला निकाल दिया है।"

"किस चुड़ैल का नाम लिया, बाबूजी!" सत्यदेव ने एकदम से नाक-भौं सिकोड़कर कहा—"हरे राम, राम, राम! अभी मैंने एक सूत भी नहीं बेचा और हुजूर ने उस मनहूस का नाम ले दिया। मगर वह आज आ नहीं सकती, सरकार! आज मैं यहाँ हूँ और उसके फरिश्तों को भी मेरी खबर नहीं है।"

"किस्सा क्या है?" किसी ने पूछा।

"किस्सा पूछते हैं, मालिक!" सत्यदेव ने एक ठंडी साँस लेते हुए कहा—"इसके सिवा और कुछ नहीं कि, दुश्मनी के हाथ-पाँव नहीं होते और आदमी दुश्मनी में अपने दुश्मन को तकलीफ पहुँचाने के लिए खुद मुसीबत और नुकसान सह लेता है। बाबूजी! एक औरत है। नाम तो उसका रुक्मणी है, पर मेरे नाम से फायदा उठाने के लिए खुद को सत्यवती कहती है—यों जिंदगी में शायद ही कभी सच बोला हो! तो

बाबूजी! मेरी रोजी मारने के लिए वह पच्चीस का माल पंद्रह में बेच देती है। उसका माल हाथों-हाथ बिक जाता है और यह आपका गुलाम, आपके शहर का पुराना व्यापारी रात को पेट पर पत्थर बाँधकर सोता है।"

"मगर तुमसे उसे दुश्मनी क्यों है?"

"यह न पूछिये, बाबा! वह चाहे मेरी रोजी पर हमला करे लेकिन मैं भरे बाजार में उसकी इज्जत पर हाथ नहीं उठा सकता – मेरा मतलब है, बाबूजी! जबान नहीं उठा सकता।"

"मैं कह दूँ, सत्तू बाबा? मैं सब जानता हूँ–कह दूँ?" भीड़ में से एक १२ साल का लड़का चिल्लाया।

"भाग बे, सत्तू बाबा के बच्चे!" सत्यदेव ने उसे जोरों से डाँटा।

"मारोगे, तो कह दूँगा–सब जानता हूँ।" लड़का कुछ पीछे हट कर बोला–"मैं कह दूँगा, तुम उससे प्रेम करते थे।"

"भाग, प्रेम के बच्चे!" सत्यदेव उसकी तरफ लपका, लेकिन भीड़ में से एक आदमी ने उसे रोक लिया। लड़का फिर बोला–"मारोगे, तो मैं कह दूँगा कि, तुम उससे मोहब्बत करते थे और वह तुमसे ब्याह करना चाहती थी। पर जब गाँव से काकी आ गयी, तो उसने तुम्हें भी मारा और सत्यवती को भी।"

"भाग बे, काकी के बच्चे!" सत्यदेव ने लपक कर लड़के के गालों पर एक चपत लगा दी। लड़का भागा और कुछ दूर जाकर चिल्लाने लगा – "सत्तू बाबा ने सत्यवती को घर से निकाल दिया और उसने कसम खायी कि, अगर मैंने भी तेरे घर की हाँडियाँ न उल्टी करा दीं, तो मुझे सत्यवती नहीं, कोई चमारिन कहना–हाँ!"

बच्चे ने 'हाँ' कुछ इस तरह कहा कि, सब लोग हँस पड़े और सत्यदेव लड़के के पीछे भागा; लेकिन वह भाग कर एक गली में घुस गया।

[सत्यवती चिल्लाने लगी–"सोलह सिंगार एक तरफ मालकिन! और यह सुंदर शाल एक तरफ ....।" पृष्ठ ९०]

सत्यदेव वापस दूकान पर आया और कहने लगा–"गोली मारिये, सरकार उस चुड़ैल के जिक्र को। यह देखिये, सरकार! कितना अच्छा मफलर है—जान है तो जहान है, मेरे मालिक–सर्दी की हवा बड़ी खराब होती है और गले की हिफाजत जरूरी है, मेरे हुजूर!"

भीड़ बढ़ने लगी थी और सत्यदेव पूरे जोश से अपनी और अपने माल की तारीफ किये जा रहा था। अचानक एक आदमी ने पूछा– "क्या

यह बड़ी खूबसूरत है, सत्यदेव ?"

सत्यदेव ने भीड़ की तरफ हाथ जोड़कर कहा–"मेरे सरकार! अब उस जहर की पुड़िया का जिक्र नहीं कीजिये। उसे गोली मारिये–मेरे स्वेटर देखिये, मेरे हुजूर! असली कश्मीर की भेड़ों के असली ऊन।"

अभी सत्यदेव की बात भी पूरी नहीं हुई थी कि, पास ही से एक बारीक और लोचदार आवाज आयी–"सोलह सिंगार एक तरफ, मेरी शाल एक तरफ–अपनी बहनों के लिए सोलह सिंगार–अपनी सखियों के लिए सोलह सिंगार ।"

लोगों ने घूम कर देखा, सामने के फुटपाथ पर एक औरत ऊनी शाल, मोजे और मफलर वगैरह फैलाये खड़ी थी। उसने एक शाल खुद भी ओढ़ रखी थी। सत्यदेव के आसपास खड़े हुए लोग एक-एक करके उस औरत की तरफ जाने लगे, तो सत्यदेव ने घबड़ायी हुई आवाज में पुकारा–"भाइयो, यह सत्यदेव आपका पुराना गुलाम है–नया नौ दिन, पुराना सौ दिन। हमसे रिश्ता न तोड़ो, बाबूजी! यह सत्यदेव ...."

"हुँह!" औरत चिल्लायी–"जमाने भर का झूठा और नाम सत्यदेव! इधर आइये, बाबूजी! इधर देखिये, सेठ! यह माल कहाँ-कहाँ से लायी हूँ आपकी खातिर, मेरे सरकार! और, आपके उस पुराने ठग को नीचा दिखाने के लिए, मेरे हुजूर–हुँह! बड़ा आया था प्रेम करने–जन्म-जन्म का साथी बनाने! दगाबाज! आज की मंडिल में डर गया...!"

"ए-ए औरत!" सत्यदेव चिल्लाया–"तू सौदा बेचती है या भरे बाजार में किसी का गालियाँ देने आयी है? मैं तुझ पर हतक-इज्जत की नालिश कर दूँगा!"

"अरे चल-चल"–औरत जहरीली हँसी हँसते हुए बोली–"तुझ जैसे न-जाने कितने जूतियाँ चटखाते फिरते हैं! मैं तेरे घर में फाकामस्ती का राज फैलाकर दम लूँगी। तब तुझे मालूम होगा कि, प्रेम क्या है!"

"अच्छा!" सत्यदेव ने कहा–"तो आज तू भी देख ले कि, एक बहादुर आदमी किस तरह अपनी आन पर जान दे सकता है। ऊपर नीचे, कितना दम रखता है!"

दो तीन लड़कियाँ सत्यवती के पास आकर खड़ी हो गयीं, तो वह चिल्लाने लगी–"सोलह सिंगार एक तरफ मालकिन! और यह सुंदर शाल एक तरफ! जरा हाथ में लेकर तो देखिये!"

एक लड़की ने शाल देखकर कीमत पूछी।

"कीमत!–हें-हें! क्या बताऊँ, मालकिन! शर्म आती है कहते हुए, यह माल और यह दाम! २४ रुपये, सिर्फ २४ रुपये, मेरी मालकिन.....!"

"बहनजी!" सत्यदेव चिल्लाया–"जरा माल देखकर लेना। मेरे असली दो प्लाई ऊन-पश्मीने के बने हुए हैं! माल का नम्बर देखकर लेना, बहनजी!"

"बस-बस"–सत्यवती चीखी–"देखिये,

मालकिन! दी प्योर ऊल-कम्पनी! और, यह नम्बर देखिये! वहाँ २५ रुपये और यहाँ सिर्फ २४ रुपये—वहाँ मर्द और यहाँ एक अबला नारी—एक कमजोर औरत की मदद कीजिये, मालकिन!

"तो फिर आइये, बहनजी! तेईस रुपये—कटा-फटा देखकर लीजिये। देखता हूँ, आज भूखी शेरनी कहाँ तक नीचे उतरती है !

"यह बात है!' औरत मुस्कराने लगी—"बहनजी! २२ रुपये—बाबूजी! २२ रुपये। अब तो घर-घर अपने ये शाल पहुँचा कर ही दम लूँगी मैं!'

सत्यवती सत्यदेव की तरफ देख-देखकर मुस्कराने लगी और सत्यदेव का मुँह लटक गया। फिर जैसे उसने अपनी आखिरी पूँजी दाव पर लगा दी। एक-दम चिल्लाया—"तो फिर आइये, बहनजी! आइये, मेरे हुजूर! सिर्फ इक्कीस रुपये। असली आस्ट्रेलिया की भेड़ों की ऊन की शाल की कीमत, सिर्फ २१ रुपये। इससे नीचे उतरे, तो चोरी का माल जानिये—२० रुपये १२ आने की खरीदी हुई शाल सिर्फ २१ रुपये में।"

"हा हा हा-हा'—सत्यवती हँसी—"मेरा नाम सत्यवती है, बाबूजी! यह रहा कैश-मेमो।" उसने कैश-मेमो एक नव-जवान के हाथों में थमा दिया।

"२१ रुपये, सरकार! सिर्फ २१ रुपये!" सत्यदेव किसी ग्राहक को अपनी शाल का दाम बता रहा था।

सत्यवती कैश-मेमो वापस लेते हुए बोली—"देख लिया न, मेरे मालिक—२० रुपये सिर्फ २० रुपये। सत्यदेव चौंककर देखने लगा, फिर जैसे कराहती हुई आवाज में बोला—'तो फिर २० रुपये ही दे दीजिये, मेरे मालिक! आपके शहर का पुराना व्यापारी—आपका पुराना खादिम ...

"वही माल, वही भेड़—"सत्यवती की आवाज आयी—'सिर्फ १९ रुपये, मेरे मालिक! यह नर्मी और यह गर्मी और सिर्फ १९ रुपये!'

'लेकिन तेरी बेशर्मी तो असल देखने की चीज है।'

'देख, सत्यदेव!' सत्यवती ने चिल्ला-कर कहा—"मुकाबला करना है तो सीधी तरह कर—गाली देगा, तो बुरा होगा। मैं अपना सौदा मुफ्त लुटा दूँ, तुझे क्या? हिम्मत है, तो नीचे उतर!

*यह एक कमजोर औरत का इन्तजाम* है बाबू . .!'

'किस्सा क्या है जी?" लड़कियों में से एक ने पूछा।

"वही पुराना किस्सा, मालकिन! वही औरत की बेबसी और मर्द की दगाबाजी की पुरानी कहानी है। यह मुझसे प्रेम करता था, झूठे वायदे करके इसने मुझे कहीं का न रखा और फिर जोर से पिटवाकर घर से निकाल दिया। खैर, यह भी क्या याद करेगा कि, किसी से पाला पड़ा था! मैंने एक जगह शादी

कर ली है और मेरा पति बड़ा मालदार है। अब देखती हूँ कि, कैसे १५-२० रुपये रोज का घाटा उठाता है! दाने-दाने को न तरसा दिया, तो सत्यवती नाम नहीं—बड़ा आया मुकाबला करने! २० रुपये पर आकर थम गया! मुझसे लीजिये, बहनजी! यह नर्म-व-गर्म शाल सिर्फ १९ रुपये में ....!"

उसी वक्त घंटाघर की घड़ी ने आठ बजाये और सत्यदेव अपना माल समेटने लगा। सत्यवती ने एक जोरदार कहकहा लगाया और उसके साथ दूसरे आदमी भी हँसने लगे। सत्यदेव चुपचाप गठरी कमर पर लाद कर एक तरफ को चला गया और सत्यवती का माल बिकने लगा। एक ही घंटे में सात शाले, तीन स्वेटर और आठ मफलर बिक गये। कुछ देर बाद जब वह पश्मीनाफरोश महाजन की दूकान पर से हिसाब करके लौटी, तो उसकी जेब में कमीशन के नौ रुपये पड़े हुए थे।

इसी तरह सत्यदेव और रामप्यारी दोनों पति-पत्नी थोड़ी-सी मेहनत करके नौ-दस रुपये रोज कमा लेते थे। थोड़ी-सी मेहनत उनका १२ साल का बच्चा भी करता, जो लोगों को सत्यदेव के प्रेम की कहानी सुनाता और इस मेहनत का बदला उसे रोज चार रसगुल्लों की शक्ल में मिल जाता। आपस की मेहनत से उनका यह कारोबार यूँही चलता रहा—आज यहाँ, तो कल वहाँ....!

★

## आपत्ति का कारण

श्मशान के चारों ओर दीवार खड़ी करने के लिए जब नगर-पालिका में प्रश्न उठा, तो प्रधान ने कहा—"जो भी व्यक्ति इसके पक्ष में नहीं हो, कृपया वे अपना हाथ ऊँचा करें।" और, उसे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि, सचमुच ही एक व्यक्ति ने हाथ ऊँचा कर दिया है।

प्रधान ने उससे पूछा—"क्यों, आपको इसमें क्या आपत्ति है?"

उस व्यक्ति ने बड़ी गम्भीरता से जवाब दिया—"मेरी राय में श्मशान के चारों ओर दीवार खड़ी करना निरर्थक है। इससे कुछ हासिल नहीं होगा और खर्चा बेकार ही लगेगा; क्योंकि जो लोग श्मशान के भीतर हैं, वे कभी बाहर नहीं आ सकेंगे और जो लोग बाहर हैं, वे कभी अंदर जाने की कोशिश ही नहीं करेंगे. ....!"

—'लहरें' से

★

हुए भी स्वामीनाथ ने वचन दिया कि, पुत्र-प्राप्ति के बाद वे मैसूर अवश्य जायेंगे।

और, एक शुभ रात्रि में जीवन की महती साध को पूरा करते हुए अखिलन्दामा ने एक सुंदर बालक को जन्म दिया। स्वामीनाथ के हर्ष का क्या कहना? उन्होंने अस्पताल के सारे कर्मचारियों को उपहार देने का वचन दे दिया।

नियमानुसार एक नर्स ने उसी समय बालक को नहलाया और उसे तौलने के लिए दूसरे कमरे में ले गयी। उस रात, लगभग उसी समय, वहाँ तीन बालकों का जन्म हुआ था। बाकी के दोनों बच्चों को भी यथावत् नहलाकर तौलने के कमरे में लाया गया।

तीनों बच्चों में से एक कुछ साँवले रंग का था। दूसरे दोनों बच्चे गोरे थे—लगभग एक ही रूप-रंग और एक ही तौल के।

जो नर्स अखिलन्दामा के बच्चे को लायी थी, वह किसी आवश्यक कार्यवश उसे दूसरी नर्स के अधिकार में सौंप कर चली गयी। तौलनेवाले कमरे में लाते समय प्राय रोज ही बच्चों की कमर में उनकी माँ के नामों के कार्ड बाँध दिये जाते हैं; पर उस रात नर्सें ऐसी थकी थीं कि, उन्हें इसका स्मरण ही न रहा। अत कुछ समय पश्चात् उनके लिए यह तय करना कठिन हो गया कि, अखिलन्दामा का बच्चा कौन-सा है? उस साँवले बच्चे का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। दूसरे दोनों बच्चों के विषय में भी अंत में, उन्होंने कुछ अधिक गोरे रंग के बच्चे को अखिलन्दामा का बच्चा मान लिया। आठवें वार्ड में जिस मुसलमान औरत ने प्रसव किया था, उसका रंग थोड़ा काला था, अत नर्सों ने निश्चय किया कि, कम गोरे रंगवाला बच्चा ही उसका होना चाहिए। और, बच्चों के हाथ पर नम्बर बाँधकर उन्होंने उस अधिक गोरे रंग के बालक को अखिलन्दामा के पास लाकर सुला दिया।

"तुम्हारा बच्चा कितना सुंदर है! वजन भी सात पौंड है! क्या यह तुम्हारा पहला बच्चा है?" उसे अखिलन्दामा के पास लिटाते हुए नर्स ने पास ही खड़े स्वामीनाथ से पूछा।

"हाँ!" स्वामीनाथ ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया। पलंग पर लेटी अखिलन्दामा भी मुस्करायी और फिर अपने पति की ओर देख शर्मा कर आँखें नीची कर लीं। उसके अंतर का आनंद आज बाँध तोड़ बाहर निकलने को मानो मचल उठा था।

इसी बीच वह नर्स, जो बच्चे को तौलनेवाले कमरे में ले गयी थी, वहाँ आ गयी। उसने बच्चे को गोद में उठा लिया और कुछ देर तक उसे प्यार से उछालती रही।

वार्ड से बाहर आते ही पहली नर्स ने दूसरी से कहा – "ताज्जुब है। बच्चे की नाभि के पास जो तिल था, वह इतनी जल्दी कैसे मिट गया?"

"ओह् गाड!" दूसरी नर्स आश्चर्यस्तम्भित हो बोली—"क्या वह बच्चा इस औरत का था? हमने तो उसे आठ

न वार्ड में भेज दिया। उसकी बाँह पर उस मुस्लिम औरत का नम्बर बँधा था।

'भगवान ही रक्षक है! किन्तु अब इस सम्बन्ध में चुप रहना ही ठीक है।' पहली नर्स ने गम्भीर स्वर में कहा।

किन्तु दूसरी ने विरोध किया—"यह तो गुनाह होगा। हम अभी भी बच्चों को बदल कर अपनी भूल सुधार सकते हैं।'

'पागल मत बनो!' पहली नर्स ने कटु स्वर में कहा—"अस्पताल के अधिकारी तब निश्चय ही इस छोटी-सी भूल के लिए हम नौकरी से अलग कर देंगे। फिर उन माताओं की भी कल्पना करो—संदेह के झूले में उनका मन हमारे सारा कहने पर भी जीवन-पर्यंत झूलता ही रहेगा। नहीं, हम इस विषय में बिलकुल चुप रहेंगी—बिलकुल ही चुप!'

बारह दिनों के बाद आठवें वार्ड की वह मुसलमान औरत—अब्दुल तैयबजी की बीबी—अपने घर चली गयी और अखिलन्दामा अपने घर आ गयी। सेठ तैयबजी के घर में अपार धन था, तो स्वामीनाथ अय्यर के घर में असीम प्रेम और संतोष।

[ज्योतिषी ने कुंडली देखकर भविष्यवाणी की—साल भर के अंदर ही उसकी सूनी गोद भर जायेगी। पृष्ठ ९१]

दोनों शिशुओं के लालन-पालन में किसी भी प्रकार की त्रुटि नहीं थी।

जब स्वामीनाथ का पुत्र एक वर्ष का हुआ तो उसकी चाची उसे देखने आयी। देखते ही बोली— 'बच्चे की आँखें ठीक मेरे भाई मुद्दुस्वामी की तरह हैं। हाँ, इसकी नाक अवश्य ही अपने पिता पर गयी है।' स्वामीनाथ और अखिलन्दामा मौन मुस्कराते रहे।

समय अपनी तीव्र गति से बढ़ता गया। सेठ तैयबजी की मृत्यु के बाद उनका बाईस-वर्षीय पुत्र सुलेमान आज शहर के अग्रगण्य व्यापारियों में गिना जाता है। बचपन से ही वह बड़ा होनहार था और सदा पिता के कामों में उसने बड़ी योग्यता और दक्षता से हाथ बँटाया।

इधर स्वामीनाथ का पुत्र अश्वत्थ नारायण अनेक प्रयत्नों के बाद भी मैट्रिक से आगे नहीं पढ़ सका। नौकरी पाने के लिए उसने जी-तोड़ चेष्टा की। कई 'इंटरव्यू' दिये, सिफारिश पहुँचायी, किन्तु अभी तक सफलता नहीं मिल सकी है।

स्वामीनाथ का असंतोष बढ़ता जा रहा

है और एक दिन पत्नी के समक्ष उनका यह असंतोष खुल ही गया — "अखिला! तुम्हें ज्योतिषी की भविष्यवाणी याद है न कि, हमारा पुत्र एक सफल व्यवसायी बनेगा? समाज में उसकी प्रतिष्ठा होगी — मान होगा, किन्तु" — व कटुता से हँसे— "बिचारा अश्वत्थ! कितनी सिफारिशों के बावजूद वह एक छोटी-सी नौकरी तक नहीं पा सका है। मान-प्रतिष्ठा की तो बात ही अलग है। . तुम ठीक कहती थी, अखिला! ज्योतिषशास्त्र निरी बकवास है—भोले-भाले लोगों को ठगने का एक अच्छा जरिया और ज्योतिषियों के पेट पालने का साधन!"

किन्तु अखिलानन्दामा ने तत्काल ही विरोध किया। बड़ी तत्परता से बोली— 'छि, छि! ऐसी भावना उचित नहीं। ज्योतिषी की भविष्यवाणी क्या सच्ची नहीं हुई? हमें क्या पुत्र नहीं मिला? फिर ? आप कैसे कह सकते हैं कि, ज्योतिष एक प्रपंच है? हो सकता है, अश्वत्थ कुछ ही समय बाद एक सफल व्यवसायी बन जाये-उसे आप पहले किसी चेट्टियर (दक्षिण भारत के जन्मजात व्यापारी) के पास तो कुछ सालों के लिए रखकर देखिये......!"

★

## सम्मान

एक प्रसिद्ध विद्वान को साहित्यिकों की सभा में भाषण देने के लिए बुलाया गया। भाषण के पश्चात् सभा के सेक्रेटरी ने फीस के रूप में उसे एक चेक देना चाहा। विद्वान ने सौजन्यपूर्वक कहा—"रहने दीजिये—इसे किसी फंड में दे दीजियेगा।" सेक्रेटरी ने पूछा—"क्या हम इसे अपनी सोसाइटी के फंड के लिए रख लें?" "अवश्य!" विद्वान ने कहा— "लेकिन आपका यह फंड है किसलिए?" सेक्रेटरी ने उत्तर दिया—"इसलिए कि, हम अगले साल अधिक अच्छा भाषण सुन सकें।"

★

## सफलता का रहस्य

एक सफल व्यक्ति से किसी जिज्ञासु ने सादर पूछा—"आपकी सफलता का रहस्य क्या है?"

"सही निर्णय पर काम करना।" उसने उत्तर दिया।

'लेकिन सही निर्णय आप करते किस प्रकार हैं?"

"अनुभवों के आधार पर।"

"और अनुभव आपको किस प्रकार प्राप्त होते हैं?"

"गलत निर्णयों पर काम करके।" —'तरंगावली' से

★

डा मुहम्मदअली शाह-लिखित
बीसवीं सदी की श्रेष्ठतम
शिकार-यात्रा-पुस्तक

# सफर और शिकार

[संक्षिप्त-रूपांतर]

यह उन दिनों की बात है, जब मुझे डेंटिस्ट्री (दंत चिकित्सा) सीखने का बड़ा शौक था। मेरे एक डेंटिस्ट (दंत-चिकित्सक) दोस्त ने राय दी कि, मैं अमेरिका जाकर बाकायदा तालीम हासिल करूँ। इसके लिए कम से-कम पाँच हजार रुपये होने जरूरी थे। मेरे वालिद (पिता) के पास नकद रुपया नहीं था। उन्होंने रुपयों के लिए साफ इनकार कर दिया था और मेरे पास सिर्फ चार पाँच सौ रुपये थे। लेकिन मैंने हिम्मत न हारी। सिंगापुर तक का 'पासपोर्ट' बनवाकर सफर की तैयारी करने लगा। और, २४ दिसम्बर, १९०८ को पूरे कुनबे (परिवार) की मर्जी के खिलाफ अपने गाँव के एक लड़के इनायत को साथ लेकर घर से रवाना हो गया।

मेरे पास चूँकि पैसे काफी न थे, इसलिए मैं जानता था कि, सफर में तिजारत (व्यापार) का सिलसिला रखना पड़ेगा। अतएव कलकत्ते से सिंगापुर के लिए चलने से पहले मैंने कुछ घड़ियाँ चश्मे और कुछ दूसरा फैंसी सामान खरीद लिया। एक जापानी कम्पनी के 'कोलम्बो' नामी जहाज के जरिये तीन दिनों बाद रंगून जा पहुँचा।

रात को जहाज रंगून से सिंगापुर के लिए रवाना हुआ। सिंगापुर और आसपास के इलाकों में मलायी जबान बोली जाती है। बम्बई के एक निवासी 'पीनांग' वापस जा रहे थे, जहाँ उनका काफी बड़ा कारोबार था। मैंने उनसे 'मलायी' जबान सीखनी शुरू कर दी और खास-खास लफ्ज नोट-बुक में लिख लिये।

सुबह होते ही लोगों को पता चला कि, नानबाई का छोटा भाई सख्त बीमार है। डाक्टर आये, हकीम आये, मगर कुछ फायदा न हुआ। तीसरे रोज नान-बाई के रोने-पीटने से लोगों को मालूम हुआ कि, छोटा भाई चल बसा। जब कोई मुर्दे को देखने के लिए अंदर जाता, वह अपनी साँस रोक लेता, जिसकी उसने खूब मश्क कर ली थी। ठीक पौने दस बजे उसका जनाजा तैयार कर के दूकान के बाहर रख दिया गया। नानबाई का रोते-रोते बुरा हाल हो गया था। लोगों के ठट लगे हुए थे।

दस बजते ही एक शोर मच गया—"फकीर साहब आ गये।" फकीर साहब ने आते ही डाँट कर पूछा—"क्या है?" लोगों ने कहा—"हुजूर, इस पर-देसी का जवान भाई मर गया।" उधर नानबाई फकीर के पैरों पर गिर पड़ा। फकीर ने कहा—"हमारे पैर छोड़, तेरा भाई जिंदा हो गया।" फिर कुछ बड़बड़ा कर एक छोटा-सा पत्थर उठाकर लाश पर फेंक दिया, जिसके लगते ही मुर्दा उठकर बैठ गया। लोगों ने जल्दी से कफन खोला, दोनों भाई गले मिले। अब जो देखते हैं, तो फकीर साहब गायब!

[सुप्रसिद्ध शिकारी-लेखक स्व० डा० मोहम्मद अली शाह]

पूरी रियासत में यह करामत मशहूर हो गयी। राजा ने सुनकर सिर पीट लिया कि, ऐसे ऐसे योगी रियासत में हों और हम बे-फैज (निस्संतान) रहें। फौरन तलाश का हुक्म दिया गया। बड़ी तलाश के बाद मिले, तो बोले—"हम राजा के नौकर नहीं हैं, नहीं जाते।" लेकिन राजा के आदमियों ने भी हिम्मत नहीं हारी। आखिर, एक रोज फकीर ने कह ही दिया—"तुम्हारे राजा ने नाक में दम कर दिया है—अच्छा, कल नौ बजे जंगल में गाड़ी भेजो।"

राजा की मुराद पूरी हुई। ठीक वक्त पर गाड़ी भेजी गयी। महल के एक बड़े शानदार कमरे में उन्हें लाकर उतारा गया और राजा-रानी हाथ बाँध कर सामने खड़े हो गये। फकीर ने बड़े गुस्से से कहा—"राजा, तूने हमारे नाक में दम कर दिया—अच्छा, माँग क्या माँगता है?"

राजा ने कहा—"हुजूर, हमारे ऐसे भाग कि, आप यहाँ आयें और हम औलाद से महरूम (वंचित) रहें?" जवाब मिला—"अच्छा, तुमको बेटा मिलेगा—लेकिन जैसे हम कहें, वैसे दान दो।" राजा ने कहा—"हुक्म दीजिये।" बोले—"कल इसी वक्त दो सोने की गायें, जिनका वजन ५,५०० तोले से कम न हो, एक सोने का बछड़ा, जो २०० तोले

का हो, २ सेर माश और २ सेर तिल तैयार रहे। कल इसी वक्त फिर गाड़ी भेजो।" इतना कह कर फकीर साहब उठकर भाग गये। वहाँ तो हुक्म की देर थी, सब सामान तैयार हो गया।

अगले रोज फिर गाड़ी भेजकर फकीर को महल में बुलवाया गया। सब चीजें पेश की गयीं। इतने में महल के नीचे से आवाज आयी—"राम गंगा, राम जमुना, राम साहूकार है।" पूछा—"यह कौन है?" राजा ने जवाब दिया-"दो परदेसी ब्राह्मण हैं।" फकीर के कहने पर उन्हें ऊपर बुलाया गया।

फकीर ने पूछा—"कौन हो तुम?" दोनों रोते हुए बोले—"दोनों गरीब परदेसी हैं और तीन महीने से इस अंधेर नगरी में भूखे-प्यासे घूम रहे हैं।" फकीर ने कहा—"अच्छा, आगे आओ-अपनी चादर बिछाओ।" दोनों ने अपनी चादर बिछा दी और फकीर ने दोनों सोने की गायें, बछड़ा और तिल-माश चादर में डालकर उन्हें डाँटा—"चलो, उठाओ इसे और भागो यहाँ से-मरदूद कहीं के।"

थोड़ी देर सब चुप रहे, फिर फकीर ने कहा-"अच्छा राजा, दान हुआ—अब पूजा का सामान करो। कल इसी वक्त फिर गाड़ी भेजो।" इतना कह कर फिर उठकर भाग गये। अगले दिन गाड़ी भेजी गयी, तो फकीर साहब का पता न था। दोनों ब्राह्मण और नानबाई भी गायब थे। पुलिस दौड़-धूप करती रही, लेकिन जामू कामयाब होकर अपनी 'पार्टी' के साथ वतन पहुँच चुका था।

सिंगापुर में एक हफ्ता गुजर चुका था, लेकिन रुपया न होने की वजह से मैं सीधा अमेरिका न जा सकता था। चुनांचे मैंने कुछ सामान—जैसे कोलम्बो के बने हुए नीलम, पुखराज, याकूत वगैरा और कुछ दूसरा सामान—खरीद लिया और 'सिडनी' का टिकिट लेकर बोर्नियो के लिए रवाना हो गया। चार रोज चलने के बाद जहाज लाबोन पहुँचा। हम सब घूमने के लिए शहर में गये। यहाँ पंजाबी बहुत दिखायी देते हैं और खास तौर से पुलिस में। कुछ पंजाबी सिपाही मुझे अपनी बैरकों में ले गये और खाने की दावत की।

'सिडनी' पहुँचकर मैंने तिजारत का सिलसिला भी शुरू कर दिया। उसमें मुझे बहुत नफा हुआ। कुछ दिन के अंदर ही सारा सामान खत्म हो गया और मेरे पास एक हजार रुपये नकद आ गये।

यहाँ आसपास के जंगलों में हिरन, गीदड़, शेर, चीते, रीछ, जंगली हाथी खूब मिलते हैं। इनके अलावा एक और जानवर होता है, जो बदन में भैंसे ही की तरह भारी; लेकिन कद में उससे छोटा होता है—मुँह पतला और लम्बा होता है, जिस पर एक लम्बी-सी नाक होती है। कान छोटे होते हैं। सारे बदन का रंग काला होता है; लेकिन कमर का हिस्सा सफेद होता है। इसको 'टेपर' कहते

है। यह सिर्फ घास, फल और पेडो के पत्ते खाकर ही रहता है।

इसी बीच एक रोज 'क्लब' मे एक अंग्रेज से मुलाकात हुई, जो 'कीनावालू' पहाड के करीब 'सीगामाँ' नामी जगह में तम्बाकू के एक 'फार्म' के मॅनेजर थ। उन्होने मुझे सीगामाँ आने की दावत दी, जो मैंने कबूल कर ली, क्योंकि तिजारती फायदे के अलावा शिकार की भी उम्मीद थी। अगले रोज मॅनेजर साहब 'फार्म' पर वापस चले गये और उसके चार रोज बाद मैं भी सामान ठीक करके इनायत को साथ लेकर सीगामाँ के लिए चल पडा।

बारह बजे ट्रेन चली और एक घटा चलने के बाद जोर-जोर से सीटी देने लगी। फिर आगे जाने के बजाय एक मील के करीब पीछे हट आयी। मालूम हुआ कि, 'लाइन' पर दो जगली हाथी बैठे हुए हैं। गाडी मे एक छोटा सा एजन और ५ डब्बे लगे थे। अगर गाडी चलती ही रहती और खडी न होती, तो हाथी टक्करें मार कर गिरा देते। यह आज ही कोई नयी बात न थी। यहाँ ऐसा हमेशा ही होता रहता था। थोडी देर के बाद गाडी आगे बढी, लेकिन एक हाथी तब भी बैठा हुआ था। गाडी को फिर वापस लाना पडा। आखिर, ढाई बजे जब 'लाइन' साफ हो गयी, तो गाडी आगे चली। 'लाइन' के दोनो तरफ के जगलो में जानवरो के गोल-के-गोल फिर रहे थे। शाम को गाडी सीगामाँ पहुँची और हम मॅनेजर के बगले पर गये। वे हमें देखकर बहुत खुश हुए।

एक हफ्ते में ५ ६ सौ रुपये का कारोबार हो गया। शिकार की गरज से एक हफ्ता ठहरने का और इरादा किया।

और, एक दिन मैं सुबह होने से पहले ही इनायत और दो कुलियो को साथ लेकर शिकार के लिए चल खडा हुआ। चढाई के घने जगलो में दाखिल होने के बाद एक जगह नदी-सी दिखायी दी। मैं यहाँ नाश्ता करने के इरादे से रुक गया। इनायत कुलियो के साथ पीछे आ रहा था। मैं अभी रुका ही था कि, पास की झाडियो में सरसराहट-सी सुनायी

[शिकार की टोह में]

दी और फिर फौरन ही एक जंगली हाथी चिंघाडता हुआ मेरी तरफ लपका।

इनायत और कुली जो पास आ चुके थे, उल्टे पैरों भागे। मैं हाथी के बिलकुल सामने था, इसलिए भागकर जान बचानी मुश्किल थी। कूद कर पास के एक पेड पर चढ गया। हाथी गुस्से मे कभी पेड को टक्करें मारता और कभी सूँड उठाकर मुझे पकड़ने की कोशिश करता। जब आधे घंटे तक उसकी सारी कोशिशें नाकाम हो गयी, तो अपनी सुर्ख-सुर्ख आँखों से घूरने लगा और थोडी देर बाद पेड से कमर लगाकर बैठ गया। एक घंटा इसी तरह गुजरा। आखिर, थककर वह अगले पैर फैलाकर, उन पर सिर रखकर सो गया। मैं इस धुबहे में था कि, वह सोया नहीं, बल्कि मुझे धोखा देने की कोशिश कर रहा है।

तीन बजे जब मैं भूख से बेहाल होकर तंग आ गया, तो एक तरकीब सूझी। मैंने पेड की सूखी हुई लकड़ियाँ तोड़कर एक बंडल-सा बनाया। फिर जेब से रूमाल निकाल कर उसकी धज्जियाँ करके रस्सी बनायी। उसमें बंडल को बाँधा और 'माचिस' की कुछ तीलियाँ बंडल में रखकर आग लगा दी। फिर उसे हाथी की पीठ पर रख दिया। वह एकदम उठ खडा हुआ और चीखता हुआ ऐसा भागा कि, मुड़कर भी न देखा। मैं जल्दी से नीचे उतरा और तेज कदमों से 'फार्म' की तरफ लपका।

दस-बारह कुलियों और कुछ मसालों का इंतजाम करके अगले रोज सवेरे ही हम लोग शिकार के लिए फिर चल पड़े। जंगल बहुत घना था और कुछ जगह पर नरम जमीन होने की वजह से ताजे निशान दीख रहे थे। एक निशान गेंडे के निशान से मिलता हुआ था। उस दिन के मेरे साथी डाक्टर जोंस ने बताया कि, यह 'टेपर' के पैरों का निशान है।

आधे घंटे के बाद एक खूबसूरत-सा भालू मेरे सामने से गुजरा। मैंने 'फायर' नहीं किया। कुछ देर के बाद तीन 'टेपर' पहाड़ से उतरते हुए दिखायी दिये। जद पर आते ही, मैंने नर पर दो 'फायर' किये, जिनमें वह जख्मी होकर जरा रुका। मैंने दो 'फायर' और किये, जिससे वह गिर गया। पर बाकी जान बचाकर भागने में कामयाब हो गये। कुछ देर बाद डाक्टर जोंस की सीटी की आवाज सुन कर हम उनके पास पहुँचे। दो भालू और एक साँभर उन्होंने मारे थे।

दूसरे दिन मैं डाक्टर जोंस के साथ ल्हद-डाटू वापस आया और एक रोज उनका मेहमान रहा। यहाँ से मैंने ५०० रुपये सिंडीकेट के एक बैंक को अपने हिसाब में भेज दिये।

यहाँ से अगले रोज कश्ती से 'टेवाउ' होते हुए हम 'गेनाक-तम्बाकू-स्टेट' पहुँचे। यहाँ अंग्रेजों की आबादी बहुत थी। एक ही हफ्ते में अंदर ५०० रुपये का माल बिक गया। इसके अलावा, छोटे

हिरन का शिकार भी रहा।

यहाँ से मैं 'मेसेरी' गया। वहाँ कारोबार उम्मीद से ज्यादा अच्छा रहा। दस-बारह रोज में ही मेरे पास एक हजार रुपये नकद आ गये। मैं सिंगापुर से नया माल लाने के लिए तैयार था। अत एक रोज एक बादबानी कश्ती के जरिये लाबोन के लिए रवाना हो गया, ताकि वहाँ से स्टीमर-द्वारा सिंगापुर जा सकूँ।

उन दिनों तमाम समुद्र में एक चीनी डाकू श्यॉग की बडी धूम थी। आसपास के तमाम मुल्कों में उसके जासूस मौजूद थे, जो जहाजों के चलन के बारे में उसको खबरें भेजा करते थे। डच और ब्रिटिश सरकार ने कई बार उसे गिरफ्तार करने की कोशिश की, लेकिन उसका एक आदमी भी अब तक उनके हाथ न लग सका था।

[डारविन के अनुसार मनुष्य का निकटतम पूर्वज 'ओरग उटान']

हमारा जहाज भी जासूसों की नजर से न बच सका। दूसरे दिन सुबह की रोशनी फैलते ही, लोगों में शोर मच गया। दो जहाज बडी तेजी से हमारे जहाज की तरफ आ रहे थे। सूरज निकले-निकलते वे हमारे करीब आ गये और 'फायरिंग' शुरू कर दी। मल्लाहों ने जहाज को रोक कर बादबान उतार लिये, जिसका मतलब यह था कि, जहाजवालों ने हथियार डाल दिये हैं।

हमारा जहाज रुकते ही 'फायर बद हो गये और उनके जहाज हमारे जहाज से आ लगे। डाकू हमारे जहाज में कूद आये और सबको बदूक के कुदों से मारना शुरू कर दिया। मेरे सिर और कधो पर सख्त चोटें आयीं।

मैंने और कुछ अमरीकियों ने जो साथ ही सिंगापुर जा रहे थे, हाथ ऊपर उठा दिये। अब उन्होंने सामान लूटना शुरू किया। जहाजवालों की चावलों की बोरियाँ, अमरीकियों का सब सामान, मेरा ट्रक, जिसमें मेरे सब नकद रुपये थे, उठा कर अपने जहाज में फेंक दिया। इसके अलावा मेरा सूट-बूट, दूसरे कपडे, हैट—यहाँ तक कि, खाने की टोकरी भी उठा ले गये। कलाई पर से घडी भी उतार ली। मेरे पास सिर्फ कमीज, पाजामा और पैरों में स्लीपर-भर रह गये।

दो घटे के बाद डाकू रफूचक्कर हुए और यह लुटा हुआ काफला फिर वापस लाबोन की तरफ चला। जख्मी तो सब ही थे, लेकिन मुझे बहुत ज्यादा तकलीफ हो रही थी। सिर से खून जारी था, जिससे सारे कपडे तर हो गये थे। खैर, किसी तरह सूरज छिपने के वक्त लाबोन

पहुँचे। पुलिस में बयानात हुए और फिर मैं वहाँ से पंजाबी सिपाहियों की बैरकों में आया, जहाँ पहले भी उनका मेहमान रह चुका था। हालात मालूम होकर उन्हें बहुत अफसोस हुआ। डाक्टर को बुलाकर इलाज कराया और खाने वगैरा का इंतजाम किया।

सिंगापुर जाने की अब कोई सूरत न थी, इसलिए हालत जरा सँभलने पर उन लोगों से कुछ पैसे कर्ज लेकर सिंडोवन वापस आया, जहाँ दो हफ्ते तक बिस्तर पर पड़ा रहा। तबीयत ठीक होने पर, बैंक में जमा किये हुए ५०० रुपये निकाले, कुछ रुपया इनायत ने माल बेचकर जमा किया था—सब लेकर सिंगापुर से माल लाने के लिए रवाना हुआ, जहाँ से २० रोज के बाद वापसी हुई।

सिंगापुर से वापस आते हुए, रास्ते में मालूम हुआ कि, स्योंग डाकू और उसके कुछ साथी गिरफ्तार कर लिये गये हैं। हमारे जहाज के बाद उन्होंने गर्व और जहाज को लूटा था, जिसके फौरन बाद रियासत 'सारावाक' और रियासत 'बरानी' की फौजों ने उसे समुद्र में ही घेर लिया। आखिर, स्योंग और उसके कुछ जख्मी साथी पकड़ लिये गये। डाकुओं की गिरफ्तारी चूँकि रियासत बरानी के समुद्र में हुई थी, इसलिए उन्हें सुल्तान-बरोनी के हवाले कर दिया गया।

मैंने जो कमाया था, वह सब खो चुका था। अब फिर कमर बाँधी और सिंगापुर से लाया हुआ सामान ठीक करके लाबान पहुँचा। पंजाबी सिपाहियों से मिला, कुछ चीजें उनको भेंट की। वहीं से मेरा इरादा मेमेरी जाने का था। इसलिए मेमेरी जाने के रास्ते में, मैं भी स्योंग के मुकदमे का फैसला सुनने और नतीजा देखने के लिए बरोनी पहुँचा।

सुल्तान-बरोनी के मुशीर और डाक्टर दोनों अंग्रेज थे। उनसे मुलाकात हुई, फिर उनके जरिये सुल्तान से मिलने का मौका मिला। सुल्तान मुझसे मिलकर बहुत खुश हुए और महल में सरकारी मेहमान के तौर पर ठहराया। मेरे अफ्रीका के शिकार के हालात सुनकर उन्होंने कहा कि, रियासत के जंगलों में भी शिकार खूब मिलता है। अगर मैं चाहूँ, तो वह इंतजाम कर देंगे। मैंने सारावाक से वापस आने के बाद हाजिर होने का वादा किया।

एक रोज बातों-बातों में स्योंग डाकू का जिक्र आ गया और मैंने सुल्तान को अपने लुटने का हाल बताया। मालूम हुआ कि, उसे और सब साथियों को मौत की सजा दी जायेगी। मेरे यह पूछने पर कि, मौत की सजा का यहाँ क्या-क्या तरीका है—फाँसी दी जायेगी या गोली मार दी जायेगी—सिर्फ इतना बताया गया कि, इन दोनों तरीकों में से कोई तरीका यहाँ चालू नहीं—हमारा खास तरीका अपनी आँखों से देखना।

सजा देनेवाला दिन आ गया। ठीक वक्त पर दरिया के किनारे बने हुए एक मकान के सामने सब लोग जमा हो गये और ढोल-ताशे वगैरा बजाये जाने लगे। सुल्तान अपने मुशीर और डाक्टर के *साथ आये और मुझे साथ लेकर* ऊपर की मंजिल पर पहुँचे। उस वक्त दरिया में फसील के नीचे निहायत शोर हो रहा था। मैंने झाँक कर देखा, तो दिल लरज गया—दरिया में छोटे-बड़े सैकड़ों घड़ियाल जमा थे, जो मुँह खोले शोर मचा रहे थे। कुछ देर *बाद नौ कैदी जंजीरों* में जकड़े हुए लाये गये, जिनको मैदान में खड़ा कर दिया गया। सुल्तान ने अपनी जबान में एक तकरीर की (भाषण किया)। उसके बाद सब लोग फसील पर जमा हो गये। सिपाहियों ने एक *कैदी की जंजीरें खोलकर उसे दरिया में* फेंक दिया। गिरने के साथ ही घड़ियालों ने तिक्का-बोटी करके रख दिया। बाकी डाकुओं का भी यही हश्र हुआ।

[घर की ओर]

दूसरे रोज मैं इनायत को साथ लेकर मेसेरी के लिए रवाना हो गया।

वहाँ कारोबार इतना अच्छा रहा कि, मुझे दो हफ्ते के बाद सिंगापुर से दोबारा माल लाना पड़ा। लगभग एक महीना मैं वहाँ ठहरा। इस वक्त मेरे पास काफी रुपया था। मैंने कुछ रुपये खर्च के लिए रखकर बाकी तमाम रुपया सिडोरन-बैंक को भेज दिया।

*सुल्तान से वादा कर चुका था, इस*-लिए इनायत के साथ करोनी वापस आया। यहाँ आकर मालूम हुआ कि, सुल्तान बीमार हैं। मुलाकात होने पर मैंने शिकार का जिक्र करना मुनासिब नहीं समझा, लेकिन उन्हें खुद याद था। दारोगा ए शिकार को बुलाकर हमारे लिए फौरन ही इंतजाम करने का हुक्म दिया।

शाम को दारोगा ने मुझसे पूछा कि, कम-से-कम कितने आदमी होने चाहिए? मेरे खयाल में चार-पाँच आदमी काफी थे। लेकिन उसने कहा कि सुल्तान की *हिदायत है कि २० आदमियों से कम* न हों। दो घोड़े मेरे लिए और पाँच घोड़े रसद और बारबरदारी के लिए हों। इसके अलावा तीन सरकारी शिकारी, जिनके पास उनकी बंदूकें और घोड़े होंगे वह भी साथ होंगे।

अगले रोज यह सब सामान तैयार था। शाम के वक्त मैं सुल्तान से मिलने गया।

उन्होंने मेरी 'राइफल' की तरफ से इतमीनान जाहिर किया, लेकिन फिर कहा कि, जंगल में सिर्फ एक हथियार काफी नहीं होता–इसलिए एक अमरीकी पिस्तौल और उसका 'मगेजीन' मेरे हवाले किया।

दूसरे दिन हम लोग शिकार के लिए चल पड़े। साथ कुल २४ आदमी और १० घोड़े थे। जंगल में पहुँचने पर दो रोज आराम करने के बाद सरकारी शिकारी अहमद की राय के मुताबिक एक चश्मे के किनारे मचान बनाये गये।

यहाँ चार-पाँच रोज 'कैम्प' रहा। लेकिन कोई बड़ा शिकार न हो सका। आसपास के जंगली भी 'कैम्प' में आने लगे थे। उनसे मालूम हुआ कि, इस जंगल में कोई बड़ा जानवर नहीं–सिर्फ हिरन, साँभर, चीता और जंगली सूअर वगैरा मिलते हैं। चुनाँचे यहाँ से 'कैम्प' उखाड़ा और आगे बढ़े।

घने जंगलों और तंग घाटियों से गुजर कर 'भोटो' पहाड़ के दक्षिणी भाग में पहुँचे, जहाँ से करीब ही टजा नदी बहती थी। यहाँ एक खुले मैदान में 'कैम्प' लगा दिया गया। रात-भर शेरों और चीतों के बोलने की आवाजें आती रहीं। जंगली बैल भी मालूम होते थे। सुबह के वक्त पास ही एक साँभर के बोलने की आवाज आयी, जिसे अहमद शिकार कर लाया और नाश्ता करके मैं तीनों शिकारियों के साथ चल खड़ा हुआ। कई रीछों के हमने शिकार किये और बहुत-से रीछों को इधर-उधर फल खाते हुए पाया।

दूसरे रोज आठ बजे जंगल के निचले हिस्से में बहुत-से जानवरों के शोर और एक साँभर की चीख की आवाज सुनायी दी। दूसरा सरकारी शिकारी इस्लाम दो आदमियों के साथ शिकार के लिए जा चुका था, इसलिए मैं तीसरे सरकारी शिकारी जालू और अहमद को साथ लेकर चला। पाव मील चलने के बाद झाड़ियों में कोई जानवर हिलता हुआ नजर आया। हम धीरे-धीरे पेड़ों की आड़ लेकर पास पहुँचे, तो एक शेर को साँभर खाते हुए पाया। मैंने सीने का निशाना लेकर 'फायर' किया, लेकिन हाथ हिल जाने की वजह से गोली पेट में लगी। गोली लगते ही वह उछला और गरजता हुआ हमारी तरफ लपका। अहमद ने फौरन 'ग्रेप' का 'फायर' किया, जालू ने भी गोली चलायी। आखिर, जख्मी होकर वह नाले में कूद गया।

उसका पीछा करते हुए, हम जंगल में घुसे चले गये। आधा मील चलने के बाद सामने बड़ी घनी झाड़ियाँ थीं, जिनमें घुसना बड़ा मुश्किल था और शेर को जख्मी छोड़कर जाया भी न जाता था। आखिर, अहमद को बाहर छोड़कर मैं और जालू अंदर घुस ही गये। काफी दूर जाने के बाद एक नाला सामने आ गया। मैंने आगे बढ़कर देखा, तो शेर मौजूद था और मुर्दा मालूम होता था। मैंने

एहतियात के तौर पर जार ने 'हूँ' की आवाज निकाली, जिसके साथ ही वह कूद कर नाले से बाहर आ गया। अगर बीच में झाडियाँ न होती, तो वह हमारे ऊपर ही था। खैर, मैंने सिर का निशाना लेकर गोली चलायी, जालू ने भी सिर पर ही गोली मारी, क्योकि उसका सिर ही हमारे सामने था। 'फायर' करते हुए मेरी आँखो के सामने अधेरा-सा आ गया था। कुछ मिनिट के बाद होश में आया, तो शेर सिर्फ गज भर के फासले पर मुर्दा पडा था। पीछे घूम कर देखा, तो जालू गायब था। मैं आहिस्ता आहिस्ता झाडियों मे बाहर निकला, तो दोनो मौजूद। 'कैम्प वापस आ कुछ आदमी भेज खाल उतरवाकर मँगवा ली।

[लक्ष्य सधान]

दूसरे दिन, जरा दूर का प्रोग्राम था। मैंने इनायत और तीनो शिकारियो के अलावा दो आदमी और साथ लिये। रास्ते में नाश्ता करने के बाद, दस बजे के करीब एक नदी के किनारे पहुँचे। यहाँ जगल घना था और घास के नीचे पानी बह रहा था। इनायत और जालू को दोनो कुलियो के साथ एक ऊँची-सी जगह पर पत्थरो की ओट में बिठाया और इस्लाम और अहमद को साथ लेकर खुद जगल में घुसा। बारह बजे के करीब कुछ फासले पर एक जानवर दिखायी दिया, जो सीगो से घास हटाता हुआ आ रहा था। वह एक जगली बैल था।

निशाना लेकर मैंने 'फायर' किया। गोली लगते ही, वह उछला, कूदा और एक तरफ को भागा। उसकी उछल कूद में, मैं दूसरा 'फायर' भी न कर सका। खून के निशानो पर उसका पीछा करते हुए, हम आगे बढे और कुछ दूर पर झाडियों में ताजे निशान दिखायी दिये। अहमद ने झाडियो पर एक 'फायर' 'ब्लैंक' का किया, जिसके साथ ही जख्मी बैल झुँझला कर बाहर निकला। मैं 'फायर' करने के लिए 'राइफल' उठा ही रहा था कि, वह हमारी तरफ झपटा और, इससे पहले कि, मैं 'फायर' करूँ, उसने मुझे अपने सीगो पर उठाकर १०-१५ गज दूर फेंक दिया, लेकिन अहमद और इस्लाम ने चार 'फायर' करके उसे गिरा ही लिया।

मेरे सिर, कमर और पैरो में इस कदर चोट आयी थी कि, मै बेहोश हो गया। होश आया, तो खुद को खुले हुए मैदान

में पाया। इनायत मेरे सिर के जख्म साफ कर रहा था। मैंने हाथ-मुँह धो कर पानी पिया। शाम करीब थी, इसलिए वापस हुए। मेरे लिए दूर तक चलना मुश्किल था, इसलिए रास्ते में जंगलियों की एक बस्ती में ठहर गये। वहाँ से १५-२० जंगली मशालें लेकर गये और बैल के टुकड़े करके ले आये।

सुबह को किसी-न-किसी तरह 'कैम्प' में पहुँचे। मैं किसी काबिल न रह गया था, इसलिए बिस्तर पर पड़ गया। अगले रोज तीनों शिकारियों को कुली के साथ उसी जगह भेजा, जहाँ वह बैल मारा गया था। मुझे उम्मीद थी कि, वहाँ एक-आध शेर जरूर मार लेंगे।

शाम के वक्त 'कैम्प' में कुछ जंगली आ गये और उनसे बातें होती रहीं। वे 'वायन' कौम के थे। उन्होंने बताया कि, दूसरी जंगली कौम, जो 'केली' कहलाती है, बहुत खतरनाक होती है और यह दोनों आपस में लड़ती भी रहती हैं। कुछ दिन पहले दो जवान लड़कियों के ऊपर खूब जंग हो चुकी थी, जिसमें 'केली' बुरी तरह से हारे थे।

सूरज छिपने के बाद जंगली वापस चले गये और मैं खाकर सोने के लिए लेट गया। ग्यारह बजे के करीब शाम ही शेर के बोलने की आवाज आयी। घोड़े बाहर मैदान में बँधे हुए थे और मैं जख्मी था। इनायत को जगा रहा था कि, घोड़ों की भाग-दौड़ की आवाज आयी। इनायत बाहर गया और वापस आकर खबर दी कि, शेर एक बारबरदारी के घोड़े की गर्दन मार, उसका खून पीकर भाग गया। बाकी रात 'कैम्प' के आदमी बारी-बारी से जागते रहे।

दूसरे रोज मुझे इस्लाम वगैरह के वापस आने की उम्मीद थी, लेकिन वे शाम तक भी न आये, जिससे मुझे बहुत फिक्र हुई। तीसरे रोज सुबह को १ बजे के करीब 'कैम्प' में किसी के आने का हगामा-सा हुआ। छड़ी के सहारे दरवाजे तक आकर जो-कुछ मैंने देखा, उससे सकता-सा तारी हो गया (मूर्छा सी आ गयी)। तीन कुली एक जख्मी को कंधों पर उठाये ला रहे थे। साथ में अहमद और जालू भी थे। मालूम हुआ कि, इस्लाम जख्मी हो गया है। सिर, गर्दन, बाजू—सब बुरी तरह जख्मी थे। छोलदारी में लिटाकर उसकी मरहम-पट्टी की गयी। कुछ देर बाद होश में आने पर शोरबा पिलाया गया। उससे निपट कर अहमद ने मुझे अपने हालात सुनाये।

वे हमसे रुखसत होकर, उस गाँव में पहुँचे, जहाँ मैंने रात गुजारी थी। वहाँ से पहाड़ की चढ़ाई तय करके दूसरी तरफ के जंगलों में घुसे। वहाँ एक साँभर का शिकार करके उसका गोश्त भूनने के लिए आग पर रखा। इतने में दो जंगली, जो 'केली' थे, वहाँ आये और गोश्त माँगा। अहमद ने बाकी बचा हुआ साँभर उनके हवाले कर दिया, जिसे

लेकर वे बस्ती में चले गये, जो वहाँ से तीन मील दूर थी।

रात गुजारने के लिए वे चश्मे के किनारे मचान बनाकर बैठ गये। आधी रात के बाद एक नर शेर किसी तरफ से आकर चश्मे के किनारे पर आ खड़ा हुआ और इधर-उधर देखने के बाद एक बार जोर से दहाड़ा। कुछ देर के बाद, एक नर-शेर, एक मादा और दो बच्चे दूसरे किनारे पर आकर पानी पीने लगे। दोनों नर-शेर एक-दूसरे को घूरने लगे। फिर पहला नर घूमकर दूसरे किनारे पर पहुँचा। कुछ देर तक गुर्राने के बाद दोनों एक-दूसरे पर टूट पड़े।

अहमद के साथियों ने दन-दन छः 'फायर' करके तीनों को गिरा दिया। दोनों बच्चे अपनी मुर्दा माँ के पास बैठे रहे। सुबह को अहमद वगैरा मचान से उतरे और बच्चों को पकड़ने की कोशिश की, लेकिन वे हाथ न आये। भूख मिटाने के लिए एक हिरन का शिकार करके उसका गोश्त भूनने के लिए आग पर रखा। इतने में ही कलवाले दोनों जंगली आ मौजूद हुए।

वे शेरों को मुर्दा देखकर बहुत गुस्सा हुए। कहने लगे कि, सरदार के पास चलो। एक जंगली एक बंदूक उठाकर भागा। अहमद ने फौरन दूसरी बंदूक से एक पर गोली और दूसरे पर छर्रे का वार किया। एक तो गोली लगते ही गिर पड़ा, लेकिन दूसरा जख्मी होकर भाग निकला। वहाँ ठहरने में खतरा था, इसलिए अहमद और उसके साथी शेरों की खाल उतारे बगैर ही वापस हुए।

घने जंगल में भयानक शोर सुनकर सब रुक गये। एक बहुत बड़ा 'ओरंग-उटांग' उछलता-कूदता उनकी तरफ आ रहा था। उसके कूदने से पहले ही, उन्होंने एक साथ उस पर छः 'फायर' किये। वह जख्मी हो गया, लेकिन उसने फौरन कूद कर इस्लाम को पकड़ लिया और गुस्से में उसके बाजू, सिर, सीना, गर्दन—सब चबा डाले। वह इस्लाम को लेकर भागना चाहता था कि, अहमद ने उसके पैरों पर दो 'फायर' 'ग्रेप' के किये, जिससे वह गिर गया, लेकिन फिर भी जिंदा था, इसलिए एक 'फायर' सिर पर और किया गया, जिससे वह मर गया। तीनों इस्लाम को उठाकर आहिस्ता-आहिस्ता वापस जंगलियों के गाँव में पहुँचे। रात वहाँ गुजार कर सुबह को दो और आदमियों को साथ लेकर 'कैम्प' तक आये।

यह हालात सुनकर मुझे बहुत फिक्र हुई। इस्लाम के बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। उसका सारा बदन नीला हो गया था। मैं सोच रहा था कि, सुल्तान-ब्रुनेई जवाब तलब करेगा, तो क्या होगा? इसके अलावा जंगलियों के हमले का भी हर क्षण डर था, जिनका एक आदमी मारा गया था।

रात-भर इस्लाम बहुत बेचैन रहा।' आखिर, सुबह को उसने इस दुनिया से कूच कर दिया। उसको दफन करने के

बाद मेरा इरादा वापसी का हुआ, लेकिन अहमद की राय थी कि, रवानगी अगले दिन हो। इसलिए मैं खेमे में आकर लेट गया। ५ बजे लोगों का शोर सुनकर मेरी आँख खुल गयी। इनायत ने आकर खबर दी कि, जंगलियों ने 'कैम्प' को घेर लिया है। मैंने जल्दी से खाकिस-सूट पहना, दोनों पेटियों में गोलियाँ और कारतूस भरे, पिस्तौल भर कर पेटी में लगाया और 'राइफल' में 'मेगेजीन' डालकर बाहर आया, तो होश उड़ गये। चार-पाँच सौ जंगलियों की फौज 'कैम्प' को घेरे हुए थी। इतने आदमियों से जान बचाना मुश्किल था, मुकाबला ही बेकार था, इसलिए 'राइफल' खाली करके मैंने उनके सामने फेंक दी। उन्होंने मेरे हाथ-पाँव रस्सी से मजबूत बाँधकर एक तरफ डाल दिया। 'कैम्प' के कुछ आदमी मारे गये, कुछ जख्मी हुए। आखिर 'कैम्प' को लूट कर एक घंटे के बाद वे मुझे लेकर अपने गाँव की तरफ चल दिये। मुझे नहीं मालूम हो सका कि, इनायत और अहमद वगैरा का क्या हश्र हुआ।

गाँव में पहुँचकर, मुझे जंगलियों ने एक लम्बे-चौड़े झोंपड़े के एक छोटे-से कमरे में बंद कर दिया। झोंपड़ा जमीन से बहुत ऊँचा था, जिसका फर्श बाँस का था। बँधा हुआ होने की वजह से मुझे बड़ी तकलीफ हो रही थी। खैर, किसी तरह सुबह हुई और औरतों और बच्चों के बोलने की आवाजें आने लगीं। एका-एक कमरे का दरवाजा खुला और एक खूबसूरत नवजवान, जिसकी उम्र १७-१८ साल की रही होगी, अंदर आया। उसे देखकर मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ; क्योंकि वह जंगली नहीं था—रंग गोरा था, छोटा-सा कोट और एक चमड़े का पाजामा पहने हुए था। मुझे देखकर उसे भी ताज्जुब हुआ। वह मेरे पास आकर बैठ गया और पूछा—"अन्ता हिन्दी ? मुस्लिम ?" (क्या तुम हिन्दुस्तानी हो ? मुसलमान ?)। अफ्रीका में रहने की वजह से मुझे काफी अरबी आ गयी थी। मैंने उसी तरह टूटे-फूटे में जवाब दिया—"अना शरीफ-हिन्दी।" (मैं सैयद हूँ-हिन्दुस्तानी)। वह ताज्जुब से बोला—"अन्ता शरीफो!" और, फिर इज्जत-भरी नजरों से देखता हुआ चला गया।

दस-ग्यारह बजे के करीब कुछ लोग मेरी कोठरी में आये, जिन्हें देखकर मैं समझ गया कि, मौत की घड़ी आ गयी। वे मेरी रस्सियाँ खोलकर उसी मकान के बड़े हिस्से में लाये, जहाँ बहुत-से जंगली जमा थे। उनके बीच में एक बहुत ही बदसूरत जंगली दीवार से टेक लगाये बैठा था। मुझे देखकर वह गुस्से से लाल हो गया और दाँत पीसते हुए कुछ कहने लगा। वहीं मुझे एक बूढ़ी औरत दिखायी दी। वह भी जंगली नहीं मालूम होती थी, बल्कि अरबी नसल से मालूम होती थी। इतने में वही लड़का, जो सुबह मेरे पास आया था, मेरे पास आकर खड़ा हो गया और सरदार के कहने से

उसने मुझसे पूछा कि, मैंने जंगल में उनके आदमी को क्यों मारा और जख्मी किया ?

मैंने जवाब दिया कि, मैं तो कई दिनों से बीमार और जख्मी पड़ा हूँ—उस जंगल में कभी नहीं गया। साथ ही मैंने अपने जख्म भी खोलकर दिखाये। वह लड़का देर तक सरदार को समझाता रहा। उनकी बातें थोड़ी में न समझ सका, अलबत्ता मैंने यह अंदाजा जरूर लगा लिया कि, वह लड़का मेरी वकालत कर रहा था, क्योंकि सरदार का गुस्सा कम हो चला था।

कुछ देर बाद कचहरी खत्म हो गयी। चार हथियार-बंद सिपाही मुझे लेकर बस्ती से बाहर चले, तो मुझे यकीन हो गया कि, अब मुझे कत्ल कर देंगे। लेकिन मुझे इस बात पर बड़ा अचम्भा था कि, न तो उन्होंने मेरी तलाशी ली और न बदन पर से कोई चीज उतारी। पिस्तौल, पेटी, कारतूस, चाकू—यहाँ तक कि, मेरी जेब में कुछ नकद 'डालर' और कुछ 'नोट' थे, वह भी न लिये।

बस्ती से बाहर एक मील चलने के बाद एक बड़ी झील नजर आयी। वहाँ उन्होंने मुझे एक कश्ती में सवार होने का इशारा किया। मैंने समझा कि, शायद यहाँ भी रियासत बरोनी की तरह मौत की सजा पानी में फेंक कर दी जाती होगी। इस-के साथ क्योंग की मौत मेरी आँखों के सामने घूम गयी। लेकिन झील में कुछ दूर आगे जाकर एक जजीरे (द्वीप) के किनारे उन्होंने मुझे उतरने का इशारा किया। वहाँ उतरने के बाद मालूम हुआ कि, उन्होंने मुझे कैद कर दिया है और यह जजीरा (द्वीप) उनका कैदखाना है।

अब मुझे जान बचने की खुशी के साथ यह फिक्र भी थी कि, इस कैद से किस तरह पीछा छूटेगा ? मैंने हिम्मत से काम लिया और जजीरे (द्वीप) में घूम-फिर कर देखा। यह एक बहुत ही छोटा जजीरा था। कहीं-कहीं पत्थरों के बीच से मीठे पानी के चश्मे उबल रहे थे। पेड़ फलों से लदे हुए थे—जैसे कटहल, अनन्नास वगैरह। भूख से बेताब तो था ही, एक कटहल तोड़ कर खाया और चश्मे से पानी पिया। शाम हुई, तो रात गुजारने की फिक्र हुई। लकड़ी काटने का कोई सामान न था न रस्सी ही थी, जिससे मचान बनाकर रात गुजार सकता। चश्मे से थोड़े-से फासले पर एक बड़ा-सा पेड़ था। उस पर चढ़कर अच्छी तरह देख-भाल की। फिर चाकू से एक पेड़ की हरी छाल उतारी और कुछ लक-ड़ियाँ जमा करके उसी पेड़ पर उन लकड़ियों को छाल से बाँधकर मचान बना लिया। उसी पर रात गुजारी। झील और ठंडी हवा की वजह से बड़ी सर्दी लगी।

किसी तरह सुबह हो गयी। चश्मे पर हाथ-मुँह धोकर एक कटहल और अनन्नास से नाश्ता किया। खजूर की तरह के बहुत-से पेड़ यहाँ देख चुका था। उनकी शाखें काटकर लाया और कई चटाइयाँ बनायीं। अपने लिए पत्तों की एक 'हैट' भी बनायी। चटाइयों को मचान पर बिछा दिया। इसी काम में दोपहर हो गयी और भूख सताने लगी। पहले चश्मे पर खूब नहाया।

वजू करके नमाज पढ़ी। मुसीबत में खुदा की याद भी खूब आती है—देर तक नमाज में लीन रहा। फिर कुछ कटहल और अनन्नास खाकर चश्मे के किनारे बैठा रहा। सूरज छिपने से पहले एक अनन्नास और खाकर मचान पर चला गया। वहाँ देर तक खयालों में जकड़ा रहा और फिर नींद आ गयी।

बारह बजे के करीब, मेरी आँख खुल गयी। चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। एकाएक दूर से गाने की बड़ी मीठी आवाज आयी और फिर कुछ देर बाद एक साय को अपनी तरफ बढ़ते देखा, तो दिल में बहुत डरा। पाँच मिनिट के बाद, बिलकुल पास ही से आवाज आयी—"शरीफो—शरीफो—शरीफो!" अब मैंने पहचाना—यह वही नवजवान था, जिसकी कोशिश से मेरी जान जगलियों से बची थी। मैं एकदम पेड़ से कूद पड़ा और दौड़कर उसके पास पहुँचा और सीने से लगाकर लिपटा लिया। फिर मैंने उससे कहा—"यह क्या गजब किया कि, अकेले ही इस सन्नाटे में जगल और झील को पार करके यहाँ आये?"

कहने लगा—"आपकी मोहब्बत खींचकर ले आयी।" खैर, हम दोनों मचान पर आये और मेरे पूछने पर कि, वह कौन है, यहाँ कब और कैसे इन जगलियों के हाथों पड़ गया, उसने अपने हालात बताये।

उसने कहना शुरू किया—"मेरा नाम अब्दुर्रहमान है; लेकिन सब लोग मुझे ईदू कहते हैं। किस्मत से ७ साल से इन जगलियों का कैदी बना रखा है। मेरे दादा और वालिद 'बटालू' में, जो मेसेरी और सारावाक के बीच में समुद्र के किनारे पर है, कारोबार करते थे। मेरे दादा के भाई बहुत दूर रहते थे, जहाँ वह जगलों का ठेका लिया करते थे। जब मेरी उम्र १३ साल की हुई, तो उन्होंने मेरे दादा को मजबूर किया कि, हम सब साल-६ माह के लिए उनके पास जाकर रहें। मेरे दादा ने उनकी खुशी के लिए मेरी दादी, वालिदा, वालिद और मुझे कुछ नौकरों के साथ उनके पास रवाना कर दिया। खुद कारोबार की देख-भाल के लिए बटालू ही रह गये।

"हम लोग घोड़ों पर सवार चले जा रहे थे और जगल में सिर्फ एक दिन का सफर बाकी रह गया था कि, एक तरफ से अचानक जगली 'केलियों' ने निकलकर हमला कर दिया। वालिद और नौकरों ने खूब मुकाबला किया, लेकिन जगलियों से बच न सके। जगली मेरी दादी, वालिदा और मुझे पकड़ कर यहाँ ले आये। वालिदा इस मुसीबत को न सह सकी—एक साल बाद ही सिधार गयी। लेकिन मैं और मेरी दादी आज तक जिंदा हैं और दिन-रात इन जगलियों की खिदमत करते हैं।"

मैंने भी उसे अपनी रामकहानी सुनायी। उसके बाद मैंने कहा—"भाई ईदू! यहाँ से निकलने की कोई तरकीब करनी चाहिए।" उसने जवाब दिया—"आज तो देर हो गयी, कल फिर आऊँगा, तब कुछ सोचेंगे।" मैं उसे झील के किनारे तक छोड़ने गया। वहाँ उसने कपड़ों में से एक कुल्हाड़ी और

थैली मुझे दे, विदा ले ली।

दोनों थैलियाँ लिये हुए, मैं मचान पर आया। थैली को खोल कर देखा, तो उसमें भुने हुए चावल थे, जो मेरे लिए एक कीमती चीज थे। ईबू के आ जाने से दिल को बहुत हिम्मत हुई। रात-भर सो न सका, तरह तरह के खयाल दिल में आते रहे।

सुबह होते ही नमाज पढ़ी, देर तक दुआ माँगता रहा। नाश्ते के बाद कुल्हाड़ी लेकर चला और बहुत-सी लकड़ियाँ, खजूर की शाखें काट लाया। मचान को ज्यादा आराम देह बनाया। इससे निपट कर आराम करने के लिए लेट गया। सोकर उठा, तो अनन्नास खाये। फिर ईबू के इंतजार में चश्मे के किनारे आ बैठा।

आधी रात के बाद उसकी कश्ती किनारे से आ लगी। दोनों बगलगीर होकर मिले। देर तक चश्मे के किनारे बैठे हुए बातें करते रहे। उसने कहा कि, वह और उसकी दादी दिन-भर भागने के बारे में सोचते रहे। लेकिन यह बात मुश्किल नजर आती है, क्योंकि एक तो यह जंगली ही मौका ही नहीं देंगे, फिर अगर इनकी गैर-मौजूदगी में—जब ये लोग लूट-मार के लिए हफ्तों बाहर रहते हैं—निकल भी भागें, तो रास्ते में जंगली जानवर भरे हुए हैं।

मैंने कहा—'ईबू, मौत का एक वक्त मुकर्रर है। अगर वह आ गया है, तो हम यहाँ भी नहीं बच सकते और अगर नहीं आया, तो दुनिया की कोई ताकत हमें नहीं मार सकती। इस जिल्लत की कैद से तो मौत ही हजार दर्जे अच्छी है।'

मेरी बात सुन कर ईबू को जोश आ गया। बोला—"हम जरूर किस्मत आजमायेंगे, नतीजा आ-कुछ भी हो।

दूसरे दिन दोपहर की नींद पूरी कर के उठा तो चारों तरफ अंधेरा फैल चुका था। मैं मचान से उतर कर ब्रीचिस को जब में पिस्तौल डाले झील के किनारे की तरफ चल दिया। ईबू के आने की पूरी उम्मीद थी। आधी रात के बाद चाँद निकला, तो दूर से कश्ती आती हुई दिखायी दी। किनारे पर आते ही ईबू ने मेरी राइफल' पकड़ा दी, जो जंगलियों ने मुझसे ले ली थी और फिर खुद कूद कर आ गया। मेरी जान बचाने के बाद ईबू का मुझ पर यह दूसरा एहसान था। किनारे से हम लोग मचान पर आये।

ईबू ने बताया कि, कल रात भर जंगलियो में एक हंगामा रहा। वे लोग 'कायना' पर हमला करने की तैयारी कर रहे है। यकीन है कि, जल्द ही चले जायेंगे। मैंने कहा—ईबू, यही मौका है। इसको हाथ से जाने न देना चाहिए। लेकिन कहीं ऐसा न हो कि, ये लोग तुम्हें भी अपने साथ ले जायें। ईबू ने बताया कि, ऐसा नहीं होगा, क्योंकि लड़ाई वगैरह में ये लोग सिर्फ अपनी ही कौम को शरीक करते हैं।

उसके बाद दो हफ्ते तक ईबू मिलने न आ सका। एक रोज रात को सख्त तूफान आया, जोरदार बारिश हुई। सब चटाइयाँ या तो टूट गयी या उड़ गयी। मैं पेड़ के नीचे बैठा हुआ, रात भर भीगता रहा।

सुबह को धूप निकलने पर कपड़े सुखाये, चटाइयाँ तलाश करके लाया, उनकी मरम्मत की और मचान दुबारा बनाया। दो रोज तक सख्त बुखार रहा। आखिर, तीसरे रोज तबीयत सँभली।

एक रोज मचान पर सो रहा था, किसी ने गुदगुदाकर जगा दिया। आँख खोलकर देखा, तो ईवू सिरहाने बैठा हुआ मुस्करा रहा था। सुबह की रोशनी फैल रही थी। मैंने पूछा–"ईवू, आज इस वक्त यहाँ कैसे?" मालूम हुआ कि, रात जंगली सफर पर चले गये। उनके जाने के कुछ देर बाद वह इधर चला आया। मैंने कहा कि, उसे दादी को साथ ले आना चाहिए था। उसने बताया कि, वे नीचे मौजूद हैं।

मैं जल्दी से नीचे उतरा, सलाम किया। दुआ देने के बाद उन्होंने कहा –"अब देर न करनी चाहिए।" मैं जल्दी से कुछ बटहल और अननास तोड़ लाया, दादी के थैले में कुछ भुना हुआ गोश्त और भुने हुए चावल थे। नाश्ते के बाद चलने की तैयारी की। मैंने कोट पहनकर पिस्तौल और पेटी लगायी, 'राइफल' और कुल्हाड़ी हाथ में ली। ईवू ने मशालें सँभाली, दादी ने थैला पकड़ा। मैंने अपनी मेहनत से बनाये हुए मचान पर आखिरी नजर डाली और हम लोग खुदा का नाम लेकर रवाना हुए।

एक घंटे में कश्ती झील की दूसरी तरफ जंगलियों के गाँव से बहुत फासले पर किनारे जा लगी। खुश्की पर पहुँचकर मैंने एक मजबूत रस्सी से 'राइफल' कंधे पर लटकायी। कुल्हाड़ी और एक मशाल हाथ में ली। ईवू ने तीर-कमान कंधे पर लटकाकर हाथ में भाला और एक मशाल सँभाली। दादी ने थैला बगल में दबा कर रस्सियाँ कमर से लपेटीं और बाकी एक मशाल हाथ में ली। सूरज काफी ऊँचा हो चुका था–उसकी तरफ पीठ कर करके हम सावधानी से घने जंगल में दाखिल हो गये।

दो घंटे के सफर के बाद एक ऊँची पहाड़ी पर पहुँचे। वहाँ से नीचे देखा, तो मैदान में सैकड़ों रीछ और दूसरे जंगली जानवर जमा थे। इसलिए पहाड़ी पर दूर तक चलने के बाद नीचे उतरे। कुछ दूर चलने के बाद फिर चढ़ाई शुरू हो गयी। चढ़ना शुरू ही किया था कि, झाड़ियों में किसी बड़े जानवर के उतरने की आहट मालूम हुई। सिर उठाकर देखा, तो जंगली बैल दिखायी दिये। जल्दी से ईवू की मदद से दादी को एक पेड़ पर चढ़ाया, फिर हम दोनों भी चढ़ गये। एक घंटे तक उनके दूर जाने का इंतजार किया। इसके बाद उतर कर कुछ दूर ही चले थे कि, अचानक एक तरफ से एक जंगली सूअर ने ईवू पर हमला कर दिया। पास आते ही ईवू ने उसकी गर्दन पर भाले का वार किया और फुर्ती से एक पेड़ की आड़ में हो गया। मैंने पिस्तौल से उसके सिर पर दो फायर किये, जिससे जख्मी होकर वह कुछ दूर तक चला गया, लेकिन फिर बड़ी तेजी से पलटा। इतनी देर में मैं 'राइफल' तैयार कर चुका था। वह हमारे

साण्डू
बालकडू
नन्हे बच्चों के लिये
बालामृत
(व्हिटॅमिनयुक्त) टॉनिक

पास भी न पहुँचा था कि, एक गोली ने उसे ठंडा कर दिया।

थोड़ी देर एक जगह सुस्ता कर हम फिर आगे बढ़े। शाम होने तक सब बुरी तरह थक गये थे। इसलिए एक ऊँची-सी जगह पर लकड़ियाँ काट कर दो पेड़ों पर—जो एक-दूसरे से मिले हुए थ—दो मचान बनाये। एक पर ईदू और उसकी दादी रहे और दूसरे पर मैं। रात होते ही जंगली जानवरों की आवाज से जंगल गूँजने लगा। मैंने इस खयाल से कि, वह दोनों डरें नहीं, अपने शिकार के किस्से सुनाने शुरू कर दिये।

११ बजे के करीब वे दोनों सो गये। नींद मुझे भी आ रही थी, लेकिन मैंने सोना मुनासिब नहीं समझा। आधी रात के बाद देखा कि, दो चीते खेलते हुए आ रहे हैं। मचान के नीचे आकर वे ठहर गये। कुछ देर बाद एक ने ईदू वाले मचान पर चढ़ने की कोशिश की, लेकिन कुछ दूर चढ़कर उतर गया। दादी के खर्राटों की आवाज जोरों से आ रही थी, इसलिए उसने फिर चढ़ना शुरू कर दिया और मचान के करीब पहुँच गया। मैंने 'राइफल' उठाकर एक गोली दिमाग पर दी, जिससे वह नीचे गिर पड़ा। 'फायर' की आवाज सुनकर दादी और ईदू दोनों उठकर बैठ गये। झाँक कर देखा, तो नीचे एक चीता दम तोड़ रहा था और दूसरा उसके सिर की तरफ खड़ा था। मैंने एक गोली उसके सीने पर लगाकर उसे भी पास ही लिटा दिया। रात का बाकी हिस्सा सो-जाग कर गुजार दिया।

सुबह होने पर नाश्ते के बाद फिर चल पड़े। रास्ते में एक तंग दर्रे से गुजर रहे थे कि, दस-पंद्रह रीछों ने धावा बोल दिया। मैंने 'राइफल' सँभाली और ईदू ने तीर-कमान। दादी ने भी जल्दी से एक मशाल जला ली। पाँच रीछ हमारे हाथ से मारे गये और बाकी जख्मी होकर भाग गये। हममें से कोई जख्मी तो नहीं हुआ, लेकिन पसीने में सब शराबोर हो गये। यहाँ से आगे बढ़े, तो 'औरंग-उटांग' के बोलने की आवाज सुनायी दी। हमने फौरन रुख बदल दिया और अपनी राह चलते रहे।

एक घंटे के बाद एक पेड़ पर कुछ काली-सी चीज नजर आयी। मुझे शुबहा हुआ कि, वनमानुस है। मैं मशाले जलाना चाहता ही था कि, मालूम हुआ, एक नहीं बल्कि दो हैं। अब तो मुझे बहुत फिक्र हुई। लेकिन थोड़ी देर बाद जब वे पास आ गये, तो मालूम हुआ कि, वे रीछ हैं। हमें देखते ही वे लपके, लेकिन खातिर गोलियों से की गयी।

चार रोज इसी तरह जंगल में सफर करते हुए गुजरे। आखिर पाँचवें रोज यह घना जंगल खत्म हो गया। अब हमारे सामने सिर्फ कई-एक छोटी पहाड़ियाँ और छोटे-छोटे नदी-नाले थे।

ग्यारह बजे के करीब एक हिरन का शिकार करके पाँच दिन के बाद पेट भरकर खाया। तीन बजे के करीब हम एक 'कायन'-बस्ती में पहुँचे। वे हमारे साथ बहुत अच्छी तरह पेश आये। हमारे लिए एक झोपड़ी

खाली करके साफ कर दी। ईबू और दादी उनकी जबान समझते थे। उन्होंने बताया कि, आगे एक नदी है और उसके इस तरफवाले किनारे पर खतरनाक दलदल है। फिर उन्होंने एक तरफ इशारा करके बताया कि, उस तरफ एक बस्ती है, हम वहाँ जायें। वहाँ के लोग हमें नदी पार करा देंगे।

नदी पार कर के हम लोग 'क्लोड-टून' पहुँचे। एक होटल में ठहरने का इतजाम करके ईबू और उसकी दादी के लिए कपडा का बदोबस्त किया। नहा-धोकर आराम किया। अगले रोज यहाँ से मेंगेरी के लिए चल पडे। मेंगेरी पहुँचकर मेरा इरादा जल्द-से-जल्द रियासत करोनी जाने का था। लेकिन ईबू और दादी की जिद से मुझे उनके साथ बटालू जाना पडा।

बटालू पहुँच कर मैंने दोनों को एक होटल में छोडा और खुद ईबू के दादा की तलाश में चला। मुझे ईबू ने उनका नाम अबू-बक्र बताया था। दूकान पर अब्दुस्सत्तार नामी एक अरब नवजवान से मुलाकात हुई, जो शेख अबू-बक्र का भतीजा था। अब्दुस्सत्तार को लेकर होटल में आया। अपनी चची को जिंदा देखकर वह हैरान रह गया। सब आपस में गले मिलकर खूब रोये। मगरिब (सध्या) के बाद मेरे कहने पर वह उन दोनों को अपने साथ मकान पर ले गया।

अगले रोज दस-ग्यारह बजे मैं भी वहाँ गया। शेख साहब से मुलाकात हुई। खूब बात हुई। इतने में दादी भी आ गयी। मैं ईबू को गैरहाजिर देखकर हैरान था। आखिर, दादी से पूछा। वे बोली-"तुम ऊपर कमरे में आराम करो, ईबू आता है।"

ऊपर जाकर कमरा देखा, तो काफी बडा कमरा था और खूब सजाया हुआ था। मैं कमरे में अच्छी तरह घूम-फिर कर एक आरामकुर्सी पर लेटा हुआ सोच रहा था कि, ईबू की मुहब्बत पर पहुँचते ही खत्म हो गयी। एकाएक सीढियों पर किसी के आने की आहट सुनायी दी। देखा, तो बूढी दादी के पीछे एक नवजवान लडकी काले रंग के अरबी 'पैशन' के कपडे पहने हाथों से मुँह छिपाये खडी थी। दादी बोली-"लो शरीफ, यह तुम्हारा ईबू आ गया। लेकिन अब यह ईबू नही, बल्कि 'फातिमा' है।" मेरी समझ में कुछ न आया और थोडी देर बाद समझा भी, तो यह कि, शायद घर पहुँचने की खुशी में ईबू मजाक के तौर पर जनाने कपडे पहनकर आया है।

मैंने उठकर उसके दोनों हाथ चेहरे से हटाये और कहा-"वल्लाह ईबू! तुम तो जनाने कपडों में बडे ही हसीन मालूम होते हो! अगर तुम सचमुच लडकी होते, तो मैं तुमसे शादी कर लेता।" दादी यह सुनकर मुसकराने लगी और ईबू झट हाथ छुडाकर नीचे भाग गया।

मुझे हैरान पाकर दादी ने कहा-"सुनो शरीफ, बात यह है कि, ईबू असल में लडकी ही है। इकलौती औलाद होने की वजह से हम इसे मरदाने कपडे पहनाते थे। जिस वक्त हमें जगलियों ने गिरफ्तार किया था,

तब भी यह लडकों के कपडे पहने थी, इसीलिए जंगली भी इसे लडका समझते थे।"

फिर शाम तक फातिमा नजर न आयी। मेरे रहने का बंदोबस्त भी यहीं कर दिया गया था। रात को पेट में गरानी की वजह से मैंने खाना नहीं खाया। इसे फातिमा ने बहुत ही महसूस किया। सुबह को वह खुद नाश्ता लेकर ऊपर आयी और दोनों ने साथ ही नाश्ता किया।

दस-बारह रोज की मेहमानदारी के बाद मैंने रवानगी की इजाजत चाही, तो दादी ने कहा—"तुम अमेरिका क्यों जाते हो? यहीं हमारे पास रहो, यहाँ खुदा का दिया सब-कुछ है।" यह गोया मुझे फातिमा से शादी का पैगाम था। फातिमा के दादा के पास काफी जायदाद थी, हजारों 'डालर' नकद बैंक में थे, कारोबार भी खूब चल रहा था और इन सबकी वारिस फातिमा थी।

मैंने उन्हें समझाया कि, मैं परदेसी, बाल-बच्चों वाला आदमी, अपने देश और अजीजों को छोडकर किस तरह वहाँ रह सकता था! इसके अलावा मेरा अमेरिका जाने के इरादे को छोडना नामुमकिन था। इसका मैंने उन्हें यकीन दिलाया कि, अमेरिका से वापस होते हुए अगर मौका मिला, तो जरूर मिलूँगा। यह सुनकर उन्होंने कहा—"अच्छा, कुछ दिन और ठहर कर चले जाना।" चुनाँचे मैं रुक गया।

एक रोज बडी बी ने मेरे कपडे धोबी के यहाँ धुलने के लिए भेजे, तो ब्रीचिस की जेब में से कुछ पत्थर के टुकडे निकाल कर मेरे पास भेजे। ये पत्थर मुझे कैद के दिनों में जजीरे में मिले थे। मैं टहल रहा था कि, यह धूप में चमकते हुए दिखायी दिये। कुल्हाडी से उस जगह को खोदा, तो और बडे पत्थर निकले। मुझे खयाल हुआ कि, शायद यहाँ सोने की खान हो, इसलिए पत्थरों को उठाकर जेब में डाल लिया था। इन पत्थरों को मैं एक चीनी सुनार के पास ले गया, जिसने सोना अलग करके एक गोली-सी बनाकर मेरे हवाले की। मेरे बेचने के इरादे को देखकर उसने उस सोने के ६२ डालर मेरे हवाले किये।

फातिमा हद से ज्यादा मेरी खातिर में लगी हुई थी। उसने बहुत कोशिश की कि, मैं किसी तरह रुक जाऊँ, लेकिन मैं भी मजबूर था। आखिर रवानगी का दिन आ गया। शेख साहब ने मेरे लिए बडा सामान तैयार किया था—बिस्तर, कम्बल, तकिये और एक ट्रंक में बहुत सारे सूटों के कपडे, मोजे, रूमाल और स्लीपर वगैरा भरे हुए थे। चलने के वक्त दादी और फातिमा बेइख्तियार रो रही थीं। मेरा खुद का भी बुरा हाल था, लेकिन मजबूरी!

दूसरे रोज जहाज मेसेरी पहुँच गया। वहाँ एक होटल में ठहरा। अगले रोज बरोनी जाने का इरादा था। नहा-धोकर धुला हुआ ब्रीचिस-सूट पहन कर जेब में हाथ डाला, तो जेब में ५०० डालर के नोट मौजूद थे, जो फातिमा की तरफ से थे।

बरोनी के रास्ते में तरह-तरह के खयाल

दिल में आते रहे। कभी इनायत का खयाल आता कि, कहाँ होगा—कैसा होगा ? और, कभी सोचता कि, न-जाने सुलतान किस तरह पेश आयें ? खैर, बरोनी पहुँच कर सुल्तान को खबर करायी। उन्होंने फौरन बुलाया। मुझे देखकर बहुत खुश हुए। वे समझे हुए थे कि, शायद मैं भी 'बेलियो' के हाथों मारा गया।

उन्होंने बताया कि, उस रोज 'बेलियों' के हाथ में ४ आदमी जान से मारे गये और ८ जख्मी हो गये। बाकी ने भाग कर जंगल में पनाह ली। अहमद और इनायत वगैरा जख्मियों में थे। 'बेलियो' के वापस जाने के बाद वे लोग ४ दिन 'कैम्प' में रहे। उसके बाद 'कायन' लोगों की एक बस्ती पास ही थी, वहाँ थोड़े दिन आराम करने के लिए ठहरे। लेकिन एक रोज शाम के वक्त वहाँ भी 'बेलियो' ने धावा बोल दिया। 'कायनों' के हार कर भाग जाने से उन्होंने गाँव को लूट लिया। 'कायन' मर्द, औरतों और बच्चों के अलावा वे अहमद, इनायत और दो आदमियों को पकड़कर साथ ले गये।

मैं इनायत को जंगलियों की कैद में छोड़कर अमेरिका नहीं जा सकता था, इसलिए कैदियों की रिहाई के बारे में मैंने सुलतान से बात की। मैंने उनसे कहा कि, अगर वे मेरी मदद करें, तो मैं खुद कोशिश करूँ। उन्होंने इस पर गौर करने का वायदा किया।

अंत में, सुलतान ने मुझे अपने साथ २० सिपाही और २ जमादार ले जाने की इजाजत दे दी। मेरे कहने पर एक 'मशीनगन' भी दी गयी, जिसे दोनों जमादार चलाना जानते थे।

इनके अलावा १०० हथियारबंद 'कायन' भी हमारे साथ थे। इस लड़ाई में 'बेली' बुरी तरह हार गये, 'कायनों' ने खुशियाँ मनायीं और हम अपने मित्रों को छुड़ाकर बरोनी के लिए वापस हुए।

एक हफ्ते के बाद हम बरोनी पहुँचे। सुल्तान को हमारी कामयाबी से बड़ी खुशी हुई। तीन रोज तक मैं उनका मेहमान रहा। चौथे रोज इनायत को साथ लेकर सिंडीकन के लिए रवाना हुआ। वहाँ घर के खत लिखने के अलावा फातिमा को भी खत लिखा, जिसमें 'बेलियों' के कत्ले-आम का भी तफसील से जिक्र किया।

इस वक्त मेरे पास सवा तीन हजार रुपये नकद मौजूद थे, जो अमेरिका पहुँच कर कालेज में दाखिला लेने के बाद एक साल तक के लिए काफी थे।। इसलिए एक रोज अमरीकी मशीर से मिलकर फिलीपीन जाने का इरादा जाहिर किया। 'पासपोर्ट' बड़ी आसानी से बन गया। रवाना होने से पहले मैंने सब नकदी अमरीकी डालर में तबदील की और फिलीपीन के लिए रवाना हो गया।

अब मेरे लिए रास्ता साफ था। सफर का सामान ठीक करने के बाद मनीला होता हुआ अमेरिका पहुँचा और अपने मकसद में कामयाब होकर लौटा।

★

विटामिन 'ए'
" 'बी१'
" 'बी२'
" 'सी'
गोला
मिठाइयाँ और टॉफ़ियाँ
Gola
Gola
गोला
मिठाइयाँ
और
टॉफ़ियाँ
दी हिन्दुस्थान, शुगर मिल्स लि.

# सौंदर्य की तस्वीर

अफगान
स्नो
सौंदर्य वर्धक
क्रीम
खुशबूदार-ताजा अफगान स्नो
ललित-मुखाकृति के
सौंदर्य का सरल साधन-त्वचा
को दिनभर मुलायम
और नर्म रखता है
ESP
पाटनवाला

ड्रिल्स
रीमर्स
कटर्स

हिन्द मिल्स लिमिटेड
हुगल रोड, फ्लार्ड इस्टेट, बम्बई-१

बिड़ला
कटैलो चम्पा
केशतैल
अनुपम गन्ध
एवं केश शोभा
के लिये
बच्चों की ताकत के लिये
अनुपम टानिक
(बालामृत)
बिड़ला लेबोरेटरीज, कलकत्ता २०
वितरक मेसर्स हेमंत ट्रेडर्स ३२५, कालबादेवी रोड, बम्बई २

---

श्री रतनलाल जोशी द्वारा 'नवनीत प्रकाशन' लि०, ३४१, तारदेव, बम्बई ७, के लिए प्रकाशित तथा एसोसियेटेड एडवर्टाइजर्स ऐंड प्रिंटर्स लि, ५०५, आर्थर रोड, बम्बई में मुद्रित

बिस्कुट -
श्रूजबरी
ऑरेंज
इसबिस
ग्लूको -
लॅक्टीन
फ्रान्सीस
चाकलेट -
दूध का
सादा
साठे
बिस्कुट और
चाकलेट
HN HEROS No 93

मोहक सौन्दर्य के लिये
रेमी स्नो
रेमी स्नो सौन्दर्य में वृद्धि कर
त्वचा को कोमलता तथा फूलों की सी
ताजगी प्रदान करता है।
ए. बी. आर. ए. एण्ड कं.
बम्बई २-मद्रास १.
FIPS

श्री रतनलाल जोशी द्वारा 'नवनीत प्रकाशन लि०, ३४१, तारदेव, बम्बई ७, के लिए प्रकाशित तथा एसोसियेटेड एडवर्टाइजर्स ऐंड प्रिंटर्स लि०, ५०५, आर्थर रोड, बम्बई में मुद्रित

जॉर्जेट
साटिन
चेक साटिन
शार्क स्किन
बेबी शार्कस्किन
पिग स्किन
शांटुंग
और
नाना प्रकार की सूटिंग
सब बड़े शहरों की दुकानो पर प्राप्य
मैनेजिंग एजेन्टस

एक नया नाम
कैलिको मिल्स

# दीपावली
के
# अभिनन्दन

भूपेन्द्र डाइंग एन्ड प्रिंटिंग वर्क्स
१९५, नानूभाई देसाई रोड
बंबई-४

Tissot
SEASTAR
Since 1853
● जल से अप्रभावित
● चुम्बक के प्रभाव से मुक्त
● भारमह काँच
* धक्का-कंपन से अप्रभावित (इन्का ब्लाक)
* १६ जवाहिरात वाली स्विस लीवर चाल
* न टूटने वाली टीसाट "लाइफस्प्रींग"
* पूर्ण स्टेनलेस स्टील केस
Rs. 165/-
: प्राप्ति स्थान :
चार्ल्स आब्रेट
डी-५ क्लाइव बिल्डिंग्ज, कलकत्ता
२६९, हार्नबी रोड, बंबई
और केवल ओमेगा टीसोट के लिए चुने हुए जवेरी

अजोड़ तथा अद्वितीय
चित्र के रुप मे मान्य किया
हुआ भारतीय नृत्य कला
औरसस्कृति
का रगदर्शन
झनक झनक पायल बाजे
In Technicolor
Produced & Directed by
V. SHANTARAM

सुखमय जीवनका मूल मंत्र—
समय पर बीमा
कराना है।
दि इण्डियन
ग्लोब इन्श्योरंस कं. लि.
३१५/३२१ दादाभाई नवरोजी रोड,
बम्बई-१

वर्ष के इस
अवसर पर विचार
आनन्द और प्रमोद से
भर जाते हैं
और उसी के साथ
पाटनवाला घराने
की शुभ-कामनाएं
अफगान स्नो
सौंदर्य प्रसाधन
के
निर्माता
KAMAL
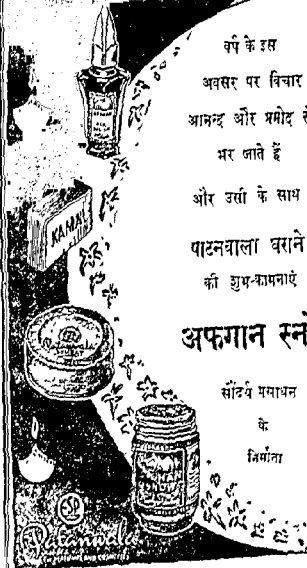
चॉकलेट का प्रभाव-
SATHES MILK CHOCOLATE
SATHES MILK CHOCOLATE
कुछ ही समय पहले
दोर मारकर रोनेवाला
चेहरा हँसीसे चमकने लगा।
यह है —
साठे चॉकलेटका जादू।
उत्कृष्ट, रुचिकर व
पौष्टिक मिठाई।
हर परिवार के लिए
अत्यंत आवश्यक!

कलकत्ता ▾ बम्बई ▾ न्यु दिल्ली ▾ मद्रास ▾ कानपूर ▾ गौहती

शुद्ध चीनी
शरीर की प्रथम आवश्यक्ता
दैनिक श्रम के लिए हमारे शरीर को शक्ति की जरूरत होती है। यह शक्ति चीनी से हमें बड़ी सुगमता से मिल सकती है। किंतु यदि चीनी शुद्ध न हो, तो यह हमारे लिए हानिकर हो सकती है। अवध शुगर मिल्स लि. की चीनी शत प्रति शत शुद्ध होती है। यही कारण है कि बरसों से लोग इसे ही पसंद करते आ रहे है।
मैनेजिंग एजेन्ट्स
कॉटन एजेन्ट्स लि.
इंडस्ट्री हाउस, चर्चगेट रिक्लेमेशन, बम्बई

मोहक
रुचिकर
तृप्ति-पूर्ण
आपके बनाए भोजन भी
इसी तरह के होंगे—
आप भी
वनस्दा
वनस्पति में पकाइए
Vanasda

रोमाञ्चपूर्ण कौशल
के प्स्टे न
दूसरों से मीलों आगे
क्यों न केप्स्टेन खरीदें
इसका मिश्रण अच्छा है
MEDIUM
CAPSTAN

दोहरी

शक्तिवाला

# मोबिलगैस इस्तेमाल कर

## अपने पैसे के बदले अधिक इंजन-शक्ति हासिल कीजिए

इंजीनियरों का कहना है कि कम से कम पाँच ऐसे प्रमुख कारण हैं जो आपके इंजन की शक्ति घटा सकते हैं। और यह प्रत्यक्ष है कि पेट्रोल में किसी एक ही तत्व (एडिटिव) को मिलाने से ये सभी कारण नहीं मिटाये जा सकते। आज ही दोहरी शक्तिवाले मोबिलगैस का इस्तेमाल शुरू कीजिए केवल यही एक ऐसा पेट्रोल है जिसमें मोबिल पावर कम्पाउण्ड शामिल है यह कम्पाउण्ड कई तत्वों (एडिटिव्ज) का एक ऐसा शक्तिशाली मिश्रण है जो आजतक किसी पेट्रोल में नहीं मिलाया गया।

दोहरी शक्तिवाला मोबिलगैस किसी दूसरे पेट्रोल की तुलना में आपके इंजन की अधिक खराबियाँ मिटाता है और आपके इंजन को अधिक शक्ति भी प्राप्त होती है। इस पेट्रोल का इस्तेमाल करके आप फ़ायदे में रहेंगे क्योंकि मोबिलगैस आपके पैसे का अधिक मूल्य अदा करता है!

स्टैण्डर्ड वैक्यूम ऑयल कम्पनी (कम्पनी के सदस्यों का दायित्व सीमित है)

हमारे
सभी शुभेच्छुओं को
दीपावली
के
हार्दिक अभिनंदन
दी
पंजाब नेशनल
बैंक लिमिटेड
( स्थापना )
१८९५
प्रधान कार्यालय : देहली
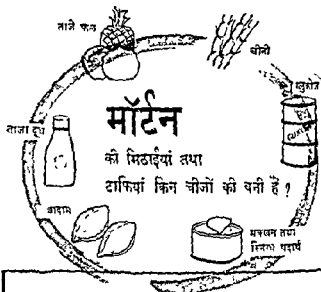
ताजे फल
चीनी
ग्लूकोज
मॉर्टन
ताजा दूध
की मिठाईयां तथा
टाफियां किन चीजों की बनी हैं ?
बादाम
मक्खन तथा
स्निग्ध पदार्थ
मार्टन की मिठाईयां न केवल रसपूर्ण और स्वादिष्ट ही हैं परन्तु उनमें पुष्टिकर और शक्ति-वर्धक खाद्य जैसे : दूध, मक्खन, ग्लूकोज और चीनी आदि मिश्रित हैं। आप और आपके बच्चे इन्हें बिना किसी संकोच के खा सकते हैं क्योंकि ये आपको आनन्द के साथ-साथ शक्ति भी प्रदान करती हैं।
मॉर्टन—केवल मिठाई ही नहीं, पर खाद्य भी है।
भारतीय उद्योग प्रदर्शनी, नई दिल्लीमें कृपया हमारे स्टाल नं० बी ७१ पर पधारिये। (२९ अक्टूबरसे १५ दिसम्बर सन् १९५५ तक)
सी० एण्ड ई० मार्टन (इण्डिया) लिमिटेड

अंग्रेजी सिखाया जाता है

देना बैंक
देवकरण नानजी बैंकिंग कं. लिमिटेड
स्थापना १९३८

हार्दिक दीपावली अभिनंदन
केवल "सिलोवर" स्टेनलेस स्टील के
वर्तन ही आपको
आपके रुपए का
पूरा मूल्य देते हैं।
SILOVER
ORIENTAL
निर्माता :
दी ओरियन्टल मेटल
प्रेसिंग वर्क्स लि०
१२१ घर्ली, बंबई १८.

मैं आँखें बंद किये हुए
कह सकती हूँ
ये मेरी स्वदाऊ वायल की
साड़ी की प्रशंसा कर रहे हैं

श्री रतनलाल जोशी द्वारा 'नवनीत प्रकाशन' लि०, ३४१, ताडदेव, बम्बई ७, के लिए प्रकाशित तथा एसोसियेटेड एडवर्टाइजर्स ऐंड प्रिंटर्स लि., ५०५, आर्थर रोड, बम्बई में मुद्रित

संचालक
श्रीगोपाल नेवटिया

प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

# नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]

सम्पादक
सत्यकाम जोशी

सहकारी
रमेश सिन्हा · ज्ञानचन्द

चित्र-शिल्प गोपालकृष्ण भोबे


## लेख-सूची


| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | नमस्कार | अग्निसूक्त | १ |
| २ | श्रीदेवी का क्रीडांगण | तिरिक्कलवण्णि जानक | २ |
| ३ | जय भारत-भारती-वट विशाल.. | कन्हैयालाल मुंशी | ४ |
| ४. | जाके आंगन नदी बहे... | क्षितिमोहन सेन | ८ |
| ५. | अंतर का नारायण | राधाकृष्णन् | ९ |
| ६ | मधुवर्षा | सुमित्रानंदन पंत | ९ |
| ७ | पादुकाभिषेक | राजगोपालाचारी | १० |
| ८. | आह्वान | रवीन्द्रनाथ | १४ |
| ९. | अजेयात्मा | नाजिम हिकमत | १५ |
| १० | धर्म-समाधि | रंगनाथ दिवाकर | १६ |
| ११. | शरह और इश्क | संत बुल्लेशाह | १८ |
| १२ | आनंद के विश्वकर्मा | उमाशंकर जोशी | १९ |
| १३. | जो धरती सो आसमान | 'बनफूल' | २३ |
| १४ | रोधन | मी० वा० मर्ढेकर | २३ |
| १५. | नूरा डोसा | कुँवरजीभाई मेहता | २५ |
| १६. | ...संसार की सर्वोच्च शक्तियाँ | अर्नाल्ड टायनबी | २८ |
| १७ | माता-भूमि : अमृतहृदया | वासुदेवशरण अग्रवाल | ३३ |
| १८. | प्रार्थनाओं की प्रार्थना | काका कालेलकर | ३५ |
| १९. | २०००-वें वर्ष में हमारी दुनिया | बर्ट्रेंड रसेल | ३८ |
| २०. | हमारे मौलवी साहब | राजेन्द्र प्रसाद | ४५ |
| २१. | अनुग्रह | हुसेन अहमद मदनी | ४७ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २२ | वायुवेग | ओमप्रकाश | ४९ |
| २३ | कुबेर का कोष | के. आर एन स्वामी | ५३ |
| २४ | कला अस्तित्व की भूख | नदलाल बोस | ५७ |
| २५ | बदहवासियाँ | 'जोश' मलीहाबादी | ५९ |
| २६ | जवाहरलाल नेहरू | धूर्जटिप्रसाद मुखर्जी | ६१ |
| २७ | आदमी की है हजार किस्में | अब्दुल हक | ६६ |
| २८ | शिशु-उत्पादन कारखाना | प्रासंगिक सामग्री से | ७० |
| २९ | सत्य-रूप | नरेन्द्र शर्मा | ७५ |
| ३० | विष वृक्ष का अमृत फल | एस के पोट्टेक्काट | ७७ |
| ३१ | घूसेबाजी द्वारा | रावी मार्सियानो | ८४ |
| ३२ | अनुभूति | .. .... | ८९ |
| ३३ | २० वीं सदी का कार्टून | बर्ट सिगर | ९१ |
| ३४ | नीद का दिया | र शौरिराजन् | ९४ |
| ३५ | ...अमेरिका की आत्मा का दर्शन | प्रफुल्लचद्र घोष | ९७ |
| ३६ | जेल में विवाह | यशपाल | १०५ |
| ३७ | सिक्के इतिहास बोलते हैं | परमेश्वरीलाल गुप्त | १०९ |
| ३८ | प्रतिबोध | ए एच मार्टीमर | ११७ |
| ३९ | श्यामरा भूत | विद्यानद श्रीवास्तव | १२४ |
| ४० | ससार (कहानी) | नरेन्द्रनाथ मित्र | १३२ |
| ४१ | एक दश (कहानी) | वि स खाडेकर | १३८ |
| ४२ | गायकें | आसफ अली | १४० |
| ४३ | भला-बुरा (कहानी) | सामर्सेट माम् | १४२ |
| ४४ | पार्थिव का सपना (उपन्यास) | 'कल्कि' | १४७ |


राधाकृष्ण

[चित्र राजपूत शैली, १७-वीं शती। सुप्रसिद्ध कलाकार श्री एन एच चोरडिया के सौजन्य से]


वार्षिक मूल्य । दस रुपये — नवनीत प्रकाशन लि० — प्रति अंक । एक रुपया

विशेष सस्करण : पन्द्रह रुपये — ३४१, तारदेव, बम्बई-७ — विशेष सस्करण । डेढ़ रुपया

# नवनीत

[हिन्दी डाइजेस्ट]

वर्ष ४ | अंक ११


## नमस्कार

नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो
नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः
यजाम देवान्यदि शक्रवाम
मा ज्यायसः शंसमावृक्षि देवाः

– ऋ अग्निसूक्त २३

—यज्ञ की इस पुण्य वेला में हम सबका स्वागत करते हैं—बड़ों को नमस्कार, बालकों को नमस्कार, तरुणों को नमस्कार, वृद्धों को नमस्कार। चराचर कल्याण के लिए हम सब का यजन करते हैं। देवो, हमें यज्ञ की सामर्थ्य दो, श्रेष्ठा के पूजाभिषेक के लिए हमारे मन में अक्षय श्रद्धा का उन्मेष करो।

# श्रीदेवी का क्रीडांगण

सिरिकालकण्णि जातक की कथा का संक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तर

ब्रह्मदत्त के राज्य-काल में बोधिसत्व ने वाराणसी में शुचि-परिवार के एक सेठ के यहाँ जन्म लिया। पंचशीलों की रक्षा करते हुए वे धर्माचरण में ही अपना जीवन व्यतीत करते थे।

कुछ कालोपरान्त, देवलोक में विरूपाक्ष महाराज की कन्या—कालकर्णी—और धृतराष्ट्र महाराज की 'सिरि' नाम की कन्या क्रीडा करने मर्त्यलोक के एक सरोवर पर पहुँचीं। किन्तु पहले कौन स्नान करे, इस बात को लेकर वहाँ दोनों में कलह हो गया।

पिताओं से भी जब निर्णय न हो पाया, तो दोनों शक्र के पास पहुँचीं। शक्र ने कहा—"वाराणसी में शुचि-परिवार सेठ है। उसके पास बिना उपभोग में आये हुए जो आसन और शय्या हैं, उन पर जो कोई बैठ और सो सके, उसी को सरोवर में पहले स्नान करने का अधिकार होगा।"

[ अभिषेक-स्नाता परम मुदिता गजलक्ष्मी ]

कालकर्णी नीले वस्त्र पहन, नील लेप लगा, नीलमणि के अलंकार पहन द्रुत गति से सेठ के प्रासाद के द्वार पर पहुँची और अपना परिचय देते हुए बोली—'मैं विरूपाक्ष महाराज की प्रचण्ड स्वभाव वाली, अपुण्या कन्या हूँ। क्रोधी, ईर्ष्यालु, कृतघ्न तथा कटु-भाषी व्यक्ति मुझे प्रिय हैं। देश-काल के अनुरूपों की अवहेलना करने-

लि, श्रेष्ठ पुरुषो से कलह करनेवाले, त्रो का अहित करनेवाले, पराजजीवी, राये श्रम का उपभोग करनेवाले व्यक्ति ो मे स्वामी मानती हूँ। (म)श्रेष्ठि, मेरे वरण को (स्वी)कार करो।"

बोधिसत्व ने सावज्ञा (क)हा–"अप्रिय-दर्शिनी, यह (आ)वास तेरे उपयुक्त नही। तू किसी दूसरे जनपद में जा।"

तब स्वर्ण-वर्णा सिरि "अनेक स्वर्णालकारो से सज्जित, स्मिति-स्वर्ण बिखेरती हुई पृथ्वी पर उतरी और बोधिसत्व को उसने अपना परिचय दिया–"मैं महाराज धृतराष्ट्र की कन्या, सिरि अथवा लक्ष्मी हूँ। मुझे अपने आवास में रहने की अनुमति दीजिये।"

रूपगुण-मुग्ध बोधिसत्व ने पूछा–"देवि, पहले यह कहो, तुम्हे किस आचरण के व्यक्तियो से अनुरक्ति है?"

अर्चना

[चित्र · नदलाल वसु]

लक्ष्मी ने कहा–"जो शीत, ग्रीष्म, वर्षा एव अनेकविध उपद्रवो में अपराजेय बना अपने कर्तव्य-कर्म में निरत रहता है, *जो अक्रोधी है, मित्रवान* है, त्यागी तथा शीलवान है–जो मृदुभाषी है, जिसकी वाणी विश्वसनीय है–उसी को मैं अपना प्रियपात्र समझती हूँ। किन्तु राजन्, जो अपने श्रम, बुद्धि एव मागल्य-भाव के सयोग द्वारा अपना भाग्य स्वय लिखते हैं और यश, सामर्थ्य एव श्री पाकर भी जो सग्रह नही करते, बल्कि सूर्य की तरह अहर्निश वितरण ही करते है, उनको पाकर तो मैं अपने को धन्य समझती हूँ।"

बोधिसत्व ने सिरि देवी का अभिनदन करते हुए कहा–"तो देवि, यह उपयोग में न आया *हुआ आसन तथा शय्या तुम्हारे ही* उपयोग के योग्य है।"

*

दो मित्र थे। एक आस्तिक, दूसरा नास्तिक। दोनो एक-दूसरे के ज्ञान, लगन और विश्वास के प्रशसक थे। एक दिन नास्तिक बोला—"मित्र! वास्तव में, तुम्हारी श्रद्धा स्तुत्य है। तुमने अपने विश्वास पर सब-कुछ न्योछावर कर दिया है। तुम्हारा त्याग महान् है।" आस्तिक ने उत्तर दिया—"*नही मित्र! त्याग की दृष्टि से तो तुम महान् हो। मैंने* तो केवल सासारिक सुखो का ही त्याग किया है; किन्तु तुमने तो ससार के स्वामी भगवान तक का त्याग कर दिया है!" —'वेदात-लहरी' से

*

★

वैदिक जीवन के स्वर्ण-काल में 'वसिष्ठ-कुल' वैदिक ऋषियों का विश्व-विश्रुत वंश था। उनके कुल से प्रसूत कतिपय श्लोक ऋग्वेद में मिलते हैं। आर्य-नरेश सुदास की सेनाओं को सुसंगठित कर विश्वामित्र के नेतृत्व में आगे बढ़नेवाली दस आर्य-अनार्य राजाओं की सेनाओं को वसिष्ठ ने ही परास्त किया था।

भृगुराज परशुराम के प्रचण्ड प्रताप से आर्य-संस्कृति शत्रु-रहित हो चुकी थी और आर्यों ने गंगा-यमुना के तट-प्रांतर पर अभिनव राज्य स्थापित कर लिये थे। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध हस्तिनापुर के भरतवंशियों का राज्य था। इस राज्य की छत्रच्छाया में सुरक्षित आर्य-धर्म पूर्ण प्रचार और प्रसार पा रहा था।

एक दिन की बात है। वसिष्ठ के पौत्र पराशर नौका द्वारा यमुना पार कर रहे थे। नाव चलानेवाली मत्स्य-कन्या सत्यवती बड़ी रूपवती थी। पराशर का मन मोहित हो गया। पराशर और सत्यवती के संयोग से एक अति कृष्णवर्ण बालक उत्पन्न हुआ। 'कृष्ण' उसका नाम रखा गया। यमुना के एक द्वीप में, आज के काल्पी शहर के निकट, जन्म होने के कारण लोक में इस बालक का दूसरा नाम 'द्वैपायन' विख्यात हुआ। बड़ा होने पर कृष्ण द्वैपायन पिता के ही पास रहने लगा।

इस प्रकार वसिष्ठों के बीच रहने से कृष्ण द्वैपायन को वसिष्ठ-कुल की सारी ज्ञान-परम्परा प्राप्त हुई—अपार मेधाशक्ति, अचूक अंतर्दृष्टि, वाक्पटुता और 'पूर्णता' के प्रति अदम्य महत्वाकांक्षा।

परन्तु आरम्भ में ही कृष्ण द्वैपायन ने ज्ञान-वैराग्य का साधना-पथ पकड़ा। परन्तु किसी विचलित पल में प्रतिपल उसे

'क' नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

कृष्ण द्वैपायन न वेदमन्त्रो का सफल संकलन-सम्पादन किया। आज हमें वेदमन्त्रो का जो रूप मिलते है, वे कृष्ण द्वैपायन की अनुकम्पा की ही देन हैं। उनकी इस महती सिद्धि से अनुगृहीत आर्य-सतति ने उन्हे 'वेदव्यास' कहा। मॉझी-कन्या सत्यवती का अति कृष्णकाय 'कृष्ण' आसेतु-हिमालय भरतखड में 'भगवान वेदव्यास' के नाम से वदित हुआ।

अब व्यास न वैदिक कर्मकाड को सुव्यवस्थित किया। स्वय भी एक बडा यज्ञ किया। नैमिषारण्य में विशाल विश्व-विद्यालय की स्थापना की। व्यास को अपने अनुष्ठान-आयोजन में जन्मजात तपस्वी पुत्र शुकदेव और वैशम्पायन-परिवार से अमूल्य सहयोग मिला। ज्ञान की अखड ज्योति से समस्त आर्यावर्त प्रकाशमान् हो गया। वैशम्पायन के शिष्य याज्ञवल्क्य न 'शुक्ल यजुर्वेद' की रचना की।

कालातर में वेदव्यास की माता सत्यवती हस्तिनापुर के राजा शातनु की परिणीता बनी। कुछ वर्षो में राजा मृत्यु को प्राप्त हुए। सत्यवती के सामने कुल-क्षय की समस्या खडी हो गयी। शातनु के एक पुत्र भीष्म तो प्रतिज्ञानुसार ब्रह्मचारी बने रहे और उसके अपने पुत्र विचित्रवीर्य के सतान नही हो पा रही थी। अत सत्यवती के अनुरोध से कुलप्रथानुसार व्यास ने विचित्रवीर्य की पत्नियों से नियोग किया। फलत धृतराष्ट्र और पाडु जन्मे और एक दासी से नीतिवान विदुर पैदा हुए।

कुल और जाति को जीवित रख कर ही व्यासजी न अपन कर्तव्य की इतिश्री नही मान ली। उन्होन समस्त आर्य-जाति की संस्कृति एव परम्पराओ को सुरक्षित रखने के लिए इतिहास और 'पुराण' की रचना की। इस प्रकार वेदव्यास विश्व के सर्व-प्रथम इतिहासकार हैं।

वास्तव में, वेदव्यास जगत के महान् समन्वय शिल्पी सिद्ध हुए। उनकी मानस-दृष्टि असीम थी। जीवन की सम्पूर्ण अभिव्यक्तियों का रहस्य उनके प्रज्ञाच-क्षुओ के समक्ष स्पष्ट हो गया था। समस्त मानवीय सीमाओ, दुर्बलताओ, विशेष-ताओ के अतराल में उनके अतर्यामी ने

तप

[चित्र निकोलस रोरिक के एक चित्र की सरल रेखानुकृति]

प्रवेश पा लिया था। इस प्रकार जीवन को एक विशाल साधना-क्षेत्र बनाकर उन्होंने सत्-असत् के पार अवस्थित उस ब्रह्मसत्ता की अनुभूति प्राप्त कर ली थी! किन्तु उनका आत्मसाक्षात्कार केवल निज तक ही सीमित रहनेवाला नहीं था। उन्होंने सारी आर्य-जाति के अभ्युत्थानार्थ जीवन-दर्शन का निरूपण किया, जिसे उन्होंने 'धर्म' की संज्ञा दी। सत्य, तप एवं शांति—इस धर्म के तीन पैर थे!

इसी समय वेदव्यास ने देखा कि, धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव अन्याय के मार्ग पर जा रहे हैं और आर्य-परम्परा की रक्षा करना अनिवार्य कार्य हो चला है। धर्म को पांडवों के पक्ष में देख व्यास ने उन्हें यथा-सम्भव सहायता दी। यदुकुलभूषण कृष्णचंद्र वेदव्यास के सहयोगी बने। वेदव्यास ने देखा कि, कृष्णचंद्र अपार शक्ति के ही नहीं, बुद्धि के भी अद्वितीय स्वामी हैं। राजनीति और कूटनीति की शतरंजी चालों में वे अजोड़ हैं। उनमें धर्म-रक्षा की असीम भावना है। अधर्म का विनाश करने को वे परम आतुर हैं!

इस प्रकार कृष्ण द्वैपायन (वेदव्यास) और कृष्ण वासुदेव (श्री कृष्णचंद्र) में गहरी मित्रता हो गयी। राजसूय-यज्ञ में वेदव्यास ने कृष्ण के सम्पर्क में रहकर, धर्मराज युधिष्ठिर को अद्वितीय महिमा मंडित चक्रवर्ती के पद पर आसीन किया। वेदव्यास ने कहा—"जहाँ श्रीकृष्ण हैं वहाँ धर्म है।" और, श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र में अर्जुन को अपना विराट् रूप दिखलाते हुए कहा—"हे अर्जुन! ऋषियों में वेदव्यास मैं हूँ!"

इस समय तक कौरव-पांडवों के सम्बन्ध बिगड़ गये थे। जुआ में पांडव हारे, वनवास गये। फिर और पाँच ग्राम का संदेश ले श्रीकृष्ण कौरव-सभा में दूत बने। परन्तु कौरवों का दुराग्रह 'महाभारत' का कारण बना।

[ कल्पतरु, लक्ष्मी और अमृतघट ]

इस अठारह दिन के विश्व विनाशी महायुद्ध में पांडवों की जीत हुई। पांडव भी राज्यभोग के उपरांत परीक्षित को सत्ता सौंप 'सतोपथ' की राह स्वर्गगामी हुए।

वेदव्यास के ज्ञानवृद्ध लोचनों के सम्मुख आर्यावर्त के विशाल मंच पर कठपुतलों के नृत्यों की भाँति संघटित सारी घटनाएँ साकार हो गयीं। अपने जन्म से लेकर प्रपौत्र परीक्षित की मृत्यु तक के ये अंतहीन,

सारस्य प्रसंग, सरल-सरसता-सिंचित शब्दों में उन्होंने लिपिबद्ध किये। परन्तु भरत-वंशियों की गौरव-गाथा के ब्याज से समस्त मानव जाति की महागाथा के रूप में 'महाभारत' का प्रणयन हुआ।

किन्तु अपनी समस्त सिद्धियों और ज्ञानपूर्ण अनासक्ति के बावजूद व्यासदेव परम मानवीय विभूति थे। नागयज्ञ के समय अपने पुत्र शुकदेव का देहांत होने पर वे ज्ञान के बाँध को स्थिर न रख सके—फूट-फूट कर रो पड़े। उनकी देखती आँखों सहस्र परिचितों का देहावसान हुआ था। भगवान श्रीकृष्ण भी नश्वर शरीर को छोड़ चले थे। यहाँ तक कि, उनका प्रपौत्र परीक्षित-जैसा रत्न भी काल-कवलित हो गया था।

जन्म मरण का अंत पास देख लेने के बाद, एक दिन वेदव्यास ने दिव्य-दृष्टि से देखा कि, उनके जीवन का लक्ष्य भी पूर्ण हो गया है। उन्होंने चाहा कि, देहत्याग कर दें। परन्तु उनके आराध्य शिव ने अस्वीकार किया और वरदान दिया कि, सनातन-सत्ता की शक्ति तुम्हें प्राप्त होगी।

शताब्दियाँ आयीं और चली गयीं। साम्राज्य सूर्य के समान उदय हुए और विलय हुए। अनेक रूपों में मनुष्य का दृष्टिकोण बदला। किन्तु मानव-स्वभाव की भाँति अपरिवर्तनीय 'महाभारत' मनुष्य के सार्वभौम अनुभव का दर्पण बनकर आज भी ज्यों-का-त्यों अजर-अमर है।

००० ००० ०००

जब १९५२ में, कालपी में मैंने वेदव्यास के स्मृति-भवन का शिलान्यास किया, तो मेरा मन आनंद से आन्दोलित था। मैं ठीक उसी स्थल के निकट खड़ा था, जहाँ बैठ कर भगवान वेदव्यास ने 'महाभारत' का प्रणयन किया था। पास ही खड़ा एक अति वृद्ध विशाल वट-वृक्ष हमारे समारम्भ को एकाग्रचित्त देख रहा था।

मैंने अश्रुपूरित लोचनों से श्रद्धानत होकर, उस पुण्यस्थल की धूल अपने मस्तक पर चढ़ायी।

★

स्वामी विवेकानंद की प्रेरणा से अनेक कर्मवीर भारतीय वेदांत के प्रचार के लिए अमेरिका जाते थे। एक दिन एक संन्यासी सिस्टर निवेदिता के पास आये तथा अमेरिका में वेदांत-प्रचार की प्रणालियों पर जिज्ञासा की। निवेदिता ने एक क्षण सोचा, फिर संन्यासी से एक चाकू देने की प्रार्थना की, जो उनके पास रखा हुआ था। संन्यासी ने फौरन धार वाले भाग को स्वयं पकड़ कर काठ वाला भाग निवेदिता की ओर कर दिया। "बिल्कुल ठीक!" सिस्टर निवेदिता बोलीं—"विदेश में कार्य करने की उचित शैली यही है। संकटों के सामने स्वयं रहो तथा सुरक्षित भाग दूसरों के लिए छोड़ दो।"

—स्वामी सबुद्धानंद

✱

# जाके आँगन नदी बहै....

रंग बिरंगे मोर को अपनी परिपूर्ण गरिमा में नाचते देख एक दिन एक नन्ही मैना अपनी माँ से रूठ गयी। बहुत मनाया माँ ने, तो सुबुक-सुबुक रोने लगी—"मेरे भी उस मोर-जैसे रंग-बिरंगे पंख लाओ, नहीं तो मैं चुग्गा नहीं खाऊँगी। इन कोयले-जैसे परों को लेकर मैं कैसे बाहर निकलूँ?" माँ ने नादान बेटी को स्नेह-स्नात वक्ष में दबाते हुए कहा—"कल तुम मेरे साथ चलो, तो मैं तुम्हें उस मोर के बालक की शिकायत सुनवा दूँ। वह भी अपनी माँ से ऐसे ही शिकायत करता है—मुझे तो बस उस मैना जैसी मीठी भाषा ला दो!" अपनी बात हम भूल जाते हैं। पराये का मोह बड़ा सताता है। शिवि बाबू ने यहाँ इस चिन्तन का बड़ा सुंदर चित्रण किया है!

*

महर्षि कश्यप के दो पत्नियाँ थीं— कद्रू और विनता। विनता चाहती थी, महासत्त्व-सन्तान! इसी से उसे एक से अधिक डिम्ब दिये गये। पर जब बहुत दिन बीत जाने पर भी बालक का जन्म नहीं हुआ, तो अधीर विनता ने एक डिम्ब फोड़ डाला। फलतः आधे ही शरीर का बालक निकला। यही था अरुण, जो सूर्य का सारथी बना। उसने माता से सक्रोध कहा—"तुम महासत्त्व-सन्तान तो चाहती हो; पर महाप्रतीक्षा नहीं कर सकती? अब शेष डिम्बों की प्रतीक्षा करना। उनसे महाभाग गरुड़ जन्मेंगे, जो तुम्हारे दासत्व का मोचन करेंगे।"

जन्म-मात्र से विराट् सन्तान की क्षुधा भी विराट् ही होती है। माता गरुड़ को जितना आहार देती, वह उसके लिए अपर्याप्त ही रहता। अन्ततः विवशा विनता ने कश्यप का आह्वान किया। कश्यप ने कहा—"बाहर के भाग्य से हमारे अभाव नहीं मिट सकते। जहाँ हम हैं, वहीं की भूमि ही हमारी अभावपूर्ण बननी चाहिए।"

खाद्य-समस्या के साथ-साथ भारत के संस्कृति-समस्या का भी समाधान यहीं है। आज भारत को सारे जगत के बीच खड़ा होना है। सभी देश अपनी-अपनी संस्कृति लेकर आये हैं। स्वाभाविक है कि भारत भी अपनी ही निजी संस्कृति लेकर वहाँ जाये। उधार से एक-दो दिन ही काम चल सकता है, सदैव नहीं। जिस घर की वह प्रति दिन पड़ोस में उधार माँगने जाती है, उस घर का सम्मान नहीं रहता। कबीर ने तो इस सम्बन्ध में अन्यतम ही कहा है—

> "कर बाहुबल आपनी,
> छोड़ बिरानी आस,
> जाके आँगन नदी बहै,
> सो क्यों मरे पियास!"

*

# अंतर का नारायण

अग्नि के प्रथम प्रचेता अथर्वन् का आख्यान भारतीय वाङ्मय का मानो प्राणग्रन्थ है। अग्नि के बिना उस काल का मानव पशु-पक्षियों तक से हीन था। ऐसे ही नैराश्य में डूबा अथर्वन् एक दिन नीरव हो बैठा—कीड़े मकोड़े से भी दयनीय इस देह को लेकर मैं क्या करूँ ? किन्तु यह अवसाद जड़ता उसके अंतर्यामी को कैसे सहन होती– "रे मर्त्य, आकाश जिसकी पीठ हो, पृथ्वी आधार हो, समुद्र योनि हो, वह दीन कैसे हो सकता है ? उठ ! अपने को प्राप्त कर !" मनुष्य के रक्त में यह वाणी सदैव अक्षुण्ण अखंड बनी रहेगी। प्रज्ञात्मा सर्वपल्ली ने यहाँ इसी महान् सत्य के दर्शन हमारे पाठकों को कराये हैं।

*

स्वर्ग में देवताओं ने वसंतोत्सव मनाया ा। विष्णु और लक्ष्मी भी क्रीडा-विनोद के स मधुमंच पर प्रतिष्ठित थे। देवांगनाओं ो नृत्य-माधुरी से सों दिशाएँ रसप्ला-त थी। सहसा विष्णु पने आसन से उठे ौर वहीं अंतर्धान ा गये। लक्ष्मी को ग-में भंग का यह संग बड़ा अखरा। त जब विष्णु वापस ाये, तो अमर्ष-कम्पित लक्ष्मी पूछे ना न रह सकी।

विष्णु अपनी मद-धुर वाणी में बोले–धरती पर मेरा एक क्त घोर संकट में आर्तनाद कर रहा ा। सुनकर मेरा मर्म विदीर्ण होने गा। मैं उसकी सहायता के लिए एक क्षण की भी देर नहीं करना चाहता था।"

लक्ष्मी अपनी ही ग्लानि और हीनता में मानो गड़-सी गयी। क्षमा निवेदन के साथ बोली–"प्रभो, करुणा के सिंधु, मैंने क्या अपराध किया था, जो ऐसे समय मुझे आपने अपने साथ नहीं लिया ? आपके प्रियजन की संताप-निवृत्ति में मैं भी कुछ सहयोग देती।"

विष्णु अपनी परम आह्लादिनी मुद्रा में मुस्कराये–"नहीं देवि, अत्यंत दूरस्थ वैकुंठ में बैठे रागरंग विह्वल नारायण के जाने से पूर्व ही, उसके स्वयं के भीतर का नारायण जाग उठा। अतः जब तक मैं पहुँचा, वह व्याधि-मुक्त हो चुका था।"

### मधुस्पर्श

गूँज उठा नीरव वन !
पतझर के सूनेपन में
सोया न रह मन जीवन !

शब्दहीन व्याकुल तन भीतर
मंजरि-रहित रसाल डालों पर,
स्वच्छ पवन के उर में सहसा
जाग उठा नव स्पंदन !

बार-बार, दिग्वार, निराला
एक परी मुस्करा कर जाता
रिक्त नाड़ियों में घन की
बरसें मधुज्वाला-चुंबन !

—सुमित्रानन्दन पंत

रामायण में पादुकाओं की महिमा अति अनुपम है। भरतजी की अनुनय-विनय पर भी जब रामचंद्रजी अयोध्या लौटने को राजी नहीं हुए, तो भरतजी ने बदले में पादुकाएँ ही माँगीं। राम ने कृपा कर पाँवरी दे दी और भरतजी ने उन्हें शीश पर धर लिया।

चौदह साल तक उन्हीं पादुकाओं के आज्ञानुसार भरतजी ने राज किया। सिंहासन पर तो पादुकाएँ ही अभिषिक्त थीं। उपर्युक्त प्रसंग को लेकर भारतीय भाषाओं में कई गीत, कथाएँ, नाटक, सिनेमा आदि रचे गये हैं। किन्तु इतना सब देख-सुनकर भी हम लोगों में कई ऐसे हैं, जिन्हें 'पादुकाओं' की महिमा ज्ञात नहीं होगी।

धान्य-लक्ष्मियाँ
[ चित्र : सुधीर खास्तगीर का एक काष्ठशिल्प ]

मेरे जीवन में एक बार एक ऐसी अद्भुत घटना घटी कि, पादुकाओं की महिमा बड़े विचित्र रूप से मेरे सम्मुख चरितार्थ हुई!

१९२१ में मैं और मेरे कुछ सहयोगी तिरुच्चेंगोडु के 'गांधी-आश्रम' में काम कर रहे थे। तिरुच्चेंगोडु के प्रदेश में वर्षाभाव के कारण बार-बार दुष्काल पड़ा करता है।

दुष्काल-पीड़ितों की सेवा आश्रम द्वारा ही होती थी। अनाज को अर्ध मूल्य में दिया जाता था। दुष्काल से पीड़ित प्रदेशों में मणियनूर गाँव की हालत सबसे शोचनीय थी। उस गाँव में सब-के-सब मोची ही थे।

सप्ताह में एक दिन मणियनूर में हाट लगती थी। आसपास के गाँवों से लोग वहीं क्रय-विक्रय करने आते थे। ऐसी-ऐसी जगहों को देखकर ही उस जमाने की सरकार ताड़ीखाने खोला करती थी। वर्षा के अभाव में तालाब-कुओं से पानी खींच दिन-रात खून-पसीना एक करके ग्रामीण फसल उगाते थे। किन्तु हाट में सरकार ताड़ीखानों के द्वारा ग्रामीणों की इस गाढ़ी कमाई का एक बड़ा हिस्सा हड़प जाती थी। हरिजनों में तो प्राय सभी इस पीने के मर्ज में मुब्तला थे। मणियनूर के मोची भी अपवाद नहीं थे। 'गांधी-आश्रम' के द्वारा जिन गाँवों में सेवा होती थी, उन

गाँवो के लोगो ने कसम खायी थी कि, वे कभी ताडी-शराब नही पियेंगे। मणियनूर की मोची जनता ने भी कसम खायी थी।

गुरुवार के दिन आश्रम में अनाज दिया जाता था। एक गुरुवार के दिन मणियनूर का मुनियन तथा और कुछ लोग मेरे सामने आकर खडे हो गये।

"यहाँ क्यों आये? अनाज की जगह पर जाओ।" मैंने कहा।

जी स्वामी! एक बात हो गयी है....।" मुनियन ने कहा।

"क्या बात है?" मैंने पूछा।

".... शपथ तोडकर ... इन्होंने कल रात खूब पी ली थी। अब... आप ही इनका न्याय करें।" उसने कहा।

"कितने आदमियो ने पी?"

"जी, सिर्फ दो आदमियो ने।"

"उनको यहाँ लाये हो?"

"जी। एक आया है और दूसरे की घरवाली आयी है।"

"उन लोगो ने कसूर कबूल कर लिया?"

"जी नही। यह कल रात पीकर आया था और अपनी घरवाली से झगड रहा था। मालिक, सारा गाँव जानता है। कबूल न करेगा कैसे?"

मैंने अपराधी की ओर देखा और पूछा—"तुम्हे कुछ कहना है?"

"मालिक, घरवाली के साथ झगड रहा था, यह सच है। पर सिर्फ झगडने की वजह से ही किसी को पिया हुआ समझना कहाँ का न्याय है? जो नही पीते वे झगडते नही क्या?..."

"देखो जी, सच-सच बताओ। कल तुम ताडीखाने गये थे कि, नही? अगर तुम्हारे गाँव में से एक ने भी पी है, तो सारे गाँव का अनाज बद कर दिया जायेगा।"

"जी नही मालिक, मैंने नही पी। मुनियन झूठ बोल रहा है।"

"मुनियन! इसका कहना ठीक है?" मैंने मुनियन से पूछा।

मुनियन ने डरते हुए कहा—"मालिक, इस बूढे से पूछ लीजियेगा।

राजाजी

[ चित्र: सुप्रसिद्ध व्यग्य चित्रकार श्री लक्ष्मण के एक रगीन चित्र की साभार अनुकृति ]

यह इसका बाप है और मेरा चाचा है।'

मैंने बूढ़े की ओर देखा–"सच-सच बता दो, तुम्हारे बेटे ने पी थी कि, नहीं?"

बूढ़ा एक घड़ी चुप रहा, फिर उसने जवाब दिया–

"कल रात यह अपनी घरवाली के साथ झगड़ रहा था।"

"मैं झगड़े के बारे में नहीं पूछता। कल तुम्हारे बेटे ने ताड़ी पी थी कि, नहीं?"

"जी नहीं, मालिक! नहीं पी थी।"

"मालिक, यह बूढ़ा भी झूठ बोल रहा है।" मुनियन ने गुस्से से कहा।

"खैर, मालिक! कसम खाने के लिए कहिये।" मुनियन ने फिर कहा।

सचाई और कसम . . और कसम भी किस तरह ली जाये? मैं सोचने लगा। मंदिर में जाने से क्या कोई फायदा होगा? देवता या पत्थर की मूर्ति के सामने जाकर बूढ़ा सच-सच कह देगा, इसका मुझे कतई भरोसा नहीं था।

अठारह साल की वकालत के अनुभव ने सत्य तथा प्रमाण पर से मेरा भरोसा उठा दिया था। झूठी गवाही बाद में चक्कर जिरह-बहस में झूठी साबित हुई, तो हुई, नहीं तो झूठ ही सच बन जाता है। सारी दुनिया की चार

प्रजापति बधुएँ
[ चित्र : श्री वेंद्र के एक चित्र की माल रेखानुकृति ]

जब ऐसी है, तो बूढ़े का क्या भरोसा? ऐसा कौन-सा सत्य है, जिससे ये लोग डरें!

सोचते-सोचते मेरी दृष्टि अपने पैर जूतों पर गयी। तुरत मैंने बूढ़े को पास बुलाया और कहा–"देखो जी, तुम लोगों का जीवन चमड़े पर ही निर्भर है। चमड़े के बिना तुम्हारा काम चल सकता है क्या?

"जी नहीं मालिक! चमड़ा न हो, तो हम सब मर जायें।"

"अच्छा, तो तुम लोगों को जीविका देनेवाला चमड़ा यहाँ है। उठाओ, इसे अपने हाथों पर!"

बूढ़े ने जूते उठा लिये।

'अब मैं जैसे कहूँ, वैसे ही बोलो?"

मेरे कहने के अनुसार वह बोलने लगा–"भगवान के सामने मैं कह रहा हूँ। . . मुझे जीविका देनेवाले इस चमड़े की मैं कसम खाता हूँ . . !"

तब मैंने पूछा—

"रात तुम्हारे बेटे ने पी थी कि, नहीं?"

"जी हाँ मालिक, उसने पी थी।" बूढ़ा काँप रहा था।

मैं स्तब्ध रह गया–कुछ देर तक अवाक्-अचेत-सा! इस दुनिया में कभी-कभी कितनी अद्भुत घटनाएँ घट जाया करती हैं! . .

कुछ देर ठहरकर मैंने

अपराधी से भी जूते उठाकर वहने को कहा। उसने भी जूते उठाकर कसूर कबूल कर लिया। अपराधी पर चार आने जुरमाना हुआ। उसने तुरत दे भी दिये।

उनके चले जाने के बाद मैं काफी देर तक अपलक दृष्टि से उन पुराने जूतों को देखता रहा। उस वर्णनातीत अनुभूति ने मेरे भीतर जूतों के प्रति एक अजीब आदर का भाव पैदा कर दिया था! जिन जूतों को हम हेय-नगण्य समझते हैं, वे ही क्या हजारो-लाखो का भरण-पोषण नहीं करते? इन कोटि-कोटि मनुष्यों के लिए ईश्वर, धर्म, दर्शन–सब ये जूते ही तो हैं! चमड़ा ही उनका नारायण है, चमड़ा ही उनकी *अन्नपूर्णा है, चमड़ा ही उनकी लक्ष्मी है!* जो भरण-पोषण करे, धारण करे, वही तो भगवान है! अत उस दिन से जूतों को पैरों में पहनने से पहले, मैं उस महापालक शक्ति को, जो जूतों के साथ है, सदैव प्रणाम कर लेता हूँ!

•

चक्रवर्ती भरत ऋषभ देव के पुत्र थे। ससार में रह कर भी और चक्रवर्ती बन कर भी भरत ससार की माया-ममता से निर्लिप्त नहीं थे। जल में कमलवत् था उनका जन-जीवन।

एक बार चक्रवर्ती भरत के जीवन में एक साथ तीन प्रिय प्रसग प्रस्तुत हुए–राजप्रासाद में पुत्ररत्न जन्मा, शस्त्रशाला में चक्ररत्न प्रकटा और भगवान ऋषभ देव को कैवल्य की प्राप्ति हुई। भरत के लिए तीनो ही प्रसग सुदर और मधुर थे।

भरत के सम्मुख प्रश्न यह था कि, सर्वप्रथम हर्षोत्सव किसका करे? पुत्र का, चक्र का या भगवान के कैवल्य का?

एक ओर भौतिक महत्ता का मधुर आकर्षण, दूसरी ओर आध्यात्मिकता की गरिमा! अपुत्री को पुत्र का मिलना और राजा को चक्ररत्न का मिलना–जिसके बल-प्रताप से वह चक्रवर्ती होगा, सम्राट् होगा–दोनों सौभाग्य-सूचक थे, सासारिक दृष्टिकोण से।

भरत अतर्मन की गहराई में उतर कर सोचते हैं—"पिता-पुत्र का नाता नया नहीं। आदि और अतहीन ससार में यह खेल बनता-बिगड़ता ही रहा है। चक्ररत्न मिला है, तो वह भी पुण्य-बल के प्रकर्ष से। पुण्य प्रबल है, तो वह आया है–जा नहीं सकता! परन्तु भगवान का कैवल्य-महोत्सव? वह तो महत्तम और उच्चतम आध्यात्म-भाव की पूजा है।" और, भरत पहले भगवान के कैवल्य-महोत्सव में ही सम्मिलित हुए।

—विजय मुनि

•

# आगमन

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

आमरा बेंधेछि काशेर गुच्छ,
आमरा गेंथेछि शेफालि माला,
नबीन धानेर मञ्जरि दिये
साजिये एनेछि डाला,
एशो गो शरद् लक्ष्मी तोमार
शुभ्र मेघेर रथे,
एशो निर्मल नील पथे,
एशो धौत श्यामल
आलो झलमल
वन गिरि पर्वत
एशो मुकुट परिया श्वेत शतदल
शीतल शिशिर ढाला...

—हमने कास-फूल के गुच्छे बाँधे हैं, हमने शेफालि की माला गूँथी है। नये धान की मजरी से हम डाली सजा कर लाये है। हे शरद्-लक्ष्मी, अपने शुभ्र मेघ के रथ पर बैठकर आओ। आओ, वन-गिरि-पर्वत, धूप और छाँह में कैसे झलमलाते हैं ! शीतल ओसकण से सजे श्वेत शतदल के मुकुट को पहन कर आओ !

# कर्म-समाधि

गीता के चौथे अध्याय के २४वें श्लोक— 'ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना'—में 'कर्म समाधि' के प्रयोग द्वारा गीताकार ने कर्मयोग को भी ज्ञान और भक्ति के समान अनुभूति के चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया है। यही तीनों मार्गों के मिलन की स्थिति है। इसी से मिलता-जुलता बौद्धों का 'महाविहार' है। रवीन्द्रनाथ ने ऐसी ही सिद्धि का नदी का उदाहरण देकर निरूपित किया है— "नदी अपने आसपास के स्थलों को सींचती चलती है किन्तु वह उनसे अलिप्त चलती ही जायगी—जब तक कि, समुद्र में अपनी पूर्णता न पा ले। हमारे कर्म की गति भी ऐसी ही है, अन्त में स्थिति प्राप्त करके ही वह भी सिद्धि मानती है—उसकी सारी समस्तुलता यहीं सार्थकता प्राप्त करती है।" इधर दर्शन मनीषा के मर्मज्ञ श्री रंगनाथजी दिवाकर ने भी 'कर्म समाधि' का बड़ा ही सरल-सहज एवं हृदयग्राही निरूपण किया है। 'नवनीत' के लिए विशेष रूप से प्रदत्त इस लेख को हम यहाँ साभार प्रकाशित करते हैं।

•

१२वीं सदी के कन्नड़ कवि रुद्र भट्ट ने अपने जगन्नाथ विजय काव्य में 'काव्य-समाधि' पद का प्रयोग किया है। वह कहता है कि, मैं काव्य समाधि द्वारा ईश्वर की भक्ति करना चाहता हूँ। यहाँ स्पष्टतया, कवि का अभिप्राय प्रभु चरण शरण-समर्पित काव्य रचना से है। ऐसी काव्य-सृष्टि स्वयं में अनुपम आराधना है और यह आत्मार्पण की इतनी गहन गम्भीर एवं सहज सरल क्रिया है कि, जहाँ तक रुद्र भट्ट का प्रश्न है, हम भलीभाँति 'समाधि' की संज्ञा दे सकते हैं और कह सकते हैं कि, यह समाधिस्थ कवि का मन 'प्रभु' में अंतर्लीन है। किन्तु काव्य समाधि की अभिव्यक्ति में भी कर्म समाधि के समान ही विरोधाभास तो है ही, क्योंकि काव्य-रचना भी (चाहे उसमें से स्पन्दन क्रिया का अति सूक्ष्म भौतिक रूप निकाल दें तब भी) निस्सन्देह बौद्धिक क्रिया से ही तो अनुप्राणित है।

इससे व्यक्ति के मन में यह विचार आता है कि केवल प्रशांत ध्यानावस्था, आत्म चिंतन अथवा मौन ही समाधि-मगन नहीं

है, वरन् सतत कर्म और बौद्धिक क्रिया की संगति भी वहाँ हो सकती है। इसका तो यह अर्थ निकला कि, ऐसी समाधि में, एक व्यक्ति विशेष की आत्मा विश्वात्मा के साथ तदाकार है—जब कि, उसकी शारीरिक और मानसिक चेतनाएँ इस अनुभूति से अनुप्राणित होकर कर्मनिरत रहती हैं कि, वे सर्वथा समर्पित हैं और एक समर्पित व्यक्ति ही उन्हें कर्मों के रूपों में चला रहा है।

उल्लेख है कि, सतत अभ्यास के द्वारा मुमुक्षु उस विशेष स्थिति को प्राप्त कर सकता है, जिसमें वह अपने ही कर्मों, विचारों और बौद्धिक क्रियाओं का निश्चल और तटस्थ द्रष्टा—आत्मसाक्षी—हो जाता है। इस स्थिति का यदि हम विश्लेषण करें, तो हमारे सामने स्पष्ट हो जाता है कि, इसमें व्यक्ति केवल अनासक्त द्रष्टा ही नहीं है, बल्कि यह कर्ता अथवा स्रष्टा भी है। आनंद के माध्यम से वह विश्वात्मा के साथ तदाकार भी है। कर्मयोगी के लिए यह आत्मसाक्षात्कार की सर्वोच्च स्थिति है।

ऐसी अवस्था में, कर्मयोग का अर्थ केवल आध्यात्मिक मार्ग ही नहीं रहता कि जिसपर चलकर भक्त निष्काम कर्म द्वारा 'पूर्ण' और 'परम' को प्राप्त करता है—बल्कि यह ऐसा मार्ग भी है, जिसका अंतिम अनुभव 'कर्म-समाधि' है। इस प्रकार के आध्यात्मिक स्तर की व्याख्या में ही श्रीकृष्ण ने अति स्पष्ट रूप में 'कर्म-समाधि' का प्रयोग किया है।

गीता का कथन है कि, अंतिम अवस्था या लक्ष्य प्राप्ति से पूर्व साधनावस्था में भी साधक विश्वात्मा के तादात्म्य का आनंद प्राप्त कर सकता है—अर्थात् आनंदानुभूति की उपलब्धि के हेतु कर्मयोगी के लिए यह आवश्यक नहीं है कि, वह कर्मरहित हो। उल्टे उसका तो यह प्रयत्न होना चाहिए कि, वह आत्मार्पण भाव से निष्काम कर्म करता रहे और सतत रूप से अपनी समस्त कर्म-संकुलता के बीच विश्वात्मा के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध बनाने की चेष्टा करता रहे।

गीता द्वारा कर्मयोग का यह निदर्शन अन्यत्र दुर्लभ और अनूठा है। यह वस्तुतः व्यक्ति के भीतर के महासमन्वय की चेष्टा है। संक्षेपतः 'कर्म-समाधि' में एक ऐसी आनंदानुभूति की कल्पना है, जिसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व की सारी रेखाएँ एक परिपूर्ण समन्वय सम्पन्न करती हैं। भौतिक, बौद्धिक और भावनात्मक क्रियाओं तथा भीतर के आत्मा के बीच जो संघर्ष-वैषम्य नजर आता है, उसका परिहार 'कर्म-समाधि' की इस कल्पना के भीतर मौजूद है।

अतः जब अर्जुन ने घोषित कर दिया कि उसका मोह नष्ट हो गया है और वह भगवद्-यत्नानुरूप कार्य करेगा, तो भले ही वह कुरुक्षेत्र के वीभत्स नर-संहार में प्रवृत्त हो रहा हो, उसे इस 'कर्म-समाधि' के परमानंद की प्राप्ति अवश्य हुई होगी, क्योंकि उसके भीतर बौद्धिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक सभी चेतनाओं का वैषम्य मिट गया था और इस प्रकार आत्मसाक्षी की तटस्थता बरतता हुआ वह चरम आध्यात्मिक स्तर पर सुस्थिर हो गया था!

★

# शरह और इश्क

संत बुल्लेशाह की एक मार्मिक सिंधी कविता का संक्षिप्त हिन्दी रूपांतर

इश्क शरह दे झगड़ा पय गया
मन दा भरम मटावां मैं,
सवाल शरा दे, जर रब इश्क दे,
हजरत आरव्य सुनावां मैं

–प्रेम और शरह (मुस्लिम आचरण-शास्त्र) का झगड़ा हो गया। मैं इनके भ्रम मिटाता हूँ और शरह के प्रश्न तथा प्रेम के उत्तर आपको कहता हूँ।

शरा कहे चल पास मुल्ला दे,
सिख ले अदब अदाबां नूं,
इश्क कहे इक हर्फ बतेरा,
ठप रख होर किताबां नूं

–शरह ने प्रेम से कहा–"मुल्ला के पास चल और कुछ सभ्यता की बातें सीख।" प्रेम ने कहा–"मेरे लिए एक ही शब्द (प्रियतम, ईश्वर) पर्याप्त है, अत पुस्तक को तुम बंद ही रखो।"

शरा कहे कर पंज अशनानां,
था लग अंदर पूजा दे,
इश्क कहे तेरी पूजा झूठी,
जे चित बैठों, दूजा दे,

–शरह ने कहा–"पाँच बार स्नान करने के पश्चात् मंदिर में जाया कर।" प्रेम ने उत्तर दिया–"यदि मंदिर में गये बिना पूजा नहीं हो सकती, तो तुम्हारी यह पूजा मिथ्या है।"

शरा कहे कुछ शर्म-हया कर,
बंद कर इस चमकारे नूं,
इश्क कहे यह घूंघट कैसा,
खुलन दे नजारे नूं

–शरह ने कहा–"बढ़-चढ़ कर बातें न बनाओ, कुछ शर्म करो।" प्रेम ने उत्तर दिया –"अरे नादान! शर्म के इस घूंघट को उठ जाने दे।"

शरा कहे, शाह मन्सूर नूं,
सूली उत्ते चाढ़्या सी
इश्क कहे तुसो चंगा कीता,
बूहे यार दे वाड़्या सी।"

–शरह ने कहा–"भूलो मत, हमने शाह मन्सूर तक को सूली पर चढ़ा दिया था।" प्रेम ने उत्तर दिया–"तुमने अच्छा किया–उसे 'प्रियतम' (भगवान) के द्वार में, प्रविष्ट करा दिया।"

★

आनंद ही एक ऐसी वस्तु है, जो आपके पास न होने पर भी आप दूसरों को बिना किसी असुविधा के दे सकते हैं।

—कारमेन सिल्वा

# आनंद के विश्वकर्मा

'आनंदाध्येव खल्विमानि भूतानि जायते' के अनुसार आनद से ही भूत मात्र की सृष्टि है। और, यह आनद क्या है ? उस निराकार 'पूर्ण' की साकार लीला ही तो है—'आनन्दरूपममृतम् यद् विभाति।' व्यक्ति—शिल्पी, कवि, गायक—की सृष्टि भी आनद की अभिव्यक्ति का ही आग्रह है। प्रस्तुत लेख में गुजराती वाङ्मय के रससिद्ध सर्जक उमाशंकरजी जोशी ने इस प्रसंग को बड़े मर्मस्पर्शी ढग से निरूपित किया है। चित्र में पूर्ण साज के साथ नटराज रामगोपाल के नृत्य की छवि झांकी है। चित्रकार हैं श्री टोपोलास्की!

★

हमारे पडोस की नन्ही-मुन्नी अपनी माँ से सेर-भर बाजरी माँगती है, या कभी दादाजी से टकरा गयी, तो उनसे दो आने ले लेती है। दादाजी यदि पूछ बैठे—"क्या करोगी बिटिया?" तो "काम है" कह कर वह बडी गभीरता के साथ वहाँ से खिसक जाती है।

गाँव के छोर पर कुम्हार सारा दिन मिट्टी को नया-नया रूप देता रहता है। "चाचा एक घडा दो न!" मुन्नी उससे कहती है। "क्या करोगी ?" के प्रश्न का उसके पास वही उत्तर है—"काम है। तुम दे दो न!" बूढा कुम्हार हँस कर उससे कहता है—"मै जानता हूँ तेरा काम, शैतान कहीं की!" और, एक अच्छी-सी गगरी उसे खोज देता है।

घर लौट कर मुन्नी एक तेज, नुकीले पत्थर से घडे में छेद करने बैठ जाती है। बूढे दादा अपने चश्मे के भीतर से यह दृश्य देख कर बोल पडते हैं—"क्या करने बैठी है मुन्नी ? देखो, अपनी बेटी के लक्षण! यह घडा अब पानी भरने के काम का तो न रहा!"

मुन्नी कुछ नहीं बोली। शाम को जब सब

लोग ब्यालू कर आनंद-विनोद में लगे थे—कुछ सोने की तैयारी कर रहे थे—तो मुन्नी अपने सिर पर वही घड़ा और उसमें एक जगमगाता दीपक रख कर गली में घूमती हुई दिखायी पड़ी। उसकी सब सहेलियाँ, कोकिला, इला, तरला, सरला, अमला, विमला वगैरह सब एक गोल चक्कर बना कर उसके साथ-साथ घूमने लगीं।

ooo ooo ooo

कल हमारी चिटिया के हृदय में नवागता शरद ऋतु के आकाश में शतदल कमल-से प्रस्फुटित चंद्रमा और उसके आसपास विमोहित-सी मँड़रानी तारावलियों को देख कर कुछ के कुछ निराले ही भाव उठे। उसका रोम-रोम आंदोलित हो उठा। उसकी परम उर्वर कल्पना ने मानना शुरू किया—यह ब्रह्मांड एक बड़े घड़े-जैसा ही तो है, चंद्रमा उस घड़े के बीच रखा

[ नृत्य समाधि ]

दीपक है और ये उडुगण उस प्रकाश-पुंजित घड़े के छिद्र! लेकिन यह घड़ा हिल क्यों रहा है? जरूर ही किसी ने इसे अपने सिर पर उठाया होगा!

दूसरे दिन तो उसने इस कल्पना को धरती पर ही साकार कर दिया। पड़ोस की सहेलियों से मंत्रणा कर उसने भी एक घट-ब्रह्मांड बनाया, उसे सिर पर रखा और आनंदमोहिनी आद्यशक्ति की भाँति आँगन में विचरने लगी।

वास्तव में, वह घड़ा पानी भरने के तो काम का न रहा, लेकिन मैं समझता हूँ कि, रोज-रोज पानी से भरने और खाली होने के नीरस क्रम से वह उकता भी गया था। अतः मुन्नी की कल्पना ने युग-युग से चली आ रही कुम्हार की तपस्या को आज अनायास ही सुफलवती कर दिया! वस्तुतः आज ही तो घड़े का तात्विक उपयोग करने वाला कोई प्राणी पैदा हुआ है! अभी तक तो सब लोग घड़ों में पानी भर-भर कर ही पीते थे, पर आज मिट्टी के उसी पात्र से एक दूसरा ही द्रव बह रहा था, जिसे हम 'आनंद' कहते हैं।

ooo ooo ooo

ऋतुओं की उग्रता से बचने के लिए ही मनुष्य घर बना कर रहने लगा है। पर आवश्यकता-पूर्ति से ही मानव के मन को परितोष मिल गया, इसे कौन मानेगा? स्वयं एक झोंपड़ी अथवा घरौंदे में रह कर उसने गाँव में एक ऐसी इमारत का भी निर्माण किया, जिसमें कोई नहीं बसता—सिवाय पत्थर की कुछ देहों के! पर शीत-ग्रीष्म-वर्षा से कभी विचलित न होनेवाली उन निर्जीव पाषाण-प्रतिमाओं के लिए इतनी बड़ी इमारत की क्या आवश्यकता? तर्क पुष्ट है, अकाट्य भी! पर मनुष्य

के भीतर जो आनद-बीज है, वह अस्फुट, निस्पद कैसे रह सकता है ? सृष्टि की मूल चेतना कब तक अचेतन पडी रहे और जब कि, जीव आनदकद है, तो कद से अकुर क्यों न फूटे—वह पल्लवित-पुष्पित क्यों न हो ?

अत मनुष्य जब अपने लिए घर बनाते-बनाते थक गया, तो आनद की उर्मियो ने उसे आदोलित किया और उसने आनद-स्वरूप के लिए मदिर बनाया। मदिर क्या, यो कहिये कि, सेतु बनाये—वैयक्तिक आत्मा की आनद-तरग को विश्वात्मा के आनद-उदधि से मिलाने के सेतु।

भारत में एक ओर, विश्व की सुदरतम इमारत है, जिसमे किसी का वास नही। मुमताज भले ही सम्राट् की हृदय-साम्राज्ञी थी, पर जीते-जी वह इस भव्य इमारत में न रही। वस्तुत ताजमहल-जैसी अद्भुत रचना किसी पार्थिव-सजीव सुदरी के निवास के लिए नही बनायी गयी। प्रेम-भावना को अमरत्व देने के लिए ही उसका निर्माण हुआ था। सृजन की सारी चेतनाएँ आनद से जन्मती है और आनद के भीतर ही वे अपना पर्यवसान ढूँढती है। शाहजहाँ के प्रेम ने ताज में अपना पर्यवसान ढूँढा था।

अरब के लोगो को अपने चारों ओर रेगिस्तान-ही-रेगिस्तान दिखायी देता है। अचानक एक आनद-मुहूर्त में, क्षितिज के उस ओर आकाश में चाहे मृग-मरीचिका की चित्र-सृष्टि में ही एक भव्य इमारत-सी उन्होंने देखी होगी और उसका सौंदर्य-वैभव देख कर उन्हे लगा होगा कि, यही तो खुदा का घर है। चलो, हम भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार खुदा के लिए कुछ ऐसे ही सुदर घर का निर्माण करे।

००० ००० ०००

ये दो पैर हमें मिले है। इनका अच्छा-खासा उपयोग भी है। इस साढे तीन मन तक की काया को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाने को ये ही तो वाहन है। लेकिन उस नन्हे मुन्ने को तो पूछिये। शाम हो गयी है, माँ अभी तक कैसे नही आयी ? हाँ, गली के किनारे पर वह हरी साडी दिखायी दी। वह दौडने को तैयार हुआ ही था, पर यह क्या ? वह तो रूपा मौसी है। वह फिर टकटकी लगा कर देखने लगा। गली के कोने पर उसकी आँखें कडा पहरा

वधू प्रवेश ( श्वशुरगृह में )
[ चित्र : श्री के अनिवारुद्ध ]

दे रही है। अँधेरा होने आया, पर अभी तक माँ क्यों नहीं आयी? सहसा उसके चिंतित लोचन खिल गये। दौड़ कर माँ से लिपटने के बजाय वह जहाँ खड़ा था, वहीं आनंदातिरेक से नाचने लगा।

तो, पैर का उपयोग शरीर को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना मात्र ही नहीं है। इसकी उस बालक को भी खबर होनी चाहिए। नृत्यकार उदयशंकर को तो है ही। उदयशंकर का नृत्य देखने एक बार हमारे कुँवर चाचा गये थे। बराबर डेढ़ घंटे धैर्यपूर्वक मौन बैठे रहे, परन्तु अंत में उनसे नहीं रहा गया। बोल पड़े—"इस आदमी ने इतनी शक्ति यूँ ही नष्ट कर दी; वरना इतनी ताकत से तो आराम से चार कोस चला जा सकता था।"

लेकिन पैर केवल चलने के लिए ही तो नहीं मिले हैं। नृत्यकार रंगमंच के इस कोने से उस कोने तक जाता है और इस आने-जाने में वह प्रत्यक्षतः कुछ भी दूरी नहीं मापता है। लेकिन एक मानव और दूसरे मानव के बीच जो अमाप दूरी है, अंतर है, वह इस नृत्य से कितना कम हो गया—क्या यह सत्य हमारी आँखें नहीं देखतीं? वैयक्तिक, जातीय अथवा देश-कालीय सारी सीमाएँ यहाँ क्षय-क्षीण हो गयी हैं और आनंद की एक अदम्य अखंड लहर सबके हृदय-देश में समान रूप से बह रही है—समरसता के इस स्तर पर मानवीय विभक्तियाँ कैसी तिरोहित हो गयीं, देखते ही बनता है!

उपयोग तथा आनंद के बीच की यह सीमारेखा अमिट है। उपयोग की शर्त जैसे ही पूरी हुई कि, आदि-मानव का अंतर्यामी कला के प्याले में आनंदामृत पीने के लिए आतुर हो उठा। तभी से शिल्प-सृष्टि का प्रत्येक बिंदु, चित्राकृतियों की प्रत्येक रेखा आकाशचुम्बी घोष में यह कह रही है कि, सचमुच यह मनुष्य आनंद का उत्तराधिकारी है, यह आनंदस्वरूप है!

★

मिस्र के काहिरा शहर में एक बार स्वामी विवेकानंद रास्ता भूल गये और भटकते-भटकते वेश्याओं के गंदे मोहल्ले में जा निकले। दुर्योग यों रहा कि, वेश्याओं ने ग्राहक समझ कर उनका भी आह्वान किया। स्वामीजी निस्संकोच उनके पास गये। किन्तु उन तक पहुँचते पहुँचते उनके अंतर्यामी की करुणा आँखों से टपकने लगी थी। रुद्ध कंठ से अपने साथियों को सम्बोधित करके स्वामीजी बोले—"ये ईश्वर की हतभाग्य संतानें हैं। शैतान की उपासना में भगवान को भूल गयी हैं।"

करुणा-विह्वल स्वामीजी के इस दिव्य रूप को देख कर वेश्याएँ भी फूट-फूट कर रोने लगीं। एक सप्ताह बाद ही उस मोहल्ले की वेश्याओं ने अपनी समस्त सम्पत्ति लगा कर उस गंदी गली को एक सुंदर मंदिर में परिणत कर दिया और शीघ्र ही वहाँ एक पार्क, एक मठ और एक महिलाश्रम भी निर्मित हो गया! ★ —श्रीमती बेन्ज़र ('आत्मकथा' में)

श्री 'बनफूल' की एक अन्योक्ति का सचित्र हिन्दी रूपांतर

★

मीलो तक अलसाया हुआ एक सूखा खेत। उसके ठीक बीच निरीह प्रहरी के समान, अपनी ही प्रभुता का भार उठाये उस सम्पूर्ण निर्जनता पर शासन करता खड़ा हुआ था–एक ताड़ का पेड़। कब से? किसे मालूम!

उक्त ताड़ द्वारा उस निर्जन शून्यता को मानो एक अव्यक्त महत्ता मिलती थी और वह शून्यता भी उस ताड़ के पेड़ को मानो आँचल में छुपाये, क्षितिज तक सुदूर फैली उस धरती की रिक्तता भरती थी।

उसी पेड़ के नीचे, ठीक उसकी जड़ों में ही, एक अकिंचन कवड़ भी रहता था। वह वहाँ पर क्यों और कब आया, कोई नहीं जानता। उसके आसपास हर साल हरी हरी दूबें उगती। ककड़ का परम जिज्ञासु मन उनसे भलीभाँति परिचित था। उसे याद था कि, आषाढ़ की बूंदों से वह घास उगती खिलती है और वैशाख के आतप से निष्प्राण हो जाती है। युग-युगांतर से वह जन्म और मृत्यु, उत्थान और पतन के इस अविरल चक्र की लीला देखता चला आ रहा था। सूखी जड़ों से हरी दूबें निकलती हैं, सूख जाती हैं और फिर निकल आती हैं।

इस अनुभूति को लेकर उसका चिंतन

### राधन

त्यज गर्वोन्धि गगन विहारी
शुभाशुभावह स्फिटे किनारा,
असहिल जये तिये रहा तू
हा इथला मज पुरे दवारा।

–धरित्री की इस जन-गाथा में स्वयं आकाश भी आकर एकाकार हो गया। शुभाशुभ की सारी विभेद-सीमाएं मिट गयीं। इसलिए हे स्वर्गवासी, तुम जहाँ हो, वहीं रहो– हमें तो इस पृथ्वी के छोटे-छोटे निर्झर प्रिय हैं। भला तुम्हारी स्वर्गंगा लेकर हम क्या करेंगे? –सी था भर्तृहर

शील मन सदैव उलझा करता—छोटे-से मन में विराट् प्रश्न आते और सारी लघुता को झकझोर देते। और इस तरंगायित अवस्था में चेतना पूछ बैठती—क्या इस अनंत-अपार के पार भी कुछ है? जन्म-मरण के सिवाय और भी कोई प्रतीति है?

एक दिन मकड़ ने ध्यान लगाकर ऊपर आसमान की ओर देखा और अपलक देखता रहा— उस प्रलम्ब-स्थिर खड़े ताड़ के पेड़ को! कितना महान् है यह—विराट्! अनादि काल से तपस्वी की तरह अचल खड़ा यह अजेय उर्ध्वद्रष्टा व्यक्ति अवश्य ही सर्वज्ञाता है—सृष्टि के सारे रहस्यों का द्रष्टा है!

श्रद्धा से उसका सिर झुक गया। मन-ही-मन नमस्कार करते हुए वह मकड़ विनीत भाव से बोला — "महानुभाव!" ताड़ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

मकड़ था तो छोटा, परन्तु अपनी धुन का एक ही था। अपनी क्षीण आवाज आखिर उसने अखंड नीरवता के पार ताड़ के कान तक पहुँचा ही दी।

"क्या बात है? कौन हो तुम?" ताड़ ने विचलित स्वर में कहा।

"देव! साधारण मकड़ हूँ मैं। आपके चरणों में लेटा एक जड़ रजकण! हे महान्! अपने ज्ञानसिंधु की एक बूंद दया कर मुझे भी तो दीजिये!"

"कैसा ज्ञान, बंधु?" ताड़ ने काफी उद्विग्न होकर पूछा।

"सृष्टि का ज्ञान! इतने ऊँचे चढ़कर आपने जो देखा— जो विश्व-दर्शन किया—उसकी एक झाँकी मुझे भी दिखाइये!"

"क्या देखा मैंने?"

"तो आप इस प्रकार स्थितप्रज्ञ-से खड़े होकर अंतरिक्ष में क्या देखा करते हैं?"

"यही सूरज, चाँद और तारे! वे उगते हैं, अस्त होते हैं!"

"फिर?"

"फिर उगते हैं, फिर अस्त होते हैं?"

"और यही धरती पर मैं भी देखता हूँ!"

"अच्छा? धरती पर भी ऐसा होता है?"

★

बचपन में मेरे दिल में एक अर्से से एक राज छिपा रहता था और वह यह कि, मेरे कोई भाई या बहन नहीं है जब कि, और बच्चों के है। जब मुझे मालूम हुआ कि, मेरे भाई या बहन होनेवाली है, तो मेरी खुशी का पार न रहा। मुझे याद है कि, उस वक्त बरामदे में बैठा-बैठा कितनी उत्सुकता से इस बात की राह देख रहा था। इतने में एक डाक्टर ने आकर मुझे बहन होने की खबर दी और कहा—शायद मजाक में—कि, तुमको खुश होना चाहिए, भाई नहीं हुआ, जो तुम्हारी जायदाद में हिस्सा बँटा लेता। यह बात मुझे बहुत चुभी और मुझे गुस्सा भी आ गया—इस खयाल पर कि, कोई मुझे ऐसा कमीना खयाल रखनेवाला समझे। —जवाहरलाल नेहरू ('मेरी कहानी' में)

★
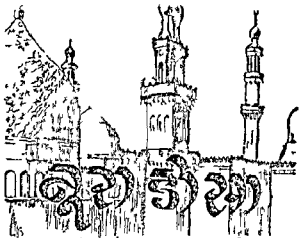
सफी सन्त शिरोमणि अबू सईद शिष्यों के आग्रह से एक दिन तीर्थयात्रा के लिए निकले। शहर से बाहर निकले ही थे कि, एक बनिया मिला, जो गधे पर माल लाद बेचने जा रहा था। हजरत सईद ने उसे रोका और उसकी परिक्रमा करने लगे। फिर आश्चर्य अवाक् शिष्यों को प्रबोधन देते हुए बोले—'यह बनिया काबा है। इसकी परिक्रमा करो। इसने कभी कम नहीं तोला। किसी को बुरा माल न दिया। खाने भर का मुनाफा कमाया, बाकी को हराम समझा!' सूरत शहर में भी एक ऐसा ही *काबा'* है, जिसे आबाल-वृद्ध 'नूरा डोसा' के नाम से जानते हैं। अगर सारे देश में ऐसे ही १०० 'नूरा डोसा' हो जायें तो रामराज्य वापस चला आये। सुप्रसिद्ध समाजसेवी कुंवरजीभाई मेहता द्वारा लिखित इस पुण्य पुरुष की जीवनचर्या की एक झाँकी यहाँ देखिये।

★

सूरत शहर और जिले में शायद ही कोई ऐसा आबाल-वृद्ध, नर नारी हो, जो 'नूरा डोसा' के नाम से परिचित न हो। प्रत्येक प्रकार के व्यापार में उन्होंने कीर्ति लब्ध सफलता प्राप्त की है—ऐसी सफलता कि, आज के इस ऐन्द्रजालिक युग में भी उनकी प्रामाणिकता, उनकी सत्यनिष्ठा 'ऋषिवाक्य' समझी जाती है। लड़ाई के जमाने में जब चारों ओर नफाखोरी और काले बाजार का बोलबाला था, 'नूर भाई' ने अपनी दूकान पर कम-से-कम मुनाफे पर लोगों को भरसक माल देने की कोशिश की। जिस किसी वस्तु की कमी वे बाजार में देखते और जिसका

'नूरा डोसा'
[चित्र एक पुराने फोटो के आधार पर]

दाम दूसरे व्यापारी अनाप-शनाप लेने लगते, उसी वस्तु को 'नूर' भाई—जहाँ-कहीं वह उपलब्ध होती, वहीं से वैगनों या गाड़ियों से मँगा कर अधिक-से-अधिक परिमाण में—केवल एक या दो रुपया सैंकड़ा कमीशन पर बेचते। खुदरा माल पर भी वे बहुत ही कम मुनाफा लेते रहे हैं। जब कि, स्वयं सरकार ने दस-से-बीस प्रतिशत लाभ लेने की व्यापारियों को छूट दे रखी थी, तब भी 'नूर' भाई वहीं एक या दो प्रतिशत लाभ पर अपना व्यापार चलाते थे। उनका ध्येय, मुनाफाखोरी से धन कमा कर संग्रह करना नहीं, बल्कि अपने खर्च के लिए कम-से-कम लाभ पर माल बेच कर जनहित के रूप में 'अल्लाह की इबादत' करना है।

उनका वैयक्तिक जीवन भी वस्तुतः परम सरलता एवं आत्मनिग्रह का प्रतीक है। साल में दो कुर्ते और पाजामे उनके परिग्रह के लिए बस है। दुकान के ऊपर ही वे रहते हैं और सवेरे आठ बजते ही, आज भी यंत्र की भाँति, स्वयं अपने हाथ से दुकान खोलते हैं। तब से रात के नौ बजे तक, जब स्वयं अपने हाथ से वे दुकान न बढ़ा लें, अपने आसन से हटने तक नहीं।

दुकान को इबादतखाना और जिंदगी को सच्चा जागरूक पुजारी मानने का उनका संकल्प इतना दृढ़ है कि, भोजन के लिए भी वे ऊपर दस-पंद्रह मिनिट तक के लिए नहीं जाते। ऊपर से ही रस्सी लटका कर दोपहर में उनका खाना गद्दी में भेज दिया जाता है और वहीं काम करते-करते ही वे उस महावैश्वानर की तुष्टि कर देते हैं, जो मनुष्य को हजार नखरों और प्रपंचों में नचाया करता है और जिसने 'पाकशास्त्र' के नाम से एक विद्या ही पैदा कर दी है।

[ कुंवरजीभाई मेहता ]

बारह से तेरह घंटे तक लगातार एक ही स्थान पर बैठ कर ईश्वरार्पण-बुद्धि से काम करना, गीता की भाषा में तो परम योग ही है, लेकिन इस योग की सबसे बड़ी खूबी यह है कि, 'नूर' भाई को इस साधना का अहसास तक नहीं है। वार-त्योहार, यहाँ तक कि, लड़के-लड़कियों की शादी के दिन भी वे अपने काम पर गैरहाजिर नहीं रहते।

१२ वर्ष की आयु से वे बराबर काम कर रहे हैं और आज उनकी अवस्था ९४ वर्ष की है, लेकिन इस लम्बे अर्से में उन्होंने एक दिन की भी छुट्टी नहीं ली—शरीर और मन का यह तादात्म्य तो बड़े-बड़े अध्यात्म-साधकों में भी दुर्लभ होता है।

बारह वर्ष की अवस्था में उनको उनके पिता ने एक-दो हजार रुपया लगा कर

कटलरी की एक छोटी-सी दूकान खुलवा दी थी। दूकान का भार उन पर सुपुर्द करते समय उनके पिता ने कहा था–"बेटा, अपने व्यापार में प्रामाणिकता से ही काम लेना। सजग रहना कि, हराम का एक भी पैसा कभी घर में न आने पाये।' यही उनकी सारी शिक्षा दीक्षा अथवा व्यापार-शास्त्र का गुरुमंत्र था। इसी नींव पर अपनी अचल निष्ठा एवं तपश्चर्या से उन्होंने शाह-सौदागरी की जो भव्य मंजिल तय की, वह आज के भारत में तो शायद ही कहीं मिले।

पाठशाला में तो उन्होंने केवल सौ तक की गिनती और बारहखड़ी लिखना भर ही सीखा था। लेकिन केवल अपनी बुद्धि, लगन, परिश्रम एवं सद्गुणों के बल पर आज वे नमक-तेल से लेकर पेनिसिलिन तक की जिंसों के व्यापार-सम्राट् बने हुए हैं। भाँति-भाँति की वस्तुओं के व्यापार में पड़ने का कारण भी उनकी वही सेवा-वृत्ति है। उनका एकमात्र उद्देश्य जनता को कम-से-कम मूल्य में सभी वस्तुएँ उपलब्ध कराने का है। सूरत में जब पक्का सेर हुआ, तब वहाँ के व्यापारियों ने रतल के तौल से ही सौदा बेचने का निश्चय किया, क्योंकि पक्के एक सेर में और दो रतल में जो वजन में अंतर रहता है, वह उनको बच जाता था। 'नूरा डोसा' को इसमें अनीति की गंध आयी और उन्होंने समस्त व्यापारी-समाज के विरोध के बावजूद अपने यहाँ पक्के सेर से ही सब चीजें तौल कर बेचनी शुरू कीं। अंततः पराजित होकर दूसरे व्यापारियों को भी अपनी यह अपवित्र हठ छोड़ देनी पड़ी।

नन्नू भाई नूरमहम्मद के यहाँ जात-पांत या धर्म का कोई भेदभाव नहीं–मनुष्य मात्र का वहाँ एक स्पष्ट निश्चित भाव है–न घट न बढ़। हिन्दू-मुस्लिम-पारसी, बच्चा-बूढ़ा–सभी को एक ही काँटे में वहाँ तौला जाता है। ग्राहक को नारायण मानकर उसकी निष्ठामयी सेवा ही नन्नू भाई का ईमान है—धर्म है। प्रामाणिकता तथा ईमानदारी से अधिक वे और किसी धर्म को महत्व नहीं देते। संक्षेपतः परोक्ष धर्म को ही सर्वस्व मानकर वे 'अपरोक्ष' की सिद्धि में तल्लीन हैं। 'नूरा डोसा' की दूकान क्या है, वस्तुतः नौसिखिए व्यापारियों के लिए देश का सबसे विश्वसनीय कालेज है।

मेरा तो यह विश्वास है कि, वहाँ चार पाँच वर्ष काम करने के बाद कोई भी लगन वाला व्यक्ति निश्चित रूप से सफल व्यापारी बन सकता है। दृष्टांत के द्वारा स्पष्ट करते हुए कह दूँ कि, यह दूकान ऐसी अखंड ज्योति है, जिससे सैकड़ों प्रेरणा-दीप प्रदीप्त किये जा सकते हैं–ऐसे दीप, जो स्वयं तो कीर्ति-दीप्त होंगे ही, साथ ही उनसे इस देश की भूमि भी ज्योतिर्मयी हो जायेगी।

★

अंधा वह नहीं, जिसकी आँख फूट गयी है। अंधा वह है, जो अपने दोष को ढँकने का प्रयास करता है। ★

—महात्मा गांधी

# आज के संसार की सर्वोच्च शक्तियाँ

अर्नोल्ड टायन्बी के एक लेख का संक्षिप्त हिन्दी रूपांतर

★

पिछले महायुद्ध में चर्चिल-रूजवेल्ट-स्तालिन के बीच इस प्रश्न को लेकर काफी वादविवाद हुआ कि, फ्रांस को तीन बड़ों की श्रेणी में माना जाये या नहीं? स्तालिन ने बहुत दिनों तक इस प्रश्न पर विचार करने से ही इनकार कर दिया। उसके मत से किसी भी राष्ट्र का महत्व उसकी सैनिक शक्ति पर निर्भर है।

राजपुरुषों के वर्गीकरण में टेलीरेंड बड़ा सिद्धहस्त था। किसी राजनीतिज्ञ को भोज में जब वह कहता—"हुजूर, यह गोश्त इतना अच्छा तो नहीं है, लेकिन आप थोड़ा-सा और लीजिये"—तो इसका अर्थ स्पष्ट था कि, वह उसे सर्वोपरि सम्मान दे रहा है। जिसे वह पूछता—'थोड़ा-सा गोश्त और लेंगे?" तो वह मध्यम दर्जे का समझा जाता और जिसे वह केवल इतना ही पूछता—"गोश्त?" तो उसका दर्जा सबसे निकृष्ट माना जाता। लेकिन टेलीरेंड की देखा-देखी दूसरा कोई मेजमान इस प्रकार का व्यवहार अपने सम्मान्य अतिथियों से करे, तो मुश्किल में पड़ जायेगा!

संसार के विभिन्न राष्ट्रों का वर्गीकरण, वास्तव में, इतना आसान नहीं। क्षेत्रफल के हिसाब से देखा जाये, तो रूस ही सर्वोपरि है, क्योंकि उसके राज्य का विस्तार

८२,४२,००० वर्ग मील है। दूसरे स्थान के लिए तीन राष्ट्र एक-दूसरे के प्रतियोगी होंगे–चीन, कनाडा और फ्रांस। पेकिंग अपने चीनी राज्य का क्षेत्रफल ४० लाख वर्ग मील से ऊपर बतायेगा, लेकिन उसके प्रतिद्वंद्वी इसे कभी मानने को राजी नहीं होंगे; क्योंकि इसमें फार्मोसा का राज्य भी अंतर्गत है। फार्मोसा को यदि निकाल दिया जाये, तो चीन से कनाडा बाजी मार लेगा। कनाडा का क्षेत्र-विस्तार ३७,००,००० वर्ग मील है। फ्रांस यदि अपने उपनिवेशों की गणना न करे, तो उसका अपना क्षेत्रफल इतना छोटा है कि, उसे संसार के राष्ट्रों में सत्ताइसवाँ स्थान मिलेगा–थाइलैंड, बर्मा और अफगानिस्तान से भी पीछे। लेकिन यदि 'फ्रेंच यूनियन' का क्षेत्रफल भी उसके साथ जोड़ दिया जाये, तो उसका दर्जा दूसरा होगा। तब उसके राज्य का विस्तार ७० लाख वर्ग मील होगा।

इस हिसाब से संयुक्त राज्य अमेरिका का (जिसमें प्युर्टो रिको, अलास्का और प्रशांत-द्वीप-समूह भी सम्मिलित हैं) पाँचवा स्थान होगा–ब्राजील से कुछ ही आगे। ग्रेट ब्रिटेन अपने उपनिवेश एवं अधीन राज्यों के सहित आस्ट्रेलिया के पीछे, लेकिन भारत, अर्जेंटाइना और सौदी अरबिया से जरा-ही आगे, सातवें नम्बर में आयेगा। कांगो के कारण बेलजियम का स्थान ग्यारहवाँ होगा। सबके अंत में होंगे, लेबनान (३,५०० वर्ग मील), कुवैत (२,००० वर्ग मील) और बहरिन (२०० वर्ग मील)।

लेकिन बहुत-से लोगों को यह वर्गीकरण उचित नहीं लगेगा। उदाहरण के लिए ८३० लाख की आबादी का जापान २० लाख की आबादी वाले सौदी अरबिया के पीछे कैसे गिना जा सकता है? तो क्या राष्ट्रों के महत्व का मापदंड क्षेत्रफल न होकर जनसंख्या होना चाहिए?

जनसंख्या की दृष्टि से तो विश्व का अग्रगण्य राज्य चीन होगा, जिसकी आबादी इतनी अधिक है कि, अभी तक ठीक से गिनी भी नहीं गयी–शायद ५० करोड़ से भी अधिक! दूसरा स्थान भारत का होगा, जहाँ ३५७० लाख आदमी बसते हैं। तीसरा स्थान सोवियत रूस का होगा, जहाँ की जनसंख्या २१३० लाख है। संयुक्त राज्य अमेरिका, जिसकी आबादी हवाई द्वीप और अलास्का को मिलाकर १६४०
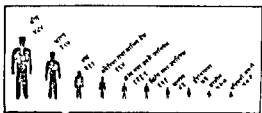
[ जनसंख्या के अनुसार राष्ट्रों का स्थान-क्रम (ऊपर के आंकड़े दस लाख के हैं।) ]

लास है, उसके बाद आयेगा। अपने उपनिवेशों के कारण फ्रांस ब्रिटेन से आगे रहेगा। ब्रिटेन को पाँचवा स्थान, जापान को सातवाँ और उनके बाद इंडोनेशिया, ब्राजील और पश्चिम जर्मनी की गणना होगी।

लेकिन क्या यह वर्गीकरण ठीक होगा? कनाडा कभी भी अपने को मिस्र तथा फिलीपाइन्स से पीछे मानने को तैयार नहीं होगा और न आस्ट्रेलिया ही अपने को यूनान से कम महत्वपूर्ण स्वीकार करेगा।

अतः स्पष्ट है कि, किसी एक दंड से राष्ट्रों का महत्व मापा नहीं जा सकता। क्षेत्रफल और जनसंख्या के अलावा भी अन्य कई ऐसी महत्वपूर्ण बातें हैं, जिन्हें दृष्टि में रखना अत्यंत आवश्यक है। और, ये हैं किसी देश का औद्योगिक विकास, वैज्ञानिक शोधों की परम्परा, सैन्य बल और उसकी आर्थिक समृद्धि।

पिछले महायुद्ध के प्रारम्भ में ब्रिटेन के 'इकानामिस्ट' पत्र ने एक महान् शक्तिशाली राष्ट्र की व्याख्या इस प्रकार की थी—"वह राष्ट्र जो अपने मित्रराष्ट्रों के बिना, अकेले ही, एक बड़ा युद्ध प्रारम्भ कर सके।" उस समय इस कोटि के केवल चार राष्ट्र थे—संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, जर्मनी और जापान। स्वयं ब्रिटेन के पास भी इतनी शक्ति नहीं थी और आज तो केवल दो राष्ट्र ही यह सामर्थ्य रखते हैं—अमेरिका और रूस। उन्हीं दोनों को हमने संसार के सर्वशक्तिशाली राष्ट्र माने हैं। प्रथम स्थान हमने अमेरिका को इसलिए दिया है कि, उसके पास इस समय सर्वाधिक अणुशक्ति है।

ग्रेट ब्रिटेन को संसार की शक्तियों में तीसरा दर्जा आसानी से मिल जाता है। इसका कारण उसका औद्योगिक विकास, विशेषकर उसके हवाई शस्त्रों की विशेषता, उसके समुद्र-पार के उपनिवेश और कामनवेल्थ के देशों के साथ सुदृढ़ गठबंधन है।

चौथे स्थान के लिए चीन और फ्रांस में भयंकर प्रतिस्पर्धा होगी। वैसे फ्रांस—सुरक्षा-परिषद् का स्थायी मेम्बर होने और
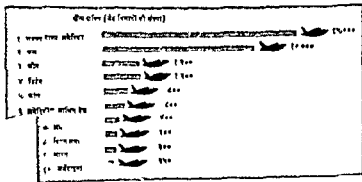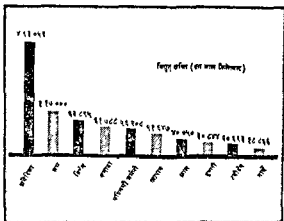
इस कारण उसे 'यूनो' में 'वीटो' का अधिकार प्राप्त होने की वजह से—बड़ा राष्ट्र स्वत: ही सिद्ध हो जाता है। लेकिन इसके विपक्ष में साम्यवादी चीन भी यह कह सकता है कि, राष्ट्रवादी चीन (चागकाई-शेक की सरकार) को भी तो 'वीटो' का अधिकार है और केवल इसी अधिकार के बूते पर कोई उसे महान् राष्ट्र मानने को तैयार नहीं होगा। इसके उपरांत साम्यवादी चीन यह भी कह सकता है कि, उसके राज्य का विस्तार और सैनिकों की संख्या इतनी अधिक है, जिससे उसे एक बड़ा राष्ट्र माना ही जाना चाहिए। स्वयं पश्चिमी राष्ट्रों ने उसके सैन्य बल का अनुमान ३० लाख सिपाही लगाया है। उसे दूसरों पर आश्रित राष्ट्रों की भाँति न मान कर,

[आज के जगत की अपेक्षाकृत महती शक्तियों का स्थानक्रम]

स्वय रूस भी उसके साथ समानता का व्यवहार करता है। इसके विपक्ष में यह भी कहा जा सकता है कि, उसका औद्योगिक विकास अभी इतना कम है कि, उसे इस विषय में रूस का सहारा लेना पड़ता है। लेकिन इसके साथ-साथ यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि, फ्रास भी अपने अधिकाश अस्त्र शस्त्र अमेरिका से मँगवाता है। फिर भी फ्रास में बड़े-बड़े उद्योग-कारखाने है, जो किसी भी समय सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काम में लाये जा सकते हैं। साथ ही, उसके उपनिवेशों में कम-से-कम चीन के बराबर तो प्राकृतिक साधन पाये ही जाते हैं और यूरेनियम भी वहाँ मिलता है।

यही कारण है कि, फ्रास की राजनीति इतनी अस्थिर होते हुए भी और ससार के राष्ट्रों में मतभेद या अवरोध उपस्थित होने पर भी अतर्राष्ट्रीय बैठकों में उसे केवल बुलाया ही नही जाता, बल्कि उसके मत का सम्मान भी किया जाता है।

छठवाँ स्थान पश्चिमी जर्मनी को अपने औद्योगिक विकास, जनसख्या और सुदृढ राजनैतिक व्यक्तित्व के कारण सहज ही प्राप्त हो जाता है। पश्चिमी यूरोप में यहीं सर्वाधिक औद्योगिक विकास हुआ है। इस समय उसकी सैनिक शक्ति नगण्य है, लेकिन इस प्रसग की भावी सम्भावनाओ से इनकार नही किया जा सकता।

सातवाँ स्थान भारत को मिलना चाहिए, क्योंकि केवल जनसख्या की दृष्टि से ही नही, उसका राजनैतिक महत्व भी दिनोदिन बढता जा रहा है। एशिया में तो यही सबसे बड़ा और शक्तिशाली लोकतत्र है और बिना उसकी सहमति के लन्दन या वाशिंग्टन से भी एशिया विषयक कोई कदम नही उठाया जा सकता। जापान को आठवाँ स्थान मिलता है, क्योंकि एशिया में वही सर्वाधिक औद्योगिक राष्ट्र है। कनाडा का नम्बर नवाँ है, क्योंकि प्राकृतिक साधनों के बाहुल्य, उसका उत्तरोत्तर वृद्धिशील औद्योगीकरण, उसे समुद्र पार के कामनवेल्थ राष्ट्रों में सर्वाधिक विकसित राष्ट्र सिद्ध करता है।

अत में, दसवाँ स्थान ब्राजील को मिलना चाहिए, क्योंकि उसका क्षेत्रफल, जनसख्या और प्राकृतिक साधन उसे दक्षिणी अमेरिका के शक्तिशाली राष्ट्रों में सहज ही सर्वोपरि बना देते हैं।

★

अकरात् कुरुते कोषम् अवधादेशरक्षणम्
देशवृद्धिमयुद्धाच्च स मन्त्री बुद्धिमानसचस
...य वह है, जो बिना कर के ही कोष-वृद्धि करता है
...ा अनुसरण किये राज्य का विस्तार करता है।

—सेदतुगाचार्य

★

हमारे सभी सरक्षको
को हार्दिक बधाइयां
व
शुभकामनांए
The
WEST END WATCH Co.
BOMBAY CALCUTTA

# माताभूमि: अमृत-हृदया

युग युग से भारत की राष्ट्रात्मा निरन्तर विश्वात्मा के साथ समन्वय साधती आ रही है। ऋग्वेद का 'एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' मंत्र तो वस्तुतः भारतीय संस्कृति की भाग्य लिपि है। वास्तव में, लोभ लिप्सा से प्रेरित होकर भारत के वणिक-पोत कभी समुद्र पार नहीं गये और न आसुरी विजय के लिए ही हमने किसी भूमि खंड पर पैर रखा। इसी स्नेह-स्रोतस्विनी माताभूमि का एक स्तवगान श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल ने नीचे की पंक्तियों में दिया है।

*

अथर्ववेद के 'पृथ्वी सूक्त' में एक सुंदर कल्पना मिलती है जिसके अनुसार यह पृथ्वी पूर्व-युग में समुद्र-तल के नीचे छिपी हुई थी। ध्यान के धनी पुरुषों ने अपने चिंतन की शक्ति से इसे ढूंढ निकाला। हममें से प्रत्येक के लिए आवश्यक है कि मातृभूमि की प्राप्ति वह मन के द्वारा करे—अपने हृदय को उसके साथ मिलाये। भूमि माता है मैं उसका पुत्र हूँ—'माताभूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।'

यह सम्बन्ध केवल भौतिक नहीं है, इसका पूर्ण रस तो मन के अनुभव में है। हमारा मन मातृभूमि के मन का एक अंश है। पृथ्वी या मातृभूमि का हृदय 'पृथ्वी-सूक्त' के अनुसार अमृत से पूर्ण रूपेण ढका हुआ है—

'हृदयेनावृतममृतं पृथिव्याः।'

इसी अमृत मन में हमें अपना भागधेय प्राप्त करना है। अमृत-मन राष्ट्र की संस्कृति का ही दूसरा नाम है। मन के चारों ओर भरा हुआ जो अमृत-समुद्र है उसी में सत्य यज्ञ त्याग, तप, अहिंसा, सर्वभूतों का हित, न्याय धर्म, ज्ञान आदि सुंदर दिव्य भावों के कमल तैर रहे हैं। उनकी गंध को हमारे पूर्व पुरुषों ने सूंघा था और उसी को मातृभूमि के हृदय तक पहुँचने के लिए हमें प्राप्त करना है। मातृभूमि का भौतिक रूप हम सबके शरीर में बसा हुआ है। हम कहीं भी हों, उस रूप से पहचाने जाते हैं उसका परित्याग नहीं कर सकते। किन्तु भौतिक रूप से अनंतगुण प्रभावशाली मातृभूमि के हृदय का अमृत है, जो उन गुणों और विशेषताओं से मिल सकता है,

[पीयूष पान]

जिनकी उपासना राष्ट्रीय संस्कृति का प्रधान अंग रहा है।

भीष्म-पर्व में जिस भारतवर्ष की कल्पना की गयी है, वह भारत इन्द्र, मनु, इक्ष्वाकु, ययाति, अम्बरीष, मान्धाता, शिवि, दिलीप आदि अनेक राजर्षियों को प्रिय था। ये राजर्षि जिस उदार मन से इस भूमि को देखते थे, उसका आधार सत्य और ज्ञान के अमर आदर्श थे—जिनका इस पुण्य-भूमि में पुरातन काल से आविर्भाव हुआ और जिनके लिए राष्ट्र के उच्चतम स्त्री-पुरुषों ने अपने जीवन में प्रयोग किये। आर्थिक लाभ या देश विजय के कारण यह पृथ्वी राजर्षियों की प्रिय नहीं बनी।

पूर्व-पुरुषों की वह उदार परम्परा जनक, याज्ञवल्क्य, कृष्ण, बुद्ध, शंकर, गांधी के द्वारा आगे बढ़ती रही है। उनके मनों को वही अमृत सींचता था, जो मातृ-भूमि के हृदय में भरा हुआ है। आज भी हमारी राष्ट्रीय आस्था उन दिव्य सत्यों से तिल-मात्र विचलित नहीं हुई है। दिलीप के गो-चारण की तरह अपने शरीर के मांस-पिंड को डाल कर राष्ट्रनायकों ने हिंस्र प्रवृत्तियों का सामना किया है। इस जीवन-सत्य की व्याख्या मातृभूमि के अमृत-हृदय में लिखी है। हिंसा के उन्मत्त ताण्डव में जो धीर बना रहा, मनुष्यों के हृदय में लगी हुई प्रतिहिंसा की अग्नि का शमन के दावानल-पान की तरह जिसने आचमन कर लिया, राष्ट्रीय मंथन से उत्पन्न हुए विष का शिव के सदृश जिसने पान कर लिया, वह राष्ट्रनायक मातृभूमि के अमृत-हृदय की साक्षात व्याख्या हमारे सामने रख रहा था। वह सचमुच तथागत था। पूर्व-कालीन में जैसे मनीषी आये, वैसा ही यह था—उसका मन तथा-भाव में अडिग रहा। स्वयं अविचल रहकर उस देव-कल्प मानव ने मातृभूमि के हृदय की हलचल और धड़कन से बचा लिया।

यही मातृभूमि की ध्रुवस्थिति है। वैदिक शब्दों में इसी को पृथ्वी के हृदय का ग्रहण कहा गया है, जो युग-युग में होनेवाले प्रकम्पन से मातृभूमि की रक्षा करता है। भारतीय इतिहास इस प्रकार की भूचाली घटनाओं का साक्षी रहता आया है; किन्तु राष्ट्र का सांस्कृतिक हृदय इस प्रकार के उथल-पुथल के बीच में पड़ कर भी अपने स्वास्थ्य को बचाये रख सका, यही इस देश का अमृत-जीवन-प्रवाह है।

★

## क्षमा

ओ नेतृत्व करनेवाले,
हम मूर्खता को क्षमा कर सकते हैं
पर क्षुद्रता को नहीं!

—विलियम वान मूडी

★

# प्रार्थनाओं की प्रार्थना

ज्ञान अहंकार का प्रतीक बन जाता है, कर्म स्वर्ग के भोग में बदल जाते हैं और भक्ति मठ अथवा सम्प्रदाय का रूप ले लेती है—आत्मसाक्षात्कार के उद्देश्य में ये तीनों असफल हो सकते हैं। किन्तु प्रायश्चित एवं पश्चात्ताप के साथ यह बात नहीं। अहंकार और कामना का पूरा दमन होता है—अपनी लघुता को व्यक्ति यहाँ जैसी ईमानदारी से समझ लेता है, वैसे अन्यत्र नहीं। काका साहेब के इस पुण्य प्रसंग का यही निचोड़ है।

*

मुझे गांधीजी का पहले-पहल दर्शन हुआ, शांतिनिकेतन में। मैं कविवर्य रवीन्द्रनाथ ठाकुर को एक देशभक्त कवि और हिन्दुस्तान की संस्कृति का उत्तम नमूना मानता था। इसलिए कुछ दिन उनके पास रहने से उनसे कुछ जरूर ही मिल जायेगा—ऐसा सोच कर मैं शांतिनिकेतन गया हुआ था।

उसके पहले मैं साधु-जैसे कपड़े पहन कर साधु की ही तरह हिमालय में घूमा था। पैदल करीब ढाई हजार मील की यात्रा की थी। कई साधुओं-योगियों के सम्पर्क में आया था। उनसे अनेक चर्चाएँ भी की थीं। उनकी बातें सुनी थीं—उनके पास जो अच्छा मालूम हुआ, सो ले लिया था। मगर कहीं पर भी इन सबमें संतोष नहीं हुआ था।

[काका साहेब]

मुझमें एक तरफ तो स्वराज्य का दृढ़ संकल्प था। उसके लिए जो जरूरी राज-नीति थी, सो मैं समझता था। करने को भी तैयार था। दूसरी तरफ मुझमें आध्यात्मिकता की भूख थी। भक्ति की तरफ आकर्षण था। इन दो बातों का समन्वय नहीं हो पाता था। रास्ता बतानेवाला भी न था, इससे मैं और परेशान रहा करता था।

शांतिनिकेतन में महात्माजी के आश्रम के कई लोग पहले आकर रहे थे। उनसे मेरा निकट का परिचय हो चुका था। बाद में महात्माजी आये। उन दिनों उन्हें लोग 'महात्माजी' नहीं, 'कर्मवीर' कहते थे। वे आठ दिन वहाँ रहे। उनके पास समय भी

था। मैंने उसका फायदा उठाया और आठ दिनों तक उनके पास बैठकर तरह-तरह के प्रश्न पूछे। आध्यात्मिक, राजनीतिक, आरोग्य के बारे में—संसार के हर-एक सवाल पूछे, चर्चा की। आखिर, विश्वास हुआ कि, यही एक ऐसा आदमी है, जिसने सारे जीवन का सम्पूर्ण विकास किया है और उसका भगवद्भक्ति में परिणत कर दिया है।

उन्होंने मेरी उलझन भी दूर की। उन्होंने कहा– "राजनीति में भी आध्यात्मिकता प्रकट हो सकती है। इतना ही नहीं, बल्कि उसको वहाँ प्रकट करना भी जरूरी है।" उन्होंने यह भी बताया कि, मैं मोक्ष प्राप्त करने के लिए राजनीतिक काम करता हूँ।

"हर-एक युग में अधर्म अपना अड्डा जमाने के लिए कोई खास जगह चुन लेता है और उसमें पूरी तौर से व्याप्त हो जाता है।" उन्होंने सहज भाव से कहा– "आज के जमाने में वह राजनीतिक क्षेत्र में घुस गया है। उसे वहाँ से हटाकर मुझे वहाँ धर्म को प्रस्थापित करना है। अगर मैं यह काम न करूँ, तो मुझे मोक्ष मिलनेवाला नहीं है। यह ईश्वर का दिया हुआ काम है।"

इस प्रकार, सारे काम ईश्वर के ही काम समझकर वे करते थे। उनकी सारी श्रद्धा भगवान पर ही थी। उनकी तीव्र ईश्वर निष्ठा का एक प्रसंग याद आता है।

हम दक्षिण-भारत में खादी-यात्रा के सिलसिले में घूम रहे थे। चिकाकोल बड़ा अच्छा खादी-केंद्र है। वहाँ शाम को सात बजे हम लोग पहुँचनेवाले थे। पर पहुँचे दस बजे रात को। गांधीजी को चरखे की प्रदर्शनी बताने के लिए बेचारी महिलाएं तीन घंटों तक बैठी रहीं। इसलिए उस गाँव में पहुँचते ही गांधीजी सीधे उस प्रदर्शनी के स्थान पर जा पहुँचे। महादेवभाई और हम निवासस्थान पर गये। खूब थक गये थे। फौरन सो गये। सुबह चार बजे जब हम प्रार्थना के लिए इकट्ठे हुए, तो बापूजी ने पूछा– "महादेव! काले प्रार्थनानुं शुं थयुं? (महादेव, कल प्रार्थना का क्या हुआ?)" मेरा दिल एकदम बैठ गया। मैंने कहा–"मैं तो जैसे ही आया, सो गया। प्रार्थना करना भूल ही गया।" महादेवभाई ने कहा–"मैं भी भूल गया था। लेकिन एक नींद पूरी करने के बाद जगा, तब बैठ गया और बिछौने पर मन-ही-मन प्रार्थना कर ली और फिर सो गया। काका को नहीं जगाया।"

बापूजी ने कहा–"रात को मैं भी प्रार्थना करना भूल गया था। थका-माँदा था, इसलिए मैं भी सो गया। जब तीन बजे जगा, तो याद आया और तब से सिर्फ काँप रहा हूँ। मैं बहुत ही अस्वस्थ हूँ।

राष्ट्रपिता
[चित्र : 'शंकर्स वीकली' से साभार]

सोचता हूँ कि, यह कैसे हो पाया ? भगवान को मैं कैसे भूला ? अगर नींद के लिए मैं ईश्वर को भूल सकता हूँ, जो मेरी हर साँस का मालिक है, जिसके आधार पर ही मेरा सब कुछ चल रहा है, तो मैं काम क्या करूँगा ? किस शक्ति के सहारे करूँगा? मैं उसकी प्रार्थना करना कैसे भूल गया ?"

हमने प्रार्थना कर ली और अपने-अपने काम में लग गये। फुरसत तो महात्माजी को शायद ही मिलती थी। भोजन पर बैठे, तब मैंने पूछा—"बापूजी ! एक बात कहूँ ?"

उन्होंने हँसकर कहा—"कहो ।"

मैंने बताया—"एक मुस्लिम संत थे। बड़े ईश्वर-भक्त थे। पाँच दफे नमाज पढ़ने का उनका नियम था। एक रोज वे थके-मादे थे, सो गये। जब नमाज का वक्त आया, तो किसी ने आकर उन्हें जगाया—'उठो-उठो, नमाज का वक्त हो गया है।' वे तत्काल ही उठ बैठे और बड़े कृतज्ञ हुए। कहने लगे—'भाई, तुमने तो मेरा बहुत बड़ा काम किया है। मेरी इबादत रह जाती, तो क्या होता ? अच्छा, अपना नाम तो बताओ ?'

"उसने कहा—'मेरा नाम इब्लीस है।'

"संत को अचरज हुआ। बोल उठे—'इब्लीस ? अरे, तुम्हारा काम तो लोगों को इबादत करने से रोकना है—धरम करने से रोकना है। और, तुम मुझे इबादत करने के लिए कैसे जगाने आये?'

'शैतान बोला—'भैया, इसमें भी मेरा फायदा ही है। एक बार पहले तुम ऐसे ही सो गये थे। नमाज का वक्त बीत चुका था। मैं बहुत खुश हुआ। लेकिन जब तुम जगे, तो इतने पछताये, इतना रोये, इतना दुःखी हुए कि, अल्लाह के ज्यादा प्यारे हो गये। और, इबादत न करने का तुम्हारा पाप तो पछतावे में साफ धुल गया। इसलिए मैंने सोचा कि, कहीं फिर से ऐसा न हो और तुम अल्लाह के और ज्यादा प्यारे न हो जाओ। बेहतर तो यही है कि, तुम्हें नमाज के वक्त जगा दूँ।'"

बापू ने मेरी यह बात मुस्कराकर सुन ली। मुझे भी बड़ी खुशी हुई थी।

सन् १९१४ से लेकर आखिर तक मैंने उनका जीवन देखा है। उनका ईश्वर-ध्यान और चिंतन देखा है। कभी भी—एक क्षण के लिए भी—उसमें खंड नहीं पड़ा है।

मैंने उनमें नख-शिखांत भगवद्भक्ति देखी है। मूर्तिमंत भक्ति उनमें पायी है। फिर भी, उन्होंने कभी प्रार्थना को ज्यादा समय नहीं दिया है। निश्चित समय पर सबके साथ प्रार्थना करने के लिए बैठते थे और उसमें तल्लीन हो जाते थे। प्रार्थना पूरी हुई कि, लग गये काम में। वह काम भगवान का ही काम है, काम से समय चुराकर नाम में लगाऊँ, तो भगवान नाराज होंगे—ऐसा मानकर सारे कामों को भगवान का ही समझकर वे करते थे।

★

कायर अथवा अकर्मण्य की आँखों को प्रत्येक वस्तु विरोधात्मक लगती है। —चीद्र-वो

★

"८५ बीता और अब ८६ आयेगा और मृत्यु का आह्वान इस प्रकार नजदीक ही आता जा रहा है। लगता है, यह मंच अब मुझसे छूट जायेगा। हो सकता है, १०० वर्ष की उम्र पूरी कर लूँ। मगर इक्कीसवीं सदी का अरुणोदय तो मैं देख न सकूँगा। और, जब यह ध्रुव सत्य है, तो कल्पना की नजर से ही उस दुनिया को देख क्यों न लूँ! यह लेखमाला इसी इच्छा की पूर्ति है।" हमारे पाठक यहाँ बर्ट्रैंड रसेल की इसी लेखमाला को नीचे संक्षिप्त रूप में पढ़ेंगे। पार्श्व के चित्र में युद्ध और विवेक का प्रसंग है—आज तो युद्ध का दानव मनुष्य के विवेक को पराभूत ही करने पर तुल गया है!

★

पिछले दो महायुद्धों के कारण हमारे इस विश्व में जो-जो तब्दीलियाँ आयी हैं—मानव-समाज के खान-पान, रहन-सहन आदि में जो-जो परिवर्तन हुए हैं, उन्हें 'विक्टोरियन' काल का कोई भी व्यक्ति घृणास्पद दृष्टि से देख सकता है। इसी प्रकार, अगर मानवता के दुर्भाग्य से युद्ध की इस प्रवृत्ति का खात्मा न हुआ, तो निश्चित मानिये—आगामी युग में भी ऐसे परिवर्तन हो जायेंगे, जो इस युग के लोगों के लिए घृणास्पद होंगे। और, वह काल बहुत दूर हो, ऐसी बात नहीं। मुझे तो अभी भी यह स्पष्ट नजर आ रहा है कि, सन् २००० में ही इस विश्व को कई ऐसे परिवर्तनों को अपनाना पड़ेगा।

विज्ञान ने आज हाइड्रोजन-बम का निर्माण कर सारे संसार को चकित कर दिया है; किन्तु हाइड्रोजन-बम से भी अधिक आश्चर्यजनक आविष्कार हो सकते हैं। अभी तक मनुष्य के आपसी व्यवहार और संतानोत्पत्ति के विषय में तो वैज्ञानिक अनुसंधान अथवा प्रयोग हुए ही नहीं!

भेड़, कुत्ते या गाय की नस्लें निर्धारित करने के प्रयोग ही आज तक हुए हैं; लेकिन यही प्रयोग आगे चलकर मनुष्य की संतानोत्पत्ति में भी किये जा सकेंगे। तब विशेष गुण के विशेष व्यक्ति पैदा करना सहज हो सकेगा। उदाहरण के तौर पर, ठंड या गरमी के प्रभाव से सर्वथा मुक्त, असामान्य दैहिक बल या मानसिक शक्ति-

सम्पन्न व्यक्ति पैदा कर, उस युग का कोई भी तानाशाही राष्ट्र अन्य राष्ट्रों पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकता है। स्वभावत ही अन्य राष्ट्र भी इसी नीति का अनुसरण करेंगे और तब प्राकृतिक ढग से सतानोत्पत्ति का समर्थक व्यक्ति निश्चय ही मूर्ख, भावुक या देशद्रोही समझा जायेगा। अधिकाश लोगों को इच्छा या अनिच्छा से आँख मूँद कर अपने राष्ट्र की नीति का पालन करना होगा। उस युग में इने-गिने व्यक्तियो की मुट्ठी में ही राष्ट्र का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व होगा। निश्चय ही, ये व्यक्ति सर्वाधिक योग्य और बुद्धिमान होंगे।

स्वास्थ्य और शक्ति तो उस युग में सभी के लिए समान रूप से आवश्यक समझी जायेगी, किन्तु सबसे मज की बात तो यह होगी कि, जिस कार्य के लिए जितने व्यक्तियो की आवश्यकता होगी, उतने ही व्यक्ति एक राष्ट्र में पैदा किये जायेंगे। उदाहरणार्थ, कृत्रिम उपायो द्वारा पाँच प्रतिशत लोगो से ही सतानोत्पत्ति का सारा काम लिया जा सकता है। अत शेष सभी व्यक्ति इस कार्य के लिए अनुपयुक्त बना दिये जायेंगे। हाँ, स्त्रियो की सख्या इस कार्य के लिए अवश्य ही अधिक रखनी होगी। फिर भी, यह सख्या तीस प्रतिशत से अधिक नही हो सकती। बच्चो को अपने माँ-बाप के घर म रखने की विवादास्पद स्थिति को न उत्पन्न होने देने के लिए, उन्हे सस्थाओ में रखा जायेगा। परिवार-जैसी कोई चीज तब नही रहेगी। प्रत्येक व्यक्ति सम्पूर्ण राष्ट्र को ही अपना सब-कुछ समझेगा और उसका हर कार्य, हर कदम राष्ट्र की भलाई के लिए ही उठेगा। उसके स्वय के अस्तित्व नाम की कोई भी चीज उस युग में नही होगी।

यह स्थिति आनदप्रद तो कही नही जा सकती, अत मेरी कामना है कि, मेरा अनुमान-मात्र गलत ही प्रमाणित हो। और, ऐसा हो भी सकता है, यदि मानव-समाज युद्ध की आशका से मुक्त हो जाय। तब इस
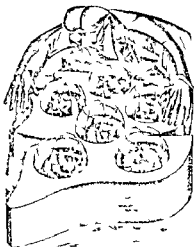
[ विज्ञान के दानव ने मनुष्य जीवन के सभी क्षेत्रों पर अपना काबू जो आज स्थापित करना शुरू किया है, वह २००० वें वर्ष में तो परम नियामक हो जायेगा। ]

स्थिति में आने की कोई सम्भावना नहीं रह जायेगी अथवा युद्ध के कारण मानव-समाज का विनाश ही हो जाय तब तो कोई बात ही नहीं। एक तीसरा मार्ग और है। युद्ध के बाद जो इने-गिने लोग पृथ्वी पर बच रहे व अगर स्वयं को आधुनिक सभ्यता और विज्ञान के वरदानों से बचा सके तो इसकी नौबत नहीं आयगी। पता नहीं, मानव-समाज इनमें से कौन-सा मार्ग पसंद करता है?

मेरे अनुमान का यह भाग तो निश्चित-सा ही है कि, सन् २००० में राष्ट्र में उन गिने-चुने व्यक्तियों का महत्व बहुत बढ़ जायेगा, जिनके हाथ में शासन की बागडोर होगी। आज भी व्यक्ति-स्वतंत्रता के समर्थक अमेरिका-जैसे देश में शासकों के हाथ-दिन-पर-दिन अधिकाधिक सत्ता आती ही जो रही है।

अठारहवीं सदी में राज्य का काम केवल जन एवं धन की रक्षा और युद्ध-नीति निर्धारित करना था। फलस्वरूप शिक्षा, स्वास्थ्य व सफाई आदि की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता था। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लावारिस बच्चों के लिए अनाथालय खोले गये, किन्तु उनकी उचित देख-भाल की तरफ फिर भी ध्यान नहीं दिया गया। बच्चों से वहाँ कड़ी मेहनत के लिए मजबूर किया जाता था। 'आलिवर ट्विस्ट' नामक उपन्यास की कथा इसी पर आधारित है।

वास्तव में, जितने भी सुधार आज तक हुए हैं, मुख्यतः उनके दो ही कारण रहे हैं—एक तो युद्ध के कारण उपस्थित हुई नयी-नयी आवश्यकताएँ और दूसरा, मनुष्यता की भावना। इनमें पहला कारण ही अधिक प्रबल है, किन्तु मनुष्यता की भावना को भी नगण्य नहीं समझा जा सकता। उसी के फलस्वरूप 'फैक्टरी-एक्ट' और पब्लिक-हेल्थ-कानून पास किये गये और १८७० के बाद तो 'शिक्षा-कानून' पास हो जाने से बच्चों से अनुचित काम लेना बंद ही हो गया।

किन्तु राज्य के हाथ में अधिक सत्ता, विशेषकर युद्ध की आवश्यकताओं के कारण ही आयी। प्रशिया के सर्व-शक्ति-शाली राज्य और उसकी निरंतर विजय देखकर दूसरे राष्ट्रों ने भी इसी नीति का अनुसरण करना शुरू किया। कुछ व्यक्ति-विशेष के हाथों में सारी सत्ता सौंप देने की इस नीति का आज भी अंत नहीं दिखायी पड़ता। विज्ञान-वेत्ताओं पर भी आज राष्ट्र का नियंत्रण-सा है। वे जो-कुछ करते हैं, राष्ट्र के लिए-या यों कह लिया जाये कि वे राष्ट्र के लिए ही सब-कुछ करते हैं। मानव मात्र के लिए कुछ करने की उन्हें छूट नहीं। प्रत्येक आविष्कार आज गुप्त रखा जाता है और औद्योगिक शक्ति या दूसरे महत्वशाली विषयों पर अनुसंधान करनेवाले वैज्ञानिकों पर कड़े पहरे की व्यवस्था रहती है। यूरोप में वैज्ञानिकों को अमेरिका जाने की अनुमति नहीं मिलती—इसलिए कि, वे वहाँ जाकर

अणुशक्ति या हाइड्रोजन-बम के बारे में कुछ सीख कर कहीं उसका रहस्य रूस को न बेच दे।

मानव का मानव के प्रति अविश्वास की यह कैसी दयनीय स्थिति है! किन्तु आगामी युग में तो और भी दयनीय स्थिति हो जायेगी। आज तो केवल इन आविष्कारों पर ही नियंत्रण है, उस युग में विज्ञान पूर्णरूपेण कड़े पहरे में कैद होगा।

युद्ध का खतरा अगर बराबर बना ही रहा, तो प्रत्येक देश में बच्चों को सिर्फ अपने देश से प्रेम और शत्रुओं से बेहद घृणा करना सिखाया जायेगा। मस्तिष्क या मानवीय गुणों के विकास की ओर कोई राष्ट्र ध्यान नहीं देगा। अगर कोई ऐसा करेगा भी, तो उसे कमजोर और मूर्ख समझा जायगा। और, इस करुण स्थिति से बचने का एक ही उपाय है—युद्ध की आशंका का समूल नाश। अगर सभी राष्ट्रों ने विवेक से काम लिया, तो ऐसा होना कुछ कठिन नहीं। तभी मनुष्य के उपार्जित ज्ञान का सदुपयोग विश्व-कल्याण के लिए सम्भव हो सकता है—मनुष्यता की भावना भी तभी पनप सकती है।

[आज वास्तव याने यथार्थ को कल्पना से भय लगता है, किन्तु एक दिन बुद्धि इतनी विराट् हो जायेगी कि, मन एवं कल्पना उस के सामने पनाह माँगेगी।]

धनी आबादी और विज्ञान के इस युग में पूर्व-जैसा आराम और आनंद का जीवन तो नितान्त असम्भव है। यह तभी सम्भव था, जब समाज का संगठन इतने सुचारु रूप से नहीं हुआ था और जनसंख्या इतनी बढ़ी हुई नहीं थी। पहले-पहल जब मानव-समाज यत्र-तत्र बसा, तो जमीन पर कोई रोक नहीं थी। खेती भी हर आदमी अपने स्वतंत्र तरीकों से ही करता था। राज्य से वे किसी प्रकार की सहायता या नियंत्रण की अपेक्षा नहीं रखते थे—सिवा इसके कि, जमीन उन्हें उचित मूल्य पर मिल जाये। लेकिन आज तो कहीं भी इन पुराने तरीकों से खेती नहीं हो सकती। नयी और कोई नयी जमीन को उपजाऊ और खेती-योग्य बनाने के लिए करोड़ों रुपये खर्च करने पड़ते हैं। फल भी तत्काल नहीं मिलता। ऐसी अवस्था में किसी भी व्यक्ति के लिए नयी जमीन पर खेती शुरू करना असम्भव-सा ही है। यही हाल उद्योगों का है। एक नयी रेल-लाइन चालू करने से बहुत फायदे होते हैं, लेकिन रेल को मुनाफे के लिए कई वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। इस प्रकार कई बड़े-बड़े उद्योग—जिनमें करोड़ों रुपया लगता है और लाभ की तत्काल आशा नहीं रहती—केवल राज्य ही शुरू कर सकता है।

उत्पादन के तरीके भी अब पहले-जैसे नहीं रहे। दिन-पर दिन इन चीजों पर

राष्ट्र का नियन्त्रण दृढ़ होता जा रहा है और भविष्य में और भी दृढ़ हो जायेगा। सारी सत्ता कुछ व्यक्तियों के हाथों में ही सिमिट कर रह जायेगी।

'गलिवर्स ट्रैवेल्स' नामक पुस्तक में बताया गया है कि, लिलिपुत नाम के एक द्वीप के विनायक, वहाँ की जनता को अपने वैज्ञानिक बल पर डरा-धमका कर उन्हें अपना हर हुक्म मानने पर मजबूर करते थे। मुझे आशंका है कि, भविष्य के वैज्ञानिक भी ऐसा कर सकते हैं। ऐसी दशा में कला, साहित्य व स्वतन्त्र मनन-चिंतन का क्या भविष्य होगा....?

अब तक जितने भी बड़े आविष्कार या कला और साहित्य की कृतियों का जन्म हुआ, वे विशिष्ट व्यक्तियों-द्वारा स्वतन्त्र रूप से निर्मित हुई हैं। इसके लिए चाहे उन्हें भूखों मरना पड़ा, अपमान और कष्ट का जीवन व्यतीत करना पड़ा, फिर भी वे जो-कुछ करना चाहते थे, उसके लिए स्वतन्त्र थे। लेकिन राज्य का नियन्त्रण यदि बहुत बड़ा हुआ, तो ऐसे कई होनहार कलाकार— जिन्हें शुरू-शुरू में निकम्मा और पागल समझा जाता है—आगे बढ़ने ही नहीं पायेंगे। वास्तव में, प्रत्येक नयी बात का प्रारम्भ में जनता विरोध करती है। केवल कुछेक लोग ही किसी महान् विचारक, वैज्ञानिक या कलाकार की प्रतिभा को सही-सही आँक पाते हैं। भावी युग में शासक-वर्ग ऐसे मूल-प्रतिभाशाली व्यक्तियों को अपने मन का काम करने ही नहीं देंगे और यह मानव-समाज की एक महान् क्षति होगी!

व्यवस्था निस्संदेह अच्छी चीज है; लेकिन जरूरत से ज्यादा बड़ी व्यवस्था के कारण उच्च कोटि की कला, साहित्य, विज्ञान या कोई भी विशिष्ट मानवीय गुण पनप नहीं पाता। अवसर की स्वतन्त्रता केवल महान् या प्रतिभाशाली व्यक्तियों को ही आवश्यक नहीं। प्रत्येक व्यक्ति इसकी जरूरत महसूस करता है। हाँ, प्रतिभावान व्यक्ति हर समय यह स्वतन्त्रता चाहते हैं और साधारण व्यक्ति कभी-कभी। फिर भी प्रत्येक आदमी रोजमर्रा के काम से ऊब कर कुछ-न-कुछ नया, साहसपूर्ण कार्य करने की सोचता रहता है।

राज्य का पहला काम प्रजा के लिए पर्याप्त सुरक्षा और खाने की व्यवस्था करना है। लेकिन इनके उपरांत मनुष्य की दूसरी आवश्यकताओं की पूर्ति करना भी अनिवार्य है—नहीं तो, वह बिना विद्रोह या अपराध किये रह नहीं सकता। सुव्यवस्थित शासन-प्रणाली और संतुष्ट प्रजा प्रत्येक राष्ट्र के लिए आवश्यक है; लेकिन इसके लिए व्यक्तिगत स्वेच्छा और उत्साह से कार्य करने की पूरी छूट होनी चाहिए।

यदि अगले ५० वर्षों तक युद्ध न हो— यद्यपि इसकी सम्भावना बहुत कम है— तो उस वक्त विश्व की रूपरेखा ही दूसरी होगी। ब्रिटेन की शक्ति आज की अपेक्षा काफी बढ़ जायेगी। भारत ने जिस प्रकार स्वतन्त्रता-प्राप्ति के प्रयत्न किये थे, कुछ उसी प्रकार के प्रयत्न अफ्रीका में भी

होंगे। प्रत्येक वस्तु का महत्व उपयोग की दृष्टि से होगा। हो सकता है, उपयोग के साथ-साथ सुंदरता का भी ख्याल रखा जाये, लेकिन २००० सन् तक तो ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती।

पिछड़े हुए राष्ट्र अधिक-से-अधिक औद्योगीकरण की ओर अग्रसर होंगे। सभी जगह अभी भी औद्योगिक विकास की ओर काफी ध्यान दिया जा रहा है, लेकिन साथ-ही-साथ संसार की आबादी भी घनी होती जा रही है। परिणामत खाद्य की समस्या अधिकाधिक गम्भीर होती जा रही है। उस वक्त प्राथमिक शिक्षा का स्तर ऊँचा उठ जायेगा, लेकिन ऊँचे दर्जे की शिक्षा कम हो जायेगी।

आगामी युग में टक्निकल या व्यवसाय-विशेष की शिक्षा का अधिक महत्व होगा। वृहत्तर शिक्षा, सभी विषयों का ज्ञान और सांस्कृतिक या साहित्यिक गुणों का कोई खास महत्व नहीं रह जायगा। इससे लोगों की दृष्टि बहुत संकुचित हो जायेगी और वे प्रत्येक विषय या घटना को केवल अपने विशिष्ट व्यवसाय या ज्ञान की दृष्टि से ही देखेंगे। उदाहरण के तौर पर, अर्थशास्त्र का इतिहास पढ़नेवाला विद्यार्थी, रानी एलिजाबेथ प्रथम का शासन-काल उस युग में सिर्फ इसीलिए याद रखेगा कि, उस समय इंग्लैंड में 'दारिद्र्य निवारण बिल' (पुअर-ला) पास हुआ था। वह यह स्मरण रखने की आवश्यकता नहीं समझेगा कि, वही शेक्सपियर का भी काल था।

[आज सुख समृद्धि के लिए विज्ञान का दोहन किया जा रहा है, किन्तु वह दिन अब दूर नहीं, जब एकांत रूप से विज्ञान के लिए ही सब-कुछ किया जायेगा— पुराण-वर्णित सुख-समृद्धि की अधिष्ठात्री लक्ष्मी तब विज्ञान का बलि पशु बनने के सिवाय और भला क्या करेगी?]

मेरा खयाल है कि, पर्याप्त व्यावसायिक शिक्षा के साथ-साथ सांस्कृतिक एवं साहित्यिक ज्ञान भी प्राप्त करना प्रत्येक सभ्य पुरुष के लिए अनिवार्य है। लेकिन यह इतना आसान नहीं। आजकल तो मनुष्य का जीवन कुछ इतना यांत्रिक हो गया है—व्यावसायिक ज्ञान कुछ इस प्रकार जटिल हो गया है—कि, अपने घेरे से बाहर निकल कर देखने या सोचने का अवकाश ही किसी को नहीं मिलता। कम्यूनिस्ट देशों में इस प्रकार के सीमित व्यावसायिक ज्ञान के उत्कृष्ट उदाहरण देखे जा सकते हैं, लेकिन यह भी सही है कि, विशिष्ट विषयों

म जितनी तरक्की उन लोगों ने की है, उतनी और किसी ने नहीं।

सांस्कृतिक शिक्षा से आदमी भले ही किसी खास व्यवसाय या काम के योग्य न बन पाये किन्तु वह अधिक समझदार तो हो ही जाता है। वह प्रत्येक घटना और परिस्थिति को सभी पहलुओं से देखता है, विचार करता है और जल्दी ही घृणा और हिंसा पर नहीं उतर आता। दूरदर्शिता की भी उसमें कमी नहीं होती और वह स्वभाव का उग्र नहीं होता। मनुष्य-जीवन के स्थायी मूल्यों और ध्येय को वह कभी नहीं भूल सकता। हाँ, तब सांस्कृतिक अंग को आसान और इतना सूक्ष्म कर देना पड़ेगा कि, लोग सहज ही उसका मनन कर सकें। पुरानी भाषाएँ और बड़े-बड़े ग्रंथ पढ़ने का तो किसी को अवकाश मिलेगा नहीं।

एक बात और ध्यान में रखना बहुत आवश्यक है। शिक्षा को यदि सही अर्थों में ज्ञान की प्राप्ति का साधन बनाना है और किसी खास व्यापार या हुनर सिखाने के अतिरिक्त मनुष्य को सही अर्थों में मनुष्य और एक अच्छा नागरिक बनाना है, तो स्कूलों को पढ़ायी जानेवाली किताबें राष्ट्र की राजनीति का प्रचार-मात्र न हों। रूस और चीन में बच्चों को गैर-कम्यूनिस्ट देशों के खिलाफ ऐसी गलत बातें बतायी जाती हैं, जिनसे उनका मन शुरू से ही उन देशों और वहाँ के लोगों के खिलाफ घृणा से भर जाता है। यही बात बहुत अंशों में अमेरिका पर भी लागू होती है। वहाँ कम्यूनिस्ट-मुल्कों के खिलाफ ऐसी-ऐसी रायें दी जाती हैं, जो सच्चाई से बिल्कुल परे हैं। मेरा विश्वास है कि, स्कूल को राजनीति का अखाड़ा नहीं बनाना चाहिए।

इंग्लैंड अभी तक इस दोष से मुक्त रहा है। मैं चाहता हूँ कि, वह राजनीति के दबाव के कारण सत्य का गला, कम-से-कम शिक्षा के क्षेत्र में घोंटने के लिए बाध्य न हो। यह सही है कि, अगर युद्ध की तैयारियों और आवश्यकताओं के कारण उसे अमेरिका पर अधिक निर्भर रहना पड़ा, तो आगामी काल में उस पर बहुत दबाव पड़ेंगे। हमें अभी से इसके प्रति सतर्क रहना चाहिए।

मैं आशा करता हूँ कि, अगले पचास साल के भीतर प्रत्येक १६ बरस तक के बच्चे को प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जायेगी और उसके बाद अलग-अलग रुचि एवं योग्यता के अनुसार अलग-अलग श्रेणियों में उन्हें विभाजित किया जायेगा। मैं नहीं समझता कि, इसमें कोई वर्ग दूसरे वर्ग से ऊँचा माना जायेगा। अब तक तो विद्वत्ता का अधिक सम्मान होता आया है; लेकिन यह धीरे-धीरे घट रहा है। विशेषज्ञों और विद्वानों में फर्क नहीं रहना चाहिए। जिन्हें विषय-विशेष की शिक्षा मिले, उन्हें भी चाहिए कि, वे कुछ-न-कुछ सांस्कृतिक एवं साहित्यिक ज्ञान प्राप्त करें। हुनर-उद्योग सीखने के साथ-साथ यह बात नहीं भुला देनी चाहिए कि, शिक्षा का असली ध्येय मनुष्य-मात्र को योग्य और जिम्मेदार नागरिक बनाना है!

★

# हमारे मौलवी साहब

—राजेंद्र प्रसाद

पाँचवें या छठे बरस में मेरा अक्षरारम्भ कराया गया था। उस समय मेरे भाई अंग्रेजी पढ़ने के लिए छपरा भेजे जा चुके थे। उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार अक्षरारम्भ मौलवी साहब ने कराया था। जिस दिन अक्षरारम्भ हुआ मौलवी साहब आये। बिसमिल्लाह के साथ अक्षरारम्भ हुआ, शीरनी बाँटी गयी और उनको रुपये भी दिये गये। हम तीन विद्यार्थी उनके सुपुर्द किये गये—एक मैं और दूसरे दो अपने कुटुम्ब के ही चचेरे भाई, जिनमें एक यमुना प्रसादजी सबसे बड़े और मुझसे दो बरस बड़े हैं। तीसरे अब नहीं रहे, वे भी मुझसे बड़े थे। यमुना भाई ही हम सबके लीडर थे और तमाम खेल और लड़कपन की चुलबुलेपन में आगे रहा करते थे। उनके एक चचा जो मेरे भी चचा होते थे, बड़े मजाक-पसन्द थे। वे मेरे पिताजी से छोटे होते थे, पर पिताजी के कई गुण उन्होंने सीखे थे। वे भी घोड़े की अच्छी सवारी करते, दवा करते और बाँटते और बन्दूक चलाना, गुलेल चलाना खूब जानते थे। फारसी भी पढ़ी थी और शतरंज भी खूब खेलते थे। पर इन सब चीजों में वे मेरे पिताजी का लोहा मान लेते थे। बड़े ही हँसमुख और पुरमजाक आत्मा थे।

मौलवी साहब, जो हम लोगों को पढ़ाने आये, विचित्र आत्मा थे। उनको बहुत बातों पर दावा था। बल्देव चचा के मजाक के लिए वे एक बहुत ही उपयोगी साधन बन गये। चचा तरह-तरह की बातें मौलवी साहब को सुनाते और उनको उत्साह देकर उनसे कहलाते कि वे भी—चाहे वह कोई बात या काम क्यों न हो—जानते थे या कर सकते थे। इस प्रकार मौलवी साहब का दावा था कि वे शतरंज खेलना जानते हैं। बल्देव चचा शतरंज खेलाते, पर बावजूद दावा के मौलवी साहब कभी जीतते नहीं। हम छोटे-छोटे बच्चे इन सारे मजाकों को भय और कौतूहल से देखते। हँसने का मौका आ जाये तो भी हँसना मुश्किल हो जाता। मजाक की बात दादीजी चौधराइनजी तक पहुँच गयी। वे भी कभी-कभी उसमें शरीक हो जाया करते थे।

एक दिन बल्देव चचा ने मौलवी साहब से कहा कि बाग में हनुमान आ गये हैं—उनको किसी तरह भगाना चाहिए। वे गुलेल से मारकर भगाये जा सकते हैं। इतना कहना था कि मौलवी साहब ने

दावा पेश कर दिया, वे भी गुलेल चलाना खूब जानते हैं। बलदेव चचा तो खूब समझ गये थे कि, वे कुछ नहीं जानते, पर मजाक उनको मंजूर था। वे उनको साथ लेकर बगीचे में गये। गुलेल और गोली उनके सुपुर्द कर कहा कि, खूब खींचकर एक बंदर को मारियें। मौलवी साहब ने खूब खींचकर जो गोली छोड़ी और देखना चाहा बंदर को कैसी चोट लगती है कि, इतने में उनके बायें हाथ के अंगूठे से तरतर खून टपकने लगा और चोट के दर्द से सहम कर बैठ गये। गोली बंदर को लगने के बदले मौलवी साहब के अपने अंगूठे पर ही जा बैठी थी।

एक दूसरे दिन का जिक्र है कि, शाम को सब लोग, जिनमें हमारे दादा साहब भी शरीक थे, टहलने निकले। मौलवी साहब और बल्देव चचा भी थे। तरह-तरह की बातें हो रही थी। इतने में एक साँड देखने में आया। लोगों ने कहा कि, साँड लोगों को मारता हैं। बल्देव चचा के इशारे पर मौलवी साहब इससे कब डरने-वाले थे! बेखौफ आगे बढ़े कि, इतने में साँड ने उनको दे पटका। इस प्रकार के मजाक बराबर ही हुआ करते।

एक दिन बल्देव चचा ने मौलवी साहब को बंदूक चलाने की तरगीब दी। मौलवी साहब किसी चीज को न जानना कबूल करना अपनी शान के खिलाफ समझते थे और उन्होंने साफ कह दिया कि, वे अच्छा निशाना लगा सकते हैं। उन्हें साथ लेकर बल्देव चचा बंदूक ले बाहर निकले। मौलवी साहब के दो लड़के थे, जो हम लोगों के साथ ही पढ़ा करते थे। हम सब और दोनों लड़के भी साथ हो लिये। कुछ दूर पर, एक ऊँचे दरख्त पर एक गीध बैठा नजर आया। बलदेव चचा ने उसी पर निशाना लगाने को कहा। वह काफी ऊँचाई पर था और प्राय खड़ी बंदूक करके ही निशाना लग सकता था। मौल्वी साहब को जो बंदूक दी गयी थी, वह पुराने किस्म की थी, जिसमें बारूद ऊपर से भरी जाती थी और वजनी भी थी। मौलवी साहब ने शायद कभी पहले बंदूक नहीं चलायी थी। उन्होंने प्राय खड़ी बंदूक अपने सीने पर रखकर निशाना लगाया। उधर बंदूक का घोड़ा चटका, आवाज हुई और इधर गीध के बदले मौलवी साहब जमीन पर चित गिरे। बल्देव चचा ने झट उनको उठाया और लड़कों को पानी लाने के लिए भेजा। मौल्वी साहब किसी तरह घर लाये गये।

इस तरह मजाकों के बीच हम लोग फारसी पढ़ते रहे। कुल छ-आठ महीनों के बाद मौलवी साहब चले गये। हम लोग शायद अक्षर सीख चुके थे और करीमा पढ़ने लगे थे। इसके बाद ही दूसरे मौल्वी बुलाये गये, जो बहुत गम्भीर थे और काफी अच्छा पढ़ाते भी थे।

पढ़ने का तरीका था कि, खूब सबेरे हम लोग उठकर मकतब में चले आते। मकतब मेरे घर के मकान से अलग एक दूसरे मकान के ओसारे में था। एक कोठरी

थी, जिसमें मौलवी साहब रहा करते और सामने ओसारे में तख्तपोश पर बैठकर हम लोग पढ़ा करते। मौलवी साहब कभी अपनी चारपाई पर और कभी तख्तपोश पर बैठकर पढ़ाया करते।

नाश्ता करके लौटने पर सबक याद करना पड़ता और सबक याद करके सुना देने के बाद मौलवी साहब हुक्म देते– 'किताब बंद करो।' किताब बंद करके तख्ती निकालनी पड़ती। दोपहर को नहाने-खाने के लिए एक-डेढ़ घंटे की छुट्टी मिलती और खाकर फिर मकतब में ही, उसी तख्तपोश पर सोना पड़ता। मौलवी साहब चारपाई पर सोते। हम लोगों को अक्सर नींद नहीं आती। तख्तपोश पर लेटे-लेटे शतरंज खेलते और जब मौलवी साहब के जागने का वक्त होता, तो उसके पहले ही गोटियों को उठाकर रख देते। उसी जमाने में कभी शतरंज खेलना भी आ गया, पर पता नहीं कि, कब और किससे सीखा!

चिराग-बत्ती जलते फिर किताब खोलकर पढ़ने के लिए बैठना पड़ता। संध्या को जल्द नींद आती। इससे हमेशा डर रहता कि, कहीं झुकते देखकर मौलवी साहब मार न बैठें। जल्द छुट्टी के लिए दो उपाय थे। खेल-कूद में जमुना भाई लीडर थे और जल्द छुट्टी पाने के उपाय भी वही करते। पढ़ने के लिए तेल देकर दिया जलाया जाता था। जमुना भाई दिन को ही कपड़े में राख या धूल बांधकर छोटी-सी पोटली बनाकर छिपाकर रख लेते। जिस दिन दिया में तेल अधिक देखने में आता, चिराग की बत्ती उकसाने के बहाने छिपाकर पोटली दिया में रख देते। वह देखते-देखते तेल सोख लेती और जल्द दिया बुझने पर आ जाता। मौलवी साहब

## अनुग्रह

ख्वाजा शिबली अपने वक्त के बुजुर्ग थे। आपने अपने तसर्रुफ (करामात) से अपने नफ्स (नेक काम से रोकनेवाली इच्छा) को अपने में से निकाल लिया जो कबूतर की सूरत में निकला। इस पर आपको महसूस हुआ कि, जो कुछ अल्ताफो अनवारे-खुदा वंदी (ईश्वर की कृपाएं) थे वे रद हो गये। आपको बहुत ताज्जुब हुआ अर्ज किया–"परवरदिगार यह तो तंग और मेरा दुश्मन है। अब जब कि, यह मुझमें से निकल गया मुझ पर ज्यादा अल्ताफो-इकराम (कृपा) होने चाहिए थे।" फरमाया गया– "शिबली तुम पर मेरे इनायत इसी बिना पर थे कि मेरे दुश्मन की मौजूदगी और उसकी हर वक्त की मुखालिफत के होते हुए तू मेरी इबादत (पूजा) और इताअत (आज्ञाकारिता) में लगा हुआ था। अगर यह न रहे तो फिर तेरी क्या कद्र! तब तो तू मजबूर होगा इबादत और याद के लिए!"

—सैयद हुसैन अहमद मदनी

दाई पर रंज होते कि, तेल क्यों कम लायी, पर मजबूर होकर जल्द ही किताब बंद करने का हुक्म दे देते।

किसी किसी दिन जमुना भाई पेशाब करने के लिए छुट्टी माँगकर बाहर जाते और पेशाब करने के बदले दौड़कर कभी मेरी माँ के पास, कभी-कभी अपनी माँ के पास और कभी गंगा भाई की माँ के पास जाकर यह बात कि, अब नींद लग रही है—जल्द दाई को हमें बुलाने के लिए भेजो, नहीं तो पिट जायेंगे। उनके पेशाब से लौटने के थोड़े ही बाद दाई पहुँच जाती और मौलवी साहब से कहती—"अब छुट्टी दे दीजिये।"

एक दिन जब इस तरह जमुना भाई दौड़ जा रहे थे, तो गाँव के एक सज्जन ने, जो रिश्ते में हम लोगों के चचा होते थे, उन्हें देख लिया और जाकर मौलवी साहब से कह दिया कि जमुना कहीं दौड़े जा रहे थे। तहकीकात हुई और जमुना भाई की कैफियत हुई कि, वे पेशाब करने गये और अंधेरे में डर गये, इसलिए भागे आ रहे थे। इस तरह से बचे।

जो-कुछ वहाँ फारसी का ज्ञान हुआ, उन्हीं मौलवी साहब ने दिया। हम सब भी उनको प्यार करने लगे थे। जब घर छोड़कर छपरा अंग्रेजी पढ़ने के लिए जाना पड़ा, तो मौलवी साहब को और हम लोगों को भी बड़ा दुःख हुआ।

★

## मेरे मुंशीजी

एक और शख्स थे, जिन पर लड़कपन में मैं भरोसा करता था। वे थे पिताजी के मुंशी मुबारक अली। वे बदायूँ के रहनेवाले थे और उनके घर के लोग खुशहाल थे। मगर १८५७ के गदर ने उनके कुनबे को बरबाद कर दिया और अंग्रेजी फौज ने उसे एक हद तक जड़मूल से उखाड़ फेंका था। इस मुसीबत ने उन्हें हर-एक के प्रति और खासकर बच्चों के प्रति बहुत विनम्र तथा सहनशील बना दिया था। मेरे लिए तो वे जब-कभी मैं किसी बात से दुःखी होता या तकलीफ महसूस करता, तो सान्त्वना के निश्चित आधार थे। उनके बढ़िया सफेद दाढ़ी थी और मेरी नौजवान आँखों को वे बहुत पुराने और प्राचीन जानकारी के खजाने मालूम होते थे। मैं उनके पास लेटे-लेटे घंटों अलिफलैला की और दूसरी किस्से-कहानियाँ या १८५७-५८ की गदर की बातें सुना करता। बहुत दिन बाद, मेरे बड़े होने पर मुंशीजी मर गये। उनकी प्यारी सुखद स्मृति अब भी मेरे मन में बसी हुई है।

—जवाहरलाल नेहरू

★

मैं टूथ पेस्ट
व्यवहार करता हूँ
मैं टूथ-पावडर व्यवहार करती हूँ
मैं तो अपना
ही बनाया
हुआ मंजन व्यवहार करता हूँ
लेकिन हम सभी
टूथ ब्रश व्यवहार करते हैं
दांतों को अत्यधिक स्वच्छ करता है—अधिक दिन चलता है
निर्माता : आर्यन ब्रश कं. लि.
विवरण : मेसर्स

# मेघदूत को चरितार्थ करनेवाला वायुयान

*कल्पना का जो सत्य है, वह मूल सत्य से कई गुना अधिक वास्तविक होता है क्योंकि मूल सत्य साकार होता है और कल्पना का सत्य निराकार। निराकार तो साकार से अधिक तात्त्विक होता ही है। श्री ओमप्रकाश द्वारा लिखित नीचे के लेख में आप कवि-कल्पना के सत्य को वस्तु विज्ञान के साकार सत्य का रूप लेते देखेंगे।*

★

मैं अपने वायुवेग पर बैठा हुआ आकाश में सीधा ऊपर उठ रहा था। नीचे सागर की उत्ताल तरंगें नर्तन कर रही थी। चारो दिशाओ में जल क्षितिज को स्पर्श करता जान पडता था। भगवान भास्कर किरणो के रथ पर आरूढ होकर पूर्व से पश्चिम की ओर जाने की तैयारी कर रहे थे। पक्षियों का कलरव वायुमडल की नीरवता को विदीर्ण करता हुआ निरतर बढ़ता जा रहा था। मैं इसी दृश्य को देखने में तल्लीन था। मेरा वायुवेग उस समय सागर-तल से लगभग २० फुट ऊँचा आकाश में स्थिर खडा था। अचानक तभी नीचे से एक करुण क्रदन की ध्वनि मुझे सुनायी पड गयी।

मैं चौंक उठा। नीचे की ओर ध्यान से दृष्टि दौडायी। जब कुछ दिखायी न दिया, तो दूरवीक्षण-यत्र की सहायता ली। लगभग एक मील की दूरी पर पश्चिम मे एक मोटर-बोट सागर में डूब-उतरा रही थी और उसका चालक एक लकडी म कपडा बाँध कर, जोर-जोर से मुझे ही लक्ष्य करके सहायता के लिए पुकार रहा था।

मैं अपने वायुवेग म उठकर खडा हो गया। बायी ओर को थोडा झुका। वायुवेग जो आकाश में स्थिर खडा था, मेरे झुकते ही पश्चिम की ओर तीव्र गति से उडने लगा। कुछ क्षणो में ही मैं मोटर-बोट के ठीक ऊपर आ गया। अब मैं पुन बैठ गया। मेरे बैठते ही वायुवेग नीचे की ओर गिरने लगा। मोटर-बोट से पाँच फुट की ऊँचाई पर जब वायुवेग आया, तो मैंने उसे पुन स्थिर कर दिया। फिर मैंने एक झूला वायुवेग से नीचे लटका दिया। झूला निकट पहुँचते ही

चालक उसमें बैठ गया और कुछ ही क्षणों में वह वायुवेग के अंदर था।

थोड़ी देर बाद स्थिर-चित्त होने पर वह बोला—"आपके वायुवेग को मैंने पहले किसी अन्य नक्षत्र से आयी हुई उड़न-तश्तरी समझा था। जब आप मेरे काफी समीप आ गये, तो मुझे ज्ञात हुआ कि, आप वायुवेग पर सवार हैं।'

वह क्षण-भर को रुका और फिर कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहने लगा—"जहाँ आपने इतना कष्ट किया है, वहाँ थोड़ा और कष्ट करें, तो मैं आपका बड़ा आभारी रहूँगा। मेरे एक वैज्ञानिक बंधु इस सागर-तट के घने और बीहड़ जंगल के दूसरी ओर दलदल में कुछ खोज करने के लिए आये हैं। उन्होंने मुझे अपना संदेश भेज कर, निकट के नगर में मोटर-बोट ले आने का आदेश दिया था, पर अब यह मोटर-बोट तो बेकार ही हो चुकी है। उनके पास जेबी 'रेडियो-प्रेषक' और 'संग्राहक' हैं। आप कृपया मेरी इस स्थिति की सूचना उन्हें दे दीजिये।"

मैंने अपना जेबी रेडियो निकालकर चालक की सूचना वैज्ञानिक के पास पहुँचा दी। अब मैं थोड़ा दाहिनी ओर को झुका और तत्काल ही वायुवेग तीव्र गति से पूर्व की ओर उड़ने लगा।...

ऊपर जिस दृश्य का वर्णन किया गया है, वह काल्पनिक नहीं, सत्य है। युग-युग से मानव ने जिस उड़नखटोले की कल्पना की है—नानी की कहानियों-द्वारा जिसका उसने पालन-पोषण किया है, परियों और देवदूतों के साथ जिसका अजर-अमर गठबंधन रहा है—वैज्ञानिकों ने आज उसे साकार रूप दे दिया है। सीधे-सादे उड़न-खटोले की मानव की यही कल्पना रही है कि, उसे चलाने के लिए न किसी विशेष यंत्र की आवश्यकता पड़े और न यांत्रिक ज्ञान के शिक्षण-प्राप्त चालक की। वायुवेग मानव की इसी कल्पना का मूर्त रूप है।

अमेरिका के केलिफोर्निया प्रांत में 'हिल्लर हेलिकाप्टर्स' नाम से एक बड़ा विशाल कारखाना है। वहीं पर मानव के इस चिर-आकांक्षित कल्पना को विज्ञान ने यथार्थ में परिणत कर दिया है।

वायुवेग आधुनिक युग का सचमुच ही एक अभिनव आविष्कार है। आकाश में कई सौ फुट की ऊँचाई पर यह गोलाकार वायुवेग बिना किसी विशेष यंत्र की सहायता से आगे-पीछे, दायें-बायें उड़ता रहता है। नीचे से देखने पर कभी भी यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि, वायुवेग किस शक्ति के आधार पर आकाश में इतनी ऊँचाई पर स्थिर है अथवा इधर-उधर चक्कर रहा है। हाँ, इसके एंजनों से निकली ध्वनि यह अवश्य स्मरण करा देती है कि, यह कोई जादू का खेल नहीं है, अपितु इसमें उड्डयन-विज्ञान की कोई ऐसी क्रांतिकारी विधि अपनायी गयी है, जो निकट भविष्य में ही आकाश में उड़ने की विधियों में कई अद्भुत परिवर्तन ला देगी।

'हिल्लर हेलिकाप्टर्स' कम्पनी में, जहाँ

पर वायुवेग का निर्माण हुआ है, कुछ विशेष व्यक्तियों को इसकी उड़न-क्रिया से परिचित कराया जाता है। अमेरिका के श्री सी डी रेटक्लिफ ने अपने एक लेख "इन द वे आव हेवेन" में इसका बड़ा ही रोचक विवरण दिया है—

"मैं 'हिलर्स हेलिकाप्टर्स' के कर्मचारियों-द्वारा उस सुनसान व विस्तृत मैदान में ले जाया गया, जो चारों ओर वृक्षों से घिरा हुआ था। मैदान के ठीक पीछे एक बड़ा भवन था। मेरे पहुँचते ही इस भवन का स्वतःचालित द्वार खुला और दो कर्मचारी एक यन्त्र को उठाकर मैदान में ले आये। यह यन्त्र मटमैले नीले रंग का था और इसकी आकृति नहाने के किसी टब-जैसी थी। इस यन्त्र के उड़ने से पूर्व की अंतिम तैयारियाँ की गयीं और मुझे बताया गया कि, इसी यन्त्र का नाम वायुवेग है। इसके चालक ने अपना सम्पूर्ण शरीर गहरे हरे रंग के चुस्त लबादे से ढक लिया था। उसने पास में खड़े इंजीनियरों और मिस्त्रियों से कुछ परामर्श किया और फिर यन्त्र के मध्य में बने लोहे के एक गोलाकार ढाँचे में जाकर खड़ा हो गया। इस ढाँचे के नीचे लकड़ी की सतह थी। सारी तैयारियाँ समाप्त हो चुकी थी, अतः अब उसने मुझे भी वायुवेग में सवार हो जाने के लिए कहा।

"आसपास के सभी मनुष्यों को हटा दिया गया। केवल एक मिस्त्री वायुवेग के समीप खड़ा था। वह यन्त्र पर झुका और जैसे किसी मोटर-बोट को 'स्टार्ट' कर रहा हो, वायुवेग के 'स्टार्टर-तार' को उसने आगे की ओर खींचा। अचानक एंजिन का कोलाहल उस नीरव क्षेत्र में गूँज उठा। यन्त्र के नीचे से नीला धुआँ निकल कर चारों ओर फैलने लगा। मिस्त्री ने दूसरा 'स्टार्टर-तार' भी खींच लिया और स्वयं हट कर दूर खड़ा हो गया। ज्यों-ज्यों एंजिनों से निकली ध्वनि तीव्र होने लगी, त्यों-त्यों वायुवेग आकाश में सीधा ऊपर उठने लगा। इस समय के दृश्य को देखने से ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो आकाश से कोई अदृश्य रस्सा वायुवेग को बाँध कर ऊपर की ओर खींच रहा हो।

[वायुवेग' का आदि कल्पक चक जी वेल्स]

"वायुवेग जब धरातल से लगभग साठ फुट ऊँचा उठ गया, तो चालक ने लोहे के ढाँचे में लगे हत्थे-द्वारा एंजिनों की शक्ति कुछ कम कर दी। तत्काल ही वायुवेग शिशु की तरह बीच में ही स्थिर हो गया। न तो वह ऊपर ही उठ रहा था और न अब नीचे ही आ रहा था।

"कुछ देर पश्चात्, स्थिर वायुवेग में खड़ा चालक थोड़ा-सा आगे झुक गया। उसके झुकने के साथ-साथ वायुवेग भी उसी दिशा में झुककर पुनः गतिवान हो उठा। अब वह उसी दिशा में बढ़ रहा

था। थोडी दूर तक जाने के बाद चालक पुन सीधा खडा हो गया। उसी क्षण झुका हुआ वायुवेग भी सीधा होकर गतिहीन हो गया और वायुमडल के उसी तल पर स्थिर खडा हो गया। चालक के थोडा बायें झुकते ही एक आज्ञाकारी सेवक की भाँति वायुवेग भी बायी ओर झुक कर उसी दिशा में आगे बढने लगा। जब चालक दाहिनी ओर को झुका, तो यत्र भी बाये के स्थान पर दाहिनी ओर चलने लगा। "

इस विवरण को पढकर सहसा ही मन में विचार उठता है कि, यही वह वस्तु है, जो सर्वसाधारण का वायु-वाहन बन सकती है। सरल रचना और सरल नियत्रण— ये दो बाते जनसाधारण के वाहन के लिए आवश्यक है और ये दोनों ही बाते इस वायुवेग में पायी जाती है। इसे नियत्रण में रखने के लिए चालक का भार और एक साधारण पुर्जा-भर पर्याप्त है। चालक का भार जिस दिशा में पडता है, उसी दिशा की ओर यह वायुवेग चल पडता है। किन्तु यदि चालक बिल्कुल लेट जाये या लुढक जाये, तो इसका यह अर्थ नही कि, वायुवेग भी उलट जायेगा। इस वायु-वाहन में अब तक की समस्त वायु-वाहनो की भाँति पखो की आवश्यकता नही और न यह 'हेलिकाप्टर' ही है। अमेरिका में इस वायुवेग को 'फ्लाइग मोटर-साइकिल', 'फ्लाइग प्लेट-फार्म', 'फ्लाइग रिंग', 'फ्लाइग बाथ-टब' आदि भिन्न-भिन्न नामो से पुकार रहे है।

वायुवेग के आविष्कार का श्रेय वास्तव में, अमरीकी नौ सेना के इजीनियर चार्ल्स एच जिमरमैन को है। द्वितीय महायुद्ध के समय ही उनके मस्तिष्क में यह अद्भुत कल्पना उठी थी और तब से वे इस पर अपने अतिरिक्त समय में निरतर काम करते रहे।

सन् १९४६ में 'हिलर्स हेलिकाप्टर्स' के स्वामी स्टैन हिलर की जिमरमैन से भेट हुई। उसने जिमरमैन से उनका वह यत्र खरीद लिया।

हिलर के कारखाने में यह यत्र १९५१ तक निष्क्रिय पडा रहा। १९५१ में जिमरमैन ने अपने एक सहयोगी इजीनियर हिले को अपने इस यत्र के विषय में बताया। हिले इस यत्र के प्रति आकर्षित हो उठा। दोनों ने मिलकर आविष्कार पूर्ण करने का निश्चय कर लिया। हिलर से मिलने पर उसने भी आपत्ति नही की। और, इस बार सफलता ने मुस्कराकर जिमरमैन का स्वागत किया— उनके इस यत्र ने कुछ इचो तक ऊपर आकाश में उठने की शक्ति प्राप्त कर ली।

इस सफलता से प्रोत्साहित हो हिलर ने दोनों इजीनियरो को और भी सुविधाएँ दी और अतत २७ जनवरी, १९५५ को जनसाधारण का यह वायु-वाहन-विज्ञान की अद्भुत देन वायुवेग—पूर्णरूपेण तैयार हो गया। वस्तुत यह यान वायु-वेग द्वारा ही ऊपर उठता है। जब इसके एंजिन पर्याप्त दबावकारी वायु आकाश में नीचे की ओर मुक्त करते है, तो इस वायु के दबाव का उछाल यत्र को प्राप्त होता है और यह ऊपर उठ जाता है।

★

# कुबेर का कोष
## शाहजहाँ के खजाने में

श्री के आर एन स्वामी लिखित एक लेख का संक्षिप्त हिन्दी-रूपांतर

★

बड़े-बड़े जौहरी, जिनको रत्नो का अच्छा परिचय प्राप्त है, प्राय बड़े-बड़े रत्नों की चर्चा करते है—कहते है, अमुक हीरा मुर्गी के अडे के इतना बडा है, अमुक व्यक्ति के पास का अमुक रत्न इतना वजनी अथवा इतना बडा है, पर लदन की जौहरियो की समिति के उपाध्यक्ष का कहना है कि, इस युग के सबसे बडे धनियों में गिने जानेवाले निजाम यदि अपना रत्न-भाडार बेचना चाहे, तो उनके लिए खरीदार ही मिलना कठिन है। मोतियो की लडियों वाली चटाइयो अथवा हीरा लगे वस्त्र का उपयोग सिवा राज-प्रासाद की शोभा बढाने के और हो ही क्या सकता है? उन्हे लेकर कोई करेगा भी क्या भला?

निजाम का 'पेपर-वेट' १५० कैरट वजन का एक हीरा है। उसका मूल्य आँका गया है, १॥ करोड रुपये! और, उस 'पेपर-वेट' का भी कोई खरीदार नही है, फिर अतुल रत्न-राशि का प्रश्न ही क्या है?
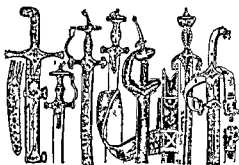
पर निजाम की यह रत्न-राशि, जिसके कारण आज उनकी गणना विश्व के सबसे बडे धनियों मे की जाती है, सदियो की लूट के बाद बचे, मुगलो के सचय का एक अत्यल्पाश-मात्र है। जिस समय वर्तमान निजाम के पूर्वज आसफजाह ने दिल्ली से हैदराबाद के लिए प्रस्थान किया था, उस समय तक दिल्ली का चाँदनी चौक चार बार लुट चुका था। चाँदनी चौक का उस समय क्या महत्व रहा होगा, इसे इसी बात से आँका जा सकता है कि, वहाँ की लुटी रत्न-राशि का वह अश, जो आज निजाम के पास है, उसके

[ शाहजहाँ के खजाने की कुछ रत्न जटित तलवारें ]

भी खरीदार नही मिल रहे है।

यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि, चाँदनी चौक की रत्न-राशि का अधिकांश भाग पंचम मुगल सम्राट् शाहजहाँ के कोष में पहुँचा। शाहजहाँ के समान रत्नों का पारखी उस काल में एक भी नही था। उसे रत्नों के संचय में इतनी रुचि थी कि, गोल्कुंडा की खान के केवल वही हीरे बाजार में जा पाते थे, जिन्हें वह नापसंद कर देता था। यहाँ यह बात भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि, १७२६ तक गोलकुंडा की खान ही विश्व की सबसे बड़ी हीरे की खान थी। फिर, रीजेंट, कोहेनूर आदि कितने ही एतिहासिक हीरे गोलकुंडा से ही प्राप्त हुए हैं।

शाहजहाँ की परख और रत्न-संचय की उसकी रुचि के फलस्वरूप, पूर्वी देशों के प्राय सभी बड़े बड़े जौहरी रत्न और रत्नों की बनी चीजें दिखाने के लिए शाहजहाँ के दरबार में आया करते थे।

जब शाहजहाँ वृद्धावस्था में अपने पुत्र औरंगजेब-द्वारा बंदी बना लिया गया, तो खजाने की पूरी रत्न-राशि उसके पास मूल्य आँकने के लिए भेजी गयी थी। शाहजहाँ एक-एक चीज देखता और उसका मूल्य बताता चलता। बड़े-बड़े जौहरी उस समय वहाँ मौजूद थे। किसी की जबान न खुली। सभी सिर हिला हिला कर स्वीकारोक्ति दिया करते थे।

[बहुमूल्य रत्नालंकारों से सुसज्ज एक मुगल रमणी]

जहाँ तक मूल्य आँकने का प्रश्न है, शाहजहाँ को धोखा देना असम्भव था। कहा है कि, उसके दरबार में रहनेवाले अंग्रेज राजदूत सर थामस रो के पास एक मृग के सींग की तरह की एक चीज थी। सर थामस को यह बात ज्ञात थी कि, शाहजहाँ को अद्भुत वस्तुओं के संग्रह का बड़ा शौक है, अतः उसने एक दिन बात-बात में उसे बेचने की चर्चा चलायी। उस सींग के सम्बन्ध में उसने शाहजहाँ से कहा कि, यदि इसमें कोई तरल विष रखा जाये, तो उसका जहर समाप्त हो जायेगा। उसका जो दाम बताया गया, शाहजहाँ को वह ठीक नही जँचा। अतः उस बात को ही वह बड़ी मधुरता से टाल गया। सर थामस रो को इससे बड़ी निराशा हुई और अंत में, उसने कुछ दिनों बाद, उसे बड़े सस्ते मूल्य में एक डच सैन्याधिकारी के हाथ बेच दिया।

पर शाहजहाँ में एक गुण भी था। वह संचय को ही बहुत अधिक महत्व नहीं देता था, बल्कि बड़ी-बड़ी चीजें लोगों को प्राय पुरस्कार में या भेंट के रूप में दे देता था। एक दिन उसके पास गोल्कुंडा से एक हीरा आया, जिसमें ,घ,पतारे से भी

अधिक चमक थी। उस हीरे को देखकर उसकी इच्छा उसे मक्का-स्थित नबी की मसजिद को भेंट कर देने की हुई। अतः उसने ७ सेर सोने के एक शमादान में उस हीरे को जड़े जाने की आज्ञा दी और उसे मक्का भेज दिया। यदि उस शमादान का मूल्य लगाया जाये, तो कम-से-कम एक करोड़ रुपया होगा।

शाहजहाँ को युद्धों से भी बड़ी सम्पत्ति मिली। उसके शासन के प्रारम्भ के ही दिनों में, जब शाही सेना ने गोलकुंडा पर आक्रमण किया, तो वहाँ के शासक ने दो सौ थाल भरकर रत्न, सुलह करने के लिए भेजे। *किन्तु इतनी भेंट देखकर* शाहजहाँ की तृष्णा और बढ़ी और उसकी सेना वहाँ से तीस करोड़ से अधिक की सम्पत्ति लूट कर ही हटी।

मुगल-कुबेर शाहजहाँ
[चित्र: 'इंडियन ज्वेलरी ऐंड आर्नामेंट्स' नामक ग्रंथ से साभार]

आज तक कोई इतिहासकार शाहजहाँ के खजाने को कूत नहीं सका है। कहा जाता है कि, उसके खजाने में फ़ारस तथा ईरान दोनों देशों के संयुक्त राज-कोषों से अधिक धन था। उसके रत्न-भांडार में रत्नों का संचय इस कदर था कि, एक बार उसके कोषाध्यक्ष को शाहजहाँ से यह प्रार्थना करनी पड़ी—"कोषागार की दीवारें तोड़ कर उसे और बड़ा करना चाहिए।"

कोषागार की समस्या सुलझाने के लिए ही शाहजहाँ ने 'तख्त-ताऊस' बनवाया, जिसका मूल्यांकन उस समय ५३ करोड़ रुपये किया गया था। एक इतिहासकार ने लिखा है—"तख्त-ताऊस के लिए आज्ञा हुई कि, बड़े-बड़े माप के माणिक, रक्तमणि, मोतियाँ, हीरे, पन्ना आदि ७ मन तथा सोना ३५ मन स्वर्णकार-विभाग के प्राधिकारी को दे दिया जाये।" राज्य के सबसे कुशल कारीगरों ने उस तख्त को ७ वर्षों में तैयार किया था।

शाहजहाँ ने अपने शासन-काल में बहुत-सी इमारतें बनवायी तथा वह स्वयं भी बड़े ठाट-बाट से रहता था, लेकिन कहा जाता है कि, *जब वह तख्त से उतारा गया*, तो उसके कोष में उस समय की अपेक्षा अधिक धन था, जब वह गद्दी पर बैठा था। रत्नों में बिना तराशे हीरे लगभग अस्सी रतल (लगभग ५० लाख कैरट), माणिक सौ रतल, पन्ना सौ रतल तथा मोतियाँ ६०० रतल थीं। इनके अतिरिक्त छोटे मोटे अथवा कम मूल्य के रत्नों की तो संख्या बताना ही कठिन है।

उसके शस्त्रागार में दो हजार तलवारें ऐसी थीं, जिनकी मूठों में हीरे जड़े थे। दरबार में १०३ कुर्सियाँ ठोस चाँदी की तथा पाँच ठोस सोने की थीं। इनके अतिरिक्त २ सोने के और ३ चाँदी के

सिंहासन राजकुमारों के लिए और 'तख्त-ताऊस' के अतिरिक्त बहुमूल्य हीरे-जटित सात सोने के सिंहासन शाहजहाँ के लिए थे। उसके स्नान करने के 'टब' का ही मूल्य आज १० अरब रुपये होते। सात फुट लम्बा और पाँच फुट चौड़ा वह 'टब' बहुमूल्य हीरों से ऐसा जड़ा हुआ था कि, सोना नजर ही न आता था।

शाहजहाँ के महल में २५ टन (लगभग ७०० मन) सोने के बरतन थे तथा ५० टन (लगभग १४०० मन) चाँदी के चाकू, सरौते आदि सामान थे। तोशाखाना के अधिकारी के पास उसके महल के इन बरतनों आदि की पूरी सूची थी। हर चीज पर शाही मुहर लगी होती थी और उसकी सुरक्षा का पूर्ण दायित्व तोशाखाना के उस अधिकारी के ऊपर था। केवल कपड़े शाहजहाँ के पास एक करोड़ रुपये से अधिक के थे और २५ लाख से अधिक के चीनी मिट्टी के बरतन।

इन रत्नों आदि के अतिरिक्त शाही महल में बड़े महत्व की वस्तु थी—पुस्तकालय। उसमें २४ हजार हस्तलिखित ग्रंथ थे। उस समय पुस्तकें इतनी सस्ती तो थी नहीं, अतः कहना चाहिए कि, उनका भी मूल्य १ करोड़ से कम का नहीं था।

यह ध्यान रखने की बात है कि, ये आँकड़े अधिकांशतः १७-वीं शताब्दी के हैं। तब से अब रुपये का मूल्य बहुत बदल गया है।

शाहजहाँ की सम्पत्ति का कुछ अंदाज, ब्रिटिश नरेश की सम्पत्ति से उसकी तुलना करने से, किया जा सकता है। फरवरी १९५२ में ब्रिटिश नरेश की निजी सम्पत्ति १५ करोड़ डालर (लगभग ७५ करोड़ रुपये) आँकी गयी थी। यह सम्पत्ति शाहजहाँ की सम्पत्ति की तुलना में नगण्य है। लेकिन 'बैंक आव इंग्लैंड' की भी सम्पत्ति ब्रिटिश नरेश की निजी सम्पत्ति यदि मान ली जाये, तो भी शाहजहाँ की सम्पत्ति उससे किसी प्रकार कम नहीं थी।

★

## व्यवसाय की सफलता

एक दूकानदार किसी उद्योगपति के बारे में बता रहा था कि, वह अपना व्यवसाय चलाना बिल्कुल नहीं जानता। एक रोज मुलाकात होने पर उसने उद्योगपति को व्यवसाय की सफलता पर कुछ हिदायतें दीं।

उसके मित्र इस घटना का जिक्र सुन काफी प्रभावित हुए। "अच्छा फिर क्या हुआ ?" उन्होंने पूछा।

'कुछ नहीं।" दूकानदार ने जवाब दिया—"वे अपनी मोटर में बैठकर अपने घर गये और मैं बस में बैठकर अपने घर।" —'लाइटर' से

★

# कला अस्तित्व की भूख

—नंदलाल बोस

*कला एक सूत्र है, सोपान है जो व्यक्त अव्यक्त और नश्वर अनश्वर के बीच सम्बन्ध बनाये रखती है। काल को अजेय कहा है। किन्तु मनुष्य से अजेय कुछ भी नहीं। कला के स्वर्ण-खण्ड पर आसीन पुरुषोत्तम ने सदैव ही तो काल को पराजित किया है।*

★

मानवता पर आज जो गहरा संकट छाया हुआ है उसके समस्त कारणों के मूल में है मानव की अपरिमित तृष्णा। हमारा व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन वास्तविक विकास के रास्ते से दूर जा पड़ा है। विकास की दिशाओं में एक असंतुलन है जिससे वास्तविक विकास मारा जाता है। केवल राजनीतिक या आर्थिक उपाय, इस अवस्था का सामयिक प्रतिकार ही दे पाते हैं। किन्तु इसका अधिक प्रभावशाली और अधिक स्थायी प्रतिकार तो केवल ऐसी प्रेरणाएँ हैं—अगर हैं तो—जो केवल इस जीवन की परिधि, अपने 'अहं' की तुष्टि और 'अहं' के प्रसार तक ही सीमित न हों।

साहित्य और कला का स्थान इन्हीं प्रेरणाओं में है। सच्ची कला बिखरे हुए तत्वों को संयोजित करती है और आदमी को ऊपर उठाती है। ठीक इसी प्रकार के युग में, जैसा हमारा है—जब स्पष्टतः सभी वस्तुओं में विघटन आ गया है—कलात्मक और आध्यात्मिक विद्या की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। बहुत-से लोग हैं—और महत्वपूर्ण लोग हैं—जो ऐसे समय में कला-साधना की उपयोगिता पर प्रश्न चिह्न लगा रहे हैं, जब देश और दुनिया को ऐसी समस्याओं को सुलझान

रस निमग्न

[चित्र श्री नन्दलाल बसु]

के लिए–जिन्हें आधारभूत समस्या कहा जाता है–अधिक शक्ति की आवश्यकता है। मेरे विचार से यह एक गलती है। कला की साधना विलास नहीं है, न स्वप्न-लोक में पलायन है। अपने उच्चतम रूप में कला की साधना में हमारा व्यक्तित्व अपनी उन्नतिशील आत्मानुभूति की ओर बढ़ता रहता है। किसी भी युग में कला की उपेक्षा करने पर हमें उसका मूल्य चुकाना ही पड़ता है। कला तो हमारे स्वभाव की एक विचित्र आवश्यकता है।

चारों तरफ एक अंधेरा छाया हुआ है, जो हमारे 'अहं' और अज्ञान के कारण और भी गहरा हो गया है। उसमें जो आत्म-ज्योति दीख पड़ती है, कला उसी के प्रकाश की किरण है। ये किरणें 'दीपक तले के अंधेरे' को दूर करती हैं। अगर हमारी पीड़ा नहीं, तो कम-से-कम पीड़ा के कारणों को तो दूर करती ही है।

प्रत्येक मनुष्य में कहीं-न-कहीं एक कलाकार है। और, जो समाज हर युग और हर काल की कला की थाती को अपने हर सदस्य के लिए सुलभ बना देता है, वही सही अर्थों में एक सभ्य समाज है।

इस सम्बन्ध में कलाकार का भी एक विशेष उत्तरदायित्व है। उसे सस्ती और महत्वहीन वस्तुओं में नहीं उलझ जाना चाहिए। एक सुसंगठित समाज में कलाकार 'एक बेकार की वस्तु' नहीं होता, वैयक्तिक विकृतियों और ऊलजलूल व्यवहारों का प्रदर्शन-मात्र नहीं होता। उसमें ईमानदारी और संतुलन होना चाहिए। उसे साधकों की तरह मनसा जागरूक और उच्चादर्शों का प्रेमी होना चाहिए। अपने स्वधर्म का सावधानी से पालन करते हुए, नाम और रूप में अंतर्निहित अनंत तत्व के भेदा और समन्वय के स्रष्टा के रूप में वह अपना सामाजिक कर्तव्य पूरा करता है।

यह बात सदैव स्मरण रखने की है कि, कला के क्षेत्र में परम्परा की थाती वैसी ही है, जैसी व्यवसाय में पूंजी! यदि उसका उचित उपयोग किया जाये, तो बहुत लाभ हो सकता है। लेकिन दो वस्तुएँ ऐसी हैं, जिनके सहारे परम्परा अपने को पूर्ण कर पाती है। वे हैं—प्रकृति और मौलिकता। प्रकृति, मौलिकता और परम्पराएँ, तीनों मिलकर ही एक पूर्ण कलाकार का निर्माण करती हैं।

★

## शिकायत

एक स्त्री ने अपने पति से शिकायत की–"तुम तो बस एक कान से सुनते हो और दूसरे से निकाल देते हो।" पति ने उत्तर दिया–"लेकिन तुम दोनों कानों से सुनती हो और मुँह से निकाल देती हो!" –'तरंगवली' से

★

आधुनिक उर्दू साहित्य के श्रेष्ठतम काव्य शिल्पी एवं लेखक 'जोश' मलीहाबादी जीने की कला के भी कितने बड़े शिल्पी हैं, यह इस लेख से स्पष्ट हो जायेगा। अपनी ही बदहवासियों से वे कितना आनंद लूटते हैं जरा यहाँ पढ़िये!

★

मैं अपने गमगीन भाइयों को हँसाना चाहता हूँ। चाहे वे मुझ पर ही क्यों न हँसें, लेकिन हँसें तो!

खैर, सुनिये। एक मुशायरे के सिलसिले में सदीला गया हुआ था। एक दिन सुबह के वक्त जी बहलाने के लिए स्टेशन की तरफ निकल गया और वहाँ प्लेटफार्म पर टहलने लगा। इतने में गाडी आ गयी और प्लेटफार्म पर आकर ठहर गयी। मैं गाडी की सैर करने लगा। देखता क्या हूँ कि, एक 'फर्स्ट क्लास' डब्बे में मेरे एक बडे प्यारे दोस्त बैठे हुए हैं। मैं बडे शौक से उनकी तरफ बढा। वे भी खिडकी के पास आकर खड़े हो गये। मैंने खिडकी में सिर डालकर उनसे हाथ मिलाना चाहा कि, झड से किसी चीज के टूटने की आवाज आयी और मेरे माथे से खून टपकने लगा। वे मेरे प्यारे दोस्त गायब हो गये। आप समझे भी, वह दोस्त साहब कौन थे? खिडकी के बंद शीशे में खुद मेरा

अपनी ही मूर्खता पर हँस-हँस कर लोट-पोट हो जाने वाली दो महिलाएँ
[चित्र: एक प्राचीन राजस्थानी चित्र की सरल रेखानुकृति]

ही अक्ल पर रहा था। ... ..

एक बार एक नवजवान दोस्त के साथ हैदराबाद के एक 'पार्क' में टहल रहा था कि, सामने से एक मोटर में एक बुजुर्ग आते दिखायी दिये। मुझसे उनसे साहब-सलामत हुई और मोटर निकल गयी। मैंने अपने दोस्त से कहा—"देखिये, जिंदगी में कैसे-कैसे अहमकों से साहब-सलामत करनी पड़ती है!" यह कहते ही मैंने देखा कि, दोस्त के चेहरे का रंग उड़ गया और यह रंग देखते ही मुझे याद आया कि, वे बुजुर्ग इन दोस्त साहब के बाप थे।

एक दिन दफ्तर जाने में जरा देर हो गयी थी। मैंने जल्दी-जल्दी कपड़े पहने और पर्दा उठाकर बाहर जाने लगा। एकाएक मेरी बीवी और बच्चों के कहकहों की आवाज ने वहीं-का-वहीं रोक दिया। देखता हूँ, तो पाजामे के अलावा और सब कपड़े पहने हुए था।

एक बार मेरी मोटर बिगड़ गयी थी, जिसकी वजह से दो महीने तक दफ्तर और दूसरी जगहों पर ताँगे पर जाना पड़ा। दो महीने बाद मोटर आयी, तो मैं अपने दोस्त 'जौकी' को साथ लेकर शाम के वक्त घूमने निकला। रास्ते में ताँगों का अड्डा आया, तो मैंने फौरन मोटर रोक दी और जौकी से कहा—"भाई जौकी, यह सामनेवाला ताँगा ले लो, इससे अच्छा ताँगा नहीं मिल सकेगा!" और, जब जौकी ने बड़े जोर का एक कहकहा लगाया, तो पता चला कि, मोटर में बैठे हुए हैं।

एक और दिन की बात है। सुबह के वक्त घूमता हुआ, एक चौराहे पर जा निकला। सामने पुलिस का आदमी खड़ा था, उसे देखते ही मैं रुक गया और दाहिने हाथ से 'साइड' देने लगा। सिपाही हैरान होकर मेरा मुँह ताकने लगा। उधर मुझे ताव आने लगा कि, मोटर क्यों रोके हुए है और 'साइड' क्यों नहीं देता? जब मैंने बड़े गुस्से के साथ हाथ हिलाना शुरू किया, तो पुलिस वाला मेरे पास आया और बोला—"साहब, क्या बात है?" यह सुनते ही मुझे मालूम हुआ कि, मैं तो सड़क पर खड़ा हूँ। इसलिए फौरन ही बड़ी तेजी के साथ आगे चल दिया और सिपाही बिचारा वहीं खड़ा देखता रह गया .. ...।

★

## विचित्र कर

सन् १७०५ में गोवा के पोर्तगीज अधिकारियों ने एक विचित्र कर लागू किया था। प्रत्येक चोटी पर सालाना आठ रुपये कर लगने लगा। इससे गोवा-सरकार को प्रति वर्ष पन्द्रह हजार रुपये की आय होती थी। गोवा के निवासियों को ईसाई बनने पर मजबूर करने के लिए ऐसा किया गया था। करीब सौ साल तक यह कर वहाँ लागू रहा।

—'दीज आर फैक्ट्स' में

★

# जवाहरलाल नेहरू : विभक्तियों के विराट् समन्वय

१४ नवम्बर को जवाहरलालजी का जन्म दिवस है। 'नवनीत' उनको शत शत अभिनन्दन अर्पित करता है और कामना करता है कि, अपनी दिग्दिगत व्यापिनी यश-सुरभि के साथ वे शतायु प्राप्त करें। नीचे हम डा॰ डी॰ पी॰ मुखर्जी की लेखनी से शब्दबद्ध उनके विभूति पुजित व्यक्तित्व का एक अत्यंत मार्मिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

★

जब पहली बार कांग्रेसी सरकारों की स्थापना हुई, मैं अस्थायी रूप से युक्त-प्रांत की प्रथम राष्ट्रीय सरकार के अधीन काम कर रहा था। उस समय मुझे जनता तथा राज्य के बहुत-से सेवकों के सहयोग का सुअवसर मिला। यद्यपि मैं अनेक अधिकारियों में एक था, तथापि हमारे सम्पर्क मानवीय रहे। उन्होंने एक विश्वविद्यालय का अध्यापक समझकर मेरा यथोचित सम्मान किया और मैंने अपने अनुभव को विस्तृत तथा गहरा बनाने के अवसर का उपयोग किया। मैंने बड़ी मेहनत से काम किया और काफी सीखा। मन्त्रिमंडल का बौद्धिक खरापन तथा नैतिक गठन मुझे प्राय अभिभूत कर देता। इन सबमें सबसे अधिक मानवीयता श्रीमती पंडित में मिली। मैं उनसे सहज भाव से मिल सकूँ, इसकी अनुग्रहपूर्ण अनुमति उन्होंने दी थी। राजनीति की मारधाड़ से मुझे उनकी तटस्थता अच्छी लगती।

[ जवाहरलालजी भूटानी वेशभूषा में ]

जवाहरलालजी उन्हीं के यहाँ बँदरिया-बाग में टिके थे। उनसे मेरा परिचय पहले से था। उन्होंने इच्छा प्रकट की कि, मैं दूसरे दिन उनके साथ भोजन करूँ और शान्ति से कुछ बातचीत हो।

अंत में गया। जाड़ों की शाम थी। पंडितजी अकेले न थे। मैंने तो सोचा कि, यह मुलाकात भी रफी साहब की मुलाकात की तरह होगी, जिनका एक क्षण भी अपना नहीं होता। किन्तु एक-एक करके सभी चले गये और केवल हम लोग रह गये।

श्रीमती पंडित ने दूरदर्शिता के साथ एक बगल की मेज पर बढ़िया सिगरेट के टिन का प्रबंध कर रखा था। अंगीठी में लकड़ी चटख रही थी। कमरा गर्म था।

श्रीमती पंडित घर को सादगी से सजाने का रहस्य खूब जानती हैं। वे सिमिट कर सोफे पर बैठ गयीं और हम बातें करने लगे।

मैंने पंडितजी से एक सीधा-सीधा प्रश्न पूछा–"लोगों को नेहरूओं से क्या शिकायत है ?" वे सिगरेट का कश लेते रहे। मुस्करा कर उन्होंने कहा–"हम लोग ठीक अपने नहीं हैं।" उनकी आत्म-कथा के बहुत-से अंश मेरे मस्तिष्क में घूम गये। "हम लोग अपने नहीं हैं–" लेकिन किसके अपने नहीं हैं ? क्या भारत के ? लेकिन भारत से वे प्रेम करते हैं और सदैव उसके निर्माण में लगे हुए हैं। और, भारत तो उनका है और इस विनिमय में कोई दोष भी नहीं है। तो फिर क्या शिक्षा-दीक्षा तथा जीवन-परिपाटी के अभिजात्य के कारण ही वे पराये हैं ? सामाजिक दूरी ने ही मानसिक दूरी की है ? तो क्या, यह अपने को वर्गचेतना से मुक्त करने की उनकी असफलता है या ईर्ष्यालु प्रचारकों की क्षुद्रता या यह सब उनके उस विस्तृत दृष्टिकोण तथा भविष्य परिकल्पना के कारण ही है, जो जनसाधारण को साधारणतया नहीं रुचता ?

प्राय लोगों ने उन्हें स्वप्नदर्शी, काल्पनिक तथा अंतर्राष्ट्रीयवादी कहकर उनकी आलोचना की है। परन्तु यह कारण तो पर्याप्त नहीं है। तब क्या इसी परिणाम पर पहुँचना होगा कि, प्रेम मूल्यत: उभयमुखी होता है–उसमें आकर्षण और विकर्षण दोनों होते हैं ?... ऐसे प्रश्न उस शाम मेरे मन में घूमते रहे। अब भी मेरे पास उनका कोई उत्तर नहीं है। तथ्य यहीं रह जाता है कि, यद्यपि वह जनता को आकृष्ट तो करते हैं, फिर भी गांधीजी की भाँति जनता में नहीं हैं। जन-समूह में गांधीजी उसका एक अंग हो जाते थे–उससे अलग नहीं पहचाने जाते थे। जवाहरलाल न केवल जन-समूह में विशिष्ट रहते हैं, वरन् छोटी-छोटी समितियों में भी पृथक रह जाते हैं। बच्चों के समूह को छोड़कर किसी समूह में वे अपने नहीं होते। कितना एकाकीपन है यह !

गंगाधर
[चित्र : 'शंकर्स वीकली' से साभार]

मैंने उनको लाखों की भीड़ से आँखें मिलाते हुए देखा है। उससे उन्हें प्रेरणा मिलती है, जैसे वे स्वयं उसको प्रेरणा देते हैं। लेकिन यह सम्पर्क वैसा प्रगाढ़ रहस्यमय नहीं है, जैसा गांधीजी का था। जवाहरलाल का प्रभाव आदान-प्रदान के व्यापार पर आधारित है। वे वाणी के द्वारा परस्परता स्थापित करते हैं। एकप्राणता, अभिन्नता उसमें कदाचित् नहीं होती।

राजनीति से हम लोगों की बातचीत साहित्य के क्षेत्र में चली गयी। उन्होंने इस्लामी कवि लोर्का का जिक्र किया।

उन्होंने किसानों तथा सैनिकों को उसके गीत गाते हुए सुना था। "हमारे आंदोलनों में ऐसे जनगीत नहीं विकसे।" मैंने स्वदेशी-आंदोलन के दिनों का जिक्र किया।

वे बोले—"हो सकता है कि, राजनीति में ही उलझ जाने का हमें दंड मिला, मगर और चारा नहीं था।' अंतिम वाक्य कहते समय उनकी आवाज में जो विषाद था, मुझे आज भी याद है।

*उनकी आवाज कदाचित् भारत की* सबसे सस्कृत आवाज है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की आवाज कुछ बारीक थी और प्राय तीखी हो जाया करती थी। गांधीजी की स्पष्ट आवाज अपनी सीधी सादगी से *असर डालती थी। श्रीमती बेसेंट की आवाज* में स्त्री-जनोचित गोलाई थी, सरोजिनी नायडू की निर्मल और संगीतमय थी। श्रीनिवास शास्त्री के स्वर में चारुता थी और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के स्वर में वज्र। मालवीयजी की वाणी मधुर थी, किन्तु जवाहरलाल की वाणी में सस्कृत स्वर की एक अर्थ-गर्भ धुंधली गूंज रहती है, जो दमकती नहीं। उसमें विचारमयता का संवेदनशील संकोच है, एक ईषत् विलासिता, जो सम्पूर्णतया पौरुषी न होकर भी कदाचित् नारी के लिए अत्यंत आकर्षक होगी। रोष में भी उसमें विषाद की गहरी छाप रहती है। ऐसी आवाज बायरन की ही रही होगी।

जो हो, उस साँझ को उस वाणी में मैंने एक ऐसी आत्मा के अंतर्द्वंद्व की झाँकी देखी, जो न तो अतीत से एकतान है, न वर्तमान से—जो उस भविष्य से तादात्म्य चाहती है, जिसे कुछ वह भावना के और कुछ बुद्धि के सहारे मूर्त करती है। 'और चारा नहीं है—अगर होता, तो अच्छा रहता।'

*जवाहरलाल घटनाओं के सम्मुख झुक* कर भी अपना मस्तक ऊँचा ही रखते हैं और अपनी अभिलाषापूर्ण दृष्टि उस भविष्य पर जमाये रखते हैं, जब भारत की पुनर्जाग्रत् आत्मा अपनी राजनीति के *केंचुल को उतार फेंकेगी। जवाहरलाल* इस्पानी दुर्गों की, वहाँ की प्रादेशिक संस्कृतियों व लोगों के कठोर व्यक्तिवाद की बातें करने लगे। उनकी सहानुभूति प्रजातंत्रियों के साथ थी, किन्तु इसकी अभिव्यक्ति केवल उनकी आवाज से होती थी।

खाना बहुत अच्छा था। फिर गांधीजी की बात होने लगी। मैंने पूछा—'क्या गांधीजी इस्पानी गृह-युद्ध के व्यापक प्रभावों से परिचित हैं? आपने जो-कुछ बताया है, उसके अलावा?"

"वह नहीं सकता। उनका ध्यान भारत पर ही केंद्रित है। मगर यह क्यों पूछते हैं?"

[जन मन मरुथल में अंकुरित म०प्र प्राथ्य शांति-लता को अमृत-सिंचन करते हुए।]

"कारण तो स्पष्ट है। इसलिए कि, हमारा भाग्य विश्व के घटना-चक्र से बँधा है। मैं नहीं समझता कि, गांधीजी में वह गुण है, जिसे आज 'इतिहास का बोध' कहते हैं।"

"कदाचित् नहीं। किन्तु अगर आप यह सोचते हैं कि, उनके क्रांतिकारी प्रभाव का युग समाप्त हो गया है, तो आप भूल करते हैं। भारतीय समस्याओं को वे बहुत अच्छी तरह समझते हैं और उनकी दृष्टि सबसे पैनी है।"

"किन्तु यह इस देश से बाहर की अनेक बातों पर निर्भर है।"

"किसी हद तक। अजीब बात है कि, चारों ओर से विश्व-शक्तियाँ हमें आक्रांत कर रही हैं; लेकिन हम वैसे ही क्षुद्र हैं।"

जवाहरलाल भारतवर्ष की वृहत्तर पीढ़िका के प्रति अत्यधिक सचेत हैं; किन्तु इससे भी अधिक सचेत हैं वे, इस वृहत् पीढ़िका से उत्पन्न होनेवाले हमारे उत्तर-दायित्व के प्रति। उनके उस शांत वाक्य में मुझे एक करुण व्यथा का आभास मिला, जो साधारणतया उनसे सम्बद्ध नहीं होती।

उनके आवेशों में बहुत-से लोगों को अहंकार दिखायी देता है। मैंने भी उन्हें देखा है। पर इतिहास के सम्मुख वे नम्र हो जाते हैं। इसमें जवाहरलाल चर्चिल के समान हैं। चर्चिल की भाँति जवाहरलाल भी देशकाल की भावना से प्रभावित होते हैं। दोनों में नाटकीय कर्म के प्रति सहज आकर्षण है। किन्तु परिणाम दोनों के भिन्न हैं। जवाहरलाल प्राचीन की रक्षा करना चाहते हैं; पर प्राचीनतावादी नहीं हैं। वह 'लिबरल' परम्परा की अंतिम सीढ़ी पर हैं। उनमें केवल समाजवादी झुकाव है, जो सामाजिक क्रांति के समर्थक चर्चिल में नहीं है। भविष्य की परिस्थितियों के दबाव पर पंडितजी उसे छोड़ने को तैयार हो जायेंगे, जिसे आज वह पकड़े हैं — पर एक दर्द के साथ, जिसके कारण वह उससे अधिक 'रोमांटिक' प्रतीत होने लगते हैं, जितने वे वास्तव में हैं। आज की परिस्थितियाँ जब विगत काल के मानदण्डों से शासित होती हैं, तभी वह रूमानी दर्द पैदा होता है; लेकिन पंडितजी आज की परिस्थितियों से भागते नहीं।

हम लोग फिर बैठक में लौटे। उन्होंने मुझे और इन्दिरा को कहा और उसके बाद के एक घंटे की स्मृति मेरे दिमाग में आज भी ताजी है। अलमारी में कुछ कविता की पुस्तकें थीं, जहाँ तक मुझे याद है—आडेन, वाल्टर द-ला-मेयर, स्पेंडर, एलियट और ईट्स भी! वे अनुरागभरी उँगलियों से कभी एक को निकालते, कभी दूसरी के पन्ने उलटते! कभी एक पर जरा रुके, तो कभी दूसरी से कुछ पंक्तियाँ पढ़ सुनायीं। मैंने कितने ही कवियों को कविता-पाठ करते हुए सुना है; परन्तु पंडितजी का कविता पढ़ने का ढंग उन सबसे अच्छा है। कहीं आव-श्यक जोर, कृत्रिम भावुकता, नाटकीयता या अभिनय नहीं—एक शांत, संवेदनशील,

एस्पिरिन (एसेटिल-सेलिसिलिक एसिड) के बिना ही कमाल का आराम
सेरिडोन
दर्द
को ख़त्म कर देती है!
कष्ट दूर करती है
सेरिडोन दर्द को प्राय तत्काल ख़त्म कर देती है—अधिकतर तो दुअन्नीवाली एक टिकिया ही काफ़ी होती है।
आराम पहुंचाती है
सेरिडोन आपकी धमनियों को आराम पहुँचाकर दर्द से हुई बेचैनी मिटाने में मदद करती है।
Saridon
दो आना
हर एक टिकिया पूरी ख़ुराक की होती है
न पेट में कोई गड़बड़ी होती है और
न बाद में किसी तरह की शिथिलता!
सरदर्द, दाँत का दर्द या कोई भी दर्द होने पर फ़ौरन सेरिडोन लीजिए। सेरिडोन दर्द को प्राय तत्काल ख़त्म कर देती है। इससे न पेट में कोई गड़बड़ी होती है और न बाद में किसी तरह की शिथिलता ही।
सेरिडोन न केवल इतना ही करती है, बल्कि आपको शांतचित्त और प्रसन्न भी बनाती है और दर्द से हुई तमाम बेचैनी को मिटा देती है। कुछ ही मिनटों में आप फिर ताज़ा और चुस्त महसूस करने लगते हैं।
सेरिडोन की कुछ टिकियाँ हमेशा अपने पास रखिए और स्वयं इस बात का सबूत हासिल कीजिए कि यह दर्द की दवा से बढ़कर भी और बहुत कुछ है।
तरो-ताज़ा बनाती है
सेरिडोन धीमे से स्फूर्ति देकर कुछ ही मिनटों में आपको फिर से चुस्त और ताज़ा बनाती है।
Saridon
VT 1369
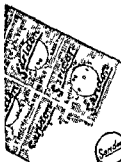
लोमा
मस्तिष्क को शांत रखता है।
लोमा
अधिक बाल उगाता है।
लोमा
सुफेद बालोंको श्याम बनाता है।
लोमा
बड़ी प्यारी खुशबू देता है।
लोमा
सुफेद बालोंको श्याम बनाता है।
दिल्ली एजन्ट मेसर्स : दिल्ली मेडीकल स्टोर्स चांदनी चौक, दिल्ली
कलकत्ता एजन्ट मेसर्स : शाह बाबोसी अॅन्ड कं. १२१, राधा बजार स्ट्रीट
कलकत्ता १ स्टॉकिस्ट आर जे मेहता अॅन्ड ब्रधर्स सीनेमा रोड, अजमेर.

अनरग अल्गाव, उचित गुस्ता, कठिन भारीपन कहीं नहीं मानो वात्तिचेली (इटली का महान कलाकार)-द्वारा अंकित परिस्ता की भाँति गुरुत्वाकर्षण स परे। वाल्टर ड-ला मेयर के एक गीत का पढ़त समय उनका स्वर जरा सा उद्वल्गित हो उठा। कविता-पाठ एक घंट से अधिक चला। कितन हमारे राजनीतिक आज कविता पढ़त हाग ?

आगा खाँ महल पूना में वदी गाधीजी स सरोजिनी नायडू न आग्रह किया था कि वे हाउंड आव हवेन (फ्रांसिस टामसन की एक प्रसिद्ध कविता) पढ़। अण न देखा कि वे कुत्ता के बारे म एक पुस्तक पढ रह हैं। श्रीमती नायडू अवश्य अपवाद थी किन्तु वे स्वय कवयित्री थी। मौलाना आजाद, सुना हैं, अन्य अच्छी वस्तुआ के अतिरिक्त कविता के भी पारखी हैं। जवाहरलाल कवि नहीं हैं पर समझता हूँ कि, इतिहास के बाद उन्हें कविता ही अधिक प्रिय है, जो देश के लिए परम सौभाग्य की बात हैं।

अर्ध रात्रि बीत चुकी थी। मैं उठना चाहता था। किन्तु कमरे में मानो कुछ 'सजीव' मँडरा रहा था। वे पढ़ने गय। श्रीमती पंडित विश्राम करने चली गया थी और म सुनता रहा।

आपने विज्ञान क्या लिया था ? उनका असल क्षेत्र तो साहित्य है।

वास्तव में जवाहरलाल एक सजनशील कलाकार है। उनके लेखा के कुछ अशा का पढ़त हुए मेरा गला अक्सर भर आया है— मैं रोमांचित हो उठा हूँ। उनकी शैली वर्जीनिया वुल्फ एलिजाबथ बावन या टी ई लारेस की-सी नहीं। उनकी लेखनी म वाक्य वैसे ही अनायास निसृत होते हैं जैसे उस रात उनके मुख से दूसरा के शब्द निसृत हो रहे थ।

मेरे प्रश्न का उत्तर उन्होंने नहीं दिया। हम लाग बरामदे में आ गये। विश्वविद्यालय म आपकी अनुपस्थिति हमें बड़ी खटकती है। आपको तो हम लोगों में होना चाहिए था।

हाँ और मेरे भीतर जो अनेक दल है सा ?

अलिंद तक पहुँचा कर उन्होंने विदा ली। तब से वह बात मेरे मन में बार-बार गूँज जाती है। सोचता हूँ आत्म विश्लेषण का यह कितना उत्कृष्ट नमूना था, जिसे कोई चाणक्य ही कर सकता था!

*

दारिद्र्यस्यापरा मूर्तिर्याच्ञा न द्रविणाल्पता।<br>
अपि कौपीनवानशम्भुस्तथापि परमेश्वरः॥

—निधनता से नहीं, बल्कि याचना से मनुष्य की दीनता प्रकट होती है। शिवजी कौपीनधारी—परम निर्धन— होकर भी परमेश्वर ही माने जाते हैं।

—'भोजप्रबंध' से

*

# जानवर, आदमी, फरिश्ता, खुदा
# आदमी की हैं हज़ार किस्में

'फानी' के इस अद्वितीय शेर को मापदण्ड बनाकर क्यों न हम-आप भी अपना आत्म निरीक्षण करें? मानव की महत्ता के लिए न धन सम्पत्ति की जरूरत है, न ऊँचे खानदान की— जरूरत है सिर्फ दृढ़ संकल्प और सर्वहित भावना की। उर्दू गद्य के युग निर्माता मौलवी अब्दुल हक ने कुछ साधारण अति साधारण 'गुदड़ी के लालों' को चुनकर उनकी बुनियादी महत्ता का मूल्यांकन किया है। नीचे हम एक ऐसे ही 'लाल' की कुछ प्रमुख रेखाएँ देकर उसके चारित्रिक वैभव की झाँकी अपने पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहते हैं।

★

लोग बादशाहों, अमीरों और मशहूर लोगों के हालात लिखते हैं, किन्तु मैं एक गरीब सिपाही का हाल लिखता हूँ। इंसान होने के नाते सब इंसान बराबर हैं। इसमें अमीर और गरीब का फर्क कोई चीज नहीं। और—'फूल में गर आन है, कांटे में भी एक शान है।'

नूर खाँ हैदराबाद के अव्वल रिसाले में सिपाही के तौर पर भर्ती हुए। अंग्रेजी फौज में हैदराबाद की फौज एक खास हैसियत रखती थी। भर्ती के वक्त बड़ी छान-बीन होती थी। हर कोई नहीं ले लिया जाता था, बल्कि सिर्फ खानदानी शरीफ ही लिये जाते थे। इसी वजह से इस रिसालेवालों की बड़ी इज्जत की नजर से देखे जाते थे।

[मौलवी अब्दुल हक]

नूर खाँ फौज में बड़ी आन-बान से रहे। वे फौज में 'ड्रिल-इंस्ट्रक्टर' थे, इसलिए अक्सर गोरे अफसरों से वाकिफ थे। घोड़ों को खूब पहचानते थे। बड़े-बड़े सरकश घोड़ों को, जो पुट्ठे पर हाथ भी न धरने देते थे, उन्होंने ठीक किये। उनके अफसर उनके फुर्तीलेपन और होशियारी से बहुत खुश थे। लेकिन उनके खरेपन से अक्सर नाराज हो जाते थे। एक बार उनके कमांडिंग अफसर ने खफा होकर 'डैम' कह दिया, उन्होंने फौरन 'रिपोर्ट' कर दी। लोगों ने चाहा कि बात यहीं दब जाये; लेकिन खान साहब ने एक न सुनी और

जनरल तक बात पहुँचायी। आखिर, गोरे अफसर का 'कोर्ट मार्शल' हुआ और उसे इनसे माफी माँगनी पड़ी। ऐसी नाजुक-मिजाजी पर तरक्की की उम्मीद ही गलत है, चुनाँचे दफादारी से आगे न बढ़े।

कर्नल फ़तेह खान साहब पर बहुत भरोसा करते थे। इसीलिए जब वे इस्तीफा देकर विलायत गये, तो अपना हजारों रुपयों का सामान इन्हीं के हवाले कर गये। यह बात अंग्रेज अफसरों को बहुत बुरी लगी। कमांडिंग अफसर ने कर्नल को लिखा—"आपने हम पर भरोसा न किया और एक देसी दफेदार के हवाले अपना कीमती सामान कर गये। अगर आप यह सामान हमारे हवाले करते, तो हम अच्छे दामों में बेचकर रुपया आपको भेज देते। अगर आप कहें, तो अब भी इंतजाम हो सकता है।" कर्नल ने जवाब दिया—"मुझे नूर खाँ पर तमाम अंग्रेज अफसरों से ज्यादा भरोसा है। आपको कोई तकलीफ करने की जरूरत नहीं।" इस पर वे और बिगड़े। कमांडिंग अफसर कर्नल का सामान देखने आया और बोला—"फलाँ फलाँ चीज मेमसाहब ने हमारे यहाँ से मँगायी थी, जिन्हें वे जाते वक्त वापस करना भूल गयी। अब तुम ये सब चीजें हमारे बंगले पर भेज दो।"

नूर खाँ ने जवाब दिया—"यह सामान मेरे पास अमानत है। मैं इसमें से एक चीज भी आपको नहीं दूँगा। आप कर्नल साहब को लिखिये। वे अगर मुझे लिखेंगे, तो फिर मुझे देने में कोई उज्र न होगा।" कमांडिंग अफसर बड़बड़ाता हुआ वापस चला गया। खान साहब ने सामान को एक मुंशी से लिखवा लिया और सबको बेचकर कीमत कर्नल साहब को भेज दी।

[लार्ड कर्जन ने सिगरेट सुलगाया ही था कि, खान साहब फौजी सलाम कर आगे बढ़े—"यहाँ सिगरेट पीने की इजाजत नहीं है।" पृष्ठ ६८]

एक दूसरा कर्नल जब विलायत जाने लगा, तो एक सोने की घड़ी, एक बंदूक और ५०० रुपये नकद खान साहब को इनाम देने लगा, मगर इन्होंने सिर्फ बंदूक ही ली और बाकी चीजें वापस कर दीं।

कर्नल स्टेवार्ट हुगोली-छावनी के कमांडिंग अफसर थे और खान साहब को बहुत पसंद करते थे। एक रोज ये कर्नल के यहाँ खड़े हुए थे कि, एक अंग्रेज घोड़े पर सवार आया। उतर कर इनसे कहा कि, घोड़ा पकड़ो। इन्होंने जवाब दिया—"मैं साईस नहीं हूँ।" अफसर बहुत बिगड़ा।

आखिर, बाग एक पेड़ की टहनी में उलझा कर अंदर चला गया। लेकिन घोड़े की बाग टहनी से निकल गयी और वह भाग निकला। अफसर साहब ने बड़ी मुश्किल से तलाश कराके पकड़वाया, तो घोड़े को बुरी तरह जख्मी पाया। उसने कर्नल से खान साहब की बड़ी शिकायत की।

ऐसे हालात में फौज में ज्यादा दिन तक टिकना मुश्किल था, इसलिए बीमार बनकर अस्पताल में आ दाखिल हुए। कर्नल स्टेवार्ट के कहने से डाक्टर ने जो रिपोर्ट दी, उस पर फौज से पेंशन दे दी गयी।

कर्नल चाहते थे कि, इनको पुलिस में कोई अच्छी-सी जगह दिलायें, लेकिन ये राजी न हुए। आखिर इनके कहने पर इनकी ख्वाहिश (इच्छा) के मुताबिक इन्हें दौलताबाद के किले के सिपाहियों का जमादार बना दिया गया।

जिन दिनों खानसाहब दौलताबाद में थे, लार्ड कर्जन दौलताबाद आये। इन्होंने बड़े कायदे से तोपों से सलामी दी। लार्ड कर्जन इधर-उधर घूमने के बाद किले के ऊपर गये, तो वहाँ सुस्ताने के लिए कुर्सी पर बैठ गये और जेब से सिगरेट-केस निकालकर सिगरेट पीना चाहा। उन्होंने सिगरेट सुलगाया ही था कि, खान साहब फौजी सलाम करके आगे बढ़े और कहा—"यहाँ सिगरेट पीने की इजाजत नहीं है।" लार्ड कर्जन ने फौरन सिगरेट को जूते से रगड़ डाला। सूबेदार नवाब कर्जार-नवाजजंग और दूसरे ओहदेदारों का रंग उड़ गया, मगर मौका ऐसा था कि, खान साहब को कुछ कह भी नहीं सकते थे। हाँ, बाद में खूब लिन्दे हुई। लेकिन खान साहब ने सिर्फ कायदे की पाबंदी की थी; इसलिए कोई कुछ न कर सकता था।

कुछ दिन बाद मिस्टर बाकर अर्थ-मंत्री होकर आये। रियासत में सुधार शुरू किया, तो दौलताबाद का किला भी लैंट में आ गया। दूसरों के साथ खान साहब भी अलग कर दिये गये।

दौलताबाद में इनकी कुछ जमीन थी। अलग होने पर, उसमें बाग लगाना शुरू कर दिया। मिस्टर बाकर दौरे पर दौलताबाद आये, तो इनके बाग में भी जा पहुँचे। उस वक्त खान साहब बाग में काम कर रहे थे। पूछा—"क्या हाल है?" कहने लगे—"आपकी जानो-माल को दुआ देता हूँ। घास छीलने की नौबत आ गयी है।"

मिस्टर बाकर मुस्कराते हुए चले गये। उसी जमाने में डा. सिराजुल हसन औरंगाबाद के सदर मोहतमिम-तालीमात (शिक्षा-विभाग के अधिकारी) होकर आये। नूर खाँ से मिले, तो जौहरी को ताड़ गये और नवाब कर्जारजंग सूबेदार से कहकर मकबरे के बाग में लगवा दिया।

सूबेदार अपना घोड़ा बेचना चाहते थे। कमरे में डाक्टर साहब से जिक्र आया, तो वे बोले—"मैं खरीद लूँगा; मगर पहले नूर खाँ को दिखा लूँ।" वहाँ से वापस आकर डाक्टर साहब ने नूर खाँ से कहा, तो ये बोले—"आपने गजब किया,

मरा नाम ल दिया। घाड म काई एव हुआ ता म छिपाऊँगा नही और सूबदार साहब मुफ्त म नाराज हो जायँग।

मगर डाक्टर साहब न मान और नूर खाँ को जाना पडा। घाडा नसल का तो अच्छा था मगर था एबदार। खान साहब न आकर साफ-साफ कह दिया और डाक्टर साहब न घाडा खरीदन से इनकार कर दिया। सूबदार साहब आग-बबूला हो गय। अगले दिन बाग म पहुँचे और रजिस्टर मगाकर नूर खा के नाम पर इतनी जार से कलम फरी कि लफ्जों म जान होती तो बिलबिला उठते।

कुछ दिन बाद डाक्टर साहब तरक्की पाकर हैदराबाद चल गय और उनकी जगह पर म औरगाबाद आया। डाक्टर साहब न नूर खा से मुलाकात करायी और मन उन्हे अपन दफ्तर में मुशी रख लिया। इसके बाद जब बाग की निगरानी मेरे हवाल हुई ता मन फिर उन्ह बाग में भज दिया। आखिर दम तक वह इसी खिदमत पर रहे और अपन काम को बडी मेहनत और ईमानदारी स करते रह।

खान साहब में कुछ एसी बात थी जो बड लोगो म भी नहीं हाती। सच्चाई–बात की और मामले की–तो उनकी आदत म ही थी। दोस्ती के पक्के और वजदार थ। उनका घर मेहमाँ-सराय (जहाँ प्राय मेहमान आते रहे) था। औरगाबाद आन जानवाले खान के वक्त बतकल्लुफ (बिला सकोच) उनके घर पहुँच जाते थ और व इस बात स बहुत खुश होत थ–बल्कि कभी-कभी तो डाक-बँगले म मुसाफिरो का बुलाकर घर ले जाते और उनका खिलाते। मीठी चीजा के बड शौकीन थ। कहा करते थ— नमकीन खाना ता मजबूरी म खाता हू। अकसर उनकी जब म गुड रखा हुआ मिलता था।

डाक्टर सिराजुल हसन जब-कभी औरगाबाद आते तो अपना रुपया-पैसा स्टशन पर ही खान साहब के हाथ म दे देते और खान साहब ही उसे खच करते। डाक्टर साहब के जान स पहले एक दिन के हिसाब लेकर बठते। कभी-कभी जब गडबड होती आधी रात तक लिय बैठ रहते। डाक्टर साहब बहुत कहते– खान साहब यह क्या कर रहे हो? अगर कुछ बाकी बचा हो तो दे दो–ज्यादा खच हुआ हो तो ले लो। मगर जब तक हिसाब ठीक न बठता उन्हे इतमीनान न होता। अगर कभी डाक्टर साहब के चले जान के बाद शुबहा होता तो फिर हिसाब लेकर बठते और फिर डाक्टर साहब को खत लिखकर भजते– आपके इतन आने रह गय थ भज रहा हूँ। या– मेरे इतन पस ज्यादा खच हो गय थ भज दीजिय।

मुझे वे अवसर याद आते ह और यही हाल उनके दूसरे दोस्तो और जाननवालो का है। इसी से अदाजा हो सकता है कि वे कितन अच्छ आदमी थ। कौम एस ही लोगो स बनती ह। काश! हमम बहुत-से नूर खाँ होत।

*

# २५वीं सदी का शिशु-उत्पादक कारखाना

हमारे नित्य नैमित्तिक जीवन पर विज्ञान का निरंतर तीव्रतर होता जानेवाला अंकुश अगले पाँच सौ वर्षों में किस सीमा तक पहुँच जायेगा, प्रस्तुत लेख में उसके एक पक्ष का निरीक्षण कीजिये।

*

शिशु-निर्माता के साथ अशोक ने एक विशाल कमरे में प्रवेश किया। कमरे में मेजों की कई समानांतर कतारें लगी थीं। इन बड़ी व लम्बी मेजों पर दो-दो अणुवीक्षण-यंत्र रखे हुए थे। इन यंत्रों के नीचे हवा-बंद परख-नलियाँ परीक्षण के लिए रखी हुई थीं और लगभग १०० प्रयोगकर्ता परीक्षण-कार्य में जुटे हुए थे। ये श्वेत वस्त्रधारी प्रयोगकर्ता हाथों में एक विशेष प्रकार के प्लास्टिक के पीले दस्ताने पहने हुए थे। कमरे की दीवारों से एक अद्भुत तीव्र प्रकाश निकल रहा था, जिससे सम्पूर्ण कमरा श्वेत हो उठा था। एक विचित्र-सी नीरवता कमरे में छायी थी। अशोक को लगा, जैसे किसी प्रेत-लोक में पहुँच गया हो!

शिशु-निर्माता अशोक की मुखाकृति का अध्ययन कर मुस्कराया। बोला—"यहाँ का वातावरण आपको विचित्र लग रहा होगा। बीसवीं सदी के मानव के लिए यह वस्तुतः आश्चर्यजनक है। पिछले ५०० वर्षों में विज्ञान ने जितनी प्रगति की है, आप सम्भवतः कल्पना भी नहीं कर सकते।

"किन्तु—" वह गम्भीरता से बोला—"मैं आपको सारी बातें समझाऊँगा। यह देखिये, इस समय जहाँ हम खड़े हैं, वह 'शिशु-उत्पादक मिल' का शुक्राणु-विभाग है। यहाँ पर परख-नलियों में रखे हुए शुक्राणुओं की परीक्षा की जाती है। दुर्बल और रोगी शुक्राणुओं को नष्ट करके शेष 'डिम्बोत्पत्र'-विभाग में भेज दिये जाते हैं। इस प्रकार यहाँ पर शुक्राणुओं से भरी लगभग एक हजार नलियों की परीक्षा प्रति दिन की जाती है।"

अशोक ने आश्चर्य-स्तम्भित हो पूछा—"इतने शुक्राणु मिल कहाँ से जाते हैं?"

शिशु-निर्माता के अधरों पर पुनः मुस्कान दौड़ गयी—"इन्हें हम स्वयं ही 'जैविक-रासायनिक रीति' से बनाते हैं। ये कृत्रिम शुक्राणु वैसा ही काम करते हैं, जैसा मानव के अंड-कोष में पाये जानेवाले शुक्राणु। इन्हें बड़े पैमाने पर बनाने का काम एक दूसरी मिल करती है। चकित होने की बात नहीं—२५-वीं सदी में शुक्राणुओं को मानव-शरीर के बाहर, कारखानों में, उसी प्रकार बनाया जाता है, जैसा गंधक से तेजाब को। देखिये इधर!"

अशोक ने उसके कहने पर एक अणु-

की गण-यन म देखा–घुडीदार सिर के साथ दस लम्बी लम्बी दुमा को घुमाते हुए हजार शनाणु नली म इधर-से उधर लुढक रहे थ।

मिल का दूसरा कमरा भी काफी बडा था। पहले कमरे के समान ही उसम मेज लगा हुई थी। श्वेत वस्त्रधारी प्रयोगकर्ता यहा भी पीले दस्तान पहन काच की बडी बडी बातलो को बड ध्यान से अपन अणु वीक्षण-यन्त्रो की सहायता से देख रहे थ। शिशु निर्माता न अशोक को बताया–यह गर्भाधान केद्र है। बडी-बडी काच की इन बोतलो को 'डिम्बोपक' कहते है। इन डिम्बोपको म ही नारी-अड और शुक्राणु का सयोग करवाया जाता ह और इसी म नवीन भ्रूण की उत्पत्ति भी होती ह।

[सुप्रसिद्ध नि कार एरिक फ्रजर द्वारा एक प्रजनन शाला की कल्पना चरम नियामक बना हुआ वश निक जनसख्या का सतुलन बनाये रखने के लिए पुरुषों को स्त्रियों में परिवर्तित करने की तैयारी मे है।]

अशोक न देखा एक डिम्बोपक म नारी-अड की झिल्ली पर शुक्राणु आक्रमण कर रहा ह। दूसरे डिम्बोपक म शुक्राणु नारी-अड की झिल्ली को फोडकर उसके अदर स्थित श्वेत पदाथ म प्रवश पा चुका था। तीसरे म शुक्राण की घुडी और दम एक दूसरे से अलग हो गयी थी और घुडी नारी अड के केद्र को खोजती हुई आग बढ रही था। चौथ डिम्बोपक म घडा और केद्र का सयोग हो गया था। बाद के डिम्बोपको म एक कोषाणधारी भ्रूण क्रमश दो-चार-सोलह कोषाणुधारी होता चला गया था।

शिशु निर्माता न कहा– चौथ डिम्बोपक म ही मानव भ्रूण को जन्म मिला ह।

अशोक का कौतूहल और बढा– इतनी बडी सख्या म नारी अडो को भला किस प्रकार यहा उपलब्ध किया जाता ह?

आश्य आपको यह तीसरे कमरे म चलकर ज्ञात होगा।

शिशु निर्माता के साथ जिस कमरे म इस बार अशोक न प्रवेश किया वह क्षेत्रफल म अब तक के सब कमरो से बडा था। एक ओर से घर घर का तीव्र शोर हो रहा था। एसा लगता था जसे कोई भारी यन्त्र चल रहा हो। निकट खड एक प्रयागकर्ता न शिशु निमाता का सकत पाकर दावार म लगा एक बटन दबा दिया और तत्काल ही ठोस दावार म एक द्वार निकल आया।

द्वार स होकर अशोक न जिस कमरे म

प्रवेश किया, उसमें अन्य कमरों से कुछ अधिक उष्णता अनुभव हुई। कमरे में चारों ओर पारदर्शक प्लास्टिक के बड़े-बड़े पात्र रखे हुए थे। सभी मांस-लोथड़ों से भरे थे। उनकी ओर संकेत करते हुए शिशु-निर्माता ने कहा— इन्हीं पात्रों में हमें नारी-अंडे मिलते हैं। इन पात्रों में सजीव गर्भाशय रखे हुए हैं, जो एक निश्चित समय में नारी-अंडों की एक निश्चित मात्रा हमें उपलब्ध करते हैं।"

"पर ये सजीव गर्भाशय इतनी बड़ी मात्रा में किस प्रकार उपलब्ध किये जाते हैं?" अशोक की जिज्ञासा तीव्र हो उठी थी।

शिशु-निर्माता गम्भीर हो उठा—"इसे भलीभाँति समझने के लिए आपको अपनी २०-वीं सदी के सामाजिक भावों को पूरी तरह से भुलाना होगा। २५-वीं सदी के समाज में स्त्री और पुरुष सब प्रकार से समान हो गये हैं। लिंग के कारण जो एक पर्दा उस काल में नर-नारी को अलग किये रहता था, वह अब मिटा दिया गया है। इस शताब्दी की प्रत्येक नारी अपने गर्भाशय को शल्य-क्रिया-द्वारा निकलवाने में गर्व अनुभव करती है। इसके लिए उसे छः माह का वेतन 'बोनस' के रूप में दिया जाता है। यही नहीं—इस सदी में बांझपन सम्पन्नता और संस्कृति का प्रतीक समझा जाता है। इसी कारण शिशु-उत्पादक मिलों में निर्मित प्रत्येक चार नारियों में से तीन बन्ध्या और एक गर्भाशय वाली नारी होती है। ये गर्भाशय हमें इन्हीं नारियों से युवा होने पर प्राप्त होते हैं।"

कुछ क्षणों तक चुप रहने के बाद शिशु-निर्माता ने अपनी बातों का क्रम बढ़ाया—"शरीर से गर्भाशय को अलग करके उसे विषाणु-नाशक घोलों से साफ किया जाता है और उसके बाद उसे इन पात्रों में रख दिया जाता है। पात्रों में एक विशेष प्रकार का रासायनिक घोल होता है, जो उसे जीवित रखता है। इसी घोल से गर्भाशय को भोजन मिलता है, जिसे खाकर वह जीवित और सक्रिय बना रहता है और बराबर नारी-अंडों का निर्माण करता है।

"एक माह में एक गर्भाशय औसतन तीन-चार लाख अंडे उत्पन्न करता है; पर इनमें से केवल एक हजार ही प्रौढ़ता को प्राप्त हो पाते हैं। बाद में इन्हीं प्रौढ़ अंडों को गर्भित किया जाता है। गर्भाशय को जीवित रखने के लिए इस कमरे में वे सभी अनुकूल दशाएँ पैदा की गयी हैं, जो गर्भाशय को शरीर में उपलब्ध होती हैं। इसीलिए कमरे में धुँधले लाल प्रकाश का प्रबन्ध है।

"यहाँ से ये नारी-अंडे एक नलिका-द्वारा बाहर के कमरे में रखे हुए हौजों में भेजे जाते हैं। हौजों में एक श्वेत तरल पदार्थ भरा रहता है, जो इन्हें भोजन प्रदान करता है और जीवित रखता है।"...

'कोल्ड-भवन' में प्रवेश करते ही अशोक को बड़े जोरों की ध्वनि सुनायी देने लगी, किन्तु इस ध्वनि में कुछ अजीब-सी मधुरता और समानता थी। इस भवन में एक स्थान पर प्लास्टिक की बड़ी-बड़ी बोतलें रखी

हुई थी । एक कमरे म इन बोतलो को कीटाणु-नाशक घोलो में डालकर कीटाणु-रहित बनाया जा रहा था । पास ही में अनेक छोटी-छोटी लिफ्टें लगी थी, जो ऊपर-से-नीचे और नीचे-से-ऊपर के तहखाने म आ-जा रही थी। नीचे से ऊपर आनवाली लिफ्ट स्वत ही क्लिक की आवाज करती हुई खुल जाती थी और उसमें से एक बारीक मास का पत्तर निकल आता था, जिसे पास मे खडी एक नारी प्रयोगकर्त्री पकड लेती थी। लिफ्ट स्वत ही 'क्लिक' करती हुई बद हो जाती और स्वत ही नीचे चली जाती थी । मास के इस पतले पत्तर को कीटाणु-रहित कर उक्त बोतलो मे से एक में रख दिया जाता और फिर बोतल का मुँह बद कर दिया जाता था ।

शिशु-निर्माता न अशोक को बताया—"यहाँ पर इन बोतलो मे अस्तर लगाया जाता है। मानव-भ्रूण इन्ही बोतलो में सवर्धन के लिए रखा जाता है । यह पाया गया है कि, यदि वाराह के गर्भाशय पर मानव-भ्रूण की कलम लगा दी जाती है, तो वह उसी प्रकार बढता, फलता और फूलता है, जैसे नारी के गर्भाशय मे और कालातर में वही शिशु बन जाता है ।

"भ्रूण नारी शरीर के लिए भी एक विदेशी तत्व है । वह नारी के गर्भाशय म भी एक झिल्ली पर आकर कलम लगा लेता है और इसी झिल्ली-द्वारा नारी-शरीर से अपना भोजन प्राप्त करता रहता है। ठीक इसी प्रकार यदि नव निर्मित मानव-भ्रूण को वाराह के गर्भाशय की झिल्ली पर लगा दिया जाता है, तो यहाँ भी वह उस झिल्ली से अपना भोजन प्राप्त करने लगता है। मास का बारीक पत्तर, जो आपने अभी देखा, वाराह के गर्भाशय की झल्ली ही है। २५ वी सदी में हम लोगो ने विशेष प्रकार के सुअर पैदा किये है। उन्ही के गर्भाशय की ये झिल्लियाँ है। इनके लिए नीचे एक भाडारगृह बना हुआ है, जहाँ इन्हे वैज्ञानिक साधनो-द्वारा जीवित और सक्रिय रखा जाता है।"

शिशु निर्माता अशोक को साथ ले कुछ आगे बढा। अशोक ने देखा, एक स्वत चालित यत्र बोतलो पर परिचय-पत्र लगा रहा था। इन परिचय-पत्रो पर शिशु का नाम, वशानुक्रम, नारी-अडे के गर्भित होने की तिथि आदि सारी बाते थी। शिशु-निर्माता ने बताया —"आगे वाले कमरे म 'पूर्व-भाग्य-रचयिता' बैठते है। उनका एक बहुत बडा कार्यालय है। वहाँ पर प्रत्येक बोतलधारी भ्रूण और उसके परिचय-पत्रो का ठीक-ठीक हिसाब रखा जाता है—अलग-अलग भ्रूण-भाडारो से सम्बन्धित आकडे एकत्र किये जाते है । 'पूर्व भाग्य-रचयिता' मानवो के जन्म लेने से पहले ही उनका भाग्य निश्चित कर देते है। वे ही इसका निश्चय करते है कि, अमुक बोतल-धारी भ्रूण पैदा होकर क्या बनेगा —वे ही उसका वर्ग निश्चित करते है।"

अशोक अचानक बोल उठा—" यह वर्ग क्या चीज है भला?'

इस जलूस के बढ़ने की गति का सम्बन्ध भ्रूण के गर्भाशय में रहने के समय से सम्बन्धित कर दिया गया है। अनुभव के आधार पर यह पाया गया है कि एक नारी के गर्भाशय में भ्रूण २६७ दिनों में पूर्ण विकसित शिशु का रूप धारण कर लेता है। 'शिशु-उत्पादक मिल' में भी भ्रूण को शिशु बनने में २६७ दिन लगते हैं। यहाँ एक दिन को २० फुट के बराबर मानकर २६७ दिनों को ५३४० फुट में बदल दिया गया है।

"बोतलों के जलूस की गति लगभग ८४ फुट प्रति घंटा रखी जाती है। इस प्रकार शिशु-उत्पादक मिल में भ्रूण से शिशु बनने में ६५ घंटे लगते हैं और इसके लिए भ्रूणधारी बोतल को ५३४० फुट चलना पड़ता है। इतनी अधिक दूरी एक कमरे में पूरी नहीं की जा सकती, इसलिए यही प्रक्रिया तीन कमरों में जारी है।'

अशोक ने देखा, कमरे में एक ओर एक घन्नी घिरनी सीढ़ी लगी हुई है। एक यांत्रिक कर्मचारी इस घन्नी घिरनी सीढ़ी की सहायता से निकल की चादरों में फँसी बोतलों के जलूस को दूसरी मंजिल के एक कमरे में भेजने में व्यस्त था। शिशु-निर्माता से अशोक को ज्ञात हुआ कि, बोतलों में जो लाल रंग का तरल पदार्थ दिखायी पड़ता है वह रक्त का स्थानापन्न एक पदार्थ है जिसे कृत्रिम रूप से एक कारखाने में तैयार किया जाता है। यह कृत्रिम रुधिर ही बोतल में रखे भ्रूणों का भोज्य पदार्थ है। इसे खाकर वे बढ़ते और विकसित होते हैं।

## सत्य-रूप

छोटी सी बुद्धि डोर, अगम सत्य रूप
सूक्ष्म मुकुर अति विशाल अतिशय लघु रूप,
एक कला कला आज, बनो और एक ?
पर कम्पित पदरज सम भूल है विवेक।

क्षण भर चलती है जीवन की धूप
बिना प्राण दान कहाँ यहाँ प्राण दान,
मन के विद्यालय में मिलता है ज्ञान,
बलि पशु बन जाय प्राण देह काष्ठ यूप।

—नरेन्द्र शर्मा

शिशु निर्माता के साथ अशोक आगे बढ़ता गया। ५०० फुट की दूरी तय करने के बाद उसने देखा एक कर्मचारी बोतलों पर 'प' और 'न' अंकित कर रहा है। पूछने पर पता चला कि, इतनी दूरी तय करने के पश्चात् भ्रूण इतना विकसित हो जाता है, जिससे यह स्पष्ट पता चल जाता है—यह पुरुष बनेगा या नारी। नारी बननेवाला भ्रूण 'न' वाले बोतलों में और पुरुष बननेवाला भ्रूण 'प' वाले बोतलों में रख दिया जाता है।

शिशु निर्माता ने एक नलिका की ओर संकेत करते हुए कहा—यहीं पर प्रकाशक चिह्न वाली मात्रा में पुरुष रसा-ग्रंथियों का प्रवेश करवाया जाता है। परि-

णामत स्त्री-रस-ग्रंथियाँ, पुरुष-रस-ग्रंथियों से संयोग कर एक-दूसरे का निराकरण कर देती हैं और पैदा होनेवाली नारी वंध्या हो जाती है। वंध्या नारी शारीरिक रचना में सब दृष्टि से पूर्ण नारी ही होती है—अंतर यही होता है कि, उसके शरीर में गर्भाशय पूर्ण विकसित नहीं हो पाता। अतः इन प्रश्न-वाचक चिह्नित नलियों में वे ही भ्रूण रख जाते हैं, जिनका आगे चलकर नारी होना स्पष्ट तो हो जाता है, किन्तु जिनके भाग्य में 'पूर्व-भाग्य-रचयिता' ने वंध्या बनने का निर्णय कर दिया है।"

००० ००० ०००

ऊपर की इन पंक्तियों में २५-वीं सदी की एक 'शिशु-उत्पादक मिल' का काल्पनिक चित्र अंकित करने का प्रयत्न किया गया है। इस दिशा में अब तक जो-कुछ कार्य हुआ है, उससे यह कहा जा सकता है कि, दो-चार सौ वर्षों के अंदर ही मिलों में प्लास्टिक की बोतलों में बच्चे पैदा होने लग जायँ, तो ताज्जुब नहीं।

इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास करनेवाले थे, नोबेल-पुरस्कार-विजेता एलेक्सिस केरल, जिन्होंने एक मुर्गी के हृदय को उसके शरीर से अलग करके ३१ वर्षों तक जीवित अवस्था में रखा। बोस्टन विश्वविद्यालय, अमेरिका के डा० पग के प्रयोगों से इस कल्पना को और भी बल मिला। वे मादा खरगोशों के गर्भाशय से भ्रूणों को निकाल कर अमेरिका से इंग्लैंड लाये और इंग्लैंड में इन भ्रूणों को एक दूसरी मादा खरगोश के गर्भाशय में रखकर विकसित किया गया। कालांतर में पूर्ण स्वस्थ खरगोश-शिशु प्राप्त हुए।

डा० लैंड्रेमशटील्स ने कोलम्बो विश्वविद्यालय में रजाणु और शुक्राणुओं के मिलन को एक डिम्बोपक में अपने नेत्रों से देखा, उनके चित्र लिये और प्रयोगशाला में उनका संयोग करवाया। इस नवनिर्मित गर्भ को उन्होंने ५० घंटों तक डिम्बोपकधारी बोतल में जीवित रखा था।

इस दिशा में सबसे ताजे के प्रयोग हैं सेंट लुई विश्वविद्यालय, अमेरिका के पादरी-वैज्ञानिक बैसाइल जैन्युअट के। बर्फ की शीतलता से ३२०-गुने शीतल वातावरण में एक काफी लम्बे अर्से तक मुर्गी के भ्रूणों को निकालकर जीवित रखने में वैज्ञानिक बैसाइल को पूर्ण सफलता मिल चुकी है। आजकल इन भ्रूणों को कृत्रिम वातावरण में रखकर उन्हें विकसित करके, मुर्गी का जन्म देने में वे जुटे हुए हैं!

★

एक प्रोफेसर बाल कटवाने के लिए नाई की दूकान पर गये। कुर्सी पर बैठते हुए उन्होंने कहा—"बाल काट दो मेरे।" नाई ने कहा—"अवश्य; लेकिन आप अपना हैट तो उतारिये।" प्रोफेसर ने घबड़ा कर कहा—"ओह, भूल हुई। मुझे पता नहीं था कि, यहाँ महिलाएँ भी उपस्थित हैं।"

—'टोरोंटो स्टार' (कनाडा) से

✱

भंगिमा साकार हो उठी है।

"उस पर उगे पद्मराग-जैसे चमकीले फूलों को भी तो देखिये–कैसा अपूर्व दृश्य है!" सालि ने भाव-विह्वल स्वर में कहा–"जैसे इस यूहड के पौधे में लाल-लाल कोमल फूल खिलते हैं, उसी तरह यहाँ के अफ्रीकी युवतियों के हृदय में खिले प्रेम-प्रसून के बारे में आपको कुछ मालूम है...?"

मुनवर में चकित रह गया। एक गोरा अंग्रेज अफ्रीकी आत्म-सौंदर्य का ही नहीं, वरन् अफ्रीकी युवती के हृदय में अबाध रूप से प्रवाहित होनेवाले स्नेह-स्रोत का भी उपासक है। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो सालि स्वयं अपने अनुभव के आधार पर ऐसा कह रहे हैं? मेरी जिज्ञासा तीव्र हो उठी।

इतने में ही गाड़ी ने जोर की सीटी बजायी और अपने काले धुएँ से आसमान को रंगते हुए चल पड़ी।

सूर्यास्त की सुहानी बेला थी। मैं उस अफ्रीकी धरती के सायंकालीन सौंदर्य को मुग्ध निहार रहा था कि, सालि ने मेरी ओर देखते हुए कहा–"दिवाकर हमसे विदा होने जा रहा है। बिछुड़ते समय भी इसकी आभा देखिये–कितनी मोहक है!"

"जी हाँ, सचमुच ही बड़ा सुहावना दृश्य है!" मैंने हृदय से उनका अनुमोदन किया। तभी कीविपू-पर्वत-श्रेणियों के मध्य में शनैः-शनैः छिपनेवाले रक्तवर्ण सूर्य की ओर देखकर हाथ हिलाते हुए सालि ने कहा–"ववहे-री!"

सालि ने क्यों ऐसा कहा और इसका अर्थ क्या था–यह मैं कुछ नहीं समझ सका। सालि पूरी तन्मयता के साथ सूर्य को निहार रहे थे। अचानक मुड़कर मुझसे पूछ बैठे–"जब किसी व्यक्ति से विदा लेते हैं, तो उस समय आप भारतीय क्या कहते हैं?"

मैं क्षण-भर तक सोचने को बाध्य हो गया। उत्तर भारत में 'नमस्ते' और विदा इत्यादि कहते हैं और हमारे केरल में तो 'एँक्कलरनॅयाट्टे, पिन्नॅक्काणाम्' (अच्छा, फिर मिलेंगे!) यही बोलने की प्रथा है, पर इतना लम्बा विदाई-वाक्य सालि की समझ में आयेगा नहीं। अतः मैंने उनसे कहा–"हम लोग साधारणतया 'नमस्ते' कहते हैं।"

"क्या कहा आपने? नमाल्के! नमल्के! उहूँ, यह इतना मधुर व संगीतात्मक नहीं प्रतीत होता है। हम अंग्रेजों के विदाई-शब्द 'गुड-बाई!' में भी हृदयस्पर्शी माधुर्य नहीं है। हाँ, फ्रांसीसियों के 'ओ-रिवोर!' में थोड़ी-सी मिठास रहती है। किन्तु मैंने जितने विदाई-शब्द सुने हैं, उनमें सम्पूर्णतया मधुर, सरल, संगीतात्मक तथा हृदयस्पर्शी शब्द एक ही पाया है। वह है, इन अफ्रीकी आदिवासियों का–'ववहे-री'!"

बियर का एक घूँट पीकर नयी उमंग के साथ उन्होंने कुछ जोर से कहा–"ववहे-री!" फिर मेरी ओर मुड़कर बोले–
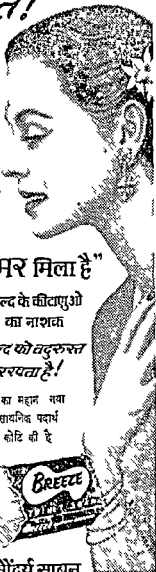
नया! सुगंधित!
ब्रीज़
BREEZE
"इस में ऍक्टमर मिला है"
* शरीर गंध को रोकता है
आप को तरोताज़ा रखता है!
* जिल्द के कीटाणुओं का नाशक
जिल्द को तंदुरुस्त रखता है!
ऍक्टमर (बाइथिमनॉल) मोन्सान्टो का महान नया 'बॅक्टिरियोस्टॅट' है—यह एक ऐसा रसायनिक पदार्थ है जिस की कीटाणुनाशक शक्ति उच्च कोटि की है और साथ ही इस की क्रिया नरम और शांतिकारक है।
BREEZE

"यदि विश्व-साहित्य में कहीं एक शब्द में भावतरंगिनी कविता भरी पड़ी है, तो वह शब्द है–'क्वहे-री'' मुझे इसी मधुर शब्द ने प्रेम का साक्षात्कार कराया और प्रेम करना सिखाया। शायद पूरी घटना सुनने के लिए आप उत्सुक भी होंगे।"

उस धुंधले प्रकाश में कीवियू लोगों की झोपड़ियों की ओर आत्मीयता के साथ देखते हुए सालि ने अपनी कथा शुरू की–

"उन दिनों में अफ्रीकी लोक-नृत्यों पर शोध करने में दिन-रात लगा रहता था। मेरे श्वेतवर्गी समाज में मेरे इस 'भ्रष्टाचरण' और 'नीच सहवास' को लेकर कई कड़ी व तीखी आलोचनाएँ होने लगीं और साथ ही अनेक बाधाएँ और भर्त्सनाएँ भी मुझे 'सत्पथ' पर लाने के लिए हुईं। किन्तु मैं तिल-भर भी विचलित नहीं हुआ। मेरी अंत-प्रेरणा इतनी ऊर्जस्वी थी कि, इन बाधाओं और आपदाओं से बेदाग बचकर अपने लक्ष्य पर बढ़ रहा था। आदिवासियों के साथ ही मेरा अधिकांश समय बीतता। उनके प्रत्येक सामूहिक नृत्य में भाग लेता था। कई रात्रियाँ उन्हीं की झोपड़ियों में कटी थीं। धीरे-धीरे मैं आदिवासियों के स्वच्छ आचार-विचार, सभ्य समाज में अलभ्य, अकलंक व्यवहार और विशिष्ट संस्कार का अध्ययन करता गया।

"मेरे पिताजी को यह सब बहुत अखरा और तब, मैं घर से सदा के लिए विदा होकर कीवियू लोगों के प्रदेश नैय्येरि में आ बसा। ग्रामवासी कीवियू लोगों में भी कुछ व्यक्तियों को मुझसे सहानुभूति न थी। उनकी धारणा थी कि, मैं गोरों का गुप्तचर हूँ। उनमें तीन कीवियू तो मुझे अपना परम शत्रु समझ कर घृणा करते थे–एक गाँव का मालिक, दूसरा मुखिये का साला और तीसरा, एक बौना किसान था। पर गाँव के मुखिये को मुझसे बड़ा स्नेह था और वह बड़े आदर के साथ मेरी सहायता करता था।

"रोज रात को मैं उन ग्रामीणों के सामूहिक 'गोमा'-नृत्य में भाग लेता और दिन में सफेद चीनी मिट्टी ('प्लास्टर आव पेरिस') से भिन्न-भिन्न नृत्य-मुद्राओं की मूर्तियाँ बनाता। मुखिया ने मेरे ठहरने के लिए एक अच्छी साफ-सुथरी झोपड़ी बनवा दी थी।

"एक दिन रात को झोपड़ी में खाट पर निश्चिंत सो रहा था कि, किसी ने 'ब्वाना! ब्वाना!' कहकर पुकारा। मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा और टार्च दबाकर देखा, तो सामने गाँव की एक जवान कीवियू लड़की कातर दृष्टि मुझ पर गड़ाये खड़ी थी। उसने तुरत ही कहा–'ब्वाना! (साहब!) आपको मारने के लिए एक काला 'बाघ' निकला है। वह आपके पैर को काटेगा और आप छटपटाकर मर जायेंगे। अभी कहीं दौड़-भागकर अपने को बचा लीजिये! मैं यहीं कहने आयी थी, अब जाती हूँ!'

"मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही

वह चली गयी। उसके स्वर में बेचैनी थी। उसके अदृश्य हो जाने पर मुझे भ्रम हुआ कि, कहीं यह स्वप्न तो नहीं है? किन्तु दूसरे ही क्षण मेरी नशा टूटी—यह स्वप्न नहीं है मैंने उस लड़की को कई बार सामूहिक नृत्य में देखा है। मुझे विश्वास हो गया—अवश्य ही संकट मेरे सिर पर है। वह मुझे बचाने के लिए यहाँ आयी और सावधान करके चली गयी।

"तुरन्त ही मैंने मिट्टी की एक बड़ी मूर्ति को, जो अभी गीली ही थी, खाट पर लिटाया और उसे कम्बल से ढक दिया। स्वयं मैं खाट के सिरहाने पर काली चादर ओढ़कर चुपचाप बैठ गया। मेरे एक हाथ में पिस्तौल और दूसरे में टार्च थी। अपने शत्रु की हत्या करने की, आदिवासियों की रीतियाँ बड़ी भयंकर हुआ करती हैं, इसलिए मेरा मन भिन्न-भिन्न आशंकाओं से उलझ रहा था। इतने में, मेरी झोंपड़ी के किवाड़ खुलने की धीमी आवाज सुनायी पड़ी। मैं साँस रोककर चुपचाप देख रहा था।

"एक काली छाया मेरी खाट के पैताने की ओर सरकती हुई आयी और क्षण-भर वहाँ रुकने के बाद मुड़कर वापस चली गयी। बाहर जाते समय, उस धुँधले प्रकाश में उस मूर्ति को गौर से देखा। मेरा अनुमान सही निकला—वह और कोई नहीं था, गाँव का मान्त्रिक ही बाघचर्म ओढ़कर उस वेश में आया था।

"थोड़ी देर के बाद मैंने उठकर मिट्टी की मूर्ति के पैरों को देखा। उसके बायें पैर में एक काला दाग था, जो सुई भोंकने से हुआ था। मुझे समझने में देर नहीं लगी कि, सुई के जरिये एक घोर विष का प्रयोग किया गया है।

'दूसरे ही दिन मैं वह गाँव छोड़कर चलने को तैयार हो गया। प्रबल इच्छा थी कि, अपने प्राण बचानेवाली उस कीकियु युवती से मिलकर हार्दिक कृतज्ञता प्रकट कर लूँ। विदा लेने के बहाने हर झोपड़ी पर हो आया। सब मिले; पर वह मेरी प्राणरक्षिका नहीं मिली।

"विषाद का भार चित्त में और हाथ में पेटी उठाये हुए मैं जंगल की पगडंडी से जा रहा था कि, 'जाम्बो, ब्वाना! (नमस्ते साहब!)' की मधुर ध्वनि सुनकर मैंने मुड़कर देखा। दो शिलाओं की आड़ से वही युवती मुस्कुराती हुई निकल आयी, जिससे न मिल पाने के कारण मेरा मन उदास था। जंगली पूहड़ के पास वह खड़ी थी। पूहड़ के खिले हुए लाल फूल उस युवती के निर्मल हृदय के प्रतीक-से दीख पड़े। मैंने अपनी पेटी खोलकर कुछ बहुमूल्य चीजें निकालीं और उन्हें उस युवती के सामने बढ़ाकर कहा—'मेरे ये उपहार स्वीकार करो!' किन्तु उसने सिर हिलाकर मना कर दिया—मेरे सारे अनुरोध व्यर्थ हुए।

"अन्त में मैंने पूछा—'तुम्हारा नाम?'

"कवीना!' लजाते हुए उत्तर मिला।

"तुम्हारी झोंपड़ी कहाँ है? मैंने

गाँव-भर छान डाला, तुम मिली नहीं?'

"बड़े सहज-सरल भाव से वह बोली—'मैं मुक्कुरु की बेटी हूँ।'

"सुनकर तो मैं क्षण भर स्तब्ध रह गया। मुक्कुरु उस मांत्रिक का नाम था, जिसे मेरे प्राणों की तीव्र पिपासा थी।

"पेटी उठाकर मैं चलने को हुआ। कबीना हाथ हिलाती हुई बड़े मधुर स्वर में बोली—'क्वहे-री!' मैं बार-बार उसे मुड़कर देखता और विदाई-शब्द के उत्तर में हाथ हिलाता हुआ उससे बिछुड़ गया। वह देर तक उन्हीं शिलाओं के बीच, जंगली यूहुड के पास खड़ी विरह विह्वला-सी मुझे निहारती रही।

"स्टेशन पहुँचकर मैंने मोम्बासा के लिए टिकट खरीदा और गाड़ी में बैठ गया। गाड़ी आगे दौड़ रही थी और मेरा मन पीछे—उस यूहुड के पास खड़ी कबीना से हटता ही नहीं था। उसकी मुस्कराहट, आँखों के सामने नाच रही थी। उसकी मधुर वाणी—'क्वहे-री!' मेरे कानों में अभी भी गूँज रही थी।

"आखिर 'इसावो' स्टेशन पर आकर मैं उतर पड़ा। हृदय की जीत हुई। दूसरी गाड़ी से ही मैं नैय्येरी लौट पड़ा।

"महाशय! अब वह मांत्रिक मेरा प्रिय ससुर है—कबीना से मैंने विवाह कर लिया है। अभी अपने ससुर के घर ही जा रहा हूँ।"

सालि ने अपनी कथा समाप्त की और प्रकृति की शोभा निरखने में तल्लीन हो गये। श्रद्धा-विस्मयाभिभूत हो मैं उन्हें एकटक देख रहा था। तब तक वोय् स्टेशन पर गाड़ी आ रुकी। सालि अपना सूटकेस लेकर गाड़ी से उतरे और प्लेटफार्म पर खड़े होकर अपना बायाँ हाथ हिलाते हुए उन्होंने मेरी ओर देखकर बड़े स्नेह से कहा—"क्वहे-री!"

स्नेह और आदर के साथ मैं मुस्कराया और मुँह से निकल पड़ा—"क्वहे-री!"

वोय् स्टेशन के टिमटिमाते दीप प्रकाश में एक तंग फाटक के पास लगा बोर्ड—'काले स्वदेशियों के जाने का रास्ता'—साफ दिखायी दे रहा था। सालि उसी रास्ते से होकर जा रहे थे। अदृश्य न होने तक, मैं उस महामानव की मूर्ति को अपार श्रद्धा के साथ देखता रहा। उसी क्षण मेरी समझ में यह बात आ गयी कि, मेरा अफ्रीका-प्रवास सफल हुआ।

इसके बाद एक-एक कर चार लम्बे-लम्बे साल बीत गये और अभी-अभी नैरोबी से मेरे मित्र गोमस ने पत्र भेजा है। सिर्फ एक पंक्ति लिखी है उसमें—"सालि को गोरों ने ही गोली मार दी।"

विश्वास नहीं होता, किन्तु सत्य तो सत्य ही है। इन मूर्खों ने उसे मार ही डाला। किन्तु यह कोई नयी बात तो नहीं है। गांधी, ईसा, पैगम्बर—सबके साथ तो इन्होंने यही किया। क्यों पहले की गयी गलती आज भी दुहरायी इन्होंने और कौन कह सकता है कि, भविष्य में यही गलती फिर नहीं दुहरायी जायेगी?...

"प्यारे यायावर सालि!..क्वहे-री!"

★

# घूँसेबाजी

द्वारा

## मेरा आत्म-साक्षात्कार

राकी मारशियानो आज के जगत का विश्व विजयी घूँसेबाज है। मुष्टि-युद्ध की कला में इसने जो कौशल अर्जित किया है, वह बलात्‌ही पुराण के किसी धीरोदात्त नायक की प्रतीति कराता है। किन्तु शरीर बल का ऐसा विराट्‌ समुच्चय होते हुए भी मारशियानो का मानवत्व ज्यों-का-त्यों रहा है। प्रस्तुत लेख में इस तथ्य की साखी स्वयं उसकी आत्मकथा से प्राप्त कीजिये।

★

२४ सितम्बर, १९५२ के सवेरे साढ़े आठ बजे जब मेरी आँख खुली, तो मेरा सारा बदन दर्द कर रहा था। जगह-जगह चोट के निशान थे। आँखों की चमड़ी फट जाने से उसे डाक्टर से सिलवाना पड़ा था और सिर पर भी गहरा घाव था। फिर भी मैं प्रसन्न था और इतना अधिक कि, शायद जीवन में अपने-आपको धन्य समझने का अवसर वैसा फिर न मिले। कारण कि, गत रात्रि जर्सी जा-बुल्काट को हरा कर मैंने बॉक्सिंग (मुक्केबाजी) में 'हेवीवेट-चेम्पियन' का पद प्राप्त किया था। इसका अर्थ यह था कि, मुक्केबाजी में मुझे हरानेवाला संसार में कोई नहीं है।

वास्तव में, 'वर्ल्ड-चेम्पियन' बनने की मैंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। मेरा विचार तो कुछ और बनने का था, लेकिन परिवार का खर्च चलाने के लिए मुझे यह पेशा स्वीकार करना पड़ा।

मुझे वह रात अच्छी तरह याद है, जब सन्‌ १९३३ में प्रिमो कार्नेरा ने जेक शार्की को हरा कर वह पद प्राप्त किया था। उस समय मैं केवल आठ वर्ष का था और कार्नेरा की बलिष्ठ भुजा को छू कर ही मैं रोमांचित हो उठा था। मैंने अपने पिताजी से इसका जिक्र भी किया और जब उन्होंने पूछा—"कार्नेरा कितना बड़ा है?" तो मैंने उत्तर दिया था—"इस छत से भी ऊँचा!"

मुस्केटो को हराने के एक साल पहले मैंने जो-लुई से पहली बार हाथ मिलाया। वह मुझे पर्वत की तरह विशाल दिखायी पड़ा। उस समय वह एक अत्यंत सुंदर ओवरकोट और हेट पहने था। मैंने अंदाज लगाया कि, केवल उसके हेट की कीमत पचास डालर से अधिक होगी। जब लुई ने मैक्स श्मेलिंग को दो मिनिट चार सेकेंड में पछाड़ा, तो अखबारों में छपा था कि, प्रति मिनिट उसने १,५०,००० डालर

कमाये, जो अमेरिका के राष्ट्रपति की वार्षिक आय से भी अधिक है।

उस समय मैं बच्चा ही था। अपने मित्र साली कोलोम्बो के साथ मैं बहुत देर तक इस विषय पर चर्चा करता रहा कि, 'वर्ल्ड-चैम्पियन कितना धन कमाता है।' मुसोटो को हराने के बाद भी मेरे मन में यही कल्पनाएँ उठती रही कि, यदि मैं संसार का श्रेष्ठतम मुक्केबाज घोषित कर दिया गया, तो मैं अपार धन का स्वामी बन जाऊँगा! इतने धन का कि, जिससे केवल रोटी और कपड़े की समस्या ही हल नहीं हो सकेगी, बल्कि कई लोगों के दुःख भी दूर किये जा सकेंगे।

[ विश्व विजयी मुष्टि योद्धा रॉकी मारशियानो ]

उस समय मुझे बहुत-सी ऐसी बातें ज्ञात नहीं थी, जो अब 'चैम्पियन' बनने के बाद मालूम हुई है। उदाहरण के लिए, मैंने कभी भी यह आशंका नहीं की थी कि, निर्दोष होते हुए भी कई बार मुझे मार डालने तक की धमकी दी जायेगी। पैसा भी, जितना मैं सोचता था या लोग अनुमान लगाते हैं, उतना मुझे नहीं मिलता, क्योंकि खर्च और टैक्स में ही बहुत-सा धन जाता है। और, सपने तो कभी पूरे होते ही नहीं! 'चैम्पियन' बने रहने के लिए दिन-भर मेहनत करनी पड़ती है और कभी-कभी तो मानसिक स्थिति भी ऐसी हो जाती है कि, आँसू तक आ जाते हैं।

जो-लुई को हराने के बाद मैंने सुना कि, मेरी माँ को किसी ने चिट्ठी लिखकर धमकी दी कि, अगर मैं अपने शहर ब्राक्टन लौटा, जहाँ मेरे स्वागत का आयोजन हुआ था, तो मैं गोली से उड़ा दिया जाऊँगा। चार्ल्स के साथ दंगल होने के पहले भी किसी व्यक्ति ने मेरे स्वजनों को चिट्ठी लिखी कि, यदि मैंने चार्ल्स को हरा दिया, तो मेरी हत्या कर दी जायेगी, क्योंकि चार्ल्स शरीफ आदमी है और मैं गुंडा हूँ।

ब्राक्टन-पुलिस ने पता लगाया कि, पहला पत्र तेरह साल की एक लड़की ने लिखा था। दूसरा पत्र किसने लिखा, यह मुझे मालूम नहीं और न मैंने खोज करने की ही कोशिश की। मैं ऐसी चिट्ठियों से विशेष चिंतित नहीं होता, लेकिन मेरी माँ बहुत घबड़ा जाती है। पहली चिट्ठी मिलने पर मेरी बहनों को, डाक्टर माइकेल

कोल्आिनो के पास बडी बदतर हालत में मेरी माँ को ले जाना पडा था और अब जब-कभी भी मैं दगल में जाता हूँ, तो डाक्टर कोल्आिनो मेरी माँ को अपने साथ मोटर में घुमाते रहते हैं। क्या कहूँ, मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि, मेरी विजय के कारण मेरे परिवार को इतना कष्ट भोगना पडेगा।

ब्राक्टन में माइल्स डेम्पसी नाम का मेरा एक मित्र था। वही मेरा पहला प्रशंसक था। जब से मैंने मुष्टि-युद्ध प्रारम्भ किया था, तभी से वह मुझे देखने आया करता था। चार्ल्स के साथ जब मेरा दगल हुआ, तो वह भी उपस्थित था। अत्यधिक आवेश में अकस्मात् उसके हृदय की गति रुक गयी और वह वहीं मर गया।

मैं पहले ही कह आया हूँ कि, घूँसेबाजी का व्यवसाय मैंने शौक से नहीं, पैसे कमाने की गरज से अपनाया था। दगल लडने से पहले, मजदूरी करके मैं अधिक-से-अधिक सवा डालर प्रति घंटा कमाता था।

एक गरीब परिवार में पैदा होने के नाते पैसे की महत्ता मुझे अच्छी तरह मालूम है। 'बाक्सिंग' आरम्भ करने के पहले मैंने निश्चित किया था कि, अपने शहर के तमाम लडके-लडकियों को मैं एक रोज दावत दूँगा, लेकिन आज मैं जानता हूँ, मेरा यह सपना कभी पूरा नहीं हो सकेगा। इतना धनवान शायद मैं कभी नहीं बन सकूँगा। सबसे अधिक दुःख तो मुझे इस बात का है कि, अस्पतालों, धार्मिक संस्थाओं एवं अन्य जरूरतमदों की भी मैं इच्छानुसार सहायता नहीं कर पाता।

दगल लडना जब मैंने शुरू ही किया था, तभी मैंने इरादा किया था कि, 'चैम्पियन' बनने पर मैं अपने माता-पिता को इटली में उनके मूल निवासस्थान पर अवश्य भेज दूँगा। मैंने अपना सकल्प पूरा भी किया, मगर यह सारा अध्याय क्रूर और करुण ही रहा। जब वे इटली के लिए रवाना हो रहे थे, तो मैं इतना व्यस्त था कि, उन्हें विदा देने के लिए हवाई अड्डे पर पहुँच भी न सका। दूसरे, तीन महीने वहाँ रहने के बाद वे वापस भी लौट आये, क्योंकि उन्हें वहाँ सर्वत्र दैन्य, नैराश्य एवं सकट-विडम्बना के ही दर्शन हुए। सभी लोग उनसे सहायता की प्रार्थना करते, लेकिन सभी को सतुष्ट करना सम्भव नहीं था। मेरी माँ का हृदय तो ऐसा कोमल है कि, किसी को कष्ट में नहीं देख सकती।

किन्तु 'चैम्पियन' बनने के कारण सबसे बडी जो असुविधा मुझे हुई, वह है मेरे अपने ही स्वजनों एवं मित्रों का मुझसे दूर-दूर रहना। ऐसा मालूम होता है, मानो मेरे और उनके बीच 'चैम्पियनशिप'-रूपी एक अलघ्य दीवार खडी हो गयी है।

एक दिन मेरी माँ ने मुझसे कुछ असमजस के साथ कहा—

"राकी, मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ, लेकिन तुमसे बात करते वक्त मुझे डर लगता है कि, कहीं मैं तुम्हें परेशान तो

नहीं कर रही हूँ।" मैंने कहा– "माँ, मैं तुम्हारा बेटा हूँ, तुम मुझे कभी परेशान नहीं कर सकती। तुम जिस वक्त भी, जो चाहो, मुझसे कह सकती हो।"

तब मानो प्रोत्साहित होकर माँ ने कहा– "मेरा खयाल है कि, तुम जिंदगी के बहुत बड़े आनंद से वंचित रह जाते हो। जब तुम्हारी बहन के लड़की हुई या जब-कभी कुटुम्ब में कोई शादी होती है, तो तुम शामिल होने नहीं आते।"

शायद साल-भर से वह मुझसे यह बात कहना चाहती थी, क्योंकि मेरी बहन की बच्ची अब दो साल की हो गयी है। लेकिन मैं उसे छ मास की होने पर ही देख पाया। इसी तरह मेरे मित्र निकी माइलवेस्टर का जब विवाह हुआ, तो मैं वहाँ पहुँच भी न सका। इतना ही नहीं, मेरी अपनी बच्ची एन अब दो साल की हो गयी है और सभी लोग कहते हैं कि, वह पैरों पर चलने की और बोलने की कोशिश करती है और बड़ी भली मालूम देती है। लेकिन मैं अपनी पत्नी और बच्ची के साथ वर्ष में केवल चार महीने ही रह पाता हूँ।

[ मुष्टि-युद्ध में उनकाट को पराजित करता हुआ मारशियानो ]

यह सच है कि, सफलता प्राप्त करने के लिए मुझे बहुत-से सुखों का परित्याग करना पड़ा है। लेकिन इसी सफलता के परिणाम-स्वरूप मैं बहुत-से ऐसे कार्य करने में भी समर्थ हो सका हूँ, जिनसे मुझे आतरिक प्रसन्नता मिली है। मेरे पिताजी इस समय ६१ साल के हैं। प्रथम विश्वयुद्ध में गैस लगने के कारण वे अस्वस्थ हो गये थ और उसके बाद वे कभी बिलकुल स्वस्थ न हो सके। और, ऐसी ही हालत में, तीस साल से भी अधिक समय तक उन्होंने शहर के जूतों के कारखानों मे काम किया। जिस मशीन पर वे काम करते थे, उस पर काम करना बहुत मुश्किल है। इसी मशीन पर कठोर परिश्रम कर के उन्होंने हम छ बच्चों का लालन-पालन किया है। आज मेरी सबसे बड़ी खुशी यह है कि मैंने उन्हे इस यातना से मुक्त करके तीर्थयात्रा के मार्ग पर लगा दिया है।

साथ ही, परिवार के बाहर के लोगों के लिए भी मैं कुछ करने में समर्थ हो सका हूँ। मैंने सैकड़ों नहीं, तो पचासों नवयुवकों को नैराश्य और अकर्मण्यता से उठाकर बड़े-बड़े कार्यों की ओर प्रेरित किया है। इनमे से कुछ तो आज बड़े-बड़े अधिकारी बन गये हैं और कुछ लखपति।

एक बार बोस्टन में बड़े-बड़े जूते-निर्माताओं के भोज में मैंने कहा कि मेरी

सफलता में उनका भी कुछ भाग है। मेरे पिताजी जूतों के कारखाने में तीस साल तक कठोर परिश्रम करते रहे। फिर भी इतनी कम आय उनकी थी कि, एक परिवार का भी पोषण वे बड़ी मुश्किल से कर पाते थे। उनका खाना लेकर, जब मैं उनके पास दोपहर में जाता, तो मुझसे सदा कहते- "बेटा, जूतों के कारखाने में तुम कभी काम मत करना।"

मेरे ऐसे जनसम्पर्कों और भाषणों का बड़ा प्रभाव पड़ा है। कई नवयुवकों ने इनसे उर्ध्वगामी प्रेरणाएँ पायी हैं।

विश्व-विजेता होने के बाद मेरे शब्दों एवं आचरण का लोगों पर जो प्रभाव पड़ता है, उसकी कल्पना कर कभी-कभी तो मैं डर जाता हूँ कि, यदि मैंने कोई गलत बात कह दी या कर दी, तो उसका असर कितना बुरा हो सकता है।

एक बार बृहस्पतिवार को मेरा दंगल होनेवाला था, लेकिन उस दिन और उसके बाद भी दो दिन निरंतर वर्षा होती रहने के कारण दंगल न हो सका। संयोजकों ने मुझे रविवार को लड़ने के लिए कहा, लेकिन मैंने स्वीकार नहीं किया। मैंने कहा -"मैं रोमन कैथलिक हूँ और नियमित रूप से रविवार को प्रार्थना के लिए गिरजाघर जाता हूँ। उस दिन मैं कोई काम नहीं कर सकता।"

मैं तो इस बात को भूल गया। लेकिन कुछ दिन बाद, जब मैं कोढ़ियों की एक बस्ती में गया, तो वहाँ एक पादरी ने मुझसे कहा—"रावी! यहाँ पर रहनेवाले सभी लोगों को खेल-कूद से दिलचस्पी है। उन्हें हम नियमित रूप से गिरजाघर जाने की आदत सिखाते हैं, लेकिन रविवार को दंगल लड़ने से इनकार कर तुमने धर्म के प्रति जो दृढ़ आस्था इनमें पैदा की है, वैसी आज तक हम भी नहीं कर सके।"

कोढ़ियों की इस बस्ती में जाने से पहले मैं कुछ चिंतित अवश्य हुआ था; लेकिन एक महिला ने मुझे आश्वासन दिया कि, कोढ़ छूत का रोग नहीं है। अतः मैं वहाँ गया। बारह सौ आदमियों की उस बस्ती में हमारा शानदार स्वागत हुआ। उनकी प्रार्थना पर मैंने अपनी कमीज उतार दी और उन लोगों को मेरी भुजाओं का स्पर्श करने दिया। साथ ही, उनके मनोरंजन के लिए मैंने वहाँ 'वार्किंग' का प्रदर्शन भी किया। वहाँ से जब हम रवाना हुए, तो सभी की आँखें कृतज्ञता एवं आनंद से डबडबा रही थीं और वे मुझे दुआएँ दे रहे थे।

विश्व-विजेता होने का अर्थ क्या है, इसका एहसास मुझे 'रांचो लोस एमिगोस' नाम के अस्पताल में हुआ! वहाँ पर रोगी से पीड़ित मरीजों को देखने हम गये। पहले हम 'पोलियो' रोग के पुरुष मरीजों के पास गये। वहाँ पर एक लड़का मेरे बारे में सब-कुछ जानता था। उससे बात करते समय आँखों में हम दोनों की नजर मिल जाती। वह बेहद खुश था। एक और आदमी वहाँ था, जो पहले 'बास्केट-

चाल' खेलता था। उसने मुझसे कहा कि, मैं 'पोलियो' को अवश्य पराजित करूँगा।

'वर्ल्ड-चैम्पियन' का पद प्राप्त करने के कुछ दिन पश्चात् अमेरिका के राष्ट्रपति के यहाँ से एक पार्टी में शरीक होने का निमंत्रण मिला। उसमें लिखा था कि, राष्ट्रपति को बहुत-से खेल-कूद देखने का समय नहीं मिलता, इसलिए वे अपने यहाँ सभी बड़े-बड़े खिलाड़ियों को बुलाना चाहते हैं और यदि हम भी उनका निमंत्रण स्वीकार कर सकें, तो बड़ी कृपा होगी। वहाँ जाते समय मैं काफी घबड़ा गया था। आज तक किसी भी दंगल लड़ने से पहले मैं इतना आकुल नहीं हुआ। करीब चालीस बड़े-बड़े अन्य खिलाड़ी राष्ट्रपति के निमंत्रण पर उपस्थित थे।

''तो तुम्हीं संसार के 'हेवीवेट-चैम्पियन' हो?'' राष्ट्रपति ने मेरे पास आकर कहा और एक कदम पीछे हट कर मुझे सिर-से-पैर तक देखा। मुस्करा कर उन्होंने मुझसे कहा—''मेरा ख्याल है कि, तुम इसमें भी कुछ बड़े बनोगे।'' आभार और संकोच में मैं तो ऐसा गड़ गया कि, मेरे मुख से धन्यवाद का एक अक्षर भी नहीं निकला।

भोजन के पश्चात् राष्ट्रपति हम सबके साथ चित्र खिंचवाने खड़े हुए। एक मनचले फोटोग्राफर ने उस वक्त का भी चित्र ले लिया, जब राष्ट्रपति मेरी दाहिनी भुजा को छू कर देख रहे थे। मैंने तो कभी इतने बड़े सम्मान की कल्पना भी नहीं की थी। कहाँ एक मामूली मोची का लड़का और कहाँ फाइव-स्टार जनरल (पाँच तमगों-वाले सेनापति)—संसार के सबसे धनी-मानी देश के राष्ट्रपति!

कुछ लोग मेरी निंदा भी करते हैं। एक बार एक 'डिनर-पार्टी' में एक अधेड़ महिला ने मुझसे पूछा—''क्या मजा आता है तुम्हें दूसरों को चोट पहुँचाने में? क्या यह भी किसी प्रकार का क्रूर आनंद है?'' मैंने सिर्फ इतना ही कहा कि, मुझे इसमें कोई आनंद नहीं मिलता। अधिक बहस

## अनुभूति

गत वर्ष चार्ल्स एजार्ड को मैंने पराजित किया, तो एक बड़ी मर्म-भेदक स्थिति मेरी चेतना के सम्मुख आयी। एजार्ड का गर्व-पराभूत चेहरा देखकर मुझे बड़ी आत्म-ग्लानि हुई—''चार्ल्स, मुझे क्षमा कर सकते हो क्या? शपथ खाता हूँ, अब कभी अखाड़े में न उतरूँगा। पशुत्व के इस चरम प्रपंच से मैं विदग्ध होता जा रहा हूँ!...''

चार्ल्स की आँखों में आँसू आ गये। मुझे पूरी प्रतीति है, वे प्रेम के, शुद्ध-सनातन मानव-प्रेम के, आँसू थे—''व्यर्थ विदग्ध न होओ, राकी! हम सब पशु ही तो हैं। जीवन-रूपी अग्नि-परीक्षा में प्रति क्षण जो हम उतरते हैं, तो इसीलिए कि, हमारा पशुत्व गले और भीतर का मनुष्यत्व निखरे!''

—मारशियानो 'आत्मकथा' में

में करना नहीं चाहता था। वास्तव में, बहुत कम लोग यह समझ पाते हैं कि, दंगल में जब दो खिलाड़ी लड़ते हैं, तो व्यक्तिगत वैमनस्य उनमें कुछ नहीं होता। यह तो एक काम है, जो मैंने पैसे कमाने की गरज से शुरू किया था और इसके लिए मुझे कम मेहनत नहीं करनी पड़ती। जब-कभी मेरा दंगल होता है, तो उसके पहले ८ से १२ हफ्ते तक मुझे उसके लिए तैयारियाँ करनी पड़ती हैं। उस समय मुझे बिल्कुल साधु का-सा जीवन बिताना पड़ता है—मेरा सारा ध्यान एक ही वस्तु में केंद्रित रहता है।

दंगल के एक महीने पहले से मैं किसी को पत्र भी नहीं लिखता। जब दस दिन बाकी रहते हैं, तब मैं कोई पत्र नहीं पढ़ता—न टेलिफोन पर ही किसी से बातचीत करता हूँ। आखिरी हफ्ते में तो किसी से हाथ मिलाने या गाड़ी में बैठ कर बाहर जाने का भी मुझ पर प्रतिबंध रहता है। कोई मेरे रसोईघर में नहीं घुस सकता और न कोई नयी वस्तु मुझे खाने को दी जाती है। यहाँ तक कि, मैं किसी से बात भी नहीं कर सकता। मेरे प्रतिद्वंद्वी का नाम भी मुझे नहीं बताया जाता और न अखबार ही पढ़ने दिया जाता है।

दो या तीन महीने तक मेरा प्रत्येक क्षण इसी एक ध्येय की पूर्ति में व्यतीत होता है कि, प्रतिद्वंद्वी को कैसे हराया जाये। वह कौन है और कब मुझे उससे दंगल लड़ना पड़ेगा, यह न जानते हुए भी उसकी एक कल्पित मूर्ति सदा मेरी आँखों के सामने रहती है। एक बार एल. और मैं भोजन के बाद ४५ मिनिट तक इसी एक विचार में चक्कर काटते रहे कि, बुलकाट को हराने के लिए कौन-सा उपाय काम में लिया जाये? यह तय हुआ कि, 'लेफ्ट हुक' के बाद 'राइट हैंड अपरकट' मारना ठीक रहेगा। इसी की मैंने 'प्रैक्टिस' की और बुलकाट इसी से हारा भी।

लोग मुझसे पूछते हैं—"क्या मैं इस बात की चिंता नहीं करता कि, कोई मुझे भी हरा सकता है?" मैं घमंड तो नहीं करता, लेकिन मेरा खयाल है कि, इस समय तो संसार में मुझे कोई नहीं हरा सकता। अपने ४७ दंगलों में मैं एक बार भी नहीं हारा और भाग्य ने यदि मेरा साथ दिया, तो अभी ४-५ साल तो मैं 'वर्ल्ड-चैम्पियन' का पद बनाये रखूँगा। फिर भी मुझे वह दिन अच्छी तरह याद है, जब जो-लुई और जर्सी-बुलकाट का दंगल हुआ था और बुलकाट लुई को हरा कर संसार का 'हैवीवेट-चैम्पियन' बन गया। उस समय मैं 'ब्रायटन गैस-कम्पनी' में काम करता था और दस महीने पहले एक मामूली दंगल भी लड़ चुका था। उस समय मैंने सोचा भी नहीं था कि, एक दिन बुलकाट को हराकर 'वर्ल्ड-चैम्पियन' मैं बन सकूँगा। हो सकता है कि, इस समय भी कोई नौजवान खिलाड़ी ऐसा तैयार हो रहा है, जो मुझे भी हरा सके। शायद उसके मन में भी 'वर्ल्ड-चैम्पियन' बनने की उतनी ही उत्कट अभिलाषा हो जितनी मुझमें थी।

*

# २०-वीं सदी का कारूँ

# शाह फारूक

कर्ट सिंगर द्वारा लिखित 'माडर्न मनी मोगल्स' पुस्तक के एक अध्याय का संक्षिप्त हिन्दी रूपांतर। पुरातन मिस्र के एक पुजारी बादशाह ने कहा था—"वैभव का भोग जब इंद्रियों को प्रिय लगने लगता है, तो उसे पहाड़ी नदी की बाढ़ समझो, जिसमें अकस्मात् बड़ा आदमी डूबे बिना बच नहीं सकता।" मिस्र के निर्वासित अतुल धनी-मानी शाह फारूक ने पिरामिडों में गुंजित इस चेतावनी को नहीं सुना था।

✶

अभी मिस्र के अपदस्थ नरेश शाह फारूक का जो संग्रह काहिरा में नीलाम हुआ है, उसका विवरण सुनकर आप आश्चर्य-चकित हुए बिना नहीं रह सकते। उस संग्रह में शाह फारूक के बहुमूल्य आभूषण, जवाहरात, दुष्प्राप्य पुराने सिक्के, टिकट-संग्रह, काँच के बरतन, कांस के बने हुए 'पेपर-वेट,' घड़ियाँ आदि अनेक प्रकार की वस्तुएँ हैं।

फारूक को अद्भुत वस्तुओं के संग्रह का बड़ा शौक था और अजायबातों के व्यापारी विश्व-भर में शाह फारूक के इस संग्रह के लिए चीजें खरीदते रहते थे। लंदन और यूरोप के अन्य देशों में अजायबातों के जो एजेंट हैं, उन सबको फारूक का आदेश था कि, जब कोई अद्भुत वस्तु देखें, तत्काल ही वे फारूक के लिए खरीद लें।

[शाह फारूक के संग्रह का सर्वाधिक मूल्यवान् और अद्भुत शतरंज खिलौना—'शाह का दास', जिसकी कीमत कभी कोई आँक नहीं पाया।]

लंदन की 'साउथ-ब कम्पनी ने उसमें से बहुत-सा सामान खरीदा था। अतः जब मिस्र की सरकार ने शाह फारूक की चीजें जब्त कीं, तो उसने उन वस्तुओं के विक्रय

का भार भी उसी कम्पनी पर डाला।

शाह फारूक का संग्रह कितने ही संग्रहालयों से अच्छा है और किसी भी पारखी का ज्ञान बिना उस संग्रहालय को देखे अपूर्ण ही रहेगा।

[शाह फारूक के संग्रहालय का दूसरा वैचित्र्य—हीरे-मणियों से जड़ी यह घड़ी अपनी 'टिक' की ध्वनि के साथ रात्रि के ठीक बारह बजे एक सुमधुर रागिनी भी सुनाती है।]

अब उनके संग्रह के वैविध्य की भी एक झाँकी देखिये। एक ओर तो आपको २०० ई० पू० में बनी वह तराजू, जिसमें शाह प्टोलेमी पंचम के चित्र-युक्त सोने का पट्टा लगा है और प्राचीन यूनान के सोने के सिक्के आदि पुरातत्व की वस्तुएँ देखने को मिलेंगी, तो दूसरी ओर सोने के रत्न-जटित सिगरेट-केस, सुंघनीदान, आदि वस्तुएँ मिलेंगी। और, १८-वीं तथा १९-वीं शताब्दी की कारीगरी के नमूनों का तो कहना ही क्या ? पूरे विश्व में बहुत कम जगह ऐसी हैं, जहाँ इतना प्रातिनिधिक और पूर्ण संग्रह देखने को मिल सकता है।

रूस के जार के कारीगर कार्ल फैबर्जे अपनी वस्तुएँ बिल्कुल पूर्ण बनाने के लिए घुटनों लगाकर काम किया करते थे। उनकी तो कितनी ही चीजें इस संग्रह में मिलेंगी। फैबर्जे-द्वारा निर्मित वस्तुओं में, जो इस संग्रह में हैं, एक 'ईस्टर-एग' है, जिसे रूस के शाह, जार निकोलस द्वितीय ने अपनी पत्नी को भेंट किया था। इस संग्रह में उनकी बनायी एक सोने की सीपी है, जिसे खोलिये, तो अंदर सफेद सोने की बनी हुई एक बतख तैरती दिखेगी।

१८९८ में अलेक्जेंडर फेरडिनानडोविच ने अपनी पत्नी बारबरा किल्च को एक 'ईस्टर-एग भेंट किया था। उस अंडे पर लाल रंग की मीनाकारी का काम है और गुलाबी रंग के हीरे का बार्डर (किनारी) बना है। उसके मध्य में हीरे का एक खासा बड़ा टुकड़ा लगा है और उसके नीचे भेंट करनेवाले का चिह्न बना है। उस अंडे को खोलने पर आपको उसका पीला भाग देखने को मिलेगा और उसके नीचे एक मुर्गी दिखेगी, जिस पर लाल, सफेद और भूरे रंग का बहुत ही बारीक काम किया

[विभिन्न रत्नजटित सिंह की आकृति का यह 'पेपर-वेट' शाह फारूक को बहुत ही प्यारा था। इसकी कीमत कई लाख रुपये बतायी जाती है।]

हुआ है। इस अद्भुत कारीगर की कारीगरी यहीं समाप्त नहीं होती। वह मुर्गी भी एक खटके से खुल जाती है। उसके अंदर सोने का हृदय बना है, जिस पर चारों ओर हीरे और केंद्र में एक माणिक जड़ा है। इस हृदय के चारों ओर एक फ्रेम है और उस पर भी विविध रत्न जड़े हैं। यह अद्भुत अंडा भी फारूक के संग्रह की एक शोभा है।

इनके अतिरिक्त घड़ियों का तो इतना बड़ा संग्रह फारूक का था कि, कुछ कहना ही नहीं। इतने प्रकार की घड़ियाँ देखने को मिलेंगी कि, उनकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। खोपड़ी, पिस्तौल, हंस, स्लीपर तथा पान के शक्ल की घड़ियाँ तो देखते ही बनती हैं। इनके अतिरिक्त, कितनी ही अद्भुत जब-घड़ियाँ भी हैं। उदाहरण के लिए, एक ऐसी जेब-घड़ी है, जिसका बटन दबाने पर घोड़े पर सवार दो व्यक्ति नजर आते हैं और एक व्यक्ति बीच में खड़ा दिखलायी पड़ता है।

इस संग्रह में कुछ घड़ियाँ तो ऐसी हैं, जो १७८० से १८२० के बीच फ्रांस और स्विट्जरलैंड के सर्वोत्तम कारीगरों-द्वारा बनायी गयी हैं। इनमें से कुछ घड़ियाँ चीन के धनाढ्य व्यक्तियों ने खरीदी थीं। इस शताब्दी के प्रारम्भ में पुनः यूरोपीय संग्रहकर्ताओं की दृष्टि इन घड़ियों पर गयी और उन लोगों ने चीनी रईसों से खरीदकर इन घड़ियों का संग्रह करना प्रारम्भ किया। फारूक के संग्रह में इस तरह की भी कई घड़ियाँ हैं, जिन्होंने एक बार यूरोप से चीन और चीन से पुनः यूरोप तक की यात्रा की है।

इनके अतिरिक्त खिलौने भी कुछ कम नहीं हैं। एक चिड़िया पिंजड़े में बैठी गाती रहती है। छोटे-छोटे कितने ही बाजे हैं। और, सबसे अद्भुत खिलौना तो 'जादू का बक्स' है। इस बक्स को खोलिये, तो एक जादूगर दिखलायी पड़ेगा। उस बक्स में एक द्वार है, जिसमें कुछ प्रश्न लिखे रखे हैं। उन प्रश्नों में से आप कोई भी १२ प्रश्न पूछ लीजिये—डब्बे के अंदर बना वह जादूगर उन प्रश्नों का उत्तर दे देगा!

✱

## अफसर

एक रंगरूट फौज की परीक्षा देने गया। जल्दी में वह अपने साथ कागज-कलम ले जाना भूल गया। वहाँ पहुँच कर उसने अफसर से लिखने का सामान माँगा। अफसर ने कहा—"रणक्षेत्र में यदि कोई सैनिक अपने शस्त्र लिये बिना ही जाये, तो उसे तुम क्या कहोगे?"

"अफसर!" रंगरूट ने तत्काल ही उत्तर दिया। —'वीकली' से

★

# गोद का दिया

नारी-आत्मा के अन्यतम अन्तर्यामी शरच्चन्द्र की यह कितनी अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति है- "अचेतन-अतृप्त मातृत्व की वेदना का एक सहस्रांश भी अनुभव यदि ब्रह्मा को होता, तो वह नारी को धरती पर नहीं भेजता !" तमिलनाडु की एक ग्राम-कवयित्री ने शरद की इसी उक्ति को एक लोकगीत में कितनी विदग्धता के साथ संजीवित किया है, पढ़ते ही बनता है। भावार्थ-सहित यह गीत हमें श्री र. शौरिराजन से प्राप्त हुआ है।

★

वृद्धा— "एन् अऴ़रे पॅण्णे ? एन् अऴ़रे पॅण्णे ?
एन् अऴ़रे पॅण्णे नी, मान् अऴुवाप् पोले ?
मान् अऴुवाप् पोले; उन्नं मामन् अडिच्चानो ?
मामन् अडिच्चानो मल्लिकॅप्पूच् चॅण्डाल् ?"

युवती— "मामन् अडिक्कल्ले, ऑर मनिदर् तीण्डविल्लै।"

वृद्धा— "पुरपन् अडिच्चानो, ऑर पॅरुम्पंगऴिचाले ?"

युवती— "पुरपन् अडिक्कल्ले, ऑर मूतर् तीण्डविल्लै।"

वृद्धा— "कॉळुन्दन् अडिच्चानो, उन्नं कोत्तडियिनाले ?"

युवती— "कॉळुन्दन् अडिक्कल्ले, ऑरुतरं तीण्डविल्ले;
वट्टिलिले पोट्ट सादं सासि। वारिसिल्ल मॅन्दतिल्लै !
किण्णिपिले पोट्ट सादं कौरितिम्प् पिळ्ळै इल्लै;
तण्णिक्किप् पोकॅयिले तटं मरिक्कप् पिळ्ळै इल्लै;
करक्कुप् पोकॅपिले उडन् वरप् पिळ्ळै इल्लै;
अंगाडिक्कूडंदं अळंतुवर मॅन्दन् इल्लै;
पंगायक्कूडंयं विलै मरिक्क मॅन्दन् इल्लै;
मळंपॅय्द पासालिले नान् मॅन्वनाह काणेने;
मॅन्वनाह काणेने- नान् मरंभि अळुगिरॅने !"......

—एक ग्रामीण वृद्धा ने अपने पड़ास के घर की युवती वहू का सिसक-सिसककर रोना सुना, तो जिज्ञासा व आशंका से उद्वेलित होकर उसके पास जा पहुँची। रोती हुई उस तरुणी के पास बैठकर वृद्धा ने स्नेह से पूछा —"बेटी, क्यो रो रही है?"

सहानुभूति का स्पर्श पाकर उस युवती की सिसकियाँ तीव्र हो गयी। वृद्धा का कोमल मन और भी द्रवित हो उठा। उसने उस शोकातुरा की पीठ पर प्यार से हाथ फेरते हुए पुन प्रश्न किया—"अरी, बोलेगी नही! क्यो रो रही है, बेटी? अरी! बता न, तुझ तेरे मामा ने चपत मारी क्या? अगर मारा भी है, तो निश्चय ही, सहज-स्नेहवश चमेली के गुच्छे से मारा होगा उसने-है न?"

युवती अब भी बिना कुछ बोले, रोती-सिसकती रही। किन्तु अंत मे वृद्धा के ममतामय आग्रह ने उसकी पीडा का दृढ द्वार खोल दिया। वह फफक पडी—"नही नानी, मुझे न तो मामा ने मारा है, न किसी अन्य मनुष्य ने ही मुझ पर हाथ उठाया है।'

"तो तेरे 'पुरुषन्' (पति) ने परिहास में बेंत से तुझे मारा होगा?"

"नही, मेरे 'पुरुषन्' ने भी नही मारा और न किसी भूत प्रेत ने ही मुझे डराया है।"

वृद्धा स्नेहपूर्ण मुस्कान से बोली—"तब? तेरे देवर ने डंडा घुमाते-घुमाते भूल से कही तुझ पर चोट तो नही कर दी, बेटी?"

युवती की सिसकियो का प्रवाह अभी तक जारी था। किन्तु इस बार वह कुछ झुँझलाकर बोली—"नही नानी! देवर ने भी कुछ नहीं किया। किसी ने भी मेरा कुछ नही बिगाड़ा है। मै तो अपने फूटे भाग्य पर रोती हूँ।"

वृद्धा का हृदय भर आया—कौन-सी वेदना साल रही है इस बिचारी को? उसे अपने स्नेह-पाश में भरते हुए उसने बड़े दुलार से पूछा—"तब यो सिसक-सिसककर क्यों रोती है, बेटी? क्या

मचल का दौर

[चित्र : सुधीर खास्तगीर के एक चित्र की सरल प्रतिकृति]

तकलीफ है तुझे?"

युवती के संयम का बाँध और न टिक सका। इस पड़ोसिन वृद्धा के मातृत्व-पूरित स्नेह ने उसे अपने हृदय की पीड़ा प्रकट कर देने का बल दे दिया। वृद्धा की गोद में मुँह छिपाकर बिलखती हुई बोली—

"देखो, नानी! चाँदी की यह थाली यों ही पड़ी है—हठ करके उसमें खाने के लिए मचलनेवाला मेरे घर में कोई नहीं है। घड़ा लेकर पनघट जाते समय मेरे पाँवों में लिपटकर, रूठ-रूठ कर मेरा रास्ता रोकने के लिए, भगवान ने एक लाल मुझे नहीं दिया—मेरी यह गोद सूनी ही रही! नानी! मेरा एक बेटा होता, जो मुझे कहीं बाहर जाती देख, रो-रो हठ ठान लेता—'माँ! मुझे भी साथ लेती चल!' फिर वह गली में कूर्जडिन की पुकार सुनते ही दौड़ कर उसे बुला लाता। नानी! बरसते पानी में मेरे लाख बरजने पर भी भीग-भीग कर खिलखिलाते हुए इधर-उधर भाग-भाग कर मुझे तंग करनेवाले एक बच्चे के लिए मैं अभागिनी तरस रही हूँ। नानी! क्या कहूँ?...मेरी पीड़ा कौन समझेगा? करुणानिधान कहलानेवाले भगवान को भी मुझ पर करुणा नहीं आती...?"

वृद्धा कोई जवाब न दे सकी। उसने उस अभागिनी को और भी अपने स्नेह-पाश में कस लिया। युवती की सिसकियाँ धीरे-धीरे समस्त गाँव के वातावरण में एक वेदना का संचार कर रही थी—एक बार तो उन्हें सुनकर मानो पत्थर के भी आँसू निकल पड़ें....!

★

प्रांत की सरहद पर एक बुड्ढे यात्री को 'कस्टम-पुलिस' ने रोका। उसने घोषणा की कि, उसके पास कोई ऐसी चीज नहीं, जो आपत्तिजनक हो या जिस पर चुंगी लगायी जा सके।

"इस बोतल में क्या है?" पुलिस ने उसका सामान टटोल कर पूछा।

"कुछ नहीं, पवित्र जल है इसमें।" बुड्ढे ने उत्तर दिया। लेकिन जब बोतल खोली गयी, तो उसमें शराब की गंध आयी। बुड्ढे ने तत्काल ही अपने नेत्र आकाश की ओर उठा कर कहा—"लाख-लाख शुक्र है, खुदा! आज तूने प्रत्यक्ष चमत्कार देखने का सौभाग्य मुझे दिया।"

—"द' कन्ट्रीमेन" से

★

रवाना हुए। रास्ते की पहाड़ियों, 'डेलवेयर' नदी तथा सेव के वृक्षों के कारण दृश्य बड़ा मनोरम था। हमने 'अशोकान-बाँध' भी देखा, जहाँ से न्यूयार्क को पीने का पानी पहुँचाया जाता है। कार्नेल का विश्व-विद्यालय अमेरिका में प्रख्यात है। यहाँ लगभग आठ हजार विद्यार्थियों पर वर्ष में आठ करोड़ रुपया खर्च किया जाता है। यहाँ मैंने पशु-पालन-विद्या के विषय में डाक्टर वर्ट से बहुत-सी नयी बातें मालूम कीं। प्रोफेसर फिन्चर यहाँ पशुओं की बीमारियों की रोक-थाम-सम्बन्धी अन्वेषण में व्यस्त हैं। डाक्टर वर्ट के आग्रह से मैंने महात्मा गाधी व अहिंसा पर भाषण दिया।

यहाँ मुझे ज्ञात हुआ कि, न्यूयार्क राज्य में सन् १९२९ में, वर्ष में प्रति गाय औसतन ५,८६५ पौंड दूध देती थी। सन् १९५२ में यह संख्या बढ़कर ६,८४० पौंड हो गयी। सारे अमेरिका के लिए प्रति गाय यह औसत सन् १९३९ में ४३७९ पौंड और सन् १९५२ में ५३२८ पौंड था। अच्छी खुराक व रोग-निवारण के कारण ही यह उन्नति सम्भव हो सकी। सन् १९१५ में प्रति वर्ष प्रति मुर्गी ९० अंडों की तुलना में सन् १९५० में १६० अंडे होने लगे।

अमेरिका के गाँव हमारे देश के गाँवों से बिलकुल भिन्न होते हैं। यहाँ सभी आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। बिजली टेलिविजन, अच्छी सड़कें व आवश्यकता की अन्य सभी वस्तुएँ। मेरा परिचय श्री रेविन नामक एक किसान से कराया गया, जिनके पास डेढ़ सौ एकड़ जमीन की खेती है। उनकी पाँच सौ मुर्गियाँ प्रति दिन तीन सौ साठ अंडे देती हैं और दस गायों में से प्रत्येक का दूध तीस-चालीस सेर होता है। उनका नौकर उनकी खेती व जानवरों की देखभाल करता है। और, वेतन के रूप में उसे मुफ्त में मकान, खाने-पीने की सभी चीजों के अतिरिक्त प्रति सप्ताह चालीस डालर (१९० रुपये) मिलते हैं।

'थाउसंड आइलैंड पार्क' में सेंट लारेंस नदी के किनारे मुझे वह कुटीर देखने का भी सौभाग्य मिला, जहाँ रहकर स्वामी विवेकानंद धर्म पर भाषण देते तथा ईश्वर का ध्यान किया करते थे। मैंने वह वृक्ष भी देखा, जिसके नीचे बैठकर आँधी-पानी के समय भी वे ध्यानमग्न रहा करते थे।

यहाँ से वापस आते समय मेरा परिचय प्रोफेसर डाक्टर बुसनेल से हुआ, जो सपत्नीक भारत का दौरा कर चुके थे। उन्हें अजंता व एलोरा की कलाकृतियों ने प्रभावित किया था। बाद में वे बद्रीनाथ व केदारनाथ की यात्रा पर भी गये थे।

न्यूयार्क में मुझे प्रसिद्ध अमरीकी शिक्षा-शास्त्री डाक्टर किलपैट्रिक से मिलने का सुअवसर मिला। साबरमती में इन्होंने महात्मा गाधी से मुलाकात की थी। 'ब्रुक-लिन पालीटेक्निक' के विख्यात वैज्ञानिक डाक्टर हर्मन मार्क से मिलकर मैं बहुत ही प्रभावित हुआ। ये भारत में विज्ञान-परिषद् के सदस्य होकर आये थे। इनके सौजन्य से मुझे 'राकफेलर इंस्टिट्यूट' देखने

का सुअवसर भी मिला। यहाँ भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम के सहयोगी डाक्टर तारक-नाथ दास तथा प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रोफेसर द्वारिका घोष मुझसे मिलने आये। श्री जे जे सिंह ने—जो अमेरिका में भारत के अनौपचारिक राजदूत मान जाते हैं—मुझे रात्रि के भोजन के लिए आमन्त्रित किया।

प्रिंसटन में मैं 'गुडरिज'-परिवार का अतिथि रहा। यहाँ के विश्वविद्यालय में ढाई हजार विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हैं। बेम्बर्गर नामक एक धनवान व्यापारी द्वारा स्थापित एक विद्यालय में प्रोफेसर आइस्टीन तथा डाक्टर ओपेनहामर प्रमुख शिक्षक रह चुके हैं। यहाँ गणित, भौतिक शास्त्र तथा इतिहास में शोध-कार्य किया जाता है। यहाँ मैंने पहली बार 'हेडन केमिकल कारपोरेशन' नामक 'एंटीबायोटिक' कारखाना देखा, जिसके मैनेजर डाक्टर सोकोल ने मुझे सभी औषधों के तैयार करने की क्रिया समझायी। मैं इनके साथ पहले भी काम कर चुका था। ये गांधीजी के बड़े भक्त हैं।

[अणु विज्ञान के आधार को सुदृढ़ सम्बल देनेवाले कीर्ति लब्ध विज्ञानवेत्ता ओपेनहामर]

श्री गुडरिज के साथ मैं प्रोफेसर आइस्टीन के दर्शन करने गया। वे मुझे शांत प्रकृति के साधु पुरुष लगे। उनके कमरे में महात्मा गांधी का चित्र रखा था। उन्होंने कहा कि, महात्मा गांधी इस युग के सबसे महान् व्यक्ति कहलायेंगे। आइस्टीन शांति के सच्चे समर्थक थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि, अणु-बम के जरिये शांति की स्थापना असम्भव है। उन्होंने श्री जवाहर-लाल नेहरू की विदेशी नीति का समर्थन किया। वे अमेरिका तथा कुछ अन्य देशों की राजनीतिक गतिविधि से बड़े ही चिंतित प्रतीत हो रहे थे। मुझे उनका वह लेख पढ़ने का भी सौभाग्य मिला, जो उन्होंने नीग्रो-समस्या के सम्बन्ध में लिखा है।

'रेडियो कारपोरेशन आव अमेरिका' को देखकर मुझे बहुत हर्ष हुआ। वहाँ की अनुसंधान शाला ने मुझे बहुत ही प्रभावित किया। उसके डायरेक्टर एलमर एंगस्ट्राम ने मुझे रंगीन टेलिविजन दिखाया। फिर मैं प्रिंसटन विश्वविद्यालय की रसायनशाला देखने गया। यहाँ मैंने विश्व-विख्यात डाक्टर केंडल की प्रयोगशाला देखी। जब मैंने उन्हें बताया कि, भारत में लगभग तीन चार करोड़ मुस्लिम बसते हैं, तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि उनकी धारणा थी, भारत में मुसलमान हैं ही नहीं।

स्वामी निखिलानंद के एक अमरीकी मित्र श्री पार हमें प्रिंसटन से फिलाडलफिया

ले गये। उन्होंने मेरे हस्ताक्षर देखकर मेरे स्वभाव आदि का वर्णन करना आरम्भ कर दिया जब कि, उसी दिन उनसे परिचय हुआ था। इंग्लैंड में लोग इतनी जल्दी मैत्री-भाव स्थापित नहीं करते। उन्होंने मुझे वहाँ की टकसाल दिखायी, जो लंदन तथा कलकत्ता की नयी टकसाल से कहीं अच्छी है। हमने वह भवन भी देखा, जहाँ स्वतंत्रता के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर हुए थे। उसे देख कर मैं रोमांचित हो उठा।

फिलाडेलफिया से लौटते समय मैं डाक्टर ओपेनहायमर से मुलाकात करने गया। संसार के सर्वप्रथम अणु-बम के आविष्कार का कार्य इन्हीं के निरीक्षण में हुआ था। डाक्टर ओपेनहायमर ने कहा कि, अणु-बम की विध्वंसक शक्ति के भय के कारण ही, राष्ट्र युद्ध छेड़ने को प्रवृत्त नहीं होंगे। डाक्टर ओपेनहायमर संस्कृत के अच्छे ज्ञाता हैं। इन्होंने गीता तथा भारतीय दर्शनशास्त्र का भी अध्ययन किया है।

कोलम्बिया विश्वविद्यालय में डाक्टर प्रतुल मुकर्जी ने – जो वहाँ अन्वेषण-कार्य में संलग्न हैं – रसायन-विभाग दिखाया। मुझे प्रोफेसर किंग की प्रयोगशाला दिखायी गयी, जहाँ विटामिन 'सी' के सम्बन्ध में शोध की जा रही है।

अमेरिका में मुझे ढाका के अपने सहपाठी स्वामी पवित्रानंद से मिलकर बड़ा हर्ष हुआ। ये 'रामकृष्ण वेदांत-केंद्र' के सदस्य हैं। 'रामकृष्ण-विवेकानंद-सेंटर' में मुझे भारतीय संस्कृति की परम्परा पर भाषण देने का सुअवसर मिला।

हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर फीशर से मेरी मुलाकात बोस्टन स्टेशन पर होनेवाली थी। उन्हें वहाँ न पाकर मैं जब इधर-उधर खोज रहा था, तो तत्काल एक अमरीकी महिला मेरी सहायता के लिए आ पहुँचीं। मेरा यह अनुभव है कि, अमरीकी महिलाएँ सहायता-कार्य के लिए सदा तत्पर रहती हैं।

प्रोफेसर फीशर ने मुझे भारत-यात्रा में लिये गये अपने चित्र दिखाये। उनकी प्रयोगशाला में काम करनेवाले बंगाली सज्जन श्री विद्युत्-भट्टाचार्य से मिलकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। वे उस वक्त चौदह हजार डालर के मूल्य के 'इन्फ्रा-रेड-किरण'- सम्बन्धी उपकरण से काम कर रहे थे। मुझे प्रोफेसर वुडवर्ड से भी मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिन्होंने सत्ताइस वर्ष की आयु में ही प्रयोगशाला में कुनैन बनाने की विधि खोज निकाली थी।

हार्वर्ड विश्वविद्यालय में काँच की चीजों का अजायबघर देखकर मुझे नयी जानकारी मिली। संसार में ऐसा संग्रहालय और कहीं नहीं है। इन चीजों को जर्मनी-निवासी लियोपोल्ड तथा रडाल्फ ब्लेशका नामक पिता व पुत्र ने मिलकर पचास वर्ष में तैयार किया था। श्रीमती एलिजाबेथ सी वेयर तथा उनकी पुत्री मेरी एल० वेयर ने यह अजायबघर अपने खर्च से तैयार करवा, उक्त विश्वविद्यालय को भेंट कर दिया था। इसमें काँच के 'माडेलों'

के जरिये वनस्पति -जगत के क्रिया-कलापो का बहुत ही सुदर चित्रण किया गया है। शिक्षा का इतना उत्कृष्ट तरीका मैंने और कही भी नही देखा।

'एमर्सन' तथा 'थोरो'-सग्रहालय के साथ ही 'कन्कार्ड' पुल—जहाँ अंग्रेज सैनिको तथा अमरीकी स्वतत्रता के प्रवर्त्तको की पहली बार मुठभेड हुई थी—देखकर हर्ष हुआ। बोस्टन के कला-सग्रहालय म मुझे हडप्पा की खुदाई की कई चीजें देखने को मिली।

सुप्रसिद्ध 'नियागरा-जल-प्रपात' की सुदरता का क्या कहना! पार्क में घूमकर हमने जल प्रपात को कई ओर से देखा। फिर हम 'केव आव विड्स' की ओर बढे, जहाँ जलधारा से उडकर आनेवाली बूंदें हमारे शरीर पर फुहारे की भाँति गिर रही थी। भीगने से बचने के लिए हमने विशष वेश-भूषा धारण कर रखी थी।

"मेड आव द' मिस्ट" नामक स्थान का नौका विहार बहुत ही सुखद रहा। नदी में नाव की सैर कर हमने 'नियागरा-जल प्रपात' को बडे करीब से देखा। नियागरा के आसपास रसायन-उत्पादन के कई कारखाने हैं, जहाँ कास्टिक सोडा, क्लोरीन आदि तैयार किये जाते हैं। 'हुकर केमिकल कम्पनी' में डेढ हजार कर्मचारी काम करते हैं। इनका कम-से-कम वेतन, चालीस घटों के सप्ताह के लिए बावन डालर है। 'नियागरा-जल-प्रपात' से अमेरिका तथा कनाडा को विद्युत्-शक्ति प्राप्त होती है। मैंने विद्युत्-उत्पादन के उस कारखाने का निरीक्षण किया। वह स्थल भी मैंने देखा, जहाँ नियागरा नदी ओंटारियो झील मे गिरती है। यहाँ १७२५ में फ्रेंच लोगों-द्वारा निर्मित एक किला है, जिसे बाद में अग्रजो ने अपने अधिकार मे कर लिया था। सन् १८१७ म इस पर अमेरिका का अधिकार हो गया।

[ विश्व राजमच की विविध ध्वनि प्रतिध्वनियों का केंद्र, अमरीकी राष्ट्रनायकों का निवासस्थान, ह्वाइट हाउस ]

शिकागो में मेरे पथ-प्रदर्शक श्री गौरांडा घोष नामक एक महाराष्ट्रीय सज्जन रहे, जो शिकागो विश्वविद्यालय की 'आणविक अनुसधानशाला' में 'डाक्टरेट' की उपाधि के लिए शोध कर रहे हैं। उन्होने मुझ पूरी प्रयोगशाला दिखायी। शिकागो में ही स्वामी विवेकानद ने पाश्चात्य देशो को हिन्दू धर्म का सदेश दिया था। मैंने वह

भवन भी देखा, जहाँ 'सर्व धर्म-सम्मेलन' हुआ था और स्वामीजी ने अपना इतिहास-प्रसिद्ध भाषण दिया था। शिकागो में नीग्रो जाति की काफी बड़ी संख्या है। यहाँ की 'इण्डियाना एवेन्यू' में—जहाँ नीग्रो बसते हैं—बड़ी गंदगी फैली थी और बदबू आ रही थी। पर यह स्थान कलकत्ते की बस्तियों से कहीं अच्छा था। इस स्थल को देखकर मैंने सोचा कि, क्रिश्चियन मिशनरियों को अमेरिका से भारत आने के बदले, यहाँ की बस्तियों का ही पहले उद्धार करना चाहिए। शिकागो के विज्ञान व कला-सम्बन्धी संग्रहालय में कई ज्ञानवर्धक वस्तुएँ देखने को मिलीं। संसार में इतना सुंदर संग्रहालय मैंने और कहीं नहीं देखा।

वाशिंग्टन में मैं श्री जी एल मेहता का मेहमान रहा। भारत के उप-राष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन् से भी यहाँ भेंट करने का सुअवसर प्राप्त हो गया। वाशिंग्टन आते समय एक बड़ी रोचक घटना घटी। रेल में एक अमरीकी वृद्ध ने मुझसे धर्म पर बातचीत करते हुए क्रिश्चियन धर्म अपनाने पर जोर दिया। उसका तर्क था कि, ईसाई धर्म स्वीकार किये बिना मेरा कल्याण नहीं हो सकता। वह व्यक्ति कट्टरपंथी मालूम होता था। उससे पीछा छुड़ाने के लिए मैंने उससे कहा कि, उसके ही कथनानुसार जब ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, तब उसे मेरी चिंता नहीं होनी चाहिए, क्योंकि ईश्वर को मेरी भी सुधि व चिंता तो होगी ही। मेरा तर्क सुनकर वह वृद्ध निराश होकर चुप लगा गया।

वाशिंग्टन में मैंने 'जार्ज वाशिंग्टन टावर' तथा लिंकन व जेफर्सन के स्मारक देखे।

स्थानीय कौंसल-जनरल श्री रघुवीर सिंह तथा उनकी पत्नी से मिलकर मैं बहुत प्रभावित हुआ। श्रीमती सिंह रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सेक्रेटरी स्वर्गीय अजीत चक्रवर्ती की सुपुत्री हैं। उनसे बंगला में बातें करके मुझे एक अनोखे आनंद की प्राप्ति हुई। वाशिंग्टन के अजायबघर तथा कला-भवन देखने के बाद हम 'माउंट वर्नन' नामक स्थान देखने गये, जहाँ जार्ज वाशिंग्टन रहा करते थे। इस महान् व्यक्ति की स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित करने, लोग वहाँ हर रविवार को बड़ी संख्या में जाया करते हैं।

शिक्षा-विभाग के दो विशेषज्ञों ने मुझे अमरीकी शिक्षा-व्यवस्था के सम्बन्ध में आवश्यक बातें बतायीं तथा मेरे प्रश्नों के उत्तर दिये। अमेरिका में शिक्षा का कार्य केंद्रीय नहीं, बल्कि हर राज्य का विषय है। अड़तालीस राज्यों में निजी शिक्षा-विभाग हैं। इनके अतिरिक्त शिक्षा के संघीय दफ्तर की स्थापना सन् १८६७ में की गयी थी, जिसका ध्येय विभिन्न राज्यों में शिक्षा-प्रचार की प्रगति का पता लगाना तथा शिक्षा-सम्बन्धी विभिन्न जानकारियों का प्रचार करना है।

हर राज्य अपनी शिक्षा-सम्बन्धी नीति निर्धारित करने के लिए स्वतंत्र है। अधिकांश राज्यों के उच्चतम शिक्षा-अधिकारी की नियुक्ति जनता के चुनाव-द्वारा

होती है। स्कूली शिक्षा में संघीय सरकार केवल दो प्रतिशत खर्च करती है। शेष खर्च राज्य सरकार तथा विभिन्न स्थानों से प्राप्त होता है। जनता की उच्च शिक्षा में संघीय सरकार ११ प्रतिशत खर्च उठाती है। स्कूल की तथा उच्च शिक्षा में सरकार वर्ष में लगभग ३,८०० करोड़ रुपये खर्च करती है।

स्कूल की शिक्षा समस्त अमेरिका में निःशुल्क तथा अनिवार्य है। सन् १९५० में अमेरिका के स्कूलों में दो करोड़ पचास लाख और उच्च शिक्षणालयों में पचीस लाख विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। अमेरिका के विश्वविद्यालयों में शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियों की संख्या संसार में सबसे अधिक है। कई राज्य के स्कूलों में बालकों को पाठ्य पुस्तकें मुफ्त दी जाती हैं। छोटे बच्चों को 'किंडरगार्टन विधि' से लिखना-पढ़ना सिखाया जाता है। स्कूल के बालकों को पुस्तकालय आदि का पूर्ण उपयोग करने की भी शिक्षा दी जाती है। स्कूलों के लिए अमेरिका में पुस्तकालयों की संख्या अट्ठाईस हजार है। कई शिक्षणालयों में उद्योग-धंधे भी सिखाये जाते हैं।

कृषि शिक्षा का यहाँ अत्यधिक प्रचार है। न्यूयार्क में उद्योग-धंधों की शिक्षा देनेवाले स्कूलों की संख्या बत्तीस है, जिनमें लगभग चालीस हजार विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। इन शिक्षणालयों पर लगभग एक करोड़ बीस लाख डालर प्रति वर्ष खर्च किया जाता है। अमेरिका में अपराध की ओर झुकाव रखनेवाले बच्चों की शिक्षा की भी विशेष तौर पर व्यवस्था है। अन्य प्रकार की प्रशिक्षा आदि के लिए हजारों पुस्तकालय, अनुसंधान-शालाएँ, संग्रहालय आदि खोले गये हैं, जिन पर वर्ष में ११,७०,००,००० डालर खर्च किये जाते हैं। वर्ष में कोई पाँच लाख दर्शक इन संग्रहालयों को देखने जाते हैं। सार्वजनिक पुस्तकालयों से पुस्तकें ले जानेवाले पाठकों की संख्या दो करोड़ पचास लाख है, जो लगभग पचास करोड़ पुस्तकें पढ़ते हैं। नये शिक्षकों को १,८०० से लेकर २,४०० डालर तक वार्षिक वेतन दिया जाता है और अनुभवी शिक्षक लगभग तीन-चार हजार डालर पाते हैं। प्रारम्भिक पाठशालाओं में

[वाशिंग्टन और लिंकन के साथ 'स्वर्णिम त्रिमूर्ति' के रूप में ख्यात अमेरिका के एक महान् निर्माता जेफर्सन की समाधि—जो कोटिकोटि यात्रियों का तीर्थस्थल है।]

महिलाएँ पढ़ाती हैं, पर यह सब होते हुए भी शिक्षा-क्षेत्र में यहाँ श्वेत व नीग्रो का काफी भेद-भाव रखा जाता है।

शिक्षा-विभाग की जानकारी प्राप्त करने के बाद मैं माटिसेला गया। अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति थामस जेफर्सन यहाँ के निवासी थे। वर्जिनिया-विश्वविद्यालय की स्थापना का श्रेय इन्हें ही प्राप्त है। यहाँ से हम चार हजार फुट की ऊँचाई पर 'ब्लू रिज माउन्टन पर 'लूरे की गुफाएँ' देखने गये। प्रकृति-द्वारा निर्मित रंग-बिरंगे पत्थरों की इतनी सुंदर गुफाएँ मैंने और कहीं नहीं देखी। बड़ी गुफाएँ तो ५०० फुट लम्बी हैं और उनकी छत लगभग चालीस फुट की ऊँचाई पर है।

अमेरिका के 'सरकारी कृषि-केन्द्र' में एक एकड़ जमीन में एक हजार पौंड मिश्रित खाद डाली जाती है और फलस्वरूप एक सौ बुशल मक्का प्रति एकड़ पैदा होता है। दूर-दूर से किसान यहाँ 'कृषि-पद्धतियाँ' सीखने आते हैं। भारत में ऐसे कृषि-प्रयोग केंद्रों की नितांत आवश्यकता है।

गार्डनसिटि-जैसे छोटे से स्थान का अस्पताल सभी प्रकार की औषधों व अन्य उपकरणों से सुसज्जित है। इतनी अच्छी व्यवस्था मैंने और कहीं नहीं देखी।

न्यूयार्क लंदन से कहीं स्वच्छ नगर है। यहाँ इतनी अधिक मोटर हैं कि, उन्हें सार्वजनिक स्थानों में खड़ी करने की एक समस्या पैदा हो जाती है। संसार की तीन-चौथाई मोटर अमेरिका में हैं।

किसी चीज की अति भी हानिकारक होती है। एक अमरीकी महिला ने मुझे बताया कि, उनके पति दफ्तर से आने के बाद अपनी मोटर में मित्रों से मिलने चले जाते हैं और वे स्वयं अपनी मोटर पर सवार होकर सहेलियों से मुलाकात करने जाती हैं। पुत्र व पुत्री के पास भी मोटरें हैं। अतः वे अलग चली जाती हैं। हर दिन किसी-न-किसी के भोजन का निमंत्रण मिलता ही रहता है। इसलिए खाने की मेज पर भी सब शायद ही कभी एकत्र होते हैं। इस तरह मोटर ने उनके पारिवारिक जीवन को नीरस और एकाकी कर दिया था।

जब मैं अमेरिका में था, उस समय 'न्यूयार्क टाइम्स' में श्री विनोबा भावे-द्वारा आयोजित 'भूदान-आंदोलन' का समाचार प्रकाशित हुआ था। वहाँ लोगों ने मुझसे उनके विषय में बहुत पूछताछ की।

सुख के सभी साधन अमेरिका में उपलब्ध हैं। पर न्यूयार्क के अधिकांश व्यक्तियों के मुख पर मुझे हर्ष की मुस्कान नहीं दिखायी दी। वे मुझे चिंतित ही दीख। अमरीकी लोग अब अनुभव करने लगे हैं कि, सच्चा सुख भौतिकवाद तथा आध्यात्मवाद के समन्वय में ही है। अतः आज वे आध्यात्मिक शांति की खोज में संलग्न हैं। अमेरिका के वैभव, सुख-साधन, विकास आदि की अपेक्षा अमरीकियों की मिलनसार प्रकृति ने ही मुझे अधिक प्रभावित किया और इसी कारण मैं उनके अधिक निकट आ भी सका।

★

# जेल में विवाह

हिन्दी के सुप्रख्यात कथाशिल्पी और विचारक-सर्जक यशपालजी की आत्मकथात्मक पुस्तक 'सिंहावलोकन' का एक दृष्टि-विक्षेप

★

एक दिन बारक बंद हो जाने के बाद मेजर मल्होत्रा हमारी बारक की ओर चले आये। अंग्रेजी में हाल-चाल पूछ कर पंजाबी में बोले—"यह तो बताओ, मिस प्रकाशवती कपूर कौन है? जानते हो?"

"कहिये, क्या बात है?" मैंने उल्टे उनसे प्रश्न किया।

बोले—"अभी किसी से जिक्र करने की जरूरत नहीं है। मिस प्रकाशवती कपूर ने डिप्टी-कमिश्नर की मार्फत दरख्वास्त दी है कि, वह तुमसे जेल में ही विवाह करना चाहती है।"

कहते-कहते भावुकता में आ गये—"मैं यह सोचता रहा कि, तुम्हें तो अभी दस-ग्यारह साल जेल में रहना है—भगवान करे, तुम छूट जाओ, तो अच्छा ही है, पर इस लड़की का त्याग देखो! त्याग और धर्म की ऐसी भावना हिन्दू नारी के अतिरिक्त संसार में कहीं सम्भव नहीं है। मैं मानता हूँ कि, तुम भी असाधारण देश-भक्त और वीर आदमी हो—तुमने अपना जीवन देश के लिए बलिदान किया है। तुम्हारी गिरफ्तारी के समय मैं बड़े ध्यान से पत्रों में सब समाचार पढ़ता रहता था। मैं नेहरू-परिवार के लोगों—विजयलक्ष्मी और श्यामकुमारी—को भी जानता हूँ, पर मैं सोचता हूँ, इस लड़की को तुमसे शादी करने से मिलेगा क्या? उसका तो यह असाधारण त्याग, आदर्श है! हिन्दू धर्म और हिन्दुस्तान आज भी जो मर नहीं गया, सो ऐसी

एकाकिनी सीता अपनी परिचारिका के साथ
[जकार्ता के निकट परम्बनन के एक मंदिर शिल्प की प्रतिकृति]
चित्र : रथचन्द्र चावड़ा

ही देवियों के धर्म और आचार-व्रत पर। मुझे तो यही संतोष है कि, मुझे ऐसी देवी के दर्शन करने का अवसर तो मिलेगा।"

इस बात का मैं क्या उत्तर देता?

अगले दिन डिप्टी-कमिश्नर के यहाँ से आया सरकारी पत्र मुझे दिखाया गया—"लाहौर-निवासी मिस प्रकाशवती कपूर, बरेली केंद्रीय जेल में बंद आतंकवादी कैदी यशपाल से विवाह करना चाहती हैं। कैदी यशपाल विवाह करना चाहता है या नहीं?" मैंने लिख कर हामी भर ली और विवाह के लिए अगस्त की सात तारीख निश्चित हो गयी।

विवाह के लिए निश्चित तारीख के दिन सुबह आठेक बजे दफ्तर से बुलावा आया। कारण तो पहले से ही मालूम था। जेल से मिले सफेद दुसूती के कोट-पैंट पहले से धुला कर और स्त्री कराकर रखे हुए थे। उन्हें पहन कर चल दिया। शादी के लिए डिप्टी-कमिश्नर की अदालत में जाना था। दफ्तर में पहुँचने पर आदेश मिला कि, बेड़ियाँ पहन लूँ।

'क्या?" मैंने विस्मय प्रकट किया।

"जेल के बाहर जा रहे हो। बेड़ियाँ पहनायी जाती हैं।" उत्तर मिला।

"पर मैं तो शादी के लिए जा रहा हूँ। बेड़ियाँ पहना कर शादी करायी जाती है? बेड़ियाँ पहन कर शादी के लिए मैं नहीं जाऊँगा। शादी हो या न हो!"

मुझे अदालत में ले जाने के लिए सिपाही लेकर आया हुआ सब-इंस्पेक्टर मुझे बेड़ियाँ बिना पहनाये बाहर ले जाने की जोखिम उठाने के लिए तैयार नहीं था।

जेल-सुपरिन्टेंडेंट परेशानी में पड़ गये। उन्होंने पुलिस-सुपरिन्टेंडेंट को फोन किया कि, तुम्हारे आदमी कैदी को बेड़ियाँ पहनाये बिना ले जाने के लिए तैयार नहीं और कैदी बेड़ियाँ पहनकर शादी करने जाने के लिए तैयार नहीं। पुलिस सुपरिन्टेंडेंट ने भी मुझे बिना बेड़ियाँ पहनाये जेल से बाहर ले जाने की जिम्मेदारी लेना स्वीकार नहीं किया। मैंने शादी के लिए बेड़ियाँ पहनने से कतई इनकार कर दिया। जेल-सुपरिन्टेंडेंट ने डिप्टी-कमिश्नर को टेलिफोन कर परिस्थिति की सूचना दी।

डिप्टी-कमिश्नर भी संकट में पड़ गये। उनके पत्र के आधार पर प्रकाशवती, मेरी माता और शादी के लिए दो और गवाहों को लेकर उनकी अदालत में पहुँची हुई थी। डिप्टी-कमिश्नर ने मेजर मल्होत्रा को उत्तर दिया—"पुलिस सुपरिन्टेंडेंट और कैदी दोनों की ही बात ठीक है। मैं दुल्हन को लेकर जेल में आ रहा हूँ—वहीं ही विवाह होगा।"

अवसरवश उस दिन बरेली में एक और संकट था। किसी कारण ताँगों इक्कों की हड़ताल थी। शहर के कांग्रेस प्रधान सनमिहजी ने मेरी माता, प्रकाशवती और उनके साथ आये 'हिन्दुस्तान टाइम्स'-प्रेस के मैनेजर देवीप्रसादजी शर्मा और श्रीकृष्ण सूरी को डिप्टी-कमिश्नर की अदालत में तो पहुँचा दिया था—अब उन्हें जेल तक

पहुँचाने की व्यवस्था क्या करते? मि पैंडले ने इसका भी उपाय किया। माताजी और प्रकाशवती को तो वे अपनी कार में ले आये। शर्माजी और सूरी को भी किसी भद्र पुरुष की गाड़ी मिल गयी। प्रकाशवती और माताजी के डिप्टी-कमिश्नर की गाड़ी में, उनके साथ ही आने से, एक गलत-फहमी पैदा हो गयी। किन्तु यह बात जरा ठहर कर कहूँगा।

मि पैंडले ने आज्ञा दी कि, विवाह के अवसर के लिए जेल के दफ्तर को अदालत समझ लिया जाये। 'सिविल-मैरेज' या 'अदालती विवाह' की कार्यवाही शुरू हुई। वर और वधू का जो-जो प्रतिज्ञाएँ करनी पड़ती है, हम लोगों ने की। पुरोहित के रूप में डिप्टी-कमिश्नर के पूछने पर प्रकाशवती ने अपने आपको सनातनधर्मी हिन्दू बता दिया, परन्तु मैंने अपना धर्म बताया–'रैशनलिज्म'। हिन्दी में इस शब्द का अनुवाद 'बुद्धिवाद' ही हो सकता है।

मि पैंडले बोले–"यह नया इज्म (वाद) तो कभी सुना नहीं। नास्तिक लिख दूँ या बौद्ध लिख दूँ?"

"नहीं, जो मैं कहता हूँ, वही लिखिये"–मैंने आग्रह किया।

साहब ने चिढ़कर वही लिख दिया और उन्होंने अपनी अदालती फीस सवा रुपया माँग ली। देवीप्रसाद शर्मा और सूरी ने प्रकाशवती की ओर से गवाही में हस्ताक्षर किये। मेरी ओर से गवाही में रमेशचन्द्र गुप्त और मेजर मल्होत्रा ने हस्ताक्षर किये। सूरी पाँच-छ सेर मिठाई भी ले आये थे, सो बँटी गयी। जो काम जेल में कभी नहीं हुआ था, वह हो गया।

विवाह के दूसरे-तीसरे दिन ही, दूसरे हाते में रहनेवाले 'सी'-क्लास के राजनैतिक और चौरीचौरा के मामले के बंदियों का पेंसिल से लिखा एक पूरे ताव का गुप्त पत्र मिला। इस पत्र में उन्होंने अपने एक क्रांतिकारी नेता के नैतिक पतन पर शोक प्रकट कर क्रांतिकारियों का नाम कलंकित न करने की अपील की थी। पत्र का अभिप्राय था कि, मैंने जल से मुक्ति पाने के लिए अंग्रेज डिप्टी-कमिश्नर की लड़की से विवाह कर लिया है। बहुत-से राजनैतिक कैदी तो 'सी'-क्लास में उग्र-कैद काट रहे हैं। मैं तो 'बी'-क्लास की सुविधाएँ पा रहा हूँ। क्या मैं इतना भी नहीं सह सकता?

जेल के भिन्न भिन्न भागों और हातों में घूमनेवाले कैदी-जमादारों से सुना, जेल में अफवाह थी कि, डिप्टी-कमिश्नर साहब अपनी लड़की को साड़ी पहना कर मोटर में ले आये और 'बी'-क्लास वाले साहब ने (अर्थात् मुझने) ब्याह कर गये। अब साहब जेल से छूट जायेंगे। साहब और सरकार में सुलह हो गयी। इस भ्रांति या कल्पना का आधार टाँगा-हड़ताल के कारण प्रकाशवती का डिप्टी-कमिश्नर की मोटर में आना ही था। पंजाबी लड़कियों का रंग या भी काफी गोरा होता है। तिस पर ब्याह की तैयारी में कुछ पाउडर भी पोता ही होगा। वे

अंग्रेज की बेटी समझ ली गयी।

जेल में रोमांचकारी अफवाहें उड़ाने से कैदियों को संतोष भी खूब मिलता है। जीवन में स्फूर्ति और वैचित्र्य अनुभव करने का यही तो एकमात्र साधन उनके हाथ में रहता है। पत्र लिखनेवाले लोगों का भी जितनी सही बात बतायी जा सकती थी, बता कर उनका भ्रम और आशंका दूर करने की चेष्टा की। जेल में विवाह होना नयी बात थी। इसलिए सभी अखबारों ने—'स्टेट्समैन' आदि ने भी—समाचार को महत्व देकर मोटे अक्षरों में प्रकाशित किया।

जेल में विवाह हो जाने के समाचार से—चाहे वह शुष्क दफ्तरी ढंग से ही सम्पन्न हुआ हो — सरकार की दृष्टि में जेल के वातावरण की रुद्र गम्भीरता का आतंक टूट-सा गया। सचिवालय में जाँच-पड़ताल के कागज दौड़ने लगे कि, यह नयी बात क्या और कैसे हो गयी? मेजर मल्होत्रा ने एक दिन बताया कि, उनसे पूछ-ताछ होने पर उन्होंने निधड़क उत्तर दे दिया—"विवाह डिप्टी-कमिश्नर की स्वीकृति और आज्ञा से हुआ। जेल के जिस मकान में विवाह-सम्पन्न हुआ, वह उस समय डिप्टी-कमिश्नर की आज्ञा से अदालत में परिणत कर दिया गया था और जेल-सुपरिन्टेंडेंट के नियंत्रण में नहीं, डिप्टी-कमिश्नर के नियंत्रण में था। जेल-सुपरिन्टेंडेंट वहाँ दर्शक और गवाह की स्थिति में मौजूद था।"

बात यहीं नहीं रह गयी। डिप्टी-कमिश्नर पंडले से जवाब माँगा गया कि, जेल में कैदी के विवाह की स्वीकृति उन्होंने कैसे दे दी? अंग्रेज अफसर भारतीय अफसरों की तरह दब्बू नहीं होते थे। पंडले का उत्तर था—"विधान अथवा परम्परा में कैदियों के विवाह या जेल में विवाह के सम्बन्ध में कहीं कोई निर्देश नहीं है। मिस प्रकाशवती ने विवाह के लिए दरख्वास्त दी, उसमें गैर-कानूनी बात नहीं थी। उनकी इच्छा-पूर्ति में बाधा डालने का मेरे पास कोई कारण नहीं था, इसलिए मैंने स्वीकृति देना ही उचित समझा।" इतने पर भी विवाह की प्रतिक्रिया में आरम्भ हुई हलचल समाप्त नहीं हुई।

कुछ मास बाद उत्तर प्रदेश की सरकार के तत्कालीन गृह-सदस्य (होम-मेम्बर) सर महाराज सिंह बरेली-जेल का निरीक्षण करने आये। मेरा परिचय पाकर बोले—"तुम्हें जेल में रहकर कोई-न-कोई मुसीबत होती ही रहनी चाहिए। जेल में शादी करके तुम्हें क्या फायदा हो गया? हमारे लिए एक समस्या जरूर खड़ी कर दी।" उन्हें उत्तर दिया —"आप स्वयं देख रहे हैं कि, मुझे कोई फायदा नहीं हुआ। जो-कुछ हुआ, सब आपकी सरकार और अफसरों की अनुमति से ही हुआ।"

महाराज सिंह बोले-" हुआ यह कि, हमें 'जेल-मैनुअल' में एक और धारा बढ़ानी पड़ गयी कि, जेल में कैदियों का विवाह नहीं हो सकता।" मैं मुस्करा पड़ा—"चलिये, एक ऐसी बात तो हो गयी, जो कभी नहीं हुई थी!"

★

मुद्रा पुरातत्व के सुविज्ञ लेखक परमेश्वरीलाल गुप्त का एक शोधपूर्ण लेख

★

सिक्के वास्तव में, उसी तरह बाते करते हैं, जिस तरह हम-आप परस्पर बाते करते हैं। अतर केवल इतना है कि, उनके बोलने का ढग सर्वथा भिन्न है। उनकी आवाज, उनसे बात करनेवाला व्यक्ति केवल अपने-आपमें ही सुन पाता है।

मेरी ये बातें आपको पहेली-सी लगने लगी होंगी, किन्तु सिक्को का अध्ययन उतना ही रोचक है, जितना किसी से बात-चीत करना। एक बार बस सिक्को के अध्ययन में रुचि लेना आरम्भ कीजिये, आपको अपने-आप आनद आने लगेगा। ज्यों-ज्यो आप सिक्कों को ध्यानपूर्वक देखते जायेंगे, नयी-नयी बाते स्वय सामने आती जायेंगी। आपकी कल्पना जागरूक हो उठेगी और इतिहास के अनेक रहस्य अपने-आप खुलते जायेंगे।

अत जब मैं किसी सिक्के को लेकर ध्यानावस्थित होता हूं, तो उस समय में समझता हूं, मैं सिक्को से बातें कर रहा हूं।

लीजिये, इस सिक्के को देखिये। एक हाथी पर दो व्यक्ति सवार हैं। जो आगेवाला व्यक्ति है, वह दाहिने हाथ में भाला लिये है, जिसे वह पीछे की ओर ताने हुए है। दूसरा व्यक्ति, जो पीछे है, शिथिल-सा होता हुआ पीछे को गिरता दिखायी पड रहा है। हाथी आगे बढ रहा है। हाथी के भी पीछे वेग के साथ उछलता हुआ घोडा है, जिस पर एक व्यक्ति सवार है। उसके हाथ में भी भाला है, जिसमे वह हाथी पर पीछे बैठे हुए व्यक्ति पर आक्रमण कर रहा है। भाला कदाचित उस व्यक्ति के शरीर में भी घुस गया है। सोचिये, यह दृश्य क्या कहता है? सिक्के पर कोई अभिलेख नही है, जो आपकी सहायता कर सके।

एक गुप्तकालीन मुद्रा
[चित्र में समुद्रगुप्त वीणा बजा रहे हैं।]

इसी सिक्के को उलटकर देखिये। युद्ध-वेश में एक व्यक्ति खडा है। यह व्यक्ति और कोई नहीं, यूनानी विजेता

सिकन्दर है। वह जीयस (यूनानी युद्ध-देवता) के रूप में खड़ा है। उसका यह स्वरूप अन्य अनेक सिक्कों पर मिलता है। यह उसके अभिमान का द्योतक है। इससे यह तो निश्चित हो ही जाता है कि, यह सिक्का सिकन्दर का है।

अब एक बार फिर इस सिक्के की दूसरी ओर देखिये और बताइये, दृश्य क्या व्यक्त करता है? दृश्य युद्ध का है, यह तो आपकी समझ में आ गया होगा। घुड़सवार ने हाथी-सवार पर भाले से आक्रमण किया है और हाथी पर बैठा व्यक्ति शिथिल हो रहा है। हाथी पर आगे की ओर बैठा व्यक्ति भाले से प्रतिशोध लेने की दृष्टि से आक्रमण के लिए सचेष्ट है। अब तनिक ध्यान से घुड़सवार को देखिये। उसका शिरस्त्राण बिल्कुल वैसा ही है, जैसा सिकन्दर का। इससे कल्पना की जा सकती है कि, घोड़े पर सवार व्यक्ति खुद सिकन्दर ही है और वह हाथी पर सवार व्यक्ति पर आक्रमण कर रहा है। युद्ध में हाथियों का प्रयोग केवल भारत में होता था। अतः यह संघर्ष भारत के किसी युद्ध से सम्बन्ध रखता है—यह भी स्पष्ट है। अब सोचिये, यह युद्ध कौन सा हो सकता है और किससे हो सकता है, जिसमें सिकन्दर ने इस प्रकार खुद भाग लिया हो?

[रोम के एक सिक्के पर अंकित सिंहासनासीन मनुष्यमूर्ति]

तनिक इतिहासकार सिकन्दे पढ़िये तो उलटिये। देखिये, वह क्या कहता है। उसने भी तो सिकन्दर का इतिहास लिखा है। अपने इतिहास की सामग्री उसने टालमी—जो सिकन्दर के साथ आया था—और टिमगनीज के इतिहास से ली है। देखिये, वह लिखता है—"पोरस (पुरु) को आगे-पीछे नौ घाव लगे और रक्तस्राव के कारण वह बेहोश हो गया। उसके हाथ से भाला छूट पड़ा। किन्तु उसका हाथी, जो अभी घायल नहीं हुआ था, क्षुब्ध होकर शत्रु-सेना पर तब तक आक्रमण करता रहा, जब तक पीलवान ने अपने राजा की अवस्था—शरीर बेकार होते, हथियार गिरते और बेहोश होते—देख कर उसे बेतहाशा नहीं भगाया। सिकन्दर ने उसका पीछा किया, किन्तु अब तक उसका घोड़ा अनेक घावों से छिद गया था। अतः वह बेहोश होकर गिर गया।......"

इस सिक्के के दृश्य से साथ कितना साम्य है! आपकी समझ में आया कि, इस छोटे-से सिक्के से इतिहास के एक महत्वपूर्ण घटना का समर्थन होता है! सिकन्दर के जीवन में यह घटना इतनी महत्वपूर्ण थी कि, उसने इसकी स्मृति बनाये रखने के लिए इस दृश्य को सिक्के पर अंकित कराया। अब आप सोच सकते हैं कि,

राजा पुरु के साथ उसका संघर्ष कितना विकट रहा होगा ?

अब इस दूसरे सिक्के को देखिये। यह सोने का है और अपने ढंग का एकमात्र सिक्का है। यह गुप्तवंशी राजाओं के सिक्कों के एक बहुत बड़े दफीने में मिला है। यह दफीना १९४६ में तत्कालीन भरतपुर राज्य में बयाना नामक जिले के एक गाँव में मिला था और इस दफीने में कई हजार सिक्के थे।

हाँ, देखिये–सिक्के की सीधी ओर–दुहरे प्रभा-मंडल से घिरे भगवान विष्णु हैं। उनके बायें हाथ में गदा है और दाहिने हाथ में–जो भेंट करने की मुद्रा में है–तीन गोल वस्तुएँ हैं। सामने एक प्रभा मंडल-युक्त व्यक्ति खड़ा है। उसका दाहिना हाथ वस्तु ग्रहण करने की मुद्रा में है और बायाँ हाथ कमर में बँधी तलवार की मूठ पर है। सिक्के की दूसरी ओर कमल पर खड़ी एक स्त्री है, जिसके दाहिने हाथ में सनाल कमल है और सामने की ओर एक शंख है। उसके पीछे ब्राह्मी लिपि में लेख है–'चक्र-विक्रम।'

[ रोम के हैड्रियन सिक्के पर बनी कल्याणमयी देवी लक्ष्मी। बगल में है उनका वाहन हंस पक्षी। ]

देखने में यह सिक्का कितना भव्य है! जानते हैं, यह किसका सिक्का है? इस पर भी पहले सिक्के की तरह इसके चलाने वाले का नाम नहीं है। किन्तु इस पर उसका विरुद दिया हुआ है। 'चक्र-विक्रम' विरुद से जान पड़ता है कि, यह सिक्का चंद्रगुप्त विक्रमादित्य का है। जिस दफीने में यह सिक्का मिला है, उसमें केवल कुमारगुप्त तक गुप्त-वंशी राजाओं के अतिरिक्त, किसी अन्य राजा के सिक्के नहीं थे।

सिक्के की पीठ पर मूर्ति लक्ष्मी की है और लक्ष्मी की मूर्ति इस वंश के प्रत्येक सिक्के की पीठ पर पायी जाती है। अंतर इतना ही है कि, वे किसी पर खड़ी हैं, किसी पर बैठी हैं, किसी पर सम्मुख हैं, किसी पर वामाभिमुख। अतः उस पर आपको विशेष ध्यान देने की जरूरत नहीं। जानने और पूछने की बात यह है कि, सिक्के पर चित्रित और अंकित दृश्य क्या है और उसका उद्देश्य क्या है?

आप जिसे विष्णु की मूर्ति कहते हैं, वस्तुतः वह चक्र-पुरुष की मूर्ति है—अर्थात् भगवान् विष्णु के चक्र का मूर्त रूप है। पुरुष-आकृति के चारों ओर जो प्रभा-मंडल-सरीखा दिखायी देता है, वस्तुतः वह चक्र है। वैष्णव धर्म के पंचरात्र आगम की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'अहिर्बुध्न्य-संहिता' में चक्र-पुरुष का जो स्वरूप वर्णित है, उससे बिल्कुल मिलती हुई सिक्के पर की मूर्ति है। उसके अनुसार विष्णु के महासुदर्शन-चक्र की चौंसठ तीलियाँ होती हैं और उसकी परिधि

दुहरी होती है। इस चक्र के भीतर चक्र-पुरुष की सौम्य मूर्ति होती है, जिसके दो हाथ होते हैं। ठीक यही स्वरूप सिक्के पर भी है। प्रभा-मंडल-सरीखा दिखायी देनेवाला चक्र की दुहरी परिधि है और उसमें बिंदु-सरीखे तीलियों के छोर दिखायी पड़ते हैं। प्रत्येक बिंदु एक तीली का द्योतक है और सिक्के पर दिखायी देनेवाले चक्र के अर्ध भाग में बत्तीस बिंदु हैं—अर्थात् चक्र में चौंसठ तीलियाँ हैं और उनके बीच में चक्र-पुरुष की आकृति तो है ही।

'अहिर्बुध्न्य-संहिता' में चक्र-पुरुष की महिमा विष्णु के समान ही बतायी गयी है। कहा गया है कि, विष्णु की सारी शक्ति उसमें निहित है। यही नहीं, नारायण के समान ही वह अनंत और अंतर्यामी भी है। विष्णु के पास दो शक्तियाँ हैं—इच्छा और क्रिया। इच्छा-शक्ति लक्ष्मी है और क्रिया-शक्ति सुदर्शन-चक्र।

हम इस सिक्के पर चक्र-पुरुष को देखते हैं और उसके सम्मुख जो व्यक्ति है, उसे हम चंद्रगुप्त के रूप में पहचान सकते हैं। उसके चारों ओर प्रभा-मंडल है, जो उसकी राज्य-श्री को व्यक्त करता है और खड्ग-स्थित हाथ उसकी शक्ति को। दृश्य यह है कि, चक्र-पुरुष चंद्रगुप्त से प्रसन्न होकर उसे चक्रवर्ती-पद प्रदान कर रहा है। चक्र-पुरुष के हाथ में जो तीन गोल-गोल-सी वस्तु है, वह सम्भवतः त्रैलोक्य को व्यक्त करती है।

अस्तु, इस सिक्के द्वारा चंद्रगुप्त अपने को चक्रवर्ती घोषित कर रहा है। उसके जो सिक्के प्राप्य हैं, उनमें प्रायः कहा गया है कि, राजा इस लोक को जीतकर अपने सुचरित से परलोक को जीत रहा है। 'क्षितिमवजित्य सुचरितैर्दिवं जयति विक्रमादित्य—' उसी का यह मूर्त रूप है।

बहुत सम्भव है कि, उसने पश्चिमी क्षत्रपों पर विजय प्राप्त कर अपनी विजय-यात्रा समाप्त की हो और उसके साम्राज्य का पूर्ण विस्तार हो चुका हो। उस समय अपनी क्रिया-शक्ति के प्रति निष्ठा प्रकट करते हुए विष्णु की क्रिया-शक्ति के प्रतीक चक्र-पुरुष के सम्मान में उसने कोई बहुत बड़ा अनुष्ठान किया हो और उसकी स्मृति में इस सिक्के का प्रचलन किया हो!

अब जरा इस तीसरे सिक्के को देखिये। यह महमूद गजनवी का है—उसी महमूद गजनवी का, जो मूर्ति-विध्वंसक कट्टर और समझा जाता है। उसने इस सिक्के को लाहौर की टकसाल में ढलवाया था।

एक ओर कूफी-लिपि में कुछ लिखा है और दूसरी ओर?

आप चौंक क्यों पड़े? चौंकिये नहीं, दूसरी ओर जो-कुछ लिखा है, वह और कुछ नहीं, नागरी-लिपि है और उसका यह रूप है, जो दसवीं शताब्दी में प्रचलित था। नागरी ही क्यों, उस पर जो-कुछ लिखा है, वह संस्कृत में है और संस्कृत ही नहीं संस्कृत में 'कलमा' का अनुवाद है।

कूफी अक्षरों में लिखा है—'ला-अल्लाह इल-अल्लाह मुहम्मद रसूल अल्लाह

If It's
SHOP AT
जे. जे. अेन्ड सन्स
१) मंगलदास रोड, लोहार चाळ.
२) प्रार्थना समाज, ट्राम जंकशन
३) भुलेश्वर रोड
४) कुंभार टुकडा
५) डीसिलवा रोड दादर स्टेशन के सामने
बांम्बई.
(बी बी)
"जे. जे. अेन्ड सन्स"
बम्बई में पांच रिटेल दुकानें

डाबर
आँवला केश तैल
मनोरम गन्धयुक्त श्रेष्ठ
केश उपादान
डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०
कलकत्ता
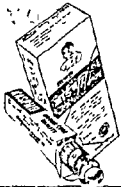
यामीनउद्दौला अमीन उल मिल्लत। विस्म अल्लाह अलदिरहम जरब बमहमूदपुर जरब् सन् " और उसी की दूसरी ओर संस्कृत में अनुवाद इस प्रकार है– "अव्यक्त मेक मुहम्मद अवतार। नृपति महमूद। अव्यक्तीयडाम अय टक हत महमूदपुर घटित ताजि कीयरे सवती ।' अल्लाह का अनुवाद 'अव्यक्त' किया गया है। इसमें स्पष्ट है कि, यह अनुवाद निस्सदेह किसी ऐसे व्यक्ति का है, जो हिन्दू और मुस्लिम, दोनों धर्मों में ईश्वर के दार्शनिक स्वरूप से भलीभाँति परिचित रहा हो। मुहम्मद को अवतार कहा गया है, जो हिन्दू-भावना है और मुसलमानों के 'रसूल' शब्द की भावना के विरुद्ध है। नृपति महमूद का प्रयोग अनुवाद में अरबी के 'यामीनुद्दौला अमीनुलमिल्लत' के स्थान पर किया गया है। यह महमूद की उपाधि थी। इस उपाधि से भारतीय अपरिचित थे, इसलिए उसके स्थान पर स्पष्ट उसके नाम का प्रयोग किया गया है।

'कलमा' का संस्कृत अनुवाद इस बात का परिचायक है कि, उस समय तक धार्मिक अपवादिता ने अपना वर्तमान रूप नहीं धारण किया था। सांस्कृतिक आदान-प्रदान मुक्त रूप से होता था। विदेशी आगन्तुकों ने यहाँ आकर इस देश के धर्म और संस्कृति के प्रति रुचि व्यक्त की। और, यह बात किसी ऐसे व्यक्ति से नहीं हो सकती, जो इस देश में धर्म-विरोधी भावना लेकर आये।

अब बताइये, यह सिक्का क्या कहता है? हम इसकी बात मानें या औरों की? अब आप स्वयं सोचिये–महमूद गजनवी को किस दृष्टि से देखेंगे?

अच्छा, अब इस सिक्के को देखिये। आप देख रहे हैं–चलते हुए एक पुरुष और स्त्री को? पुरुष के हाथ में धनुष है और वह सिर पर मुकुट धारण किये हुए है। शरीर पर जामा है, जो घुटने के नीचे तक लटक रहा है। कमर में पटका बँधा हुआ है, जिसके दोनों छोर आगे-पीछे लटक रहे हैं। पीठ पर तीरों से भरा तूणीर लटक रहा है और स्त्री के दोनों हाथों में फूलों का गुच्छा है। वह चोली-लहँगा पहने है।

अब जरा ध्यान से देखिये–इन दोनों के बीच में ऊपर यह क्या लिखा हुआ दिखायी देता है?

"राम सी (य)"

ठीक!

तो क्या यह राम-सीता का सिक्का है? इतना पुराना? घबड़ाइये नहीं, तनिक सिक्के की दूसरी ओर भी तो देख लीजिये। अरे, इस ओर तो अरबी लिपि में कुछ लिखा हुआ है।

हाँ, लिखा है–"५० इलाही अमरदाद।"

इसका क्या अर्थ हुआ?

यही–"५०-वें इलाही-वर्ष के अमरदाद महीने में बना सिक्का।'

तो यह सिक्का रामचंद्रजी के जमाने का नहीं है?

नहीं, यह सिक्का अकबर ने चलाया था।

है! अकबर ने? पर उसका नाम कहाँ है इस सिक्के पर?

घबड़ाइये नहीं। आपने सुना है न कि, अकबर ने इलाही नामक धर्म चलाया था? उसी तरह उसने अपना एक नया सम्वत् भी प्रचलित किया था। यह सम्वत् उसने यद्यपि अपने राज्य-काल के २९-वें वर्ष में प्रचलित किया था, पर उसकी गणना उसके राज्याभिषेक के वर्ष से मानी गयी और उसका आरम्भ उस वर्ष के 'नौरोज' से हुआ था। इस सम्वत् के मास और दिन प्राचीन पारसी अथवा 'यज्दजर्दी-सम्वत्' के रखे गये। इस सिक्के पर यही सम्वत् और उसके पाँचवें महीने का नाम लिखा है। तात्पर्य यह कि, यह सिक्का अकबर के ५०-वें राज्य-काल के ५-वें महीने में प्रचलित किया गया। इस वर्ष के दूसरे महीने फरवरदीन में बने इस ढंग के सिक्के भी पाये गये हैं।

अकबर का सिक्का और उस पर राम-सीता का चित्र? यह विचित्र बात है!

विचित्र तो है ही। इस सिक्के को पहले-पहल देखकर जब उस पर 'रामसीय' नहीं पढ़ा जा सका था, तो कुछ विद्वानों ने अनुमान किया था कि, यह बीजापुर के सुल्तान द्वारा मुगल अधीनता स्वीकार करने का स्मारक है। उसने अधीनता स्वीकार करने के साथ-साथ अकबर के बेटे शाहजादा दानियाल को अपनी बेटी भी व्याही थी। लोग यह कल्पना भी न कर सके कि, अकबर अपने सिक्के पर किसी हिन्दू देवी-देवता का चित्र अंकित करायेगा।

मुसलमानों-द्वारा सिक्कों पर हिन्दू देवी-देवताओं का चित्र अंकित कराना कोई नयी बात न थी। मुहम्मद-बिन-समिद, ने जो सर्वसाधारण में मुहम्मद गोरी के नाम से प्रसिद्ध है, अपने सोने के सिक्कों पर लक्ष्मी का चित्र अंकित कराया था।

अकबर स्वभाव से धर्म-सहिष्णु ही न था, वरन् धर्म के प्रति जिज्ञासु भी था। उसकी बुद्धि जागरूक थी। वह अपने यहाँ सब धर्मवालों को बुलाता और उनके विचार सुनता था। वह भारतीय संस्कृति का भी अनन्य उपासक था। अकबर वह भारतीय वेश-भूषा धारण करता था। हो सकता है, जीवन के अंतिम दिनों में (यह सिक्का उसके राज्यकाल के अंतिम वर्ष का है) वह राम-भक्ति की ओर आकृष्ट हुआ हो। उस समय तक तुलसीदास का 'रामचरित मानस' पूरा हो चुका था। रहीम और तुलसी के परिचय और तुलसी के अकबर के दरबार में जाने की किंवदती तो सुनी ही जाती है। हो सकता है, उनसे वह प्रभावित हुआ हो और अपनी इन नयी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए उसने राम-सीता के चित्र वाले इस सिक्के को प्रचलित किया हो।

ये कुछ छोटे-से उदाहरण हैं, जिनसे आप समझ सकते हैं कि, सिक्के किस प्रकार बोलते हैं। उनमें आप किस प्रकार बातें कर सकते हैं और वे किस प्रकार रोचक तथ्य आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हैं—आपकी कल्पना को उत्तेजना प्रदान करते हैं!

★

पुराणों और रहस्य प्रसंगों में भी अधिक रोमांचक व अद्भुत घटनाओं के संदर्भ लिखे में अद्वितीय श्री ए. एन. मार्गीमर की यह आपबीती हम वेस्टर्न रेलवे एनुअल से साभार प्रस्तुत कर रहे हैं। लेख के गिरिशिल्पी हैं रयी पी.ो क ऊ वस्मित कलाकार श्री ए. ए. अल्केनरर।

*

मैंने कभी किसी शेर को नहीं मारा न बाघ को और न चीते का ही शिकार किया है। फिर भी मैं अपने को शिकारी कहता हूं क्योंकि मैंने अपराध जगत के भयानक जंगलों में कई हिंस्र मनुष्यों का शिकार किया है। और मेरी यह अनुभूत धारणा है कि जितना खूँखार एक आदमी हो सकता है उतना अन्य कोई प्राणी नहीं। पार्गसिंह और उसके गिरोह के खिलाफ सफलतापूर्वक जिहाद करने में इसी निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ।

पार्गसिंह के साथ युद्ध करने में हमारे तीन आदमी खेत रहे और पांच आहत हुए। हमने उनके सभी आदमियों का काम तमाम कर दिया। केवल पार्गसिंह का छोटा भाई धारसिंह किसी तरह बच निकला। स्वयं मेरे बायें हाथ में स्टेनगन की गोली लगी थी। पूरे एक हफ्ते भर तो मैं सो भी नहीं सका था।

हाथ का घाव भर जाने के बाद जब मैं अस्पताल से बाहर निकला तो मेरे भाई प्रेम ने मुझे कुछ दिन जंगल में जाकर रहने की सलाह दी। चोविया फारेस्ट रेस्ट हाउस वन विभाग का एक अतीव सुन्दर बंगला था जहां मुझे इसके लिए सभी सुख-सुविधाएं प्राप्त हो सकती थीं। हां सिलामोर के वन का और मेरी जान की हिफाजत था। वहां एक खूंखार बाघ रहता था।

गंगा का एक सहायक नाला गुजरता दूर छोटी-सी पहाड़ी पर स्थित यह बंगला बड़ा शान्तिप्रद स्थान था। तीन दिन तक तो

मैं आराम ही करता रहा। पढ़ने, नदी में तैरने या जंगली रास्तों पर कुछ दूर भ्रमण करने के अतिरिक्त मैंने कुछ नहीं किया। चौथे दिन मैं अपना कैमरा लेकर जंगल की तस्वीरें खींचने चला। प्रेम ने कहा था कि, यहाँ चित्र लेना आसान नहीं है। हुआ भी यही। मैं बहुत आहिस्ते से दबक कर चलता, तब भी चितल भाग जाते।

दूसरे दिन सवेरे करीब सात बजे मुझे जंगल के बीच एक छोटे-से मैदान में चितल हिरनों का झुंड दिखायी पड़ा। प्रेम ने हवा के रुख के बारे में जो हिदायत दी थी, उसको ध्यान में रखने का प्रयास करता हुआ मैं बड़ी सावधानी से आगे बढ़ा। लेकिन एक सूखी टहनी मेरे रास्ते में न-जाने कहाँ से आ गयी! पता नहीं, यदि स्वयं शैतान ने ही उसे रख दी हो वहाँ! उसके टूटने से जो आवाज हुई, उससे हिरन भाग गये और उनके साथ तस्वीर उतारने के मेरे सारे मनसूबे भी हिरन हो गये।

मुझे बड़ा अफसोस रहा कि, कितने भयंकर डाकुओं को काबू में लानेवाला व्यक्ति कुछ हिरनों से हार जाये! मैं उनके पीछे-पीछे जंगल में चला, लेकिन नजदीक उनके कभी नहीं पहुँच सका। अंत में, थक कर एक स्थान पर बैठ गया और यह अंदाज लगाने लगा कि, मैं कहाँ हूँ! मुझे यह समझते देर न लगी कि, हिरनों का पीछा करते हुए मैं अपना रास्ता ही भूल बैठा हूँ। सम्भव है कि, मैं मिलीमोट के भयंकर जंगल में ही चला आया हूँ, जहाँ वह घायल, खूँख्वार शेर रहता है। इस विचार से मैं काफी घबड़ा उठा और तत्काल ही वहाँ से चले-चलना मैंने मुनासिब समझा। सूरज को ही दिशा-सूचक यंत्र मान कर मैं अपनी छाया को आगे रखता हुआ सीधा बढ़ने लगा। मेरा ख्याल था कि, इस प्रकार कहीं-न-कहीं मार्ग मिल ही जायेगा।

करीब पौन घंटा लगातार चलने के बाद मुझे छोटे-से एक मैदान में वट-वृक्ष के नीचे एक छोटा-सा देवस्थान दिखायी पड़ा। मेरी ओर पीठ किये भगवा वस्त्र पहने एक सन्यासी वहाँ बैठा था। उसे देखकर मुझे बहुत आश्वासन मिला, क्योंकि मैं बहुत थक गया था और प्यास भी मुझे बहुत लगी थी। मेरी ओर बिना मुड़े ही सन्यासी ने कहा—"आइये साहब! थोड़ी देर बैठ कर विश्राम कीजिये। आप रास्ता भूल गये हैं। कुछ स्वस्थ होने पर मैं आपको बंगले पर पहुँचा दूँगा।"

मैं उसके पास जाकर जमीन पर बैठ गया। अपना सिगरेट-केस निकाल कर एक सिगरेट सुलगाने का विचार किया। फिर सौजन्यवश सिगरेट-केस उसकी ओर भी बढ़ाया। उसने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया। फिर मैंने सोचा कि, शायद वह सिगरेट न पीता हो और बगैर जाने ही मैंने सिगरेट देना चाहा—इसके लिए मैंने उससे क्षमा-याचना की। सन्यासी ने कहा—"मुझे पता नहीं था कि, आप मुझे सिगरेट दे रहे हैं। बात यह है, साहब कि, मैं अंधा हूँ और कुछ भी देखने में असमर्थ हूँ। हाँ,

आप सिगरेट पीजिये–मैं तो पीता नही।'

मेरे आश्चर्य का ठिकाना न था। यदि वह अधा था, तो उसे मेरे आने की खबर कैसे लगी? बिना मुझे देखे या मुझसे बात-चीत किये ही उसने कैसे जान लिया कि, मैं कौन हूँ और रास्ता भूल गया हूँ? मुझसे प्रश्न पूछ बगैर नही रहा गया।

उसने हँस कर जवाब दिया–"साहब जब हम आँखो से काम लेना बद कर देते हैं, तो हमारी अन्य इद्रियो की शक्ति बढ जाती है। बात यह है कि, हवा का रुख मेरी ओर होने के कारण आप जब इधर आये, तो आपके सिगरेट की गध मुझे पहले ही मिल गयी। यह भी मुझे मालूम हो गया कि, यह गध किसी हुक्के या बीडी की नही, बल्कि एक मँहगे सिगरेट की है, जिसे कोई शहरी ही पी सकता है। यह तो मुझे मालूम ही था कि, इस समय डी एफ ओ (जगल-अधिकारी) साहब के भाई चोकिया-बगले में रह रहे है और उनके सिवा और कोई शहरी अभी इस जगल मे नही। आप रास्ता भूल गये है, इसका अदाज मुझे इससे लगा कि, आप सिलोसोट की तरफ से आ रहे थे और वहाँ रास्ता भूलने-वालो के सिवा और कोई नही जाता।'

स्वामी देवानद से यह मेरी प्रथम भेट थी। उस दिन के बाद जितने दिन भी वहाँ मे रहा, करीब-करीब रोज ही उनसे मिलने जाता। मेरे बगले के निकट ही जो 'फारेस्ट-गार्ड' (जगल-विभाग का कर्मचारी) रहता था, उसने मुझे बताया कि, वहाँ के निवासी स्वामीजी को एक पवित्र आत्मा मानते हैं। उनका विश्वास है कि, जगल के जानवरो पर भी स्वामीजी का अद्भुत प्रभाव है। उस देवस्थान पर जानवर भी पूजा करने जाते हैं और बाघ तथा तेदुवे भी वहाँ की पवित्रता का खयाल कर उसके आस-पास शिकार नही मारते। स्वामीजी को वे भी आदर की दृष्टि से देखते है।

बाद म मुझे ज्ञात हुआ कि, स्वामीजी की शिक्षा लाहौर में हुई थी और वहाँ वे एक सफल डाक्टर भी थ। लेकिन १९४७ म मनुष्य का जो नृशस रूप उन्होने अपनी आँखो देखा, उससे उन्हे भयकर निराशा हुई और उन्होने ससार त्याग दिया। जगल में रह कर दो साल उन्होने उसी देवस्थान पर भगवद-आराधना में बिताये। एक दिन तूफान म वे बाहर रह गये और बिजली गिरने से उनके आँखो की ज्योति चली गयी। वैसे उनकी आँखें और लोगो की तरह ही सामान्य दिखायी पडती थी, लेकिन देख वे बिल्कुल नही सकते थे। तब तक जगल से उन्हे इतना मोह हो गया था कि, वापस शहर लौटना उनके लिए असम्भव था और वे वही रहने लगे।

उनके यहाँ तीसरी बार जब मैं गया, तो मुझे उनकी दिव्य शक्ति का परिचय मिला। मैंने उनसे कहा कि, जगल के जानवरो के चित्र लेने की मेरी प्रबल इच्छा है, लेकिन मं किसी भी तरह सफल नहीं हो पा रहा हूँ। जब उन्हे ज्ञात हुआ कि, मे शिकार नही, बल्कि फोटो लेने में रुचि

रखता हूँ और मुझसे जंगल के जानवरों को, जिन्हें वे अपना मित्र कहते थे, कोई अनिष्ट नहीं होनेवाला है, तो उन्होंने मेरी सहायता देने का वचन दिया।

उन्होंने मुझे देवस्थान के पास ही एक झाड़ी के निकट शांत होकर बैठने के लिए कहा। इसके बाद वे स्वयं ध्यानस्थ होकर बैठ गये। करीब दस मिनिट के बाद, कुछ दूर पर, जहाँ जंगल शुरू होता था, किसी के आने की आहट सुनायी पड़ी। एक चित्तल मृग और तीन हिरनियाँ मुझे दिखायी पड़ीं। कुछ ठिठक कर वे मैदान में खड़ी हो गयीं और उसके बाद धीरे-धीरे स्वामीजी के पास आ गयीं। मैंने कैमरे का खटका दबाया। उसकी आवाज से वे चौंकीं, लेकिन स्वामीजी ने अपना हाथ उनकी ओर फैलाया और वे शांत हो गयीं। उसके बाद एक हिरनी तो स्वामीजी के बिलकुल करीब जाकर बड़े स्नेहपूर्वक उनका हाथ चाटने लगी।

कुछ देर बाद स्वामीजी ने एक ओर जंगल की तरफ ताकना शुरू किया, मानो झाड़ियों में वे किसी को देख रहे हों। फिर उन्होंने कुछ कहा, जिसे सुन कर हिरन जल्दी से दौड़ गये। मैं आश्चर्यचकित होकर सोचने लगा कि, आखिर बात क्या है? इतने में एक शानदार तेंदुआ जंगल के रास्ते पर दिखायी पड़ा। वह भी स्वामीजी की ओर दो मिनिट तक ताकता रहा। उसके बाद जिस ओर हिरन भागे थे, उसी तरफ चला गया।

स्वामी देवानंद ने मुझसे कहा—"इसमें कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है। पशु भी समझते हैं कि, उनके प्रति मेरे हृदय में प्रेम है और मैं कभी उनका अहित नहीं सोच सकता। इसीलिए वे इस स्थान को पवित्र समझते हैं। जब से मैंने अपनी दृष्टि खोयी है, मैं उनसे अपने मन की बात

कह सकता हूँ और उनके मन की भा समझ लेता हूँ—ठीक उसी तरह जैसे मूक पशु एक-दूसरे का मनोभाव समझ जाते ह। मेरे लिए यह कैसे सम्भव हुआ यह म नही कह सकता। आज सवेरे ही मन सुना था कि एक तदुवा जगल म आया है। य हिरन यहा पास ही म चर रहे थ। मैने इन्हे सावधान होन के लिए सदेश भजा और य यहाँ इसीलिए आय थी। जब मुझ तदुवे के इधर आन की गध आयी तो मैन हिरनो का भाग जान को कहा।

वहाँ से विदा होन के एक दिन पहले मं स्वामीजी से अतिम भट करन के लिए गया। हम लोग आपस में बातचात करन लग। वे मुझ बता रहे थ कि हिरन और बदर एक-दूसरे की रक्षा करन म समझौते से काम लेते हैं। एकाएक बिना किसी प्रसग एव आवाज म परिवतन किय ही उन्होन कहा— हाँ तो उस मदिर के भग्नावशष म मुझ जो रत्न मिले, उन्हे मैन इस जगल म एसे स्थान पर गाड दिया है, जहाँ उनका पता किसी को नहीं लग सकता।

मेरी समझ म नही आया कि आखिर स्वामीजी इस प्रकार बहक क्यो गय? एकाएक पीछ से किसी न पुकारा— आहा, एस पी साहब! आखिर मन आपको निशस्त्र और अकेले पा ही लिया। जब आपन मेरे भाई पालसिंह को मारा, तभी मन प्रतिज्ञा की थी कि, एक रोज आपसे जरूर बदला लूँगा। मन सुना कि, आप जगल म आराम फरमा रहे हैं और इसी लिए आपका पीछा करता हुआ यहाँ चला आया। मरन के लिए आपको इससे अधिक शाति का स्थान दूसरा नही मिल सकता।

पीछ मड कर मन देखा तो मालूम हुआ कि शेरसिह स्टनगन तान मेरे पीछ खडा है। देवानद की ओर देखकर उसन कहा— स्वामीजी! आपसे मेरा कोई झगडा

नहीं। जब मैं एस पी साहब को यहीं खत्म कर दूँगा, तो आप भी मुझे उस गड़े हुए धन का पता बता देंगे।"

देवानंद जरा भी विचलित नहीं हुए। मुस्करा कर उन्होंने कहा—"साहब को मारना—न मारना तुम्हारा काम है। जहाँ तक उन रत्नों का प्रश्न है, मैं तुम्हें उनका पता कभी नहीं बताऊँगा। मौत से मुझे कोई भय नहीं और तुम्हारे पास इसके सिवा और कोई धमकी नहीं। वे जवाहरात कहाँ गड़े हैं, यह मेरे सिवा और कोई नहीं जानता। मुझे मार डालने के बाद यदि जन्म-भर तुम उनकी खोज जंगल में करते रहो, तब भी तुम असफल ही रहोगे। . लेकिन ठहरो, साहब मेरे मित्र हैं। उनकी जान अगर तुम छोड़ दो, तो तुम्हें उन जवाहरात का पता बता सकता हूँ।

शेरसिंह कुछ देर तो विचार में पड़ गया। फिर बोला—"यदि वे रत्न वास्तव में मूल्यवान हैं, तो मैं साहब को कम-से-कम इस समय तो छोड़ सकता हूँ। लेकिन मैं पहले उन रत्नों को देख तो लूँ।'

देवानंद ने उस स्थान का विवरण बताना शुरू किया, जहाँ वे जवाहरात गड़े थे। लेकिन शेरसिंह की समझ में कुछ भी नहीं आया। उसने कहा—"आपको स्वयं चल कर वह स्थान बताना पड़ेगा। साहब को मैं अकेला यहाँ छोड़ नहीं सकता, हाथ-पैर बाँध कर भी नहीं। उनके स्वयं भाग जाने का डर है या कोई आदमी आ कर ही उनके बंधन खोल दे। इसलिए उन्हें भी हमारे साथ चलना होगा।'

आगे-आगे स्वामीजी चले। उनके पीछे मैं और मेरे पीछे 'स्टेनगन' मेरी गर्दन में गड़ाये शेरसिंह चल रहा था। मैं इसी अवसर की ताक में था कि, शेरसिंह का जरा चूके और मैं उस पर झपटूँ। लेकिन जंगल में बहुत दूर हम निकल गये, तब भी कुछ नहीं हुआ। आगे जाकर एक तीव्र गंध हमें विचलित करने लगी।

शेरसिंह ने कहा— स्वामीजी, आपकी यह जगह तो बहुत बदबूदार है।' देवानंद ने कहा— घबराने की कोई बात नहीं। कोई जानवर मरा पड़ा होगा। दुर्भाग्यवश तुम्हारा वह खजाना भी उसी तरफ है। जल्दी से चले चलो। काम निपटा कर जल्दी लौट चलेंगे।' ऐसा कह कर वे एक झाड़ी में तेजी से घुस गये। शेरसिंह को कुछ शक हुआ और उसने 'स्टेनगन' से मुझे भी अंदर धकेला। दूसरे क्षण हम दोनों ही एक साथ झाड़ियों के बीच थोड़ी-सी खुली जगह में खड़े थे। बदबू वहाँ भयानक थी।

उसके बाद जो-कुछ हुआ, वह इस तेजी से कि, ठीक से उसका स्मरण भी मुझे नहीं। एक हिरन वहाँ मरा पड़ा था। जैसे ही हम अंदर घुसे, तत्काल ही एक बाघ हमारी ओर झपटा। शेरसिंह चौंका और घूम कर उसने बाघ का सामना किया। उसके बाद बाघ के गरजने की आवाज और 'स्टेनगन' की आवाज एक साथ ही सुनायी दी। स्वामीजी मेरा हाथ पकड़ कर

जल्दी से मुझे झाड़ियों में से होकर ले जा रहे थे। आगे रास्ते पर जाकर हम रुके।

शेरसिंह का चीखना, बाघ की दहाड़ और 'स्टेनगन' की आवाज तीनों ही हमें कुछ देर तक सुनायी देती रहीं। उसके बाद वातावरण बिलकुल शांत हो गया। स्वामीजी ने कहा—'शेरसिंह को उचित सजा बाघ के हाथों मिल गयी। मेरा दोस्त भी अब जंगल में नजर नहीं आयगा लेकिन वह लंगडा हो गया था और उसे शिकार करने में बेहद तकलीफ होती थी।'

उस स्थल पर वापस जाकर हमने देखा, तो शेरसिंह बुरी तरह जख्मी होकर मरा पड़ा था। बाघ भी 'स्टेनगन' की गोलियों से मारा जा चुका था। उस दिन देवानंद जबर्दस्ती मुझे मेरे बंगले पर पहुँचाने आये। उन्होंने कहा—"मुझे हिंसा अप्रिय है, लेकिन कुछ प्राणी ऐसे हैं, जिनका रास्ते से हट जाना ही अच्छा है। उदाहरण के लिए यह शेरसिंह। मैं जानता था कि वह झूठ बोल रहा है और जवाहरात पा लेने पर आपको कभी जिंदा नहीं छोड़ेगा।

'हम अंधों को हमारे कान आदमी को पहचानने में बड़ी मदद देते हैं। उसकी आवाज से ही स्पष्ट था कि, वह खतरनाक जानवर है। जब वह हमारे पास पीछे की तरफ से आ रहा था, तभी मुझे भय लगा कि, कुछ खतरा आनेवाला है। लेकिन मेरे लिए तो किसी संकट की सम्भावना थी नहीं। इसलिए मैंने अनुमान लगाया कि, हो-न-हो, आप पर अवश्य कोई विपत्ति आनेवाली है। यही कारण था कि, मैंने उन रत्नों का जिक्र छेड़ा, क्योंकि आपके दुश्मन वही डाकू हो सकते थे, जिन्हें आपने सजा दी थी। यह भी मुझे पता था कि, उस बूढ़े बाघ ने कोई शिकार मारा है। लंगडा होने की वजह से वह उस स्थान से दूर नहीं जायगा। कई दिनों के बाद शिकार उसके हाथ लगा है, इसलिए उस समय किसी के वहाँ पहुँचने से वह बहुत बिगड़ेगा।

"वहाँ तक पहुँचने में मेरे नाक ने मेरी मदद की। मैं जानता था कि, एकाएक कुछ आदमियों के वहाँ पहुँचने से वह जरूर हमला करेगा और शेरसिंह अपनी बंदूक का इस्तेमाल भी किये बिना न रह सकेगा। वैसे आदमी सिवा शस्त्र की और किसी शक्ति से परिचित भी कैसे हो सकते हैं? लेकिन बाघ अपने आक्रमणकारी को जिंदा नहीं छोड़ेगा, इसका भी मुझे भरोसा था।

"रहा रत्नों का प्रश्न, सो मैंने वास्तव में कुछ रत्न, जो मुझे एक प्राचीन भग्न मंदिर में मिले थे, यहाँ जगह में छिपा रखे हैं। किन्तु उनका भेद मैं किसी को नहीं दूँगा, आपको भी नहीं। इस दुनिया में सारे फिसाद की जड़ धन है और मैं नहीं चाहता कि, उन रत्नों को लेकर किसी के जीवन में मुश्किलें खड़ी हों। अच्छा, नमस्कार! फिर कभी आप इधर आयें, तो मुझसे जरूर मिलियेगा।" ..

अगले मास में फिर 'चोविया-रेस्ट-हाउस' पंद्रह दिनों के लिए जानेवाला हूँ।

★

# श्यामलदा भूत

'राजपूत मराठा इतिहास संशोधन मंडल', पूना के भूतपूर्व संचालक स्वामी विद्यानंदजी श्रीवास्तव द्वारा मुगल राजपूत इतिहास के एक अंधकूपलुप्त चरित्र का यह उद्घाटन 'नवनीत' के पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें, वास्तव में, हर्षयुक्त गर्व का अनुभव हो रहा है।

*

भयंकर वन्य प्रदेश—चारों ओर झाड़-झंखाड़ों व हिंसक पशुओं का साम्राज्य! दिन ढलने को आ चुका था। लम्बी यात्रा से थके हुए मुगल सैनिक लूट के सामान का बोझ उठाये धीरे-धीरे अपनी राह तय कर रहे थे। तभी एक भयंकर दहाड़ वहाँ की निस्तब्धता भंग करती हुई गूँज उठी। वन्य प्रदेश के मानव सिंह की भीषण गर्जना—सहमे हुए मुगल सैनिकों ने एक-दूसरे की ओर देखा। एक घनी-कँटीली झाड़ी की दूसरी ओर से सिंह फिर गरज उठा और तत्काल ही अपना सारा सामान पटक, मुगल सैनिक अपने प्राणों के भय से सिर पर पाँव देकर भाग चले।

उनके नजरों से ओझल होते ही झाड़ी को चीरती हुई निकल आयी एक छ-सात छः फुट-लम्बी आकृति—स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट शरीर, बड़े-बड़े बाल, घनी दाढ़ी-मूँछ, कमर में बाघम्बर तथा शरीर पर सुसज्जित विभिन्न अस्त्र-शस्त्र! उसका भयानक डील-डौल और विकराल आकृति भूत का भ्रम उत्पन्न करा देती थी!

'भूत' के होंठों पर मुस्कान नाच उठी। वह आगे बढ़ा और मुगल सैनिकों-द्वारा छोड़े गये सारे सामान को एक गुब्बारे के समान अपने कंधों पर लाद, उस घने जंगल में एक ओर विलीन हो गया।

वह उस वन्य प्रदेश का एकच्छत्र स्वामी था— 'श्यामला भूत'!

हमारी इस कहानी के नायक 'श्यामला भूत' की कहानी इस घटना के कई वर्षों पूर्व, सम्वत् १६६२ में आरम्भ होती है। हाड़ौती प्रदेश (राजस्थान) के राव सुर्जन हाड़ा के ज्येष्ठ पुत्र दूदा मृत्युशैया पर पड़े थे। लगातार १८ वर्षों तक मुगल सम्राट् अकबर के दाँत खट्टे करने के पश्चात्, एक बार जब वे बीजापुर जा रहे थे, तो नर्मदा नदी के तट पर दासियों ने छल से उन्हें विष पिला दिया था। शत्रु को अवसर था। मुगल-सेना टूट पड़ी थी और युद्ध में मुगल-सेनानी मोज के हाथों उनके दोनों ज्येष्ठ पुत्र तथा

साढ़े चार सौ राजपूत मारे जा चुके थे।

दूदा के मुख पर वेदना के घने-काले बादल मंडरा उठे। पुत्रों की मृत्यु या पराजय का शोक उन्हें नहीं था। सिर्फ एक ही कसक थी—"मुगलों और भोजावतों से अधिक काल तक दो-दो हाथ न कर सका—मृत्यु का बुलावा असमय आ गया।"

उन्होंने अपनी व्याकुल आँखें, पास हो खड़े अपने तृतीय पुत्र—श्यामलसी दूदावत हाडा—पर गड़ा दीं। श्यामलसी ने पिता की इच्छा समझ ली। उसकी मुखाकृति तमतमा गयी—अंग-अंग फड़क उठे और उसने तलवार खींच प्रतिज्ञा की—"मृत्यु-पर्यंत मुगलों और उनके सामंत भोजावतों से युद्ध करता रहूँगा। उन्हें क्षणभर भी चैन से बैठने दूँ, तो मुझ पर लानत है!" बाकी बचे ५० राजपूतों ने भी अपनी-अपनी तलवारें खींच आजन्म साथ देने की कसम खायी।

दो राजपूत योद्धा

[ चित्र : एक प्राचीन राजस्थानी चित्र की रेखानुकृति ]

दूदा सुरजनोत हाडा के पीले मुख पर प्रसन्नता की आभा दमक उठी। श्यामलसी को मानो आशीर्वाद देने की मुद्रा में उन्होंने दायाँ हाथ उठाया और परम संताप के साथ अपनी आँखें सदा के लिए मूँद लीं।

अपने पिता का अंतिम संस्कार कर, बचे-खुचे राजपूतों को साथ ले श्यामलसी असीरगढ की ओर चला। ऊँची और दुर्गम पर्वत शृंखलाओं को पार कर असीर और गाविल-गढ के बीच, अंधेरी व सनसनाती गिरि-कंदराओं और घने जंगलों में उसने अपना केंद्र बनाया। अपने बाल्य काल से लेकर यह १८ वर्ष की उम्र उसने अपने पिता के साथ दुर्गम पहाड़ों और जंगलों में ही बितायी थी— सदा संकटों से ही खेलता आया था। योग्य पिता का सामीप्य और स्नेह पा श्यामलसी एक कुशल योद्धा बन गया था। लक्ष्य-वेध, असि-संचालन और भाला-क्षेपण में तो वह बेजोड़ था—मीलों तक हिरन-सी चाल में दौड़ते चले जाना उसके लिए साधारण-सी बात थी। साथ ही, पालतू व वन्य पशु-पक्षियों में सिंह से लेकर मैना तक की बोली की नकल उतारने में भी वह पूर्णतया पटु था।

प्रकृति के इस सुरक्षित गढ़ को निवासस्थान बना श्यामलसी ने अपने राजपूतों के साथ लुक-छिप कर लूट-मार मचानी शुरू कर दी। नट-गायक-पंडित-ज्योतिषी-साधु-साहूकार-मुगल-पठान—व अन्य तरह-तरह के वेष बनाकर वह मुगलों के इलाके में घुसता, भेद लेता और लूट-मार करता हुआ अपने निवासस्थान पर वापस आ जाता। असीर और गाविल-गढ के जंगलों से गुजरनेवाले मुगल सैनिकों के लिए तो

किसी झाड़ी की आड़ में सिंह की तरह दहाड़ना ही पर्याप्त होता था !

एक-एक कर चार वर्ष व्यतीत हो गये। इस अर्से में मुगल साम्राज्य में सर्वत्र श्यामल्सी का आतंक छा गया। लोगों का जीना दूभर हो उठा। एक-दूसरे के प्रति विश्वास नाम की कोई चीज ही नहीं रह गयी। किन्तु श्यामल्सी का वैर तो सिर्फ *मुगलों और मालावतों से था–अन्य* व्यक्तियों की ओर वह कभी आँख उठाकर भी नहीं देखता था !

*अब तक उसके साथियों की संख्या* ढाई सौ तक पहुँच गयी थी। छिप-छिप कर आक्रमण करने में साथ हीं, वह सामने आकर भी मुगलों से लोहा लेने लगा। किन्तु मुगलों से जम कर संघर्ष करने का अवसर उसे तब मिला, जब मुगल सम्राट् ने बुरहान निजामशाह का अहमदनगर की गद्दी पर बिठाने के लिए, मालवा के सूबेदार आजम खाँ को भेजा। आजम खाँ चागताई खाँ और चाँद खाँ के साथ बरार के मार्ग से अहमदनगर रवाना हुआ। समाचार मिलते ही श्यामल्सी ने पहाड़ों और जंगलों में अपने वीर सैनिकों को तैनात कर, मुगलों से मोर्चा लेने की तैयारी कर ली।

आजम खाँ के मालवा से प्रस्थान कर एलिचपुर पहुँचते ही उसके सैनिकों ने उत्पात मचाना शुरू कर दिया। दानापुर के निजामशाही थानेदार जहाँगीर खाँ ने भयभीत हो अपना दूत श्यामल्सी के पास भेजा और मुगलों के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की। श्यामल्सी तत्काल ही अपने राजपूतों को ले दानापुर जा पहुँचा।

किन्तु जब आजम खाँ अपनी सेना-सहित दानापुर पहुँचा, तो जहाँगीर खाँ की हिम्मत जवाब दे गयी। वह आजमखाँ की अधीनता स्वीकार करने को तैयार हो गया। पर दानापुर के उप-थानेदार हाफिज खाँ और सभी सैनिक या दासता स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। जहाँगीर खाँ के निश्चय के विरुद्ध उन्होंने मुगल-सेना से लड़ने का फैसला कर लिया।

*श्रावण-सुदी त्रयोदशी, सम्वत् १६८६* की एक रात– आकाश में घने बादल छाये थे। चारों ओर अंधेरे का निस्तब्ध साम्राज्य था। सिर्फ कभी-कभी बादल गरज उठते और बिजलियाँ चमकने लगतीं। श्यामल्सी इस अवसर को उपयुक्त जान अपने राजपूतों के साथ आजम खाँ की सेना पर टूट पड़ा। दानापुर के सैनिक भी उसके साथ थे। भयंकर मार-काट मच गयी। श्यामल्सी फुर्ती से अपना घोड़ा दौड़ाता हुआ आजम खाँ की ओर बढ़ा। चागताई खाँ और चाँद खाँ ने रास्ता रोकने की कोशिश की, किन्तु तलवार के एक ही वार ने दोनों को धराशायी कर दिया।

आजम खाँ ने डट कर श्यामल्सी का मुकाबला किया। अब तक उसके सात-आठ सौ सैनिक मारे जा चुके थे–जब कि, श्यामल्सी के कुल ६० व्यक्ति मरे थे। विजय-श्री श्यामल्सी का साथ दे रही थी। मुगल सैनिकों की हिम्मत साथ छोड़ गयी

और वे जान बचाकर भाग चले—आजम खाँ ने भी अपने भागते हुए सैनिकों का नेतृत्व करना ही उचित समझा। मुगल सैनिकों-द्वारा छोड़ गये लाखों की सम्पत्ति राजपूतों के हाथ पड़ी। श्यामलसी ने लूट का आधा हिस्सा हाफिज खाँ को सौंपा और आधा स्वयं ले बचे हुए साथियों के साथ अपने किले में लौट आया।

इस घटना के पश्चात् श्यामलसी का दबदबा और भी बढ़ गया। उसने स्वयं को असीर तथा गोविल गढ़ के मध्यवर्ती भूभाग का स्वतन्त्र अधिपति घोषित कर दिया। मुगलों पर प्रथम विजय के उपलक्ष्य में उसने शानदार उत्सव मनाया और लूट का सिर्फ आठवाँ हिस्सा अपने लिए रखा—बाकी सम्पत्ति मृत सैनिकों के परिवार, अपने साथियों विधवाओं और अनाथों में वितरित कर दी। इस दानशीलता ने उसकी कीर्ति में मानो चार चाँद लगा दिये।

किन्तु श्यामलसी के हृदय में शांति नहीं थी—हाड़ौती के उद्धार की चिंता उसे सदा बेचैन बनाये रहती थी और यह प्रश्न इतना सहज भी नहीं था। प्रचुर धन और पर्याप्त सैनिकों के बावजूद मुगल सम्राट अकबर से खुल कर लोहा लेने की सामर्थ्य उसमें नहीं थी। असीर-गोविल-गढ़ के सुरक्षित किले से निकल मुगल-सेना का सामना करते हुए मालव देश को जीतकर हाड़ौती तक की लम्बी राह तय करना असम्भवप्राय था—बाध्य हो श्यामलसी को हाड़ौती के उद्धार का विचार त्यागना पड़ा।

मानसिंह

[ चित्र एक प्राचीन राजस्थानी चित्र की सरल रेखानुकृति ]

सम्वत् १६५२ में अकबर ने जब चाँद बीबी को पराजित करने के लिए अपनी सेना भेजी तो चाँद बीबी ने अपने सरदार सादात खाँ को भेजकर श्यामलसी से सहायता की प्रार्थना की। श्यामलसी को भला कब इनकार हो सकता था। उसका तो ध्येय ही था—मुगलों का शत्रु कोई भी हो वह मेरा मित्र है। अपने राजपूतों के साथ वह चल पड़ा और पौष्य कृष्ण त्रयोदशी शुक्रवार की रात सघन अंधकार का आश्रय ले मुगल-सेना पर टूट पड़ा। मुगल-सेना के नायक सयद राजा और उसके भाई मारे गये—मुगल-सेना का सारा सामान श्यामलसी के हाथ लगा। दो दिनों पश्चात् गुजरात से आनेवाली मुगल सैनिकों की टुकड़ी को घेर कर श्यामलसी ने उसके नायक आलम खाँ को भी मार डाला

और आगे बढ़कर रजा अली पर टूट पड़ा। मुगल-सेना प्राणों का मोह ले भाग चली।

किन्तु जब चाँद बीबी ने बरार देकर अकबर से संधि कर ली, तो श्यामलसी अकेला मुगल-सेना का सामना करने के लिए रह गया। आगे बढ़कर मुगल-सेना ने चारों ओर से असीर और गोविन्द-गढ़ को घेर लिया। फिर भी श्यामल्सी को पराजित करना इतना आसान नहीं था। अपने गढ़ से श्यामल्सी ने इस प्रकार युद्ध-सञ्चालन किया कि, मुगलों के छक्के छूट गये। वर्ष-भर तक लगातार युद्ध चलता रहा—श्यामल्सी के राजपूतों की संख्या घटकर बहुत थोड़ी रह गयी, किन्तु उसका पलड़ा अभी भी भारी था। तब आकर मुगलों ने चारों ओर से जंगल में आग लगा दी। श्यामल्सी भी अपने इस गढ़ को अब अरक्षित जान कर, सादात खाँ की सलाह मान, अपने राजपूतों-सहित अजंता की गुफाओं में चला आया।

इस वर्ष की इस लम्बी अवधि में श्यामल्सी को मुगलों के विरुद्ध तो कई बार लड़ने का मौका मिल चुका था, किन्तु भोजावतों से दो-दो हाथ करने की कसक अभी बाकी थी। प्रति क्षण वह इसका अवसर ढूँढ़ा करता—मरणोन्मुख पिता के समक्ष की गयी प्रतिज्ञा उसे स्मरण हो आती। आखिर, सम्वत् १६५६ में श्यामल्सी की यह लालसा भी पूरी हो गयी। शाहजदा मुराद की मृत्यु के पश्चात्, अकबर ने अबुल्फजल को राव भोज के साथ दक्षिण भेजा। साथ में ५०० मुगल और १००० राजपूत सैनिक थे। समाचार मिलते ही श्यामल्सी तैयार हो गया और एक दिन उपयुक्त मौका पा अपने ढाई सौ राजपूतों के साथ ही मुगल-सेना पर टूट पड़ा।

कई दिनों तक युद्ध चलता रहा, पर श्यामल्सी को राव भोज के समक्ष पहुँचने का अवसर न मिला। राव भोज को श्यामल्सी के इरादे की खबर लग चुकी थी और उसने स्वयं को सैनिकों के पहरे में पूर्णरूपेण सुरक्षित कर लिया था।

दस महीनों के अनवरत प्रयास के बाद, अंतत: पौष्य कृष्ण तृतीया का दिन श्यामल्सी के लिए वांछित अवसर लेकर उपस्थित हुआ। सैनिकों के पहरे को छिन्न-भिन्न करता श्यामल्सी साक्षात् काल बना राव भोज के सम्मुख जा पहुँचा। वार करता हुआ बोला—"बावाजी ! श्यामल्सी दूदावत का जुहार स्वीकार कीजिये !"

भोज वार बचा गया, परन्तु श्यामल्सी की तलवार ने घोड़े का सिर अलग कर दिया। राव भोज जमीन पर आ गिरा। श्यामल्सी व्यंग्य से मुसकराया—"बावाजी श्यामल्सी का दूसरा जुहार स्वीकार कीजिये !" फिर वह राव भोज के उठ कर खड़े होने की प्रतीक्षा करता रहा।

इस व्यंग्य-बाण से विद्ध हो राव भोज घायल सिंह के समान तड़प कर श्यामल्सी पर टूट पड़ा—काका-भतीजे एक-दूसरे के लिए काल बन गये! कई घंटों के घोर युद्ध के पश्चात् आखिर दोनों ही बेहोश

होकर गिर पड़े। दूदावत और भोजावत सैनिकों ने युद्ध बंद कर दिया और आहत सरदारों को उठाकर अपने-अपने स्थान को लौट गये। इस युद्ध में सात सौ भोजावत, तीन सौ मुगल और दो सौ दूदावत खेत रहे।

इधर श्यामलसी के इस संघर्ष के लिए प्रस्थान करने के ५ महीने पश्चात् आश्विन सुदी दुर्गाष्टमी को उसकी पत्नी ने एक पुत्र-रत्न का जन्म दिया। किन्तु उचित परिचर्या और संयम के अभाव में वह प्रसूत-ज्वर से पीड़ित हो गयी और दिनोदिन उसकी हालत बिगड़ती जा रही थी। जब दूदावत सैनिक संज्ञाशून्य श्यामलसी को लेकर वापस आये, उस वक्त वह उठने-बैठने से भी लाचार थी, किन्तु पति की यह अवस्था देख वह स्वयं को मानो भूल-सी गयी। श्यामलसी की परिचर्या में उसने दिन-रात एक कर दिया।

बीस दिनों पश्चात् श्यामलसी ने आँखें खोलीं। सामने अपनी पत्नी और पास ही टँगी झोली में अपने पुत्र को निरख उसके चेहरे पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। पत्नी की दुर्बल मुखाकृति भी क्षणभर के लिए हर्ष के आवेग से रक्ताभ हो उठी।

श्यामलसी धीरे-धीरे स्वास्थ्य-लाभ करने लगा; किन्तु उसकी पत्नी की हालत खराब होती चली गयी। अंतत सम्वत् १६५६ में महाशिवरात्रि, शनिवार के दिन उस सती-साध्वी ने पति के चरणों में प्राण त्याग दिये। जिस श्यामलसी ने कभी स्वप्न में भी अश्रुपात नहीं किया था, उसकी आँखें सावन-भादों-सी बरसने लगीं।

किन्तु तत्काल ही उसकी आँखें तमतमा उठीं, मुखाकृति गम्भीर हो गयी और उसने अपनी पत्नी के मृत शरीर की बगल में खड़े हो प्रतिज्ञा की —"जिस अन्न-वस्त्र के अभाव में आज मेरी प्राणप्रिया इस दशा को प्राप्त हुई है, मैं आजन्म उनका स्पर्श नहीं करूँगा!" उसी क्षण से उसने वस्त्र के स्थान पर बाघम्बर पहनना शुरू कर दिया और अन्न छोड़, वाराह और हिरन के मांस को क्षुधा-तृप्ति का साधन बनाया।

पत्नी-बिछोह और पुत्र-मोह ने श्यामलसी का मानो सारा उत्साह छीन लिया। महीनों वह चुपचाप बैठा रहा, परन्तु एक दिन अपने पुत्र को मोदक की जिद करते देख उसकी मोह-निद्रा भंग हुई। उसने फिर युद्ध करने पर कमर कस ली। पुछेक राजपूतों को अपने पुत्र कुमार शार्दूल की रक्षा के लिए छोड़, वह अपने साथियों के साथ, मुगलों पर प्रलय की तरह टूट पड़ा। भीमकाय डीलडौल, बड़ी-बड़ी व घनी दाढ़ी-मूँछें, विशालकाय आकृति और कमर में बाघम्बर—लोग देखते ही आतंकित हो उठते—साक्षात् भूत हो मानो! और, तभी से उन्होंने उसे 'श्यामला भूत' के नाम से पुकारना शुरू कर दिया।

बारह वर्ष की आयु का होते-न-होते कुमार शार्दूल लक्ष्य-संधान, असि-संचालन और भाला-क्षेपण में अपने पिता से भी बढ़ गया। पिता-पुत्र दोनों ही मिलकर देश को मुगल-विहीन करने लगे!

सम्वत् १६६२ में, अकबर की मृत्यु के पश्चात् सम्राट् जहाँगीर के शासनकाल में, एक दिन श्यामलसी अपने साथियों के साथ जब मुगल-इलाके में लूट-पाट करने जा रहा था, उसे एक ओर से मार-काट की आवाज सुनायी पड़ी। छिपता-छिपाता वह निकट पहुंचा। कुछ मुगल सैनिक जमीन पर पड़े कराह रहे थे और उनका नायक क्षत-विक्षत अवस्था में बड़बड़ा रहा था—"परवरदिगार! मेरे परिवार की रक्षा कर, नहीं तो सीने में कटार भोंककर खुदकुशी करने का बल दे!"

श्यामलसी की तीक्ष्ण आँखों ने स्पष्ट देख लिया कि, थोड़ी ही दूर पर कुछ निजामशाही सिपाही, दो-तीन मुगल स्त्रियों के साथ छेड़छाड़ कर रहे हैं। श्यामलसी मुगलों का जन्मजात शत्रु था, फिर भी उसने मुगल स्त्रियों की तरफ कभी आँख उठाकर भी नहीं देखा था। समस्त स्त्री-जाति उसकी दृष्टि में आदरणीया थी। यह अनाचार देख उसका खून खौल उठा और तत्काल ही अपने सैनिकों के साथ वह निजामशाही सिपाहियों पर टूट पड़ा। निजामशाही सिपाही 'श्यामला भूत-श्यामला भूत' चिल्लाते हुए भाग चले।

श्यामलसी घायल मुगल सरदार और सैनिकों को स्त्रियों-समेत सुरक्षित स्थान पर ले आया। एक महीने की परिचर्या के बाद मुगल सरदार महलोल खाँ पूर्ण स्वस्थ हो अपने परिवार और सैनिकों-सहित बुरहानपुर लौट गया। किन्तु चलने के पूर्व श्यामलसी के प्रति उसने अपार कृतज्ञता प्रदर्शित की और पगड़ी बदल उसे अपना भाई मान लिया। यह भी वचन दिया कि, अवसर आने पर वह और उसके सारे साथी श्यामलसी के लिए अपने प्राण भी न्यौछावर कर देंगे।

अब तक भोज की मृत्यु हो गयी थी। अतः उसका पुत्र रतनसी बूंदी का अधिपति बना। श्यामलसी पिता का वैर चुकाने के लिए रतनसी पर आक्रमण करने का अवसर ढूँढ़ने लगा। भीलों को अपना साथी बनाकर उसने मुगलों के इलाके में घुसकर लूट-पाट मचानी शुरू कर दी। दूसरी ओर निजामशाही सरदार भी मुगलों के विरुद्ध लोहा ले रहे थे। इन दो पाटों में पिसकर मुगलों के लिए घर में छिपकर बैठना भी दुश्वार-सा हो गया।

इस उत्पात का समाचार पा सम्राट् जहाँगीर ने रतनसी भोजावत को 'सर-बुलन्दराय' की उपाधि दे, श्यामलसी और निजामशाही सैनिकों से लड़ने के लिए दक्षिण की ओर भेजा। उसके जाने के कुछ ही दिनों बाद राय सूरज सिंह भी उसकी सहायता के लिए भेजा गया और उसके थोड़े ही समय बाद जहाँगीर ने कई मनसबदारों को दक्षिण की ओर जाने का हुक्म दिया। पर जब इतने पर भी उसके मन को संतोष नहीं हुआ, तो उसने महाबत खाँ और खाने जहाँ को ५० लाख रुपये तथा काफी बड़ी फौज के साथ दक्षिण की ओर बढ़ने को कहा—यहाँ तक कि,

शाहजादा खुर्रम को भी अंत में दक्षिण की ओर जाना पड़ा।

श्यामलसी तो 'सरबुलंदराय' से वैर चुकाने का मौका खोज ही रहा था। उसने छिप-छिप कर आक्रमण करना शुरू कर दिया—आज यहाँ छापा मारता, तो कल पचीसों कोस दूर! सरबुलंदराय की नींद हराम हो गयी—बहुधा उसे अपने खाने की थाल ज्यों-की-त्यों छोड़ कर उठ जाना पड़ता था।

जहाँगीर-द्वारा भेजे अन्य व्यक्तियों के आ जाने से 'सरबुलंदराय' का हौसला बढ़ा और नवीन उत्साह से वह श्यामलसी के पीछे पड़ गया। जगह-जगह उसने अपने सैनिक घात में बैठा दिये। और, तीन वर्षों के अनवरत संघर्ष के पश्चात्, एक दिन जब श्यामलसी अपने दस राजपूतों के साथ कहीं जा रहा था, 'सरबुलंदराय' के ५० सैनिक उस पर टूट पड़े। श्यामलसी और उसके राजपूतों ने डटकर मुकाबला किया किंतु विजय-श्री आज उसके विपक्षियों का साथ दे रही थी। कुछ ही देर में श्यामलसी के साथी एक-एक कर मरने लगे।

तब तक तलवारों की झंकार सुन कुमार शार्दूल दौड़ता हुआ पिता के सहायतार्थ आ पहुँचा। अब तक सभी दूदावत मारे जा चुके थे। श्यामलसी भी आहत होकर गिर पड़ा था। विपक्षी-दल के भी सिर्फ २३ सैनिक बचे थे। शार्दूल ने पहुँचते ही पाँच सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया और शेष शत्रुओं से प्राण-पण से लोहा लेने लगा।

इतने में ही, कुछ राजपूत सैनिक निजामशाही झंडा लिए उधर से गुजरे। एक एकाकी बालक को यों मुगलों से युद्ध करते देख वे उसकी सहायता को बढ़े—मुगलों को मैदान छोड़ भागना पड़ा।

मृतकों का अंतिम संस्कार कर, शार्दूल की सहायता से आहत श्यामलसी को वे राजपूत सैनिक उसके निवासस्थान पर ले आये। तीन दिनों बाद सन्ध्या-स्नान करने पर शार्दूल ने पिता को अपने मददगारों का परिचय दिया—'सिरोही के महाराज-कुमार अमरा बीजावत और उनके बहनोई शम्भुसिंह कृष्णोत पवार!"

कृतज्ञता-प्रदर्शन-स्वरूप श्यामलसी की आँखें छलछला आयीं। उसने शार्दूल का हाथ अमरा बीजावत के हाथों में देते हुए मानो उसे अपने संरक्षण में लेने की प्रार्थना की और फिर अपनी आँखें अपने पुत्र पर गड़ा दीं। इन आँखों में चिंता की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर थी।

कुमार शार्दूल अपने पिता की चिंता का कारण समझ गया। तत्काल सोच उसने प्रतिज्ञा की—"मृत्यु-पर्यंत मुगलों और बीजावतों से युद्ध करूँगा। पल भर भी उन्हें चैन से बैठने दूँ, तो मुझ पर लानत है!"

श्यामलसी के होंठों पर संतोष की मुस्कान खिल उठी और ३३ वर्षों तक मुगलों व बीजावतों की नींद हराम करने के बाद, सम्वत् १६७४ में इतिहास के इस अमर व्यक्तित्व ने चिर निद्रा की गोद में विश्राम ले लिया!

★

कमरे में घुसते ही अमूल्य ने साबुन का एक डिब्बा तथा स्नो की शीशी पत्नी की ओर बढ़ा दी—"यह लो।"

रेणु ने उन्हें लेने के लिए हाथ बढ़ाया, परन्तु तत्काल ही सहम कर पीछे हट गयी—मानो किसी सर्प का स्पर्श करते करते बची हो! पति के चेहरे पर तीक्ष्ण दृष्टि गड़ा कर उसने कहा—"आज फिर तुम इन चीजों को ले आये?"

अमूल्य को एक बार घबरा-सा लगा, किन्तु उसने स्वयं पर काबू पा लिया। क्रोध-मिश्रित व्यंग्य से बोला—"तो तुम इन्हें मेरे हाथ से नहीं लोगी?"

रेणु जबरन मुस्करायी—"अगर तुम इन्हें आसानी से घर ला सकते हो, तो मुझे इन्हें लेने में भला क्या आपत्ति हो सकती है?"

उसने उन्हें लेकर एक तिपायी पर रख दिया। अमूल्य की गम्भीरता में कोई अन्तर नहीं आया—"तुम इन्हें प्रसन्नता से स्वीकार क्यों नहीं करतीं—जब तुम्हें मालूम है कि, एक-न-एक दिन तुम्हें भी यही करना होगा? यों व्यर्थ ढोंग रचने की क्या आवश्यकता है? और ...." अमूल्य क्षणभर रुका—"इन्हें मैं नकद पैसे देकर लाया हूँ बाजार से।"

रेणु की आँखें छलछला आयीं। पति से उन्हें छिपाते हुए एक फीकी हँसी के बीच बोली—"कम-से-कम मुझसे तो झूठ मत बोलो मेरे भगवान के लिए!"

अमूल्य भभक उठा—"ओफ-ओह! तुम तो मानो इस धरा पर सचाई की देवी बन कर ही आयी हो!"

रेणु सचमुच ही हँस पड़ी—"क्या सिर्फ देवी के सामने ही सच बोलना चाहिए?"

अमूल्य अपना क्रोध भूल पत्नी की ओर क्षणभर तक निहारता ही रह गया—मुग्ध भाव से! कितनी सुंदर लगती है रेणु! काश, यह कोरी नीतिवादिता की ही पुजारिन नहीं होती!

रेणु ने आँखें झुका लीं। फिर धीरे से पलकें उठा कर कोमल स्वर में बोली—"मैं तो तुम्हारे भले के लिए ही कहती हूँ! तुम समझने की चेष्टा क्यों नहीं करते? किसी दिन चोरी करते समय पकड़ लिये गये, तो? क्या स्थिति होगी तुम्हारी? यह मान-मर्यादा और कुलीनता—क्या होगा इनका उस वक्त?"

पूर्ण आत्मविश्वास के साथ मानो अमूल्य ने कहा—"कच्चा खिलाड़ी तो हूँ नहीं और पेशा मेरे लिए नया भी नहीं है।"

कितना निलज्ज है अमूल्य! रेणु को लगा कि, वह मर जाये, तो अच्छा है। शादी के कुछ ही दिनों बाद की घटना है। रेणु और अमूल्य 'ईडन-गार्डेन' जा रहे थे। अमूल्य बिना रुके इधर-उधर की बातें कर रहा था। ट्राम-कंडक्टर ने जब टिकिट माँगा, तो अमूल्य ने मानो सुना ही नहीं। वह उसी प्रकार रेणु से बातें करता रहा।

कंडक्टर ने कहा–"टिकिट 'प्लीज'।"

फिर भी अमूल्य ने ध्यान नहीं दिया। बिना उसकी ओर देखे सिर हिलाकर मानो जता दिया कि, उसके पास टिकिट है।

कंडक्टर आगे बढ़ गया। रेणु को लगा, वह मुस्करा रहा था–शायद अमूल्य की चाल वह भाँप गया था। रेणु के सिर-से-पैर तक सिहरन-सी दौड़ गयी। अनजाने ही अपराधिनी की भाँति उसने आँखें नीचे की ओर गड़ा दी! अमूल्य–उसका पति–एक सम्भ्रान्त व्यक्ति–सिर्फ दो आने के लिए यों झूठ का आश्रय ले सकता है!

ट्राम से उतरते ही उसने पति से पूछा– "तुमने टिकिट क्यों नहीं लिया?"

अमूल्य मुस्कराया–"तुमने शायद देखा नहीं। अगर टिकिट लेना ही पड़े, तो 'फर्स्ट-क्लास' में चलने से लाभ ही क्या है?"

रेणु पति की ओर अवाक् देखती रह गयी। अमूल्य उसी प्रकार मुस्कराता रहा– "मैं अकेला होता हूँ, तो कभी टिकिट नहीं खरीदता और आज जब हम दो हैं, तब टिकिट खरीदने का प्रश्न ही नहीं उठता।"

घृणा से सिहर कर रेणु ने चाहा कि, मुँह दूसरी ओर कर ले, किन्तु तभी अमूल्य उसकी आँखों में-आँखें डालता हुआ कोमल स्वर में बोला–"अगर यों पैसा न बचाया जाये, तो काम कैसे चलेगा?"

रेणु ने सन्तोष की साँस ली– अमूल्य महज मजाक कर रहा था! लेकिन घर वापस आते समय भी जब अमूल्य ने कंडक्टर के टिकिट माँगने पर उसी प्रकार सिर हिला दिया, तो रेणु घबड़ा गयी। भाग्य से ही पहले वाला कंडक्टर नहीं था। अगर वही होता, तो कितना अपमान सहना पड़ता! इतने लोगों की मौन लाछना से क्या वह मर न जाती!

घर पहुँचते ही रेणु उबल पड़ी–"मुझे तुम्हारी ये आदतें अच्छी नहीं लगतीं।"

"कैसी आदतें?"

"थोड़े-से पैसे के लिए यों झूठ बोलना!"

अमूल्य बीच में ही बात काट कर हँस पड़ा–"अरे! तुम सचमुच ही मुझे ऐसा समझ बैठीं? कितनी भोली हो तुम!"

किन्तु इस बार रेणु इस भुलावे में न आयी। आवेश में बोली–"तुम्हें शर्म नहीं आती? सिर्फ दो आने पैसे के लिए..."

अमूल्य ने हँसना बंद कर दिया। बड़े इतमीनान से सिगरेट सुलगाते हुए बोला– "दो आने ही क्यों? दो आने और दो आने, कुल चार आने हो गये। इनसे तो मैं एक पैकेट सिगरेट खरीद सकता हूँ।"

अमूल्य की इस निर्लज्जता पर रेणु हतवाक् खड़ी रह गयी। कहने को शेष रहा भी क्या था अब? . .

सवेरा होते ही अमूल्य ने रेणु को बुलाकर आहिस्ते से पूछा—"ऊपरवाले किरायेदार कल कुछ नये बर्तन लाये हैं न?"

रेणु ने सहज भाव से उत्तर दिया—"लाये तो हैं, क्यों?"

"तुम विनोद बाबू की पत्नी की सहेली भी हो और जब चाहो, तब वहाँ आ-जा सकती हो।"

"हाँ, हाँ।" रेणु सहज भाव से ही बोल रही थी—"वह मुझे बहुत मानती है और उसका लड़का तो बिना मेरे और किसी के हाथों से खाना ही नहीं। लेकिन तुम यह सब क्यों पूछ रहे हो?"

अमूल्य ने तब फुसफुसाते हुए कहा—"यह तो और भी अच्छा है। बच्चे को खाना खिला कर तुम साड़ी के पल्ले में प्याला आसानी से दबा कर ले आ सकती हो।"

अनजाने ही रेणु सहम कर दो कदम पीछे हट आयी। अमूल्य को उसने अब तक पहचाना नहीं हो यह बात नहीं। बहुधा वह सोचा करती थी—"एक सम्भ्रान्त और कुलीन घराने में पलकर भी अमूल्य के संस्कार इतने हीन क्यों हैं?" और, तत्काल उसकी आँखों में आँसू भी आ जाते—"यही व्यक्ति उसका पति है! ऐसे व्यक्ति के साथ उसे अपना जीवन बिताना होगा!"

किन्तु फिर भी रेणु ने कभी यह सोचा तक नहीं था कि, अमूल्य यों उससे चोरी करने का प्रस्ताव रखेगा—अपने साथ ही वह उसे भी पतन के गर्त में घसीट कर ले जाने की चेष्टा करेगा।

पति की ओर देखते हुए वह क्रुद्ध भाव से बोली—"कैसे आदमी हो तुम जी! अपने साथ ही मुझे भी ले डूबना चाहते हो? तुममें जरा-सी भी लज्जा नहीं है क्या?"

अमूल्य ने निस्संकोच कहा—"बिलकुल नहीं! तुम जानती हो आजकल पीतल का क्या भाव है? अगर तुम दो-तीन बर्तन विनोद बाबू के घर से ले आओ, तो हम-कम-से-कम दो बार 'बाक्स' में बैठ कर थियेटर देख सकते हैं—होटलों में बढ़िया-से-बढ़िया खाना खा सकते हैं।"

रेणु झल्ला पड़ी—"मुझे नहीं चाहिए होटलों का बढ़िया खाना। और, मैं तुमसे स्पष्ट कह देती हूँ कि, तुम्हारे इस प्रकार के नीच कामों में मैं कभी कोई सहायता नहीं कर सकती—समझे?"

००० ००० ०००

सुबह के आठ बज जाने पर भी जब अमूल्य ने बिस्तर नहीं छोड़ा, तो रेणु आशंकित हो उठी—बात क्या है? अमूल्य जिस दूकान में काम करता है, वह तो साढ़े सात बजे ही खुल जाती है।

उसके निकट आकर बोली—"कितनी देर सोते रहोगे? काम पर नहीं जाना है क्या?"

अमूल्य ने हँसने का प्रयास किया—"आज वहाँ जाने की इच्छा नहीं हो रही है।"

अमूल्य के बोलने और हँसने के ढंग से रेणु घबड़ा गयी—"बात क्या है जी? जी तो खराब नहीं है तुम्हारा? साफ-साफ क्यों नहीं कहते? दूकान बंद है क्या?... लेकिन दूकान बंद भी क्यों होगी?"

अमूल्य अनायास ही नाराज हो उठा– "कैसी मूर्ख औरत है! साफ-साफ जानना चाहती हो? तो सुनो, आज मेरा श्राद्ध है!"

"हूँ!" उसके मुँह पर नजर गड़ाये ही रेणु ने एक उच्छ्वास के साथ कहा–'मै जानती थी– एक-न एक दिन तो यह होने ही वाला था!"

"क्या कहा तुमने?"

"और क्या कहूँगी!' रेणु ने अविचल भाव से कहा–" भाग्य अच्छा था, जो उन लोगो ने तुम्हें जेल नही भेज दिया।'

अमूल्य के तन-बदन में आग-सी लग गयी। उठ-कर बैठता हुआ बोला– "ओफ-ओह! कितना दुख है तुम्हे इसका! मं जेल में होता, तो तुम्हे अच्छे लोगो के साथ नयी जिंदगी बिताने का अच्छा-भला अवसर मिल जाता–क्यो?"

पुण्यमयी
[ चित्र . सुधीर खास्तगीर ]

पति से इतने बड़े लाछन की रेणु ने कभी कल्पना भी नही की थी और अमूल्य इसे कितने सहज भाव से कह गया! बड़ी मुश्किल से आँसुओ को छलकने से रोकने का प्रयास करती हुई रेणु वहाँ से जाने लगी।

अमूल्य एकटक उसकी ओर देख रहा था। एक-ब-एक उसका सारा गोप जाता रहा। खीच कर रेणु को उसने बाहुपाश म आबद्ध कर लिया। रेणु फफक फफक कर रो पडी।

कुछ देर बाद, उसी प्रकार अमूल्य के वक्ष में अपना मुँह छिपाये रेणु बोली– "तुमने एसा किया ही क्या था, जो उन लोगों ने तुम्हे निकाल दिया?"

अमूल्य को लगा–रेणु के स्वर में जैसे उसके मालिक के प्रति शिकायत भरी हो। आश्चर्य-चकित-सा हो क्षणभर तक रेणु की ओर देखते रहने के बाद बोला– "विश्वास रखो रेणु, मेरा कोई दोष नहीं था। वह खजाची है न, सारी आग उसी की लगायी हुई है। मै उसकी पत्नी के लिए पाउडर का डिब्बा चुरा कर नही ला सका, इसी से वह मुझसे नाराज था।"

रेणु ने आज पहली बार पति के एक-एक शब्द में विश्वास कर लिया। कटु स्वर में बोली–"कैसी दुनिया है यह! हर आदमी अपने-आपको ईमानदार ही दर्शाना चाहता है यहाँ!"

००० ००० ०००

अमूल्य नयी नौकरी के लिए जी-तोड कोशिश कर रहा था। रेणु उसे धीरज बँधाती–"व्यर्थ क्यो दिल छोटा करते हो? आजकल नौकरी की कोई कमी थोड़े ही है। आज नही, तो कल मिल ही जायेगी।"

किन्तु उसकी इस भविष्यवाणी के कुछ दिन बाद ही, घर का सामान कम होने लगा। चावल ही नहीं, राशन की दूसरी चीजों में भी कमी आ गयी।

और, एक दिन रेणु ने रुकते-रुकते कह ही दिया–"इस तरह अब कैसे चलेगा? आजीविका के लिए, कुछ-न-कुछ तो करना ही होगा हमें!"

"ठीक कहती हो तुम!" अमूल्य ने एक दीर्घ निश्वास ली–"कुछ-न-कुछ करना ही होगा अब!"

और, दो-तीन दिनों के बाद एक रोज शाम को जब थका-माँदा, अमूल्य घर आया, तो उसकी मुट्ठी में एक कीमती फाउंटेनपेन दबी हुई थी।

रेणु ने फाउंटनपेन की ओर देखा, फिर अपने पति की ओर। अमूल्य प्रति क्षण किसी घटना की आशंका कर रहा था; मगर रेणु शांत थी। वह उसी प्रकार निर्विकार भाव से घर का काम करती रही।

किन्तु रात्रि के शांत अंधकार में रेणु बिलकुल ही बदल गयी। पति के वक्ष पर सिर रख कर फूट-फूट कर रोने लगी। अमूल्य चुपचाप उसके बालों में उँगलियाँ फिराता रहा। थोड़ी देर बाद रेणु स्वयं ही बोली– "तुम कुछ भी कहो, मेरा शरीर काँप रहा है। हौसला होना अच्छा है, परन्तु उसकी भी तो कोई सीमा होनी चाहिए।"

उसके सिर पर हाथ फिराते हुए अमूल्य ने स्नेहपूर्वक कहा–"कैसी बातें करती हो! अगर मुझमें यह हौसला नहीं होता, तो हमें आज भूखों मरना पड़ता। यों हौसला हारने से तो जीना मुश्किल हो जाय। और, फिर तुम्हें तो कितने ही ऐसे मौके मिलने हैं!"

रेणु ने कुछ नहीं कहा, किन्तु उसके होंठ काँप रहे थे और वह सारे शरीर में विचित्र-सी सिहरन अनुभव कर रही थी।

दो-तीन दिन इसी तरह निकल गये। और, एक दिन वह मौका भी रेणु के सामने आ गया, जिसके बारे में अमूल्य ने कहा था। किन्तु जाने क्यों, रेणु सारे समय व्यर्थ ही डरती-सी रही!

दीवार के एक कोने में खूँटी पर विनोद बाबू की कलाई-घड़ी लटक रही थी। विनोद बाबू भुलक्कड़ स्वभाव के थे और दफ्तर रवाना होते समय कभी घड़ी, तो कभी बटुआ निश्चय ही घर पर भूल जाते थे।

विनोद बाबू की पत्नी सो रही थी। रेणु ने बच्चे को खिलाकर उसकी माँ के पास सुला दिया। चारों ओर शांति थी। सिर्फ घड़ी की 'टिक-टिक' मानो सारे कमरे में गूँज रही थी। पर वह घड़ी की आवाज थी या उसके हृदय की धड़कन–रेणु कुछ तय नहीं कर पायी। वह चुपचाप लौट जाना चाहती थी, लेकिन उसके पैर जैसे कमरे की फर्श पर चिपक गये हों!

आधे घंटे के बाद जब रेणु वापस अपने कमरे में आयी, तो उसने अनुभव किया, वह जोरों से हाँफ रही थी। एक बार उसने अपनी बँधी मुट्ठी खोल कर देखा और फिर झपाटे से उसे बंद कर लिया।

शाम को अमूल्य का फीका चेहरा यह बताने को पर्याप्त था कि, आज उसे सफलता नहीं मिली है। परन्तु रेणु का मुँह देखकर तो वह आश्चर्य में पड़ गया।

"क्या बात है? तुम तो बड़ी खुश नजर आ रही हो!"

रेणु ने दरवाजे की साकल लगा दी। फिर पति के अत्यन्त निकट आकर बोली–'मुझसे ईर्ष्या क्यों करते हो? सुनोगे, तो तुम भी खुश हो जाओगे।

लेकिन अमूल्य खुश होने के स्थान पर क्षुब्ध हो उठा–"साफ-साफ क्यों नहीं कहती हो? पहेलियाँ सुलझाने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है।'

रेणु मुस्करा पड़ी–"अपना दायाँ हाथ इधर बढ़ाओ तो।"

"क्यों?"

"ओह! बढ़ाओ न।' और, रेणु ने स्वयं उसका दायाँ हाथ अपनी ओर खींच लिया। फिर ब्लाउज से घड़ी निकाल कर उसकी कलाई में बाँधती हुई बोली–"कितनी अच्छी लगती है!"

अमूल्य तो हतबुद्धि हो गया –"हे ईश्वर! कहाँ से ले आयी तुम इसे?"

रहस्य-पूर्ण हँसी के बीच बोली रेणु–"तुम्हें चिंता करने की जरूरत नहीं है। सिर्फ इतना ही कह दो कि, घड़ी पसंद आयी या नहीं तुम्हें?'

कुछ जवाब देने के पहले ही अमूल्य ने स्वयं को रेणु के प्रगाढ़ आलिंगन में पाया। आज रेणु सकोच, लज्जा और हिचक से बहुत दूर थी। इन सबका बाँध बिलकुल तोड़ चुकी थी वह।

"चुप क्यों हो?' वह कुछ मान के स्वर में बोली–'बताओ न, अच्छी लगी या नहीं?"

कोई कारण नहीं था कि, अमूल्य को घड़ी अच्छी न लगे – वह प्रसन्न न हो! रेणु आज सही मानों में उसकी सहधर्मिणी बन गयी थी। क्या अमूल्य इतने दिनों से पत्नी के इसी रूप-परिवर्तन की प्रतीक्षा नहीं कर रहा था? आज का दिन तो उसके जीवन का सबसे शुभ दिन था!

किन्तु जाने क्यों, अमूल्य को प्रसन्नता नहीं हो रही थी –उसकी गर्व-भावना उसका साथ नहीं दे रही थी और रेणु की मृणाल बाहुओं का चिर-परिचित मृदु-बंधन उसे मानो पूर्णतया अपरिचित, कठोर लौह बंधन-सदृश्य प्रतीत हो रहा था!

★

प्रसिद्ध वैज्ञानिक टामस एडिसन की स्मरणशक्ति बहुत कमजोर थी। बहुत शीघ्र ही वे किसी बात को भूल जाते थे। एक दिन, जब वे कोई समस्या सुलझाने में व्यस्त थे, तभी उन्हें कर अदा करने कचहरी जाना पड़ा। लाइन में खड़े रहने के कुछ समय बाद जब उनकी बारी आयी, तो वे अपना नाम ही भूल गये! उनके पास खड़े दूसरे व्यक्ति ने उन्हें परेशान देख कर बतलाया कि, महाशय! आपका नाम टामस एडिसन है! —नारायण भक्त

✶

उस दिन मूसलाधार वर्षा हो रही थी। ऐसा लग रहा था, मानो कई दिनों की प्यासी धरती पर आज मेघराज की सम्पूर्ण कृपा हुई है। रात के दस बजे मेरी पत्नी, निर्मला गरमागरम काफी ले आयी, जिसकी चुस्कियाँ लेकर मैं अपने-आपको धन्य समझ रहा था। एकाएक दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी। बाहर मेरे एक मित्र, दामू अण्णा और उनके पीछे गोद में बालक लिये एक स्त्री खड़ी थी। मैंने उन्हें भीतर आने के लिए कहा।

उस स्त्री के एक हाथ में छाता था, फिर भी वह काफी भीग गयी थी। छाता शायद फटा और पुराना था। साड़ी भी उसकी मैली और फटी थी, लेकिन उसके भीतर से उसका सौंदर्य ऐसा झलक रहा था, मानो काले मेघों में कभी-कभी प्रकाश की किरण फूट पड़ती है। दामू अण्णा ने बताया कि, वह काम की तलाश में आयी है और भोजन भी अच्छा बनाती है।

हमारी पुरानी रसोइन कई दिनों से लापता थी और हम एक अच्छे खाना बनाने-वाले की तलाश में ही थे। घर-बैठे रसोइन पा कर मुझे तो प्रसन्नता ही हुई; लेकिन निर्मला उसे कुछ देर बड़े गौर से देखती रही। उसकी माँग में सिंदूर लगा देख कर निर्मला ने पूछा–"तुम्हारे पति कहाँ रहते हैं?"

इस प्रश्न के पूछे जाने पर उस स्त्री के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। मैंने सोचा कि, शायद उसका पति शराबी हो या बदमाश हो और वह बेचारी अपने पेट की ज्वाला को शांत करने अपने बच्चे को लेकर नौकरी करने चली आयी है। किसी के घाव हरे करने का हमें क्या अधिकार है? मनुष्य अपने कष्टों को छिपाने में भी एक प्रकार के संतोष का अनुभव करता है।

निर्मला ने फिर पूछा–"बहन, तुम्हारा नाम क्या है? कहाँ रहती हो?" उत्तर में उसने बताया कि, उसे नर्मदा कहते हैं। उसका पीहर और ससुराल दोनों कोंकण में है। वृद्धा माता के सिवा उसका और कोई नहीं और पति पागल हो गये हैं। आखिरी बात उसने अत्यंत कष्ट और व्यथा के साथ कही। उसने यह भी बताया कि, उसका बच्चा पंगु है और तीन साल का होने पर भी आकार में छोटा दिखायी पड़ता है। उसकी शरीर-वृद्धि रुक गयी है।

मेरी पत्नी नर्मदा के कष्ट से ममाहत हुई कि नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता; लेकिन दया का भाव उसके चेहरे पर स्पष्ट

दृष्टिगोचर हुआ। फिर भी जरा रूखे स्वर में उसने कहा—"इस बच्चे को तुम यदि अपनी माँ के पास छोड़ आती, तो नौकरी मिलने में तुम्हें अधिक कठिनाई नहीं होती।"

"यह तो ठीक है, परन्तु यह मेरे बिना रह नहीं सकता।" नर्मदा का मातृ-हृदय पुकार उठा—"यह एक प्रकार से पंगु है। जहाँ बैठा देती हूँ, वहीं पड़ा रहता है। लेकिन इसके कारण आपके काम में कोई त्रुटि नहीं होगी।"

मेरे समझाने पर मेरी पत्नी नर्मदा को रखने पर राजी हो गयी। नर्मदा ने घर का सारा काम सँभाल लिया और रसोई तो यह इतनी बढ़िया बनाती कि, रूखे-से-रूखे स्वभाव का व्यक्ति भी प्रसन्न हुए बिना न रहता। अपने अपंग बच्चे को एक ओर सुला कर वह बड़ी शांति और धैर्य के साथ जी-तोड़ परिश्रम करती। बीच-बीच में वह उसे सस्नेह देख लेती और 'मेरा बच्चा-मेरा मुन्ना' कह कर अपने मन को संतोष दे देती। उस बालक के लिए प्यार के ये दो-चार शब्द ही खेल के साधन थे। अपनी गर्दन को हिलाने-डुलाने के अतिरिक्त वह कुछ भी नहीं कर सकता था।

पटे आँचल में
[ चित्र : या मि नी रा य ]

मेरी बहुत इच्छा थी कि, उस बच्चे की योग्य चिकित्सा करायी जाये, लेकिन उस पर हजार-पंद्रह सौ रुपया खर्च करना मेरे बूते के बाहर था। निर्मला कभी इसके लिए सहमत नहीं होती। बल्कि वह तो उस बच्चे को लेकर हमेशा नर्मदा को खरी-खोटी सुनाती रहती—"यह अपने बच्चे को चोरी-चोरी दूध पिलाती है—ठीक से काम नहीं कर पाती।" इत्यादि। मैंने सोचा था कि निर्मला ने स्वयं मुझसे ब्याह करने के पहले बाल-वैधव्य का कष्ट भोगा था इसलिए नर्मदा के प्रति उसे सहानुभूति होनी चाहिए। लेकिन वह तो मन ही उसको रख लेने के लिए व्यंग्य-वाक्य सुनाती।

नर्मदा के लिए वह पंगु बालक ही जीवन का सहारा था और उसी को लेकर दिन-रात उसे कटु वाक्य सुनने पड़ते। शायद इसीलिए या अन्य किसी कारणवश, उसने अपने बच्चे को कोंकण में अपनी माँ के पास छोड़ आना ही उचित समझा। छुट्टी लेकर वह चली गयी। मुझे इसके लिए अफसोस था, लेकिन साथ-साथ यह संतोष भी कि, अब उसे फटकार नहीं सहनी पड़ेगी। यह भय भी मुझे था कि, शायद वह लौट कर भी न आये।

लेकिन वह सातवें रोज ही वापस आ गयी। काम उसका पूर्ववत् चालू हो गया। निर्मला की बकझक भी बंद हो गयी, परन्तु नर्मदा सदा उदास रहने लगी। अपने बालक को 'घोंगा-लुच्चा' इत्यादि कह कर जो आनंद उसे मिलता था, वह खत्म हो गया। यंत्रवत् वह अपना कार्य किया करती, लेकिन जीवन में अब उसके कोई

उल्लास, कोई माधुर्य न था। केवल आठ-दस दिन में जब उसकी माँ का पत्र आता और वह यह सुनती कि, उसका बच्चा ठीक है, तो एक मुस्कान उसके म्लान चेहरे पर खिल जाती। रात में पूजा-घर में बैठ कर वह प्रार्थना करती— 'हे भगवान, मेरे बच्चे को चलने-फिरने की शक्ति दे। तू दीनानाथ है, इस पंगु बालक पर दया कर।' उसे किसी चमत्कार की प्रबल आशा थी।

चार-पाँच महीने इसी प्रकार बीत गये। एक दिन मुझे खबर मिली कि, मेरे एक बाल-मित्र, जो अब कांग्रेस के प्रमुख हो गये थे, हमारे शहर में आनेवाले हैं। उनके जलपान की व्यवस्था मैंने अपने यहाँ करने का निश्चय किया। पत्नी को भी यह राय बहुत पसंद आयी। उनके कहने पर मैंने शहर के दो-चार और प्रतिष्ठित लोगों को चाय-पार्टी में आने का निमंत्रण भेज दिया।

## जायके

जो लोग बहुत तेज नमक खाते हैं, उनकी बेनमकी का भी जवाब नहीं— जो लोग तेज मिर्च खाया करते हैं, इन्कलाब के बगैर उनको तसल्ली नहीं होती—जो लोग मिठाई पर गिरते हैं, उनकी जज्बातियत होलनाक होती है; मगर जो लोग हर जायके से निभा लेते हैं और अपना कोई जायका नहीं रखते, वे वजीरों की वकालत से इधर चले आये—उन्हें तो अमन के हवाले ही रखते!

—आसफ अली

सारी व्यवस्था ठीक ढंग पर हो गयी। नर्मदा की कार्य-दक्षता पर हमें भरोसा था। आशा तो हमें यहाँ तक थी कि उस दिन नर्मदा के हाथ के व्यंजन खाकर अतिथिगण हमारी पार्टी को जनम-भर याद करें। लेकिन पार्टी के पहले दिन नर्मदा की माँ की चिट्ठी आयी, जिसमें लिखा था कि, उसका बच्चा सख्त बीमार है। जीने की आशा बहुत कम है और वह फौरन चली आये। उस चिट्ठी को पढ़कर मैं तो हैरान रह गया। नर्मदा अगर उसी दिन चली जाती, तो हमारी पार्टी असफल हो जाती। मेरी पत्नी ने कहा— एक दिन बाद नर्मदा चली जायगी, तो क्या नुकसान होगा? बच्चा तो सदा बीमार रहता है—हमारी पार्टी तो केवल कल ही होगी।" उसकी राय को मान कर मैंने चिट्ठी अपने पास ही छिपा ली।

पार्टी हो गयी। भोजन की सभी ने मुक्त कंठ से सराहना की। शाम को वह पत्र मैंने नर्मदा को पढ़कर सुनाया। वह तो सन्न रह गयी। मेहमानों की खातिर, भागदौड़ में व्यस्त रहने से मैं वह पत्र उसे पहले नहीं सुना सका, इसके लिए मैंने क्षमा भी माँगी। लेकिन इस झूठ को बोलते समय मुझे एक गहरी आत्मवेदना हुई। बेचारी नर्मदा! उसके आँसू किसी प्रकार नहीं थम रहे थे।

मैंने उसे 'बस' तक स्वयं पहुँचाया और उसे सभी प्रकार का आश्वासन दिया। शीघ्र ही अपने बच्चे को लेकर वापस आने

का भी अनुरोध मैंने उससे किया। लेकिन वह लौटी नही। महीनों गुजर गये। उसे एक प्रकार से हम भूल ही गये थे कि, अचानक नर्मदा एक दिन दिखायी पडी। उसे देख कर ऐसा मालूम हुआ, मानो वह नर्मदा नही, नर्मदा का भूत हो–निस्तेज, निष्प्राण!

बाद में पत्नी ने मुझे बताया कि, नर्मदा का पति थाना-अस्पताल में आ गया था और इसीलिए उसे बम्बई आने की जरूरत पडी थी। वह फिर यही नौकरी करना चाहती थी। मैंने जिस दिन उसे 'बस' में बैठा कर विदा किया उसी दिन उसका बच्चा मर गया था। बालक ने अपनी माँ के विरह में तड़प-तड़प कर जान दे दी। यदि नर्मदा जिस दिन पत्र आया था, उसी दिन रवाना हो जाती, तो वह अपने बच्चे का मुँह देख सकती थी। लेकिन अब तो नर्मदा जीवन-भर अपने बच्चे की याद में तडपेगी।

युग-युगों-जैसे वर्ष बीत गये हैं, मगर मेरी स्मृति पर यह दृश्य अब भी वैसा ही हरा है–अब भी मेरे कानों में वह करुण चीत्कार तिरस्कृत विश्वात्मा के अट्टहास की भाँति कौंध जाती है–जब उस निरीह नर्मदा ने मुझसे चिट्ठी पढवा कर यह जाना था कि, उसका बच्चा मरणासन्न है!

★

## सफल सभा

### पहला अंक

पहला व्यक्ति—"हमारी यह हार्दिक इच्छा है कि अगली बार सभा में आपका भाषण अवश्य रखा जाये।"

दूसरा व्यक्ति—"पर क्या फायदा? लोग तो आते ही नहीं।"

प व्य—"नही, नही, इस बार बैंड-बाजे बजाकर खूब तमाशा करेंगे। 'पब्लिक' जरूर आयेगी।"

दू व्य—"पर मैं तो साढे पाँच बजे से पहले नहीं आ सकूँगा।"

प व्य—"कोई बात नही! तब तक हम बाजे बजाकर लोगो को रोक रखेंगे।"

(दोनों जाते हैं।)

### दूसरा अंक

प व्य—"फिर उस दिन आप क्यो नही पधारे? हमें तो आपकी प्रतीक्षा में सात बजे तक बाजे बजाने पडे।"

दू व्य—"आता कैसे? इतनी भीड थी कि, अंदर घुसना असम्भव हो गया।"

प व्य—"बस! यही तो सबसे अच्छा तरीका है सभा को सफल बनाने का!"

दोनों जाते हैं। (नाटक समाप्त)

—स्व रामनारायण वि पाठक के 'स्वैर विहार' (गुजराती) से साभार

★
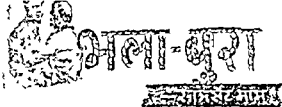
दफ्तर से छूटने के बाद हेनरी गारनेट प्रायः अपने क्लब को जाता, ब्रिज खेलता और फिर वहीं भोजन के लिए घर पहुँचता। उसके साथ खेलने में बड़ा आनंद आता था। वह बड़ा अच्छा खिलाड़ी था। उसे हारने का मलाल नहीं होता था और यदि जीत जाता, तो कहता—"यह दिमाग नहीं, तकदीर का खेल है।" यदि उसका साथी कभी कोई भूल कर देता, तो वह उसे दोष नहीं देता था, लेकिन उस दिन कुछ और ही बात थी। वह स्वयं गलत खेल रहा था। मित्रों ने कई तरह से यह जानने की चेष्टा की कि, आखिर इसकी वजह क्या है, लेकिन हेनरी कुछ बता ही नहीं रहा था।

खेल होता रहा। हेनरी से खेल में गलती होती रही। साथी के पूछने पर उसने कोई उत्तर नहीं दिया, उलटे उसका खेल और बिगड़ गया। खीझ कर मित्रों ने पत्ते पटक दिये—"तुम्हें क्या हो गया है, हेनरी? बेवकूफों की तरह क्यों खेल रहे हो?"

उसने हताश भाव से कहा— "आज सचमुच मुझसे नहीं खेला जाता।"

"लेकिन बात क्या है? हुआ क्या?"

"क्या हुआ?" हेनरी कटु स्वर में बोला— "क्या नहीं हुआ? और, यह सब निकी की वजह से है।... मैं तुम लोगों को सारी कहानी सुनाता हूँ।"

निकोलस हेनरी का इकलौता बेटा था। उसे सब 'निकी' कहते थे। हेनरी की दो लड़कियाँ भी थीं, पर वह अपने बेटे को ही सबसे अधिक प्यार करता था। बेटा था भी बहुत योग्य। पढ़ने में तेज, स्वस्थ और बालचाल में शिष्ट। चौदह वर्ष की उम्र से उसने टेनिस खेलना आरम्भ किया। सोलह वर्ष की उम्र में उसने कुछ 'कप' भी जीत लिये और अब तो वह अपने पिता को भी पराजित कर देता था। अठारह वर्ष का हो जाने पर निकी जब कैम्ब्रिज गया, तो हेनरी को बेटे से बड़ी-बड़ी आशाएँ लगीं कि, उसका बेटा किसी दिन 'डेविस-कप' में अपने देश का प्रतिनिधित्व करेगा।

टेनिस-जगत में हेनरी गारनेट का कई लोगों से परिचय था। एक दिन संध्या को उसकी मुलाकात कर्नल दैवाजोन से हुई। अचानक कर्नल ने कह दिया—"तुम अपने लड़के को 'मौंटी कार्लो' में खेलने के लिए क्यों नहीं भेज देते?"

"अभी तो वह इतना अच्छा खेलता नहीं—बड़े-बड़े खिलाड़ियों से कैसे खेलेगा? फिर उसकी पढ़ाई का भी हर्ज होगा और वहाँ उसकी देखभाल कौन करेगा—बच्चा

हाँ तो है अभी!"

"चिंता मत करो। मैं इंग्लैंड जा रहा हूँ। मैं उसकी देख-भाल करूँगा। केवल तीन दिन की ही तो बात है। फिर वह अब तक कभी विदेश गया भी नहीं।"

इसके आगे कोई बात नहीं हुई। हेनरी चुपचाप अपने घर लौट आया। जब उसने अपनी पत्नी से चर्चा की, तो पत्नी ने भी कर्नल की बात का समर्थन किया–"अब तो निकी १८ वर्ष का हो गया है।"

"लेकिन मैंने टेनिस खेलने के लिए उसे कैम्ब्रिज नहीं भेजा है।" हेनरी ने कुछ रूक्ष स्वर में कहा।

पत्नी चुप रही। पर दूसरे ही दिन उसने इसी बात के बारे में निकी को एक पत्र भेज दिया। दो दिन बाद हेनरी गारनेट को बेटे का पत्र मिला। मौंटी जाने के लिए बेटे ने खूब उत्साह दिखाया था। उसने यह भी लिखा था–उसे छुट्टी भी आसानी से मिल सकती है। हेनरी ने पढ़कर पत्नी के हाथ में दे दिया और कड़े स्वर में पूछ बैठा–"तुमने निकी को सारी बातें क्यों लिखीं?"

"मैंने साथ ही यह भी तो लिख दिया था कि, उसका जाना नहीं हो सकेगा।" पत्नी ने मानो सफाई दी।

"अब मैं कैसे उसे मना करूँ?"

पत्नी ने समझ लिया कि, उसने बाजी मार ली है। ठीक दो सप्ताह बाद निकी भी लंदन पहुँच गया। दूसरे दिन उसे मौंटी कार्लो के लिए प्रस्थान करना था। भोजन के बाद हेनरी ने बेटे से कहा – "जा तो रहे हो, पर तीन बातें याद रखना–जुआ मत खेलना, किसी को रुपया उधार मत देना और किसी औरत से मित्रता न करना।"

मौंटी कार्लो में निकी किसी प्रसिद्ध खिलाड़ी को पराजित न कर सका; पर वह इतना बुरा भी नहीं खेला। 'मिक्सड्-डबल' में तो वह 'सेमी-फाइनल' तक जा पहुँचा। सबको यह मानना पड़ा कि, वह एक होनहार खिलाड़ी है। कर्नल ब्रैबाजोन ने तो स्पष्ट कह दिया कि, अधिक अभ्यास से वह अवश्य ही अपने पिता की आशाएँ पूरी कर सकता है।

'टूर्नामेंट' समाप्त हो गया और दूसरे दिन उसे लंदन वापस जाना था। जाने से पहले उसने सोचा–क्यों न घूम-फिर कर मौंटी कार्लो के आनंद उठाये जायें!

रात्रि में सब खिलाड़ियों को एक प्रीति-भोज दिया गया। भोजन के बाद वह भी अन्य खिलाड़ियों के साथ 'स्पोर्टिंग-क्लब' में चला गया। वहाँ कुछ लोग स्लेट (एक प्रकार का जुआ) खेल रहे थे। चारों ओर भीड़ लगी थी। निकी आगे बढ़ गया।

इतने में निकी के किसी परिचित ने आकर पूछा–"तुम भी खेल रहे हो क्या?"

"नहीं तो!"

"पर बिना किस्मत आजमाये ही मौंटी से चले जाना बेवकूफी है। सौ फ्रैंक हार भी जाओ, तो क्या है?"

निकी का दोस्त तो यह कह कर चला गया; किन्तु निकी के विचारों की नींव ही हिला दी थी उसने। वह मेज के किनारे

पहुँच गया। जीतनेवालों को खूब रुपया मिल रहा था। निकी को अपने पिता के शब्द याद आये–'जुआ मत खेलना।' फिर भी उसने सौ फ्रैंक का एक नोट जेब से निकाला और १८ नम्बर पर रख दिया। उसने सोचा—मेरी आयु भी तो १८ वर्ष की है। पहिया घूमा और गेंद सचमुच नम्बर १८ पर गिरी। निकी अपनी आँखों पर विश्वास न कर सका। काँपते हुए हाथों से उसने कई नोट पकड़े। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। इतने में गेंद फिर १८ नम्बर पर रुकी। निकी को आश्चर्य हुआ। एक ने कह दिया–"तुम फिर जीत गये हो!"

"कैसे?"

"तुमने अपना सौ फ्रैंक का नोट जो नहीं उठाया? अरे, इतना भी नहीं जानते?"

नोटों का ढेर और बड़ा निकी के हाथ में पकड़ाया गया। उसका सिर चकरा गया। उसने नोट गिने–पूरे सात हजार फ्रैंक। निकी ने अपने-आपको बहुत ही चतुर समझ लिया–रुपये कमाने का इतना सरल ढंग! उसके चेहरे पर मुस्कान खिल गयी। उसने सिर उठाया, तो बगल में खड़ी हुई एक महिला से आँखें मिलीं। वह मुस्करायी, फिर बोली–

"बड़े भाग्यवान हो!"

"आज पहली बार खेला हूँ।"

"तभी तो कहती हूँ। अच्छा, मुझे एक हजार फ्रैंक उधार दे सकोगे? मैं तो सब-कुछ खो बैठी। आधे घंटे में वापस दे दूँगी।"

निकी ने हजार फ्रैंक दे दिये और–"अब ये तुम्हें कभी वापस नहीं मिल सकेंगे"–कहकर वह गायब हो गयी।

निकी चक्कर में पड़ गया। उसके पिता ने कहा था–'किसी को रुपया उधार मत देना।' क्या बेवकूफी कर दी? खैर, अभी छः हजार फ्रैंक तो हैं। थोड़ी किस्मत फिर आजमा लें। उसने १६ नम्बर पर नोट रखा, पर हार गया। फिर १२ नम्बर पर दूसरा नोट रखा, फिर भी हार गया। अरे, यह क्या हो गया? वह फिर खेला और इस बार जीत गया। एक घंटे बाद उसके पास बीस हजार फ्रैंक थे।

"लो, तुम्हारे एक हजार फ्रैंक–"वह महिला फिर आ गयी।

"अच्छा, मुझे तो कोई आशा नहीं थी।"

'तुमने मुझे क्या समझ लिया था जी? क्या मैं ऐसी-वैसी लगती हूँ?"

"नहीं तो!"

"मेरा पति मारासों में सरकारी नौकर है। उसके कहने पर ही मैं कुछ दिनों के लिए यहाँ आयी हूँ।"

निकी से कुछ न कहा गया। बोला–"मुझे अब जाना है। कल लंदन पहुँचूँगा।"

"अरे, तुम अभी 'निकर बाकर' में नहीं गये? लंदन जाने से पहले वहाँ चलो। भोजन करेंगे, फिर 'डांस' भी करेंगे।"

निकी को पुनः बाप की नसीहत याद आयी। पर उसने सोचा–यह तो अन्य औरतों से भिन्न दीखती है।

दोनों 'निकर बाकर' में पहुँचे। भोजन
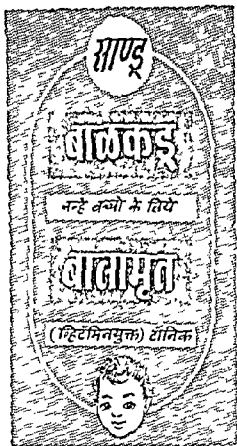
लिया, शराब पी और फिर साथ ही 'डांस' करने लगे। निकी ने बिल चुकाया। एक टैक्सी ली और उसे साथ लेकर उसके होटल छोड़ने गया। होटल में जब निकी उसके कमरे तक उसे पहुँचाने गया, तो वह उससे लिपट गयी और उसके होठों पर अपने उष्ण होंठ रख दिये।

क्षणभर के लिए निकी ने समझा कि, वह बेवकूफ बन रहा है। उसे अपने पिता के शब्द याद हो आये पर तुरन्त ही वह सब-कुछ भूल गया।

निकी बड़ी हलकी नींद सोता था। अचानक आँखें खुलने पर उसने देखा कि, स्नानागार का दरवाजा खुला था और वहाँ बिजली जल रही थी। कमरे में कोई बड़ी सावधानी से चल रहा था। यह तो वही थी। निकी की समझ में नहीं आया कि, वह क्या करने पर तुली है। निकी ने देखा कि, वह उसके कोट के पास पहुँचकर खड़ी हो गयी और कुछ देर तक चुपचाप वैसी ही खड़ी रही। निकी का दिल धड़कने लगा और उसने निकी की जेब से सब-के-सब नोट निकालकर कोट को यथास्थान रख दिया। निकी अधखुली आँखों से उसे देख रहा था। उसकी समझ में नहीं आया कि, वह क्या करे। वह उस पर झपट सकता था, लेकिन यदि उसने शोर किया तो?

उधर वह सोच रही थी कि, निकी सो रहा है। कुछ देर चुपचाप खड़ी रहने के बाद उसने वे नोट एक फूलदान में रख दिये और ऊपर से पूर्ववत् फूल लगा दिये। फिर वह धीरे-धीरे चारपाई की ओर बढ़ी और चुपचाप निकी की बगल में लेट गयी। बड़े प्यार से उसने निकी का चुम्बन लिया, पर निकी तो जैसे गहरी नींद में बेखबर पड़ा था।

निकी मन-ही-मन खीझ रहा था– "यह तो चोर है। खूब बेवकूफ बनाया मुझे!" वह उसे छिप-छिप कर देखता रहा और उसकी साँस से उसने पता कर लिया कि, वह सो रही है। "काम बना समझ कर खूब निश्चिन्त होकर सो रही होगी–" निकी को क्रोध हो आया –'यह इतने आराम से सो रही है और मुझ पर एहसान कर रही है।" वह काफी देर तक प्रतीक्षा करता रहा, पर वह हिली-डुली भी नहीं। निकी ने अंत में कहा–' डार्लिंग!'

कोई उत्तर नहीं मिला। वह गहरी निद्रा में अचेत थी। निकी उठा और दो-एक कदम चला। वह अभी सो रही थी। निकी ने चुपके से खिड़की के पास पहुँचकर देखा – वह फिर भी सो रही थी। बड़ी सावधानी से उसने फूलदान के फूल हटाये और फिर अंदर से सब नोट निकाल लिये। यह सब करते हुए भी वह एक आँख से उसे देख रहा था और वह सो रही थी– निश्चिन्त! निकी ने फूल पुनः गमले पर रख दिये। फिर अपने कपड़ों के पास पहुँचकर नोट उसने कोट की जेब में डाले और कपड़े पहनने शुरू किये। कोट पेंट पहनने और टाई बाँधने में उसे चौथाई घंटा लग गया। जूते उसने नहीं पहने, ताकि शोर होगा।

सोचा—कमरे से बाहर निकलकर पहन लूँगा। जूते हाथ में लेकर आहिस्ता-आहिस्ता दरवाजा खोलने लगा।

"कौन है?" दरवाजा खुलने के शब्द से वह जाग गयी थी। वह बिस्तर पर बैठ गयी।

निकी बोला—'बहुत देर हो गयी है। मुझे वापस जाना है। मैं कोशिश कर रहा था कि, तुम्हारी नींद न टूटे।'

वह पुनः लेट गयी। फिर बोली—"जान से पहले प्यार तो करते जाओ। तुम कितने अच्छे हो। अच्छा, विदा!"

निकी जब तक होटल से बाहर नहीं निकल गया, डरता रहा। सवेरा होने लगा था—निकी ने ताजी हवा में लम्बी साँस ली। वह प्रसन्न था। अपने होटल में पहुँचते ही उसने गरम पानी से स्नान किया। फिर कपड़े पहनकर और सामान बाँधकर उसने जेब से सब नोट निकाल कर देखे। पूरे २६ हजार फ्रैंक थे। निकी को आश्चर्य हुआ—छ हजार अधिक कहाँ से आ गये? वह कुछ क्षणों तक समझ न पाया, पर फिर उसने जान लिया कि, छ हजार फ्रैंक पहले से ही रहे होंगे। निकी को बड़े जोर की हँसी आ गयी।

घर लौटने पर निकी ने अपनी कहानी सबको सुना दी थी। हेनरी गारलेंट ने वही कहानी क्लब में अपने मित्रों को सुना दी और गम्भीर होकर कहने लगा—"फिर बात तो यह है कि, वह अपने-आप पर बहुत खुश है। जानते हो, उसने मुझसे क्या कहा? उसने कहा—'पिताजी! जो नसीहत आपने मुझे दी थी, उसमें अवश्य ही कोई दोष होगा। आपने कहा—जुआ मत खेलना—मैंने खेला और पैसे बनाये। आपने कहा—किसी को रुपया उधार मत देना और मैंने दिया। लेकिन रुपये फिर वापस मिल गये। आपने कहा—किसी औरत से मैत्री मत करना। मैंने मैत्री की और छ हजार फ्रैंक भी बनाये।'"

सुनकर हेनरी गारलेंट के तीनों साथी ठहाका मारकर हँसने लगे।

"तुम हँस रहे हो?" हेनरी कटु स्वर में बोला—"पर मेरी तो हालत अजीब हो गयी है। पहले जो-कुछ मैं कहता था, वह उसे परमेश्वर का वाक्य समझ लेता था। अब वह मुझे बेवकूफ समझता है। और, यह तो तुम सब मानोगे कि, मेरी नसीहतें गलत नहीं थी?"

वह कुछ क्षणों तक मित्रों की ओर देखता रहा, फिर कहने लगा—"ठीक है न? तो फिर हँस क्यों रहे हो? बताओ, मेरे स्थान पर तुम लोग होते, तो क्या करते?"

मित्रों की हँसी रुक गयी—किसी से कोई उत्तर न बन पड़ा। सिर्फ हेनरी के वकील दोस्त ने पाइप से लम्बे-लम्बे कश खींचते हुए काफी देर बाद निस्तब्धता भंग की—"हेनरी! अगर मैं तुम्हारी जगह होता, तो कोई परवाह न करता इसकी। मैं तो यह जानता हूँ कि, तुम्हारा लड़का किस्मत लेकर आया है और इस दुनिया में जीवित रहने के लिए बुद्धिमान होने की अपेक्षा भाग्यवान होना कहीं अधिक अच्छा है!"

# पार्थिव का सपना

[कल्कि-लिखित ऐतिहासिक तमिल-उपन्यास का संक्षिप्त हिन्दी-रूपांतर]

स्व० रा० कृष्णमूर्ति 'कल्कि' तमिल-साहित्य के युगप्रवर्तक मनीषी थे। साहित्य एवं कला के सभी क्षेत्रों में उन्होंने नवोदय को अवतीर्ण किया था। राजाजी के शब्दों में वे 'तमिल-सरस्वती की सर्वोच्च ममता के अधिकारी' थे। उनके उपन्यास विश्व-कथा-साहित्य की अनमोल निधि हैं। 'नवनीत' के पाठकों के लाभार्थ यहाँ हम उनके एक सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'पार्तिबन कनवु' का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित कर रहे हैं—रूपांतरकार हैं तमिल और हिन्दी के मंजे हुए लेखक श्री रा० विस्सिनाथन।

कावेरी नदी के तीर पर शांति का साम्राज्य था। प्रात-सूर्य की सुनहरी किरणें नदी के लाल वक्ष पर स्वर्ण-रेखाएँ बिखेर रही थीं।

थोड़ी दूर पर बरगद के पेड़ के नीचे एक झोपड़ी में एक युवती जलपान तैयार कर रही थी और एक हट्टा-कट्टा युवक बैठा कुछ खा रहा था।

सहसा घोड़े की थाप सुनायी दी। युवक मानो एक विद्युत्-स्फूर्ति के आवेश में उठा और बाहर चला गया।

जब वापस आया, तो अपनी स्त्री से बोला—"वल्लि! मैं आज दोपहर को उरैयूर (चोल-देश की राजधानी) जा रहा हूँ।"

"क्या है वहाँ आज?"

"आज कांची (पल्लव-राजा की राजधानी) से कर वसूलने के लिए दूत आ रहे हैं। महाराज कर देने से इनकार करनेवाले हैं। इसलिए मुझे जरूर जाना है!" वल्लि के पति पोन्नन् ने कहा।

"मैं यहाँ अकेली कैसे पड़ी रहूँ? मैं भी अपने दादा को देखने तुम्हारे साथ चलूँगी।"

जब पोन्नन् और वल्लि नगरी में प्रविष्ट हुए, तब अस्ताचलगामी सूर्य अपनी स्वर्णिम किरणों से उरैयूर को स्वर्ण-स्नान करा रहा था। पोन्नन् ने जल्दी-जल्दी वल्लि को उसके दादा के घर पहुँचाया और महाराज से मिलने चल पड़ा। जाते समय वल्लि के वृद्ध दादा ने कहा—"महाराज से एकान्त में मिल पाओ, तो सचेत कर देना कि, वे मारप्प भूपति से जरा सावधान रहें।"

मारप्प भूपति राजा पार्थिव का सौतेला भाई था। वे उसकी बड़ी कदर करते थे—यहाँ तक कि, उसे अपनी सेना का सेनापति भी बना दिया था। फिर भी उसका हृदय साफ नहीं था। वह नहीं चाहता था कि, चोल-राजा पल्लवों के चंगुल से छुटकारा पाने के लिए युद्ध ठाने। स्वतंत्रता के पुजारी राजा पार्थिव को जब उसकी इस दुर्मति का पता लगा, तो उन्होंने उसे सेनापति के पद से हटा दिया।

००० ००० ०००

युद्ध के लिए कूच करने का समय जब आया, तो पार्थिव महाराज अपनी रानी अरुळ्मोळि से विदा लेने पूजा-गृह में पहुँचे। वहाँ पर लकड़ी का एक संदूकचा रखा था। महाराज ने उसे खोला, तो उसके अंदर चमाचम चमकती एक तलवार

और एक पोथी दिखायी दी।

महाराज ने कहा—"यह तलवार चोल-वंश की सुकीर्ति की निशानी है। उस जमाने में इसी तलवार के बल से राजा करिकाल वळवन् और नेडुमुडि किळ्ळि-जैसे महान् राजाओं ने राज-काज सँभाला था। इस पोथी में देव कवि 'तिरुवल्लुवर' की 'तिरुक्कुरळ' है। ये दोनों चोल-वंश की प्राचीनतम धरोहर हैं। इन्हें तुम सावधानी से सँभाल कर रखना और विक्रम के वयस्क होने पर उसे सौंप देना। अरुळ्मोळि! यह प्राचीनतम तलवार मेरे पिताजी ने धारण की थी, पर मैंने नहीं धारण की। कारण यही कि, करद राजा के रूप में मैं, उन महान् करिकाल वळवन् और नेडुमुडि किळ्ळि की इस अजेय पानीदार तलवार को नहीं धारण करना चाहता। विक्रम से यह भी बताना। जब वह—चप्पा-भर भूमि के लिए ही सही—स्वाधीन राजा बने, तभी इसे धारण करे और तमिल-वेद 'तिरुक्कुरळ' में कहे मुताबिक राज करे। मैं यह उत्तरदायित्व तुम पर छोड़ रहा हूँ। देव की इस सन्निधि में मुझे वचन दो कि, मैं अपने पुत्र को वीर विक्रम बनाऊँगी।"

अरुळ्मोळि उस समय की अतुलनीय सुंदरी और चेर-राज-कन्या थी। कांची के पल्लव-चक्रवर्ती महेंद्र तक ने युवराज नरसिंह के लिए इस कन्या की याचना की थी, पर अरुळ मोळि ने तो एक बार अपने मन में जो ठान लिया, सो ठान लिया।

उरैयूर की दक्षिणी राज-वीथि का चित्र-मंडप सारे दक्षिण में प्रसिद्ध था। कांचीपुरम् में महेंद्र चक्रवर्ती द्वारा निर्मित सुप्रसिद्ध चित्र-मंडप भी उस चित्र मंडप के सम्मुख हतश्री था।

महाराज पार्थिव और युवराज विक्रम दोनों चित्र-मंडप के सामने घोड़ों पर से उतरे। ठीक उसी समय पोन्नन् भी वहाँ आ पहुँचा। पोन्नन् ने हाथ में मशाल ली। तीनों चित्र-मंडप में प्रविष्ट हुए। तीन दालान पार करने के बाद राजा पार्थिव एक बंद कमरे के सामने जा खड़े हुए और विक्रम से बोले—"बेटा, तूने कई बार पूछा है कि, इस कमरे में क्या है? मैं चाहता था कि, कुछ और वर्षों के बाद तुझे ये चित्र दिखाऊँ। पर आज तो अभी दिखा देने की आवश्यकता पड़ गयी है। विक्रम! इस कमरे में मुझे छोड़ और कोई आज तक नहीं आया है।...हाँ, पोन्नन्! जरा यह मशाल ऊपर उठा तो।"

राजा की बातों में तन्मय पोन्नन् ने मशाल ऊपर उठायी।

"बेटा, उस पहले चित्र को देख और बता कि, क्या दिखायी देता है?"

"युद्ध के लिए सेना कूच कर रही है। अरे, कितनी बड़ी सेना है!" विक्रम आश्चर्यचकित हो रहा था।

"ये सभी चित्र स्वयं मैंने अपने हाथ से बनाये हैं। पिछले बारह वर्षों से दिन-रात सोते-जागते मैं जो सपने देखा करता था,

उन्हीं को मैंने यहाँ मूर्त रूप दिया है। बेटा, अच्छी तरह ध्यान लगाकर देख और बता कि, ये सेनाएँ किसकी हैं?"

"यह कौन-सी बड़ी बात है?" आगे-आगे लहराते हुए जानेवाली व्याघ्र-पताका स्वयं प्रकट कर रही है कि, ये चोल-देश की सेनाएँ हैं। लेकिन पिताजी ।" विक्रम जरा हिचका।

"क्या पूछना चाहता है, बेटा! निस्संकोच होकर पूछ!"

"राजसी ठाट से सजनेवाले उस हाथी के हौदे पर महावत को छोड़ और कोई नहीं बैठा है—यह क्यों पिताजी?"

"अच्छा प्रश्न किया तूने, बेटा! मैंने जानबूझकर हाथी का वह हौदा खाली छोड़ा है। हमारे इस चोल-वंश में जो पुरुष-पुंगव ऐसी विशाल विजय-वाहिनी के साथ दिग्विजय के लिए निकलेगा, उसी का चित्र इस रिक्त हौदे पर बनाना है। बेटा, अब तो यह चोल-राज्य अंजलि-भर भूमि का अधीन राज्य है। लेकिन पुरातन काल में तो यह ऐसा नहीं रहा। निकट अतीत में ही हमारे वंश की कीर्ति दिगन्तव्यापिनी थी। विक्रम! दुर्दैव-प्रताड़ित यह चोल-भूमि फिर वही महोन्नत दशा प्राप्त करे—मेरे मन की यही प्रज्ज्[illegible] शाप सा है! मेरी आँखों में दिन-रात यह [illegible]री सपना द्वंद्व मचाता रहता है।".....

चोल-रानी
[ चित्र १२ वीं सदी के शिल्प की रेखानुकृति ]

-२-

भाद्रपद की पूर्णिमा में 'वेण्णारु' नदी का तट हूलम्पी भयंकरता में आविष्ट था। दिन-भर के घोर युद्ध से वह भूमि लाशों से पटी थी। काल-रात्रि के इसी वीभत्स में, अतल शून्य का अपवाद बनी, कोई मानव-आकृति चापहीन कदमों से आगे बढ़ती नजर आयी। वह एक जटाजूटधारी सन्यासी थे—शिवयोगी—माथे पर विभूति, कंठ में रुद्राक्ष-माला, कमर पर गेरुआ वस्त्र व हृदय-प्रदेश पर व्याघ्र-चर्म! वे घूर-घूर कर लाशों को देखते और आगे बढ़ जाते। पार्थिव महाराज का शरीर देखकर वे हठात् बैठ गये। तत्क्षण राजा का सिर उन्होंने अपनी गोद में उठाया तथा अपने कमंडल से उनके क्षत-विक्षत चेहरे पर जल छिड़का।

महाराज की आँखें धीरे से खुलीं। अधखुली आँखों से ही उन्होंने क्षीण स्वर में पूछा—"कौन हैं आप?"

"चित्-अम्बर में नर्तन करते हुए सारे संसार को नचानेवाले सच्चिदानंद भगवान के दासों का दास हूँ मैं! पार्थिव! आज के युद्ध में सुना कि, तुमने आश्चर्य-जनक शौर्य दिखाया, तो तुम्हें देखने की लालसा हुई थी। इसी से चला आया!"

महाराज पार्थिव की आँखें हर्षोन्माद से मानो खिल-सी उठीं।

"पार्थिव! तुम जैसे नर-वीरों की सेवा करना मैं अपना परम कर्तव्य मानता हूँ। तुम्हारे मन में कोई अधूरी इच्छा हो, तो कहो, मैं उसे पूर्ण करने का प्रयत्न करूँगा।'

शिवयोगी की बातें सुनकर राजा पार्थिव ने कहा–"स्वामी! मेरा विक्रम वीर-पुत्र बने और चोल-वंश की उन्नति को ही अपना जीवन-लक्ष्य माने। उसे यह उपदेश मिले कि, प्राण बड़े नहीं हैं – सुख-चैन बड़ी चीज नहीं है। मान-रक्षा और शौर्य-पराक्रम ही अमूल्य निधि हैं। दूसरों के अधीन जीने को वह घृणा की आँखों से देखे। महाराज, मैं यही वर आपसे माँगता हूँ–प्रदान करेंगे?'

शिवयोगी ने शान्त स्वर में कहा–'राजन्, यदि जीवित रहा, तो तुम्हारी कामना पूरी करने की चेष्टा करूँगा।"

"महाराज, यह मेरा अहोभाग्य है! अब मेरे मन को कोई अपूर्ति नहीं रही। हाँ, आपने यह नहीं बताया कि, आप कौन हैं?" आपके वदन-चन्द्र पर ऐसी ज्योति फूट रही है कि "

वे वाक्य पूरा कर भी नहीं पाये थे कि, शिवयोगी ने जटा मुकुट हटाकर अपना असली रूप दिखाया। पार्थिव की आँखें विस्मय से जो खिलीं, सो खिली ही रह गयीं– बंद ही नहीं हुईं। . .

जटाजूटधारी शिवयोगी ने अपने वचन की रक्षा की। छ ही साल के अंदर युवराज विक्रम के हृदय में देश-प्रेम, स्वाभिमान एवं स्वातन्त्र्य-साधना का जो बीज उन्होंने बोया, वह जैसे वट-वृक्ष की चरितार्थता करने लगा। एक दिन शिवयोगी से विक्रम ने कहा–"महाराज, मुझे आशीर्वाद दीजिये। आगामी भादों की पूर्णिमा के दिन, त्रिचिरापल्ली के पहाड़ पर से पल्लवों की ध्वजा उतार कर, वहाँ मैं अपनी व्याघ्र-ध्वजा फहराने जा रहा हूँ।"

"मगर विक्रम, केवल पताका फहराना ही तो पर्याप्त नहीं है। उसकी रक्षा भी करनी है! उसकी भी तुमने कोई व्यवस्था की है, बेटा?"

"महाराज! चाचा मारण्प भूपति अब पहले-जैसे नहीं रहे। पूरे बदल गये हैं। चोल-देश की स्वतंत्रता के लिए वे अपने प्राण भी होम देंगे।"

पुरुष पुंगव राम
[ चित्र दक्षिण की एक शिल्प की रेखाकृति ]

सुनकर शिवयोगी मन-ही-मन मुसकराये।

—४—

कांची नगरी के राज-मार्ग से पल्लव-राजकुमारी कुंदवि पालकी पर जा रही थी। अचानक उसने देखा कि, अपूर्व राज-लक्षणों से युक्त एक तेजस्वी युवक को लोहे की जंजीरों से जकड़कर घोड़े की जीन से बाँधे पल्लव-सैनिक लिये जा रहे हैं।

ठीक उसी समय उस युवक ने भी राज-कुमारी की ओर देखा। बाल की यह अभिसंधि ऐसी वचना छोड गयी कि, राज-कुमारी आत्म-विह्वल हो उठी।

जब वह महल में पहुँची, तो सीधे अपने पिता के पास जाकर बोली–'पिताजी, मैंने देखा कि, हमारे सिपाही किसी राज-कुमार को साँकल से बाँध लिये जा रहे हैं। वह कौन है, पिताजी?'

"वही चोल-राजकुमार है बेटी, जिसने हमारे विरुद्ध कलह ठाना था। कोई जटा-जूटधारी शिवयोगी उससे और उसकी माता से बराबर मिलने आया करते हैं। पता चला है कि, उन्हीं के बहकावे में आकर विक्रम ने यह उत्पात मचाया है।'

"उरैयूर में युद्ध हुआ था, पिताजी?"

"नहीं री! युद्ध क्यों होता भला? नासमझ लड़का स्वयं ही धोखे में आ गया। उसके चाचा ने अपने मिथ्या वचनों से उसे ललचाया कि, मैं वहीं सेना लेकर तुम्हारी मदद के लिए आऊँगा। पर उस दिन आना तो दूर रहा, उल्टे उसने हमारे सेनापति को विक्रम के इरादे की गुप्त खबर भेज दी।"

रात-भर कुंदवि को नींद नहीं आयी। चोल-राजकुमार का म्लान-गर्वयुक्त मुख बार-बार उसके मन-पटल पर अंकित होता रहा। दूसरे दिन सबेरे उठते ही उसे यह खबर मिली कि, चक्रवर्ती नरसिंह वर्मा के सामने ही चोल-राजकुमार विक्रम ने कर देने से इनकार कर दिया है। इस धृष्टता का दंड यद्यपि मृत्यु है, फिर भी उसकी अवस्था का खयाल कर चक्रवर्ती ने काले पानी की सजा दी है।

कुंदवि को जरा सांत्वना हुई। फिर भी द्वीपांतर के लिए प्रस्थान करने के पहले विक्रम को वह एक बार आँख-भर देख लेना चाहती थी। तत्काल उसने पालकी मँगवायी और मामल्लपुरम् के बंदरगाह के लिए रवाना हो गयी। अंततः कुंदवि की इच्छा पूरी हुई। दोनों की आँखें निमिष-मात्र के लिए एक-दूसरे की आत्मा का पीयूष-पान करती रहीं–जन्म-जन्म का नाता मानो फिर जीवित हो गया!

००० ००० ०००

बारहवें दिन राजकुमार विक्रम चम्पक द्वीप पर उतारा गया। वह द्वीप किसी जमाने में चोल-वंशीय राजा के अधीन था। विक्रम को पाकर चम्पक द्वीप के लोग बड़े ही प्रसन्न हुए।

–५–

पल्लव-साम्राज्य के विरुद्ध जो षड्यंत्र रचा गया था, उसका न्याय-विचार करने के लिए चक्रवर्ती नरसिंह वर्मा अपनी लाडली बेटी कुंदवि के साथ उरैयूर पधारे थे। पोन्नन् और वल्लि भी राजा के सामने उपस्थित किये गये। चक्रवर्ती ने कड़कते स्वर में पूछा–"नाविक! सच-सच बता। हमारे साम्राज्य के विरुद्ध विक्रम को षड्यंत्र के लिए किसने उभाड़ा है?"

पोन्नन् ने निर्भयता से अपना सिर ऊँचा उठाया और कहा–"महाराज! आपके

सामने ये जो मारप्प भूपति खड़े हैं, इन्हीं ने!"

पोन्नन् का यह अभियोग सुना, तो मारप्प भूपति ऐसा तिलमिलाया, मानो दस हजार बिच्छुओं ने उस पर एक साथ ही डंक मार दिया हो!

"क्यों भूपति! तेरे पास इसका क्या उत्तर है?" महाराज ने आग्नेय नेत्रों से देखते हुए प्रश्न किया।

"प्रभु! विक्रम को इस दासानुदास ने नहीं—एक जटामुकुटधारी शिवयोगी ने उभाड़ा है। सत्य में, वे शिवयोगी नहीं हैं। शिवयोगी के वेष में कपटी षड्यंत्रकारी हैं। युवराज विक्रम और महारानी अरुळ्मोळि से उनकी भेंट होती रही है। षड्यंत्र का केंद्र इसी नाविक की कुटिया है!"

गुनकर वल्लि से चुप न रहा गया—"महाराज! इनका कहना झूठ है। शिवयोगी एक महान् आत्मा हैं! वे राग-द्वेष, माया मत्सर सबसे मुक्त हैं। हमारी महारानी अब तक जीवित हैं, तो उन्हीं की सांत्वना से। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि, उन्होंने युवराज को सदैव ही विद्रोही कृत्यों से रोका है। अतः उन पवित्रात्मा पर जो अभियोग लगाते हैं, वे स्वयं कपटी हैं—पापी हैं!"

महाराज ने कहा—"भूपति! तुम पर से मेरा संदेह रत्ती भर भी हटा नहीं। फिर भी इस बार तुम्हें क्षमा कर देता हूँ। सेनापति बनना चाहो, तो अपनी योग्यता का परिचय दो पहले!"

उसके बाद पोन्नन् की ओर दृष्टि तरेर कर महाराज ने कहा—"नाविक! अब तू भी अपनी स्त्री-सहित चला जा! हाँ, एक बात—अपनी स्त्री से कहना कि, जटाजूटधारी शिवयोगी महाराज के विषय में वह अधिक सावधानी बरते!"

—६—

उपर्युक्त प्रसंग से मारप्प भूपति का मन बहुत खिन्न हो गया। उसने पल्लव-साम्राज्य की श्री-वृद्धि के लिए क्या-क्या नहीं किया? सात साल पहले, पार्थिव महाराज ने पल्लवों के साथ जो युद्ध ठाना था, उसमें उसने पार्थिव का साथ नहीं दिया था। तदुपरांत विक्रम के षड्यंत्र को फोड़कर भी उसने पल्लव-साम्राज्य को आनेवाली विपत्ति से बचाया था।

यह सब क्यों किया था उसने? इसीलिए न कि, चोल-राज्य की गद्दी उसे ही मिले! पर चक्रवर्ती ने तो उसी के सिर दोष मढ़ना शुरू कर दिया है। इतना ही नहीं, एक नाविक और नाविक-पत्नी के सम्मुख, उसका अपमान भी कर दिया।

आशा निराशाओं के इसी ताने-बाने में उलझा अश्वारूढ़ भूपति जा रहा था कि, सामने से ही राज-परिवार की पालकी आती दृष्टिगोचर हुई। वह झट घोड़े से नीचे उतर पड़ा।

पालकी के अंदर से पल्लव-राजकुमारी ने कोमल स्वर में कहा—"भूपति! पिताजी ने आज तुम्हारे साथ जो कड़ा व्यवहार किया है, उसके लिए खिन्न नहीं होना। उस कपटी शिवयोगी को तुम किसी तरह

पकड़वा दो, तो पिताजी प्रसन्न हो जायेंगे।"

राजकुमारी के इन वचनों से मारप्प भूपति की आशाएँ फिर हरी हो गयीं। उसने भयभक्तिपूर्ण उत्साह के साथ कहा—"देवि! विश्वास करें, उस कपट-वेषधारी साधू को पकड़कर ही मैं दम लूँगा!"

००० ००० ०००

अर्ध निशा के घोर सन्नाटे में एक नाव कावेरी के प्रवाह में बहती जा रही थी। उसमें नाविक पोन्नन् और उसकी स्त्री वल्लि दोनों बैठे थे। 'एक भरोसो, एक बल, एक आस-विश्वास' वाला मारप्प भूपति ने उसे देख लिया और चुपके से पीछा करना शुरू कर दिया।

थोड़ी दूर जाने पर नाव खड़ी हुई और नाविक-दम्पति उसमें से उतरे। पास ही महल का पिछवाड़ा था। पोन्नन् ने चाबियों का एक गुच्छा निकालकर दरवाजा खोला और वल्लि के साथ अंदर चला गया।

मारप्प भूपति ने सोचा कि, हो-न-हो, आज कोई षड्यन्त्र होने जा रहा है। पोन्नन् और वल्लि इसीलिए इस समय वहाँ जा रहे हैं। निश्चय ही शिवयोगी भी वहीं रहेंगे। इस सदर्भ से लाभ उठाया जाये, तो तीनों पक्षी एक साथ फँस जायेंगे। यह विचार कर उसने झट से किवाड़ की चटखनी बाहर से लगा दी और सहायता के लिए आदमी बुला लाने चला गया।

किन्तु मारप्प भूपति का विचार गलत निकला। उसके जाते ही शिवयोगी दूसरी ओर से वहीं आये और चटखनी खोलकर एक पेड़ की आड़ में जा छिपे। थोड़ी देर बाद पोन्नन् और वल्लि बाहर आये। पोन्नन् के हाथ में एक पेटी थी। यह वही पेटी थी, जिसके अंदर चोल-वंश की अमूल्य निधि, तलवार और 'तिरुक्कुरल' की पोथी थी।

पोन्नन् वल्लि के साथ अपनी नाव में जा बैठा तो देखता क्या है कि, मशाल की रोशनी लिये कुछ आदमी उसी ओर आ रहे हैं। उसकी देह में एक कँपकँपी दौड़ गयी। उसके मन को एक प्रकार के भय ने आकर घर दबाया—इस पवित्र अमानत के साथ अगर हम पकड़े गये, तो? लेकिन उसी समय पेड़ की आड़ से शिवयोगी बाहर आये और पोन्नन् से बोले—"पोन्नन्, यह सोच-विचार का समय नहीं है। यह पेटी मेरे हाथ में दे दो। मैं इसकी बड़ी सावधानी से रक्षा कर तुम्हें लौटा दूँगा!"

पोन्नन् क्षणभर तो हिचका, मगर फिर निःशंक हो वह पेटी साधु के हाथ में रख दी।

पोन्नन् आगे दो डाँड भी न मार पाया था कि, मारप्प भूपति अपने आदमियों के साथ आ धमका। मारप्प भूपति ने नाव की तलाशी ली। पर कुछ भी जब हाथ न लगा, तो लज्जा से मानों गड़ गया।

— ७ —

शिल्प-कला की सौंदर्यतम नगरी मामल्लपुरम् में प्रति वर्ष की तरह इस वर्ष भी कला-प्रदर्शिनी हो रही थी। जनता में उत्साह और आनंद की कोई सीमा नहीं। कला प्रदर्शिनी देखने दूर-दूर से लोग आये थे। एक विदेशी जौहरी भी आया था, जो

एक-एक चीज को मंत्र मुग्ध-सा देखता हुआ आगे बढ रहा था। उसके एक बौना नौकर था, जो केवल कानो का बहरा ही ही नहीं, मूक भी लगता था।

इतने म पीछे से कोई कोलाहल सुनायी दिया, तो जौहरी ने मुडकर देखा। एक पालकी आ रही थी। यद्यपि उसने आँख उठाकर नही देखा, तथापि अनुभव किया कि, दो काली-कजरारी आँखें उसे देख रही है। इच्छा हुई कि, उसे देखें। पर मन-की-मन ही में रखने का प्रयत्न किया।

इसी समय मारप्प भूपति वहाँ आया और जौहरी से पूछा बैठा— 'अजी महाशय! मार्ग में खडे खडे क्या देख रहे है?"

जौहरी अपने को सँभालकर जवाब दे भी नही पाया था कि, भूपति प्रश्नो की झडी बरसाने लग गया—"आप कौन हैं? किस देश के हैं? क्या नाम है? इस देश में क्यो आये है?"

"अगर आप जानना ही चाहते है, तो सुनिये! मेरा नाम देवसेन है। मै जौहरी हूँ। रत्न-व्यापार के लिए आया हूँ!"

"ओहो! यह बात है? अच्छा, आप किस देश के निवासी है?"

"अरे! आप तो इतने सवाल करते हे, पर यह नही बताते कि, आप कौन है?"

व्यापारी की ये बाते सुनकर मारप्प भूपति ठठाकर हँसा। फिर बोला-"क्या आप यह नही जानते कि, मैं कौन हूँ? मैं हूँ स्वर्गीय पार्थिव महाराज का भाई और चोल-राज्य का सेनापति।"

जौहरी ने मारप्प भूपति को सिर-से-पैर तक देखा और कहा- 'क्या कहा? आप उन पार्थिव महाराज के भाई हे, जिनके सुपुत्र इन दिनो हमारे चम्पक द्वीप मे राज-काज कर रहे हे?"

मारप्प भूपति के मुख पर विस्मय की रेखा खिच गयी। फिर भी अपने को सँभालकर बोला—'आपने कहा कि, विक्रम आपके देश के राजा है? क्या उनको यह बात मालूम है कि, उनकी माँ अरुळ्माळि पर क्या बीती है?"

मारप्प भूपति ने इस प्रश्न से जिस

रण-ताडव]

बात की आशा की थी, वह सिद्ध हुई। जिस जौहरी के चेहरे पर अब तक कोई भाव-परिवर्तन नहीं हुआ था, वह यह बात सुनकर तड़प गया और अत्यन्त भयभीत होकर फूटते स्वर में पूछ बैठा—"रानी अरुठ मौलि को क्या हुआ ?"

मारण्ण भूपति के होठों पर एक कुटिल हँसी खेल गयी। इतने में चक्रवर्ती का जुलूस निकट आ गया, तो मारण्ण भूपति जौहरी को वहीं अकेले छोड़कर बिना कुछ जवाब दिये आगे बढ़ गया।

— ८ —

वह जौहरी और कोई नहीं था, निर्वासित राजकुमार विक्रम ही था। निर्वासित होने पर अपने निजी वेष में आना खतरे से खाली न था, इसीलिए वह जौहरी के वेष में आया था।

उसे चम्पक द्वीप में गये तीन वर्ष हो गये थे। उसने वहाँ पर राज-काज ऐसा सँभाला कि, चारों दिशाओं में चम्पक द्वीप का नाम हो गया। फिर भी इन तीन वर्षों में उसका एक दिन ऐसा नहीं गया कि, माता और मातृभूमि के स्मरण में उसकी आँखें सजल न हो गयी हों। माता और मातृभूमि की उस ममता के साथ पल्लव-राजकुमारी के प्रणय-सान्निध्य की लालसा भी निर्बल नहीं थी।

माता अरुठ मौलि के सम्बन्ध में मारण्ण भूपति ने जो मर्ममयी बातें कही थीं, उसे सुनकर विक्रम के मन को बड़ी पीड़ा पहुँची। अगर उसके पंख होते, तो वह उसी क्षण उरैयूर उड़कर चला जाता।

आवेश-प्रताड़ित-सा वह धर्मशाला में गया और बौने के साथ उरैयूर के लिए रवाना हो गया। राजमहलों में पला राजकुमार भला पैदल-मार्ग क्या जाने ? अतः बौने को ही मार्ग-प्रदर्शक बना कर वह उसके पीछे-पीछे चलने लगा।

भटकाते-भटकाते वह बौना उसे एक घने जंगल में ले गया। सूरज डूब चुका था और अंधकार का साम्राज्य स्थापित हो रहा था। इसी समय बहुत दूर पर घोड़े की चाप सुनायी दी। बौना चौकन्ना होकर सुनने लगा। विक्रम को अचरज हुआ कि, यह मूक-बधिर कैसे दूर का यह अस्पष्ट स्वर सुनता है ? उसे निश्चय हो गया कि, मेरे साथ विश्वासघात हुआ है। अतः एक ही आवेश में कटार निकाल कर बौने के बाल पकड़ लिये—"बोल, सच बोल ! तूने यह मूक-बधिर का स्वांग क्यों रचा है ?"

बौना ठहाका मारकर जोर से हँसा तथा अपने दोनों हाथों को मुख के पास ले जाकर एक विचित्र-से स्वर में सीटी बजायी।

तत्काल ही चार आदमी जंगल से बाहर निकल कर आ गये। किन्तु साक्षात् विपत्ति को सामने देखकर भी विक्रम का मन भयभीत नहीं हुआ। उन्मत्त हाथियों के मध्य होने पर भी कहीं सिंह-शावक डरता है ? कुछ ही क्षणों के अंदर उसने दो व्यक्तियों को जमीन पर सुला दिया। दूसरे क्षण वह बौना भी घायल हो भूमि पर गिर गया।

लेकिन यह क्या ? दूर पर कोई घुड़-

सवार घोडा दौड़ाता हुआ आ रहा था। अब विक्रम को निश्चय हो गया कि, आज जान की खैर नहीं। किन्तु इस विचार से वह हतोत्साह न हो सका। दूने उत्साह से उसने तीसरे आदमी को भी मौत के घाट उतार दिया और चौथे को सँभालने के लिए ज्योंही मुडा, तो क्या देखता है कि, चौथे का सिर धड से कट कर जमीन पर तडप रहा है।

विक्रम विस्मयाभिभूत जडवत् खडा रहा। घुडसवार ने पूछा-"आप कौन है? इतनी अँधेरी रात में कहाँ जा रहे है?"

"मै एक व्यापारी हूँ। इस मार्ग से उरैयूर जा रहा था। बीच मे इस विपत्ति का सामना करना पड गया। आप अच्छे समय पर आ गये, नही तो

"नही तो क्या? आप तो स्वय ही बडे वीर है? हाँ पर यह कहिये, आप किस देश से आ रहे है?

"मै चम्पक द्वीप से आ रहा हूँ।"

"चम्पक द्वीप से? अच्छा! आप तो व्यापार के लिए आये है? उरैयूर जाने की ऐसी कौन-सी आवश्यकता पड गयी?"

"वह तो बताऊँगा ही, लेकिन आप पहले यह बताइये कि, आप कौन है?"

"मै चक्रवर्ती नरेश का एक अकिंचन सेवक हूँ—यहाँ के गुप्तचर विभाग का प्रधान। मुझे खबर मिली कि, आप इस रास्ते से अकेले जा रहे है। आप पर कोई विपत्ति न आ जाय—काची-नरेश की आदर्श राज्य-व्यवस्था के बारे म आप अन्यथा न सोचने लग जायें—अत आपकी सहायता करने के विचार से मैंने पीछा किया था।'

'आश्चर्य है! थोडी देर पहले मै भी यही सोच रहा था कि, काची-नरेश का शासन कितना निर्बल है? उनकी सीमा मे अकेला आदमी निर्भय होकर विचर भी नही पाता! हाँ, आपसे एक और सहायता की आशा रख सकता हूँ?'

'उरैयूर जाने का प्रबध मे करूँ, यही न? आप भी कुशल व्यापारी है, भाई! चिंता न कीजिये। मै घोडा दूँगा। आप कल सवेरे यहाँ से उरैयूर के लिए रवाना हो सकते है। पास ही शिल्प मडप है। चलिये, आज रात को वहाँ आराम कीजिये।'

नृत्य
[चित्र रघुवश चावडा]

— ९ —

मामल्लपुरम् की कला प्रदर्शिनी से लौटकर कुदवि और युवराज महेंद्र काची-पुरम् के महल मे लौट आये। कुदवि अपने अत पुर मे गयी, तो देखा कि, उसके पिता के आसन पर कोई अनजान पुरुष बैठा है। उसकी इस धृष्टता को देख उसे आश्चर्य

भी हुआ और क्रोध भी आया।

"कौन हो तुम? किसकी आज्ञा से महल में चले आये?" कुंदवि ने सक्रोध पूछा।

"देवि! मैं पल्लव-साम्राज्य का प्रधान जासूस हूँ। मेरा नाम वीरसेन है।"

कुंदवि पास दौड़ी हुई गयी और अगले ही क्षण कुंदवि के हाथ में जासूसों के प्रधान की नकली मूँछ और दाढ़ी थी तथा जासूसों के प्रधान की जगह पर विराजमान थे—चक्रवर्ती नरसिंह वर्मा!

"पिताजी!"

"आश्चर्य न करो बेटी, वेष-परिवर्तन की विद्या में परम निपुण हूँ मैं! इसी विद्या के बल पर तो कल रात को मैं एक जौहरी की प्राणरक्षा कर सका। आधी रात में वह उरैयूर जा रहा था।"

"पिताजी! वह जौहरी कांची में न आकर उरैयूर क्यों चला गया? वहाँ तो महल में कोई है नहीं?" कुंदवि ने जौहरी की बात में उत्सुकता दिखायी।

"महल में कोई नहीं हो, तो क्या हुआ? उसकी माँ जो उरैयूर में है। उन्हीं को देखने वह जा रहा है।"

कुंदवि के मन में निमिष-मात्र के लिए यह विचार कौंध गया कि, वह जौहरी हो-न-हो राजकुमार विक्रम ही है।

"पिताजी कांची और मामल्लपुरम् के निकट ही एक विदेशी व्यापारी पर कोई हाथ चलायें और लूट-मार करें, तो शासन-व्यवस्था पर बट्टा न लगेगा?"

"हाँ, मैंने भी तुम्हारी तरह पहले यही सोचा था कि, वे चोर हैं। पर पीछे मालूम हुआ कि, मामला उससे भी अधिक भयंकर है!"

"क्या?"

"ऐसे राजलक्षणों से युक्त पुरुष नर-बलि देनेवालों के हाथ विरले ही लगते हैं!" महाराज ने बिना कुंदवि की ओर देखे, वाक्य पूरा किया।

"हाय! कुंदवि चीख उठी—"हमारे देश में क्या अब भी यह भयंकर प्रथा चली आ रही है?"

"हाँ, कुंदवि! इस भयंकर अंधविश्वास को जड़ से उखाड़ फेंकने का मैं प्रयत्न करता ही रहता हूँ, पर अभी तक सफलता प्राप्त नहीं हुई।"

"आप समय पर वहाँ नहीं पहुँचते, तो . ." कुंदवि सिहर उठी।

"उस बौने आदमी पर मुझे पहले ही से शक था कि, वह कापालिकों के हाथ का कठपुतला है। मेरा वह संदेह सत्य निकला।" महाराज ने आद्योपांत कथा सुनाकर कहा कि, घोड़े पर जौहरी को उरैयूर भेज भी दिया है।

कुंदवि के मस्तिष्क ने इतना सुनते ही जल्दी से काम किया। उसने कहा—"पिताजी, भाई ने अभी तक उरैयूर नहीं देखा है। हम दोनों उरैयूर जाने की सोच रहे हैं—आप अनुमति दें तो!"

—१०—

सृष्टि की नाटकशाला का यह सत्य भी कितना क्रूर है—"विपत्ति सदैव झुंड में

के साथ ही आती है।"

जासूसों से प्रधान से घोडा लेकर विक्रम ने सीधे उरैयूर का रास्ता पकडा। खाना-पीना, सोना-जागना—वह सब-कुछ भूल गया। उसके मन में सिर्फ एक ही विचार था। वह था, उरैयूर जाकर महारानी से मिलना, लेकिन सध्या के समय अकस्मात् मूसलाधार वर्षा शुरू हो गयी। रास्ते में एक जगली नदी पडती थी। उसे पार करने के लिए घोडा उतारा था कि, एकाएक नदी मे बाढ आ गयी। घोडा पानी के अदम्य प्रवाह मे बहने लगा, तो विक्रम घोडे पर से कूद पडा और परिपूर्ण शक्ति के साथ पानी के वेग को चीर कर तैरने लगा। मगर साहस भी एक सीमा तक ही साथ देता है। थकान और नैराश्य से निष्प्राण-सा वह वही जल में अचेत हो गया।

पौरुष [चित्र श्री आदिवासी]

जब होश आया, तो वह किनारे पर के 'महेद्रमडप' में था और उसके पास खडा था नाविक पोन्नन्। विक्रम ने उसे देखते ही पूछा—"महारानी कैसी है?"

महारानी का नाम सुनते ही पोन्नन् ने अपनी आँखें फेर ली और दुःखावेग में वह सुबक पडा।

विक्रम का कलेजा दहल गया। अत्यत आर्त स्वर मे उसने पूछा—"महारानी पर कौन-सी विपत्ति आ पडी, पोन्नन्? क्या वे जीवित नही है?"

"नही, महाराज! महारानी जीवित है पर मालूम नही कि, वे कहाँ है!"

००० ००० ०००

"वसत महल' के एकातवास में महारानी अपार वेदना अनुभव कर रही थी। इसी समय पार्थिव महाराज के परम मित्र और पल्लव-साम्राज्य के भूतपूर्व सेनापति परज्योति अपनी धर्मपत्नी-सहित तीर्थाटन के लिए चले, तो महारानी से मिलने आये। महारानी भी अपना दुःख भूलने और तीर्थाटन करने उनके साथ हो ली।

"दो वर्ष का तीर्थाटन समाप्त कर परज्योति अपने निवासस्थान 'तिरुच्चे-काट्टान् कुडि' को वापस आये। उस दिन पूस की अमावस्या थी। पूर्ण सूर्य-ग्रहण भी लगनेवाला था। इसलिए कावेरी-सगम में पर्व-स्नान करने देश के चारो ओर से लोग आये थे।

"रानी पूर्वाभिमुख होकर ध्यान कर रही थी कि, एकाएक चिल्ला उठी—'बेटा विक्रम! अभी चली आयी!' इतना कहकर समुद्र की उत्ताल तरगो में कूद पडी। मैंने और परज्योति ने

सारा समुद्र छान डाला। पर वे नहीं मिलीं। इतने में परज्योति की धर्मपत्नी और वल्लि दोनों ने चीखकर कहा कि, वह देखिये, रानी को एक हाथ वाला एक आदमी कंधे पर लिये जा रहा है। अत: हमने उस अपार जन-समुद्र में भी महारानी को बहुत खोजा, पर सफलता वहाँ भी नहीं मिली।

"कुछ दिन पश्चात्, शिवयोगी मुझसे मिले। उन्होंने मुझे बताया–'महारानी जीवित जरूर हैं। पर कहाँ हैं–यही मालूम करना है। इस प्रदेश में कपाल रुद्र भैरव नाम का एक व्यक्ति है, जिसका एक हाथ कटा है। वह कापालिकों का सरदार है। तमिल प्रदेश में नर-बलि की भयंकर परम्परा को फैलाने का सूत्रधारत्व वही कर रहा है। वह किसी तरह पकड़ में आ जाये, तो महारानी मिल जायेंगी।'

"मैंने वह कार्य अपने हाथ में लिया है और सफलता भी प्राप्त की है। अभी चार-पाँच दिन पहले ही कोल्लिमलै के इसी प्रदेश में मैंने अपनी आँखों से उस भयंकर रूपवाले हाथ-कटे कपाल रुद्र भैरव को देखा है। उसके साथ साये की तरह एक बौना भी रहता है।'

००० ००० ०००

पोन्नन् यह वृत्तांत सुना ही रहा था कि, बाहर किसी के बोलने की आवाज आयी। पोन्नन् ने अत्यंत सतर्कता से झाँक कर देखा, तो मंडप के बाहर मारप्प भूपति और रुद्र भैरव खड़े थे।

"प्रभु! माता की क्या आज्ञा है?" मारप्प भूपति ने अत्यन्त विनम्र होकर पूछा।

कपाल रुद्र भैरव ने अपने कर्कश स्वर में कहा–"माता रणचंडी तुम पर प्रसन्न है। तुम्हें बड़े-बड़े पदों पर बैठाने जा रही है। पर माता बड़ी प्यासी है। वह राजवंश का रक्त चाहती है।"

"मैंने प्रयत्न किया था, प्रभु! सुनहला सदर्भ हाथ से निकल गया। मेरा वह षड्यंत्र कारगर नहीं हुआ।"

"अब भी कोई बड़ी देर नहीं हुई। प्रयत्न करो, बेटा! प्रयत्न करो। माता तुम्हें चोल-राज्य का सिंहासन देगी। पहले, पार्थिव के पुत्र को पकड़ लाओ। फिर उस विभूति-रुद्राक्षधारी शिवयोगी को बलि चढ़ाने के लिए पकड़ लाओ। माता तुम पर प्रसन्न हो गयीं, तो सारे पल्लव-साम्राज्य के अधिपति बन जाओगे।"

"प्रभु! आपने तो कहा था कि, माता राजवंश का रक्त चाहती है। फिर उस शिवयोगी को पकड़ने से क्या लाभ होगा?"

"भूपति! तुम नहीं जानते, वह शिवयोगी कौन है?"

इतने में मारप्प भूपति के आसामी आते दिखायी दिये। मारप्प ने कहा–"प्रभु, मेरे आदमी आ गये हैं। आज्ञा शिरोधार्य करूँगा और माता की इच्छा पूरी करूँगा।"

कुचक्रियों की ये बातें सुनकर विक्रम को ऐसा क्रोध आया कि, अभ्यासवश उसका हाथ तलवार के लिए कमर पर गया

दिवाली
डालडा
छाप
वनस्पति
मुफ्त
दी डालडा एड्वाइज़री सर्विस

मगर दूसरे ही क्षण उसे भान हुआ कि, उसकी तलवार तो नदी के प्रवाह में बह गयी है। अत उसने बडी आतुर वेदना के साथ कहा–"पोन्नन्! मेरे दुर्भाग्य की भी सीमा नही! जिस घोडे पर आया था, वह बाढ़ में बह गया। मेरे पास रत्नों का जो थैला था, वह भी कही लुप्त हो गया और अब देखता हूँ कि, मेरी तलवार भी नदी में डूब गयी है।"

"महाराज! महारानी तीर्थाटन के लिए जब चलने लगी, तो आपको देने के लिए मेरे हाथ में एक पेटी दे गयी थी।"

"उस पेटी में क्या है, पोन्नन्?"

"आपके कुल की तलवार है। उसकी मूठ रत्न-जटित है!"

"सच? तो वह तलवार मेरे अजेय पूर्वजों की निशानी है। उसी के प्रताप से समुद्र-पार के देशों में चोल-राजाओं की धाक जमी थी। उसी तलवार का उपयोग हमारे वंश के यशस्वी पूर्वज करिकाल चोळ ने किया था। उसे सुरक्षित रखा है न?"

"हाँ, स्वामी!"

"कहाँ पर?"

"वसत द्वीप' मे!"

"तो हमें 'वसत द्वीप' में चलकर जल्दी ही वह तलवार ले लेनी है।"

लेकिन दूसरे दिन पूर्व-निश्चय के अनुसार वे उरैयूर के लिए रवाना नही हो सके। कारण, विक्रम को कडा ज्वर चढ आया। पोन्नन् ने सभी सम्भव उपचार कर देख लिये। लेकिन ज्वर न उतरा, तो वह सोच मे पड गया और पास के किसी गाँव से, वैद्य बुलाने के लिए चला गया।

इसी बीच उसका बुखार और भी तेज हो गया। वह होश खो बैठा और "माँ, माँ!" कहकर सन्निपात में चिल्लाने लगा।

कुदवि और कुमार महेंद्र, महाराज की अनुमति मिलते ही उरैयूर के लिए रवाना हो गये थे। कुमार घोडे पर था–कुदवि पालकी में। दोनो जब उस मडप के निकट से गुजर रहे थे, तब वही से आर्त स्वर सुनायी दिया। कुदवि ने पालकी रोकी और भाई से कहा–"भैया! सुनते हो, किसी के कराहने की आवाज आ रही है।"

महेंद्र ने कहा–"हाँ, कोई 'माँ, माँ!' पुकार रहा है। मालूम होता है, उस मडप से ही आवाज आ रही है।"

दोनो मडप में गये। देखा, तो विक्रम पडा-पडा कराह रहा था। राजकुमारी कुदवि ने कहा–"भैया, यह वही जौहरी है। शरीर से एकदम अस्वस्थ है। कोई हमारे वैद्यजी को तो बुलाये।"

प्रथम चिकित्सा के बाद विक्रम कुंदवि की पालकी पर लिटा दिया गया। कुदवि एक घोडे पर चढ गयी।

जब पोन्नन् वैद्य के साथ मडप में वापस आया, तो मडप एकदम सूना था। पोन्नन् की चेतना पर मानो वज्र गिर पड़ा। पोन्नन् ने सारा प्रदेश छान डाला।

भटकते भटकते पोन्नन् परातकपुर में पहुँचा। वहाँ एक धर्मशाला के धुंधले प्रकाश में खडी दो सखियाँ बात कर रही थी–

"राजकुमारी कुदवि ने जौहरी को मंडप में कराहता पाया, तो अपने साथ उठा लायी हैं।" पोन्नन् ने जंगले के निकट जाकर देखा, तो एक खंभे में विक्रम लेटा था और उसकी सुचारु सेवा-शुश्रूषा हो रही थी।

-११-

शिवयोगी से मिलकर पोन्नन् 'वसंत द्वीप' की ओर बढ़ा। 'वसंत द्वीप' की भूमि पर उसने पैर रखा ही था कि, विक्रम ने उसका स्वागत किया। पोन्नन् ने बिछुड़ने से लेकर शिल्प-मंडप में शिवयोगी से मिलने तक की सारी बातें वह सुनायीं।

विक्रम को विस्मय हुआ। उसी मंडप में तो वह जासूसों के प्रधान के साथ ठहरा था। वह बोला-"पोन्नन्, मुझे एक बड़ी आशंका हो रही है।"

"क्या, महाराज?"

"जासूसों के प्रधान ही कहीं शिवयोगी तो नहीं हैं?"

"हाँ, महाराज!"

"तब तो.... वे जानते हैं कि, मैं कौन हूँ! यही मुझे पकड़वा दें, तो?"

"वे कभी आपको पकड़वायेंगे नहीं। रणक्षेत्र में आपके पिता को वे वचन दे चुके हैं। परन्तु...."

"परन्तु क्या?"

"मारप्प भूपति अवसर की ताक में है। उसके द्वारा आप पर विपत्ति आने की आशंका है। हमें यहाँ से चले जाना चाहिए।"

"मैं तो प्रस्तुत हूँ।"

"थोड़ा ठहरिये, तो महारानी द्वारा दी हुई पेटी उठा लाऊँ।"

तलवार को पाते ही विक्रम में नया उत्साह भर आया। उसके मुख पर अभूतपूर्व तेजस्विता विराजने लगी। महाराज का मुखमंडल देख पोन्नन् आनंद-विभोर हो गया।

दोनों लौटकर आये, तो नाव नहीं दिखायी दी। पोन्नन् नाव की खोज करने चला। तभी झाड़ी के पत्तों के हिलने का शब्द सुनायी दिया। विक्रम ने मुड़कर देखा, तो कुदवि खड़ी थी। दोनों थोड़ी देर के लिए निर्निमेष नेत्रों से एक-दूसरे को देख रहे थे।

कुदवि ने ही मौन तोड़ा—"क्या यही चारु-देशवासियों की सभ्यता है? बिना विदा लिये चल देना!"

इतने में दूर से चार नावें आती दिखायी दीं। पोन्नन् दौड़ा हुआ आया। विक्रम ने कहा—"पोन्नन्! उठाओ, तलवार!"

"नहीं, महाराज! अभी हम लड़ेंगे, तो सारा करा-कराया स्वाहा हो जायेगा। क्या आप अपने पूर्वजों की वीर तलवार से अपनी ही प्रजा को मौत के घाट उतारेंगे?"

इस समय तक नावें किनारे लग गयी थीं। मारप्प भूपति नाव से कूदकर कुदवि देवी के पास आया और अत्यंत विनय के साथ बोला-"देवी, आपकी अनुमति के बिना यहाँ आने के लिए क्षमा चाहता हूँ। चक्रवर्ती की आज्ञा का पालन करने के लिए ही यहाँ आया हूँ मैं!"

कुदवि ने लाल-पीली होकर पूछा-"किसकी आज्ञा?"

"आपके भाई युवराज महेंद्र की आज्ञा।

चम्पक द्वीप से जो जासूस आया है, उसे पकड़कर फाँसी भेजने का मुझे आदेश मिला है!"

"चम्पक द्वीप का जासूस कौन है?"

"यह सामने जो खड़ा है, यही!"

"नहीं, ये जासूस नहीं हैं। आप लौटकर जा सकते हैं।"

"देवी, अगर यह जासूस नहीं है, तो और कौन है?" मारप्प भूपति ने बनावटी विनय से पूछा।

"भूपति! अपने को सँभालकर व्यवहार करो। जानते हो, किससे बात कर रहे हो? अपने को भूल न जाओ!" कुंदवि की आँखों से आग बरस पड़ी।

"नहीं देवी! मैं अपने को नहीं भूला हूँ। यह जो खड़ा है, इसका मुख मेरा परिचित है—बार-बार देखा हुआ है। राजाधिराज नरसिंह पल्लव ने इसे देश-निकाले का दंड दिया था। यह जासूस नहीं है, तो निर्वासित अवश्य है। निर्वासित यदि बिना अनुमति के लौट आये, तो उसके लिए क्या दंड-विधान है— आपसे छिपा नहीं है। देवी, मुझे अपना कर्तव्य करने दीजिये।"

-१२-

आधी रात के समय पोन्नन् कुटी से निकलकर थोड़ी दूर गया, तो दो आदमियों को काली के मंदिर की तरफ जाते हुए देखा। एक बौना था और दूसरा मारप्प भूपति। पोन्नन् ने उनका पीछा किया।

काली के मंदिर में कपाल रुद्र भैरव मारप्प भूपति की राह देख रहे थे। मारप्प भूपति को देखते ही उन्होंने पूछा—"सेनापति, माता का हुक्म बजा लाये?"

"महाप्रभु, बलि सुरक्षित है!"

"साथ क्यों नहीं लाये?"

"आज ही शाम को युवराज विक्रम को पकड़ा है। अभी यहाँ लाते, तो अनेक प्रकार के संशयों को अवसर मिल जाता।"

कपाल भैरव ने पैशाची हँसी हँसकर बोले—"सेनापति, काली माता की आज्ञा का पालन करने में डरते हो?"

"नहीं, प्रभु! मैं तो इसीलिए डरता हूँ कि माता के कार्यों में विघ्न न पड़े। अमावस्या की रात तक बलि को लाकर आपके हाथ सौंप दूँगा।"

अमावस्या के दिन रात के प्रथम प्रहर में कड़े पहरे के साथ विक्रम की गाड़ी ज्यों ही मामल्लपुर को पार हुई, त्यों ही 'ओम् काली! जय काली!' का जयघोष उठा और बीस नकाबपोश व्यक्तियों ने विक्रम की गाड़ी को घेर लिया। उरैयूर के वीर सैनिक उस तरफ देखे बिना ही उलटे पाँव भाग गये। पोन्नन् ने गाड़ी के पीछे से आकर विक्रम को बंधन-मुक्त किया और दूसरे ही क्षण विक्रम और पोन्नन् घोड़े पर सवार होकर 'महेंद्रमंडप' के रास्ते से मामल्लपुरम् के लिए रवाना हो गये।

'महेंद्रमंडप' के द्वार पर मशाल लिये कुछ आदमी खड़े थे। एक ने पुकार कर कहा—"पोन्नन्! उरैयूर की महारानी मिल गयीं। मंडप के अंदर हैं!"

बस, दूसरे ही क्षण 'माँ' चिल्लाता हुआ

हुआ विक्रम घोड़े से कूद पड़ा और अंदर जाकर माता के चरणों में गिर पड़ा। माता ने सिर पर हाथ फेरकर बेटे को आशीर्वाद दिया और उसे बताया कि, शिवयोगी महाराज की मदद से वे कैसे कपाल भैरव के हाथ से बचीं।

उसी समय वह बौना, जो एक कोने में बँधा पड़ा था, जोर से 'ही-ही-ही' कर हँस उठा—"आज आधी रात को कपटी शिव-योगी भी बलिवेदी पर चढ़ाया जायेगा।"

सुनकर विक्रम की रगें फड़क उठीं। वह तत्क्षण ही तलवार खींच और माँ का आशीष ले उस परोपकारी शिवयोगी की सहायता के लिए निकल पड़ा।

-१३-

महाकपाल भैरव जिस पहाड़ पर रहते थे, उसकी तलहटी में एक चट्टान थी। स्वयं प्रकृति ने उसे बलिवेदी बना रखा था। उस पर शिवयोगी बँधे थे। उन्हीं के पास एक राक्षसी आकृतिवाला पुरुष हाथ में नंगी तलवार लिये खड़ा था। महा-कपाल भैरव का, कर्कशता से आँखें खोलकर, आज्ञा-भर देना बाकी था।

विक्रम एक ही छलांग में बलिवेदी के निकट पहुँचा और अंगरक्षक के रूप में शिवयोगी की बगल में जा खड़ा हुआ।

शोरगुल सुनकर कपाल भैरव की आँखें खुलीं। वे उठकर गम्भीर चाल से बलिवेदी के निकट आये। फिर अट्टहास की हँसी हँसकर बोले—"बेटा, तू पार्थिव चोल का बेटा विक्रम है न? तुझे खोजते हुए मैं एक बार मामल्लपुरम् भी आया था। पर इस मूढ़ भूपति के कारण सारा काम बिगड़ गया। लेकिन काली माता ने कहा कि अवश्य तू समय पर आ जायेगा। माता की आज्ञा है कि, दक्षिण में आज रात को काली माता का जो साम्राज्य स्थापित होनेवाला है, उसका मुझे युवराज बनाया जाये।"

"आपकी बात मेरी समझ में नहीं आती। आप मुझे युवराज-पद देनेवाले हैं, तो मेरे काम में विघ्न न डालिये। ये महान् शिवयोगी, जो बलिवेदी पर बँधे खड़े हैं, मेरे कुल के परम मित्र हैं। इन्हें छुड़ाना मेरा कर्तव्य है। जब तक हाथ में तलवार और शरीर में प्राण है, इन्हें बलि पर चढ़ने नहीं दूँगा!" यह कहकर विक्रम स्वयं शिवयोगी के बंधन खोलने लगा।

कपाल भैरव ऊँचे स्वर में बोले—"बेटा विक्रम! यह कपटी सन्यासी, यह ढोंगी 'शिवयोगी' कौन है? अगर तू यह जान पायेगा, तो ऐसी बातें नहीं कहेगा। जरा तू ही इस कपटी सन्यासी से पूछ देख!"

विक्रम ने शिवयोगी की ओर देखा। उनके मुख पर मुस्कराहट दौड़ रही थी। उसी समय बिजली की कड़क-जैसी आवाज आयी—"विक्रम, पहले यह पूछ कि, यह कपटी वेषधारी स्वयं कौन है? पहले यह अपना परिचय दे!"

वाक्य पूरा होते-न-होते, वहाँ पल्लव-साम्राज्य के भूतपूर्व सेनापति महारथी 'सिरुत्तोंडर' (परञ्ज्योति) प्रकट हुए। उनके प्रवेश के साथ ही अस्त्र शस्त्रधारी अनेक

सैनिक भी आ धमके। अब क्या था ?

शिवयोगी बंधन मुक्त थे और कपाल एवं भैरव बँधे पड़े थे। तब शिवशेखर उस पालकी पर चढ़कर बोले—"भाइयो, निकट आओ। इस कपाल भैरव की कथा सुनाऊँ। तुम लोग जानते हो कि, एक बार पुलिकेशि हस्तिनापुर पर चढ़ आया था और नगरों व गाँवों का विनाश कर गया था। महेंद्र चक्रवर्ती की मृत्यु के बाद, नरसिंह चक्रवर्ती और मैंने उससे बदला लेने की ठानी और बड़ी सेना लेकर उस पर आक्रमण कर दिया। उस घोर युद्ध में पुलिकेशि की सेनाएँ तहस-नहस हो गयी। चक्रवर्ती का आदेश यह था कि, शत्रु-सेना का कोई भी वीर जीवित न लौटे। लेकिन उसकी आज्ञा के विरुद्ध मैंने एक व्यक्ति को जाने दिया, क्योंकि वह युद्ध में एक हाथ खो चुका था और मेरी शरणागत हो, पैरों में पड़ गया था। वही यह एक हाथवाला कापालिक है। नाम नीलकेशि है, पुलिकेशि का छोटा भाई!"

तब महाकपाल भैरव ने कहा—"नहीं यह सरासर झूठ है, मनगढ़ंत है। साक्षी कहाँ है इसका ?"

"साक्षी ? साक्षी यहाँ है!" कहता हुआ मारप्प भूपति सामने आया। महाकपाल भैरव ने जबसे विक्रम को युवराज-पद देने की बात चली थी, तभी से वह क्रोधित हो रहा था। अतः क्रोधोन्माद में उसने एक अप्रत्याशित कार्य कर डाला। हाथ में नंगी तलवार लिये वह कपाल भैरव के निकट गया और किसी के समझने के पहले उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।

किन्तु पलक मारते ही एक और घटना भी घटी। बौल की तलवार ने मारप्प भूपति का सिर भी धड़ से उड़ा दिया।

—१४—

नरसिंह चक्रवर्ती की राजसभा उरैयूर के महल में जुटी। मंत्री व प्रधानों से लेकर शिवशेखर, जटामुकुटधारी शिवयोगी आदि सभी मुख्य-मुख्य व्यक्ति आ पहुँचे थे। यद्यपि नियत समय बीत चुका था, तथापि चक्रवर्ती नहीं आये थे।

इसी समय शिवशेखर उठे और सभा को सम्बोधित कर बोले—"आज की सभा का क्या उद्देश्य है—आप सब लोग जानते हैं। महाराज के आने तक एक बार पुराना इतिहास सुन लें, तो आगे की बातें और सरल हो जायेंगी।

"हाँ, तो सुनिये, इन जटामुकुटधारी शिवयोगी और विक्रम के बीच ऐसा अटूट नाता क्यों हुआ—आप लोगों को मालूम है क्या? शिवयोगी जब राजा पार्थिव को युद्ध-क्षेत्र में बचा ले चुके, तो राजा ने उनसे पूछा था कि, आप कौन हैं? शिवयोगी ने शब्दों में कोई उत्तर नहीं दिया, बल्कि अपनी जटा और दाढ़ी-मूँछ हटाकर अपना असली रूप उन्हें दिखाया।"

शिवशेखर के मुख से यह वाक्य सुनते ही सभा में खलबली मच गयी।

"मैं जानता हूँ कि, आप सब लोग इन वेषधारी शिवयोगी का असली रूप देखने

का उत्सुक होंगे। अब आप लोग खुशी से देख सकते हैं।" इतना कहकर सिरुत्तोंडर ने अपने ही हाथों शिवयोगी की दाढ़ी-मूँछ और जटा-मुकुट निकाल कर रख दी। शिवयोगी की जगह पर चक्रवर्ती अपने तेजोमय रूप में विराजमान थे।

लोगों के आश्चर्य का कोई पारावार नहीं रहा। कुंदवि 'पिताजी' पुकारती हुई उनके पास दौड़ गयी। विक्रम अचरज-भरे नेत्रों से उन रूप-परिवर्तित शिवयोगी को देखता रह गया।

सिरुत्तोंडर ने उठकर कहा—"सभासदो! एक और कार्य बाकी है। सामंत-चक्रवर्ती अपने धर्म-सिंहासन पर बैठकर विक्रम चोल के अपराध का निर्णय सुनायेंगे।'

तब चक्रवर्ती बोले—"देश से निर्वासित चोल बिना आज्ञा के वापस आये, तो दंड-विधान में उनके लिए शिरसाज्ञा लिखी है। इसलिए मैं उन्हें यह शिरसाज्ञा देता हूँ कि, चोल राजाओं के इस पुरातन मणि-मुकुट को अपने स्वतंत्र रूप से ये धारण करें। आज से चोल-देश स्वतंत्र राज्य हो गया है। इसका पूरा भार विक्रम चोल और उनके वंशज ही वहन करें।"

—१५—

विक्रम चोल-प्रदेश का स्वतंत्र राजा हुआ। एक शुभ मुहूर्त में पल्लव-राज-कन्या कुंदवि के साथ उसका विवाहोत्सव भी बड़ी धूमधाम से संपन्न हो गया।

किन्तु फिर भी पार्थिव महाराज ने जो सपना देखा था, वह विक्रम के काल में पूर्ण रूप से चरितार्थ न हो सका। सूर्य के सामने जैसे अन्य सभी ग्रह धुँधले पड़ जाते हैं, वैसे ही पल्लवराज नरसिंह चक्रवर्ती के सामने विक्रम का कीर्ति-कलश चमक न सका। लेकिन विक्रम या उसके वंशजों में कोई भी पार्थिव महाराज के सपनों को नहीं भूला। प्रत्येक चोल-राजा अपने पुत्र को पार्थिव की वीर मृत्यु की कहानी सुनाता था—पार्थिव महाराज ने उरैयूर के चित्र-मंडप में जो स्वप्न-चित्र बनाये थे, उन्हें दिखाता था।

लगभग तीन सौ साल के बाद चोल देश की वीर गद्दी पर राज चोल और राजेंद्र चोल बैठे। इन्हीं के शासनकाल में पल्लवों की कीर्ति मंद पड़ी और चोल देश के वीर सैनिक उत्तर में गंगा, दक्षिण में लंका, और पूरब में समुद्र-पार के देश 'कडारम्' तक गये और वहाँ विजय प्राप्त कर व्याघ्र-पताका फहरायी।

व्याघ्र-पताका फहराते हुए चोल-देश के जलयान समुद्र-पार भी जा गये और जावक व पुष्पक-जैसे द्वीपों को अपने अधिकार में कर लिया।

इसी काल में चोल-देश-भर में अद्भुत मंदिर और गोपुर बने, जो चोल-राजाओं की कीर्ति को अमिट-अमर बनाये आज भी अपनी यशोगाथा सुना रहे हैं। इस तरह पार्थिव चोल ने जो-जो सपने देखे थे, वे सब उसकी मृत्यु के तीन सौ वर्ष उपरांत चरितार्थ हुए। मगर काल का यह निर्णय यहाँ भी अखंड चरितार्थ हो गया कि, पराक्रमियों और वीरों के मानस-स्वप्न एक-न-एक शुभोदय में साकार अवश्य होते हैं।

★

बालकोंकी
तन्दुरुस्ती और
ताकत
बढाता है.
हरेक केमिस्ट और स्टोरसे मीलता है
GUJARAT
बी. ए. ऐन्ड ब्रदर्स : बम्बई-२
कलकत्ता, पटना और गौहाटी

स्वादिष्ट रसोई के लिए
कुसुम
पाक-प्रणाली
अभी ही एक प्रति मँगाइये!
कुसुम खाद्य-पदार्थों की पोषण-शक्ति बहुत

अपनी रक्षा कीजिए
'पैल्युड्रीन'
खाने से मलेरिया नहीं होता
ICI
ICP 390

पेराम्बूर की इंटीग्रल कोच फक्टरी के सुयोजित तथा भव्य व्यवस्था कार्यालय भवन का वर्दीगटन सामग्रियों (२६० टन) से एयर कंडीशन किया गया है ब्ल्यू स्टार इंजीनीयरिंग कं (बंबई) लि० के इंजीनियरों द्वारा तैयार व स्थापित किया गया है।

—एक और ब्ल्यू स्टार का प्रशंसनीय कार्य

• जिसकी चमकदार फिनिश हो
जो देखने मे मनोरम लगे
• जो सचमुच अधिक दिन चले
• अंदर बाहर प्रयोग किया जाय ..
• लगभग हरतरह की सतह पर .
• उद्योग धंधे अथवा घर मे काम आवे...
मै ज़ोर देकर कहता हूँ कि
मै जानता हूँ वह रंग है उच्च-कोटि का सिंथेटिक एनामेल ..
शालीमार सुपरलैक
एनामेल

इस्माइल फिल्म्स

दिवाली का
अभिनन्दन
टाटा
आयरन एण्ड स्टील
कम्पनी लिमिटेड

# सर्वोत्तम मनोरंजक एक से एक सरस चित्र

जुपिटर पिक्चर्स कृत

| | | |
|---|---|---|
| रत्नदीप पिक्चर्सकृत | हरिश प्रॉडक्शन्सकृत | ऑल इंडिया पिक्चर्सकृत |
| **ज य श्री** | **लालटेन** | **एकादशी** |
| 'राजश्री प्रॉडक्शन' | कश्यप प्रॉडक्शन्सकृत | मनराइज पिक्चर्सकृत |
| फुलदिप पिक्चर्स लि. कृत | | **अ प्स रा** |
| **टांगावाली** | **आनबान** | पक्षीराजचे आगामी चि |
| ऑल इंडिया पिक्चर्सकृत | मल्हार प्रॉडक्शन्सकृत | ? |
| | | भूमिका: |
| **अं जा न** | **अमरवाणी** | दिलीप, वैजयंतीमाला |

प्रकाशक : दि स्क्रीन, ताड्देव, बंबई-७

कोनार बांध (बिहार)
मजबूती के लिए एसीसी सीमेंट से बनाया हुआ
कोनार बांध (बिहार) के बनाने में अभी तक ५५००० टन से अधिक एसीसी सीमेंट लग चुकी है। सीमेंट का अर्थ है सबके लिए अधिक सुखी जीवन और एसीसी अधिक से अधिक अच्छी सीमेंट बनाती जा रही है।
ACC
दी एसोशिएटेड सीमेंट कंपनीज लि० द्वारा प्रकाशित

दिसम्बर

भीड़भरे छविघरों में प्रदर्शित हो रहा है
रॉक्सी * जयहिन्द * रिवोली
रोज तीन प्रदर्शन
१-४५, ५-१५ और ८-४५
रोज चार प्रदर्शन
११-०, २-१५, ४-३० और ८-५४
रोज चार प्रदर्शन
११-०, २-१५, ४-३० और ८-४५
और अन्य छवि केंद्रों में
इन्सानियत
सर्वोत्तम कलाकारों का सर्वोत्तम चित्र
दिलीप कुमार देवानन्द बीना राय विजयलक्ष्मी
जयंत जैराज शोभना समर्थ कुमार --
बद्रीप्रसाद आगा मोहना और
हालिवुड से जिप्पी --
निर्माता-निर्देशक एस एस वासन
संगीत सी रामचन्द्र
गीत राजेन्द्र कृष्ण संवाद रामानन्द सागर
जेमिनी का महान चित्र

जल्द तथा
विनयशील
सेवा के लिये

हिन्द मिलस लिमिटेड
हुगल रोड, बलार्ड इस्टेट, बम्बई-१
टेलिफोन
आफिस ३००१७
मिल ६०४४१
तार
"हिंद धाम"

स्कूल में
हार्डी
५॥ से ८॥ रु तक
साइज के अनुसार
ये उल्लास-तरंगित बच्चे नेचर
पर वैज्ञानिक रीति से बने
पहनकर स्वस्थ विकास प्राप्त क
स्कूल के बाद
स्काउट
९॥≋ से ११॥≋
तक
साइज के अनुसार
Bata
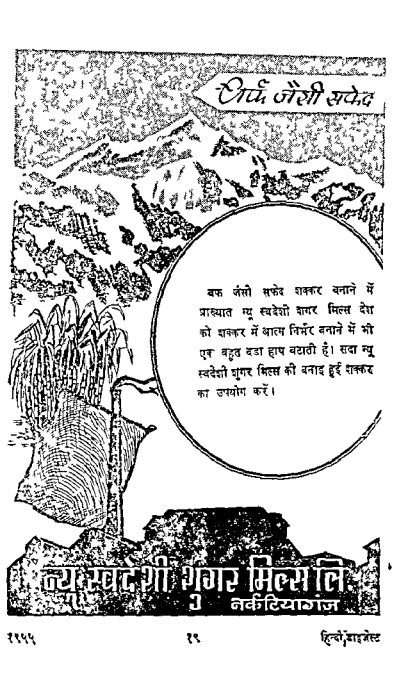
बर्फ़ जैसी सफेद
बर्फ जैसी सफेद शक्कर बनाने में प्रख्यात न्यू स्वदेशी शुगर मिल्स देश को शक्कर में आत्म निर्भर बनाने में भी एक बहुत बड़ा हाथ बटाती है। सदा न्यू स्वदेशी शुगर मिल्स की बनाई हुई शक्कर का उपयोग करें।
न्यू स्वदेशी शुगर मिल्स लि.
नरकटियागंज

...जी, हाँ, आप ब्रश, स्प्रे और डुबाकर लगा सकते हैं...
...अवश्य, यह जल्दी सूखता है और सूखने पर मज़बूत होता है...
...चमकदार और टिकाऊ फिनिश देता है...
..हाँ, हाँ, मशीनों और आफिस के सामानों में
.. आप चाहे तो दीवार पर भी...
...और, हरतरह से काम आनेवाला...
...जानते हो दोस्त! वह कौन सा रंग है ...
...मैं जानती हूँ! वह है—उच्च-कोटि का सिन्थैटिक एनामेल...
शालीमार
सिन्थैटिक एनामेल
SHALIMAR PAINT, COLOUR & VARNISH COMPANY, LIMITED
15 BANK STREET P B No 194 BOMBAY 1

# घर में सिलाईका काम

दी जय इंजीनीयरिंग वर्क्स लि. कलकत्ता

दिसम्बर **नवनीत** १९५५
[हिन्दी डाइजेस्ट]
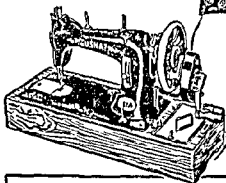
संचालक
श्रीगोपाल नेवटिया

सम्पादक
रतनलाल जोशी

प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

सहकारी
रमेश सिन्हा : ज्ञानचन्द्र

चित्र-शिल्प गोपालकृष्ण भोबे

लेख-सूची

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | त्याग | 'अपरोक्षानुभूति' के आधार पर | १ |
| २. | ...आत्मा के मार्ग पर अटल हूँ | स्वामी विवेकानंद | २ |
| ३. | श्रेष्ठतम दीपक | महर्षि तिरुवळ्ळुवर | ४ |
| ४. | प्रसादजी | वाचस्पति पाठक | ७ |
| ५. | उद्बोधन | 'प्रसाद' | ८ |
| ६. | पाषाणों के काव्योद्गार | श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी | १० |
| ७. | उदारचरिताम् | रवीन्द्रनाथ ठाकुर | ११ |
| ८. | मंगल दृष्टि | विनोबा | १४ |
| ९. | परोपकारी | कालिदास | १५ |
| १०. | अंगिरस : महान आर्यवीर | डा. सत्यप्रकाश | १७ |
| ११. | मेरा कवि | मैथिलीशरण गुप्त | १८ |
| १२. | किला अहमदनगर | मौलाना आजाद | २० |
| १३. | भूलता हूँ | 'फिराक' गोरखपुरी | २१ |
| १४. | हीराकुंडी | अवनीन्द्रनाथ ठाकुर | २५ |
| १५. | अनर्थों की जड़ | न. ग. वझे | २६ |
| १६. | बिन्दु में सिंधु समाना | इलाचन्द्र जोशी | १८ |
| १७. | रोरिक से भेंट | यशपाल | ३३ |
| १८. | प्रभो | विलियम जोंस | ३४ |
| १९. | सिंह | राबर्ट ब्राउनिंग | ३८ |
| २०. | पावन विभूति | विनोबा | ३९ |
| २१. | ...स्विट्जरलैंड में | विट्ठलदास मोदी | ४४ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २२. | अपेक्षा | डा राधाकृष्णन् | ४६ |
| २३ | ...अक्सर ब्राडकास्ट करते | डा रामकुमार वर्मा | ४९ |
| २४. | श्रम आत्मविकास का कीमिया | ओंकारनाथ शर्मा | ५० |
| २५. | काम : अमृत | जवाहरलाल नेहरू | ५१ |
| २६. | हुरजस | डा कन्हैयालाल सहल | ५४ |
| २७ | जल की खेती पेट भरेगी | 'यूनेस्को कोरियर' से | ५७ |
| २८. | वचना | प्रिंस क्रोपाटकिन | ५८ |
| २९. | ओरान-उटान | एडविन होयेल | ६० |
| ३०. | सस्कृति. हृदय की गगा | पद्मिनी सेनगुप्ता | ६० |
| ३१. | शासन | 'सर्वोदय' से | ६५ |
| ३२. | नागार्जुन के शिखर पर | अदिवि बापिराजु | ६७ |
| ३३ | सकल्प | 'धम्मपद' से | ६९ |
| ३४. | नारी | 'स्क्वायर' से | ७१ |
| ३५ | परमहस | सिस्टर निवेदिता | ७२ |
| ३६. | ...मित्र बनाने म कितने कुशल हैं | 'साइकोलाजिस्ट' से | ७६ |
| ३७ | जानि शरद रितु खजन आये | रामवृक्ष बेनीपुरी | ७८ |
| ३८. | कामना | कालिदास | ७८ |
| ३९ | ज्ञानी या ज्ञान (कहानी) | 'जोश' मलीहाबादी | ८० |
| ४०. | जेंथा (कहानी) | परशुराम | ८२ |
| ४१. | जीवन की जय (कहानी) | निकोलई तिखोनोव | ८६ |
| ४२ | ग्वालिन (कहानी) | आशानद मामतोरा | ८९ |
| ४३. | गुप्त-समिति (कहानी) | कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी' | ९३ |
| ४४. | मदाकिनी (उपन्यासिका) | रवीन्द्रनाथ ठाकुर | ९७ |
| ४५ | अनुभूति | रोमाँ रोलाँ | १०० |
| ४६ | मिथ्या शास्त्र | शरच्चन्द्र | १०९ |
| ४७ | हृदयवान् | अनतकुमार 'पाषाण' | ११४ |

समृद्धि
[ चित्रकार . ए. ए. अल्मेलकर ]

वार्षिक मूल्य : दस रुपये | नवनीत प्रकाशन लि० | प्रति अंक : एक रुपया
विशेष सस्करण : पन्द्रह रुपये | ३४१, तारदेव, बम्बई-७ | विशेष सस्करण : डेढ रुपया

सचालक
श्रीगोपाल नेवटिया

सम्पादक
रतनलाल जोशी

वष ४ : : अक १२ — दिसम्बर १९५५

# त्याग

अपने जिज्ञासु पुत्र कच के निरन्तर पूछने पर बृहस्पति ने कहा—"वत्स, त्याग ही परम कल्याण का साधन है तू त्याग का अवलम्ब ले। किंतु सर्वस्व त्याग देने पर भी जब कच को परमानन्द का अनुभव न हुआ, तो वह फिर बृहस्पति के पास पहुँचा। देवगुरु कच के सारे विभ्रम को समझ गये। सस्मित बोले—"तात, त्याग का अर्थ वस्तु का त्याग नहीं, उस वस्तु सम्बधी ममत्व एव अहंकार का त्याग है। जब तक जीवन है, वस्तु की अपेक्षा तो अनिवार्य है। अत वस्तु त्याज्य नहीं, त्याज्य है वस्तु की भोगवासना, उसकी सग्रह लिप्सा!"

—'अपरोक्षानुभूति' के आधार पर

# अपनी आत्मा के मार्ग पर अटल हूँ

साहित्य तो सर्जन की कला है। कला में कलाकार चिरंतन सत्य को अवश्य व्यक्त करता है, मगर उसे सम्मोहक वेशभूषा में सजाकर। यद् ऋतुओं के लक्षण सर्वविदित हैं, किंतु कालिदास 'ऋतुसंहार' का ऋतुवर्णन अपना निराला ही वैभव रखता है। लेकिन साहित्यकार जब पत्र लिखता है, तो उसकी व्यक्तिमत्ता जैसी है, वैसी ही शब्दों में आ उतरती है। यही तो रहस्य है कि टालस्टाय ने गोर्की से कहा था—"मेरे वैयक्तिक पत्रों को एक बार पढ़ जाओ, तो मेरी रचनाओं के बारे में तुम्हारी सारी शंकाएं निर्मूल हो जायेंगी!" हम यहाँ स्वामी विवेकानन्द का एक महत्वपूर्ण पत्र प्रकाशित कर रहे हैं। इस में उनके व्यक्तित्व की सारी मौलिक रेखाएं व्यक्त हो गयी हैं। और पत्र-लेखन-कला की दृष्टि से तो यह पत्र मानो सर्वोत्तम सिद्धि का अनन्य प्रतीक ही है—लगता है जैसे एक-एक शब्द सजीव विवेकानंद का कार्बनिक रूप हो!

★

५८, डब्ल्यू ४,
३३वीं स्ट्रीट, न्यूयार्क
१ फरवरी, १८९५.

प्रिय बहन,

मुझे अभी-अभी तुम्हारा स्नेहपूर्ण पत्र मिला। .. हाँ, काम करने के लिए यदि कभी निन्दित भी होना पड़े, तो इससे अभ्यास का एक क्रम ही बनता है। इस काम का फल न भी मांगने का मिले, तो क्या? .. मैं तुम्हारी आराधनाओं से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। मुझे किसी बात की चिंता या खेद नहीं है। अभी कल की बात है कि, मिस 'टी' के यहाँ एक प्रेसबिटेरियन महाशय से मेरा गहरा विवाद हो गया। वे महाशय जैसी कि, उनकी प्रकृति है, शीघ्र ही गरम हो गये और क्रोध के आवेश में उन्हें सभ्यता का भी ध्यान नहीं रहा। अस्तु, उन महाशय के चले जाने पर मिसेज 'टी' ने मुझे इसके लिए काफी उलाहने दिये, क्योंकि उनका विश्वास था कि, ऐसे विवादों के चक्कर में पड़कर मेरे काम की हानि होती है। यही तुम्हारी भी सम्मति जान पड़ती है।

मैं इस सामयिक चेतावनी की प्रशंसा करता हूँ, क्योंकि आजकल यह मेरे चिन्तन का एक विषय बन गया है। प्रथम तो मुझे इन सब बातों से कोई ग्लानि नहीं होती। तुम शायद इससे सहमत न हो—मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि, संसार में उन्नति करने के लिए मृदुभाषी होना कितना अच्छा . मैं प्राय हर एक काम इसी दृष्टि से करता भी जाता हूँ। परन्तु जब

कभी ऐसा अवसर उपस्थित हो जाता है कि, *यथार्थ से इसमें विरोध की आशंका* होने लगती है, उसी क्षण में रुक जाता हूं। सुशील होना अच्छा है, पर अतिशय नम्रता में मैं विश्वास नहीं करता। मेरा आदर्श है 'समदर्शिता,' जिसमें हर किसी के साथ समान बर्ताव करने की शिक्षा दी जाती है। साधारण मनुष्य का कर्त्तव्य है कि, *वह अपने स्वामी—समाज—के आदेशों और* नियमों का पालन करे, परन्तु सत्य के पुत्र इस नियम से बाध्य नहीं होते। यह एक सनातन मर्यादा चली आ रही है कि, हरएक को यहां अपनी परिस्थिति के अनुसार वातावरण और समाज की *प्रगति देखकर चलना पड़ता* है। इसका समाज उसे हर तरह की सुविधाएं देने को तैयार है। परन्तु सत्य का पथिक इसके विपरीत अकेला खड़ा होकर समाज की गति-विधि का निरीक्षण किया करता है। यों तो समाज का दास बनकर मनुष्य को जीवन के सभी प्रकार के आनंद भोगने को मिल सकते हैं, और समाज के प्रतिकूल चलनेवालों का जीवन नितान्त कष्टमय व्यतीत होता है। पर अंतिम सत्य यह नहीं है। समष्टि की पूजा करने वाले क्षण में विशिष्ट हो जाते हैं। ,...य के पुजारी संसार में अमर होकर रहते हैं।

[स्वामी विवेकानंद]

*मैं यहां सत्य की तुलना जलाकर राख* देने वाली विनाश-शक्ति से करूंगा। जहां कहीं वह प्रवेश करती है, सब जलकर 'स्वाहा' हो जाता है। कोमल पदार्थों पर उसका प्रभाव शीघ्र पड़ता है, ठोस पदार्थ तनिक देर में पिघलते हैं। परंतु वह शक्ति प्रत्येक दशा में अपना *काम करती अवश्य है। इसे ध्रुव समझो।* बहन, मुझे अत्यंत खेद के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि, मैं अपने को विनम्र और सुशील *नहीं बना पाता।* इसी तरह प्रत्येक काली करतूत को भी ज्यों-का-त्यों मान लेने के लिए मैं विवश नहीं *हूं। मैं ऐसा कभी नहीं* कर सकता। जिसने आजीवन कष्ट झले हैं, उसे कैसे इतना शीघ्र भूल जाऊं। नहीं-नहीं, ऐसा कदापि न होने दूंगा। मैं अच्छी तरह विचार कर देख चुका हूं। अंत में इसका त्याग ही मुझे *कल्याणकर* प्रतीत हुआ। ईश्वर की विचित्र महिमा है। वह मुझ पर कभी ढोंग का मिथ्या आरोप सहन नहीं कर सकेगी। इसलिए जैसा कुछ होता है, होने दो। *मेरा मार्ग* ही ऐसा है जो हर एक को कभी रुचिकर नहीं हो सकता और मैं भी अपनी वर्तमान स्थिति का परित्याग करने में असमर्थ हूं। मैं अपने को कभी

धोखा नहीं दे सकता। यौवन और सौंदर्य का मोह क्षणिक है, जीवन और सम्पत्ति नाशवान है, नाम और यश स्थायी नहीं हो सकते यहाँ तक कि, पर्वत भी धूलि में मिल जाते हैं। मित्रता और प्रेम का विनाश होकर रहेगा। केवल सत्य का सम्बन्ध सनातन से है।" हे, मेरे सत्य देवता! तुम्हीं मेरा पथ निर्दिष्ट करना। मैं अब अपने को दूध और शहद में परिणत नहीं कर सकता। मुझे वैसा ही बना रहने दो जैसा कि, मैं हूँ। "निर्भय होकर, बिना क्रय-विक्रय करते हुए मैत्री और वैर की भावना छोड़कर, हे सन्यासी! तू सत्य का स्वल्प पकड़ और इसी क्षण संसार से अपने को मुक्त हुआ ही जान! भविष्य की चिंता क्यों करता है? क्यों सांसारिक लिप्सा तुझे नहीं छोड़ती? सत्य, तू ही मेरा पथ-निर्देशक बन।" मुझे धन, यश और नाम से कोई प्रयोजन नहीं है। वहन, मेरे लिए ये धूलि के समान हैं। मैं केवल अपने भाइयों की सहायता करने आया था। मुझ में धन उपार्जन करने की योग्यता नहीं है। ईश्वर ही रक्षक है। कौन-सा ऐसा प्रबल आकर्षण है, जो मुझे इस अन्तरतम में निश्चल सत्य को छोड़कर बाह्य विषयों की ओर खींच ले जा सकता है? बहन, मैं मानता हूँ कि, यह मस्तिष्क इतना दुर्बल है कि, इसे कभी-कभी संसार की सहायता लेनी ही पड़ जाती है। परंतु इससे मुझे कोई भय नहीं होता। मेरा धर्म कहता है कि, भय सबसे बड़ा पाप है।

पिछली बार प्रेसबिटेरियन पादरी के साथ उलझकर तथा उससे बाद मिसेज 'बी' से विवाद कर मैं ठीक समझ सका हूँ कि, मनु के शब्दों में सन्यासी का क्या कर्तव्य है—"अकेले रहो और बिना साथी के चला करो। सारी मैत्री और सम्पूर्ण प्रेम-बंधन सीमित हैं।" मित्रता और वह भी स्त्रियों के साथ, तो कभी किसी नहीं। महर्षियो! तुम्हारे विचार कितने संतुलित और ध्रुव थे। सत्य के देवता की सेवा करने का अधिकारी वह व्यक्ति नहीं है, जो दूसरे का आश्रय ढूँढता है। मेरे अंतर! शान्त हो जा!! अकेले विहार करना सीख!!! ईश्वर तेरा साथी। जीवन भी क्या है? मृत्यु क्या भ्रम नहीं है? यह सब तो कहीं कुछ भी नहीं है। केवल ईश्वर की व्यापक सत्ता का ही

## श्रेष्ठतम दीपक

अल्ला विळक्कुम् विळक्कल्ल
नान्रोर क्क पाय्या विळक्के विळक्कु।

—सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि तथा प्रकाश नाम दीपक केवल बाह्य अंधकार का अपहरण कर सकने में समर्थ हैं। अन्तर के अंधकार का हरण की क्षमता का एकमात्र सत्य दीप में है। इसी लिए विद्वज्जनों ने सत्य का ही श्रेष्ठतम दीपक कहा है।

—महर्षि तिरुवल्लुवर

अनुभव हमें चारो ओर होता है। मन तू निर्भय क्यो नही होता। स्वच्छद होकर विचरण कर। बहन, हमारी यात्रा लम्बी है। इसके लिए समय बहुत कम है और इधर अवसान की वेला निकट आती जा रही है। मुझे शीघ्र अपने घर जाना है। परतु अपने आचरण का लेखा भी ठीक करने का समय नही रहा। मैं अपना सदेश भी तो कैसे दूँ। इतना समय यहाँ मिल सकेगा ? तुम कितनी अच्छी हो, तुम में दया सौजन्य कूट-कूट कर भरा हुआ है। मैं तुम्हारे लिए क्या नही कर सकता ? परतु तुम मुझसे कभी रूष्ट न हो। तुम सब अभी बच्चे हो।

स्वप्न ! हाँ मैं अभी तक स्वप्न ही तो देख रहा था। अब स्वप्न से क्या प्रयोजन विवेक ! तू स्वप्न मत देखा कर। एक शब्द में तुझे एक सदेश देना है। तेरे पास इतना समय कहाँ है, जो तू ससार के साथ समझौता कर चल सके। यदि तू ऐसा करे भी, तो वह केवल तेरा ढोग होगा। वास्तव में, मैं हजार बार मरना भोग विलास के लिए जीने की अपेक्षा कही श्रेयस्कर मानता हूँ। मैं चाहे स्वदेश में हूँ अथवा विदेश में, इस मूर्ख जगत की कुछ आवश्यकताओं के आगे सिर क्यो झुकाऊँ ? क्या तुम्हे भी मिसेज 'बी' की तरह सदेह हो गया है कि, मुझे कोई काम करना है। मुझे ससार में कोई काम नही करना है। मेरा केवल एक सदेश है, जो मैं अपने ढग से कहूँगा। मेरे सदेश में हिन्दुत्व और न इस्लाइयत की गध मिलेगी। मैं ससार के किसी धर्म की सकीर्णता का सदेश लेकर नही आया हूँ। मैं केवल अपना व्यक्तिगत सदेश दूँगा। मेरा धर्म ही मोक्ष है। अपने धर्म पर सकट आया देखकर मैं उसकी हर तरह की शान्ति अथवा क्रान्ति द्वारा रक्षा के लिए तैयार हूँ। अहो ! मैं पादरी लोगों को क्यो परास्त करना चाहता हूँ ? बहन, इसका गलत अर्थ न लगाना। परतु तुम लोगो को शिशु मानकर इस विषय में कुछ उपदेश देना मैं कर्त्तव्य समझता हूँ। तुमने अभी उस स्रोत का जल कहाँ ग्रहण किया होगा जिसमें "विवेक-अविवेक, मर्त्य अमर, ससार केवल शून्य की कल्पना और मनुष्य देवता" बन जाता है, यदि बन पडे तो इस ससार के मोहरूपी जाल से अपने को मुक्त कर लो। तब मैं तुम्हे सचमुच साहसी और स्वाधीन समझूँगा।

यदि तुम ऐसा न कर सको, तो कम-से-कम उन्ही लोगो का उत्साह बढाओ जो समाजरूपी असत देवता के प्रति धर्म-युद्ध करने के लिए कटिबद्ध हैं और जो उसे चरणो के नीचे कुचल देने के लिए उठ खडे हुए हैं, जिनके जीवन का ध्येय ही समाज के प्रचलित आडबरो का निराकरण करना बन गया है। यदि उन्हे तुम प्रोत्साहन भी न दे सको, तो मौन रहना तुम्हारे अपने ही बश में है। उन्हे इस कीचड में घसीटने का प्रयत्न मत करो और न मुख पर 'समझौता' जैसे निरर्थक शब्द

का नाम लेकर उन्हें नम्र अथवा सुशील बनने की सीख दो।

मैं इस संसार को ही घृणा करने लगा हूँ–यह स्वप्न! ये डरावनी आकृतियाँ!! यहाँ के गिरजाघर और देवालय, पुस्तकें और अमानुषी व्यवहार, यहाँ के सौम्य चेहरे और उनके भीतर छिपी विकृत बुद्धि, सांसारिक न्याय, बाहरी हड़क-भड़क एवं अभ्यंतरिक कलुष और अन्याय, अत्याचार-उत्पीड़न तथा इन सबके ऊपर 'व्यावसायिकता'। संसार की धारणाओं के साथ मेरे विचारों का साम्य किस तरह स्थापित हो सकता है। व्यर्थ!!! वहन, तुमने सन्यासी देखे कहाँ हैं? "वे तो वेदों के भी शिखर माने जाते हैं!" ऐसा वेद में ही आया है; क्योंकि वे धर्म, देवालय, अवतार, धार्मिक ग्रंथ तथा उन सबके जो धर्म-प्रचार के अन्तर्गत अथवा बाहरी होते हैं, परे हैं। मेरी उनके विषय में भर्तृहरि के शब्दों में यही धारणा बनी हुई है कि,–सन्यासी! तू अपने मार्ग पर चलता जा। कोई तुझको पागल कहेंगे, कोई चाण्डाल कह कर घृणा करेंगे, परन्तु ऐसे लोग भी होंगे जो तुझे ऋषि मान कर तेरी बातों को बड़े ध्यान से सुनेंगे। सांसारिक जन की बातों का बुरा न मान। हाँ, जब वे तुझ पर प्रहार करें, उस समय इस बात को ध्यान में रख कि, हाथी बाजार से होकर निकल जाता है और उसके पीछे कितने ही कुत्ते भूँकते रह जाते हैं। वह सीधा अपने मार्ग पर चला जाता है। यही नियम है। जब कोई महान आत्मा पृथ्वी पर जन्म लेती है, तो उस पर भूँकने वाले लोगों का अभाव नहीं होता है।

मैं आजकल 'ल' के साथ ५४, डब्ल्यू ३३वीं स्ट्रीट में रह रहा हूँ। वे बड़े धीर और उदार व्यक्ति हैं। ईश्वर उनका मंगल करे। प्रायः शयन के लिए मुझे 'ग' के यहाँ जाना पड़ता है।

ईश्वर तुम लोगों को सुखी रखे और शीघ्र तुम्हें इस मूर्ख जगत की दुश्चिन्ताओं एवं अभिसन्धियों से मुक्त करे। यह संसार योगमाया का स्वरूप है। इससे तुम सब बचे रहो। महेश्वर, तुम्हारा कल्याण करे! देवी उमा तुम्हारे लिए अपने हाथों से सत्य का द्वार खोल दें जिससे तुम्हारा सारा मोह मिट जावे!!

तुम्हारा शुभाकांक्षी,
सस्नेह
विवेकानन्द

★

## भाग्यवान

सेई धन्य नरकुले लोये यारे नाहि भुले,
मनेर मंदिरे नित्य सेवे सर्वजन

–इस संसार में वही मनुष्य भाग्यवान है और उसीका जन्म सार्थक है, जिसकी मृत्यु के बाद भी लोग उसे भूल नहीं पाते और नित्य सभी के मन-मंदिर में जिसकी पूजा होती है।
—माइकेल मधुसूदन दत्त

★

युग निर्माता कवि जयशंकर 'प्रसाद' के साथ श्री वाचस्पति पाठक का घनिष्ठ स्नेह-मैत्रीभाव था। पाठकजी के पास 'प्रसाद'-सम्बंधी संस्मरणों की अनमोल निधि अभी तक अधिकांशतः अव्यक्त ही पड़ी हुई है। क्या ही अच्छा हो कि पाठकजी अवकाश निकालें और इस स्मृतिकोष को भारती के अर्पण करें! यहाँ हम पाठकजी द्वारा लिखित 'प्रसाद'जी का एक संस्मरण प्रकाशित कर रहे हैं!

*

प्रसादजी के लिखने में स्वान्त:सुखाय मूलमंत्र था। वे अपने साहित्य को अपने बुरे-से-बुरे समय में भी अर्थ-प्राप्ति का साधन नहीं बनाना चाहते थे। फिर भी कभी-कभी अपने ही साहित्य देव की कृपा से अर्थ खिचा चला आता था। ऐसे आये हुए अनाहूत अतिथि को किसी दूसरे को सौंप कर ही उन्हे चैन मिलता था। उन्होंने अनेक पुस्तक के प्रकाशकों से कोई रॉयल्टी नही ली। अपने जीवन-काल में मिली रॉयल्टी की रकम भी उन्होंने अपने निजी काम मे खर्च नहीं की। उन्होंने अपने प्रकाशक को आदेश दे रखा था कि, उनकी कोई पुस्तक किसी पुरस्कार-प्रतियोगिता में न भेजी जाय। इसी के परिणाम स्वरूप हिन्दी साहित्य सम्मेलन को यह नियम बनाना पडा कि, 'कामायनी' खरीदकर ही प्रतियोगिता में भेजी जाय। खडी बोली का वह सर्वप्रथम काव्य था, जिस पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ। 'कामायनी' प्रसादजी की अंतिम पूरी कृति है। उसकी छपी हुई प्रति उन्हे अपनी मरण-शय्या पर ही प्राप्त हुई थी। उसका छपा हुआ रूप देखकर उन्हे बडी प्रसन्नता हुई।

[ प्रसादजी ]

प्रसादजी को पदों से भी बडी विरक्ति थी। किसी सभा-समिति में आना-जाना

उतना न अखरता था, जितना कि, उनके किसी पद पर प्रतिष्ठित होकर वहाँ रहना। यही कारण है कि, श्यामसुन्दर दास जी के न डिगने वाले हठ के कारण किसी प्रकार नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी का उप-सभापतित्व एक बार उन्होंने स्वीकार कर लिया था। परन्तु सभापति तो कभी बनने को तैयार नहीं हुए। पदों के सम्बन्ध में उप-सभापति का पद ग्रहण करना उनके जीवन में एक अपवाद है। सार्वजनिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले व्यक्ति के लिए आज की दुनिया में अपने को इस तरह अलग रखना युक्ति-युक्त प्रतीत नहीं होता, पर प्रसादजी में यह सब सधता नहीं था। वे थे अलमस्त प्राणी। पत्रों का उत्तर तक वे नहीं दे पाते थे। इसी तरह पुस्तकों की भूमिका लिखना अथवा किसी पत्र पत्रिका के लिए सम्मति लिख देना भी उन्हें अभिष्ट नहीं था। इससे उनके मित्रों अथवा साथी लेखकों को कष्ट तक पहुँच जाता था। उनके इस नियम से भी कविवर निराला की 'गीतिका' के लिए लिखी गयी भूमिका अपवाद है।

प्रसादजी को अपने मित्रों एवं परिचितों की गोष्ठी में अपनी कविता सुनाना अच्छा लगता था। जिन दिनों 'आँसू' या 'कामायनी' काव्य लिखा जाता रहा, उन दिनों हर दूसरे-तीसरे सप्ताह हम लोग आग्रह करते थे कि, काव्य कुछ आगे बढ़ा हो, तो सुनाइये और प्रसादजी अगर रचना कुछ आगे बढ़ी होती, तो अवश्य सुना देते थे। उनके पढ़ने का ढंग भी बड़ा निराला था। अत्यंत मधुर और मादक, जिसे सुनकर लोग आनंद विभोर हो जाते थे, झूम उठते थे। एक बार की घटना मुझे ही नहीं, संभवतः अनेक लोगों के ध्यान में पड़ी होगी। काशी-नागरी प्रचारिणी सभा का कोई उत्सव मनाया जा रहा था। पंडाल आगन्तुकों एवं दर्शकों से खचाखच भरा था। वहाँ मंच के निकट चिकों का घेरा बनाकर महिलाओं के बैठने का प्रबंध किया गया था और उसमें भी तिल रखने की जगह नहीं थी। बड़ा शोर हो रहा था। उस समारोह में न जाने क्या सोच कर प्रसादजी अपनी कविता सुनाने को तैयार हो गये। वे मंच पर पहुँचे और बैठ कर अपने नये लिखे जाने वाले काव्य 'कामायनी' का लज्जावाला अंश पढ़ने लगे।

### उद्बोधन

बनो संसृति के मूल रहस्य,
तुम्हीं से फैलेगी यह बेल।
विश्व भर सौरभ से भर जाय,
सुमन के खेलो सुंदर खेल॥

* * *

औरों को हँसते देखो मनु,
हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो,
सब को सुखी बनाओ॥

—प्रसाद

फिर क्या कहना ! उस स्वर की बरसात में कौन नही भीग उठा।

प्रसादजी अत्यत सुरुचि-सम्पन्न व्यक्ति थे। उन्हे सुदर वस्त्र पहनने का शौक था। वे खादीधारी थे और खादी का अच्छे-से-अच्छा माल उन्ही के हाथो बिकता था। सुन्दर वस्त्र को देखकर वे अपने को रोक नही सकते थे। कस्तूरी, केसर, पश्मीना या रेशम हाथ में लेते ही वे उसका अस्तित्व जान जाते थे। रत्नो के भी वे अच्छे पारखी थे।

उन्हें खाने और खिलाने का बहुत शौक था। वे स्वय भी पाकविद्या में अत्यत निपुण थे। मित्रो के आने पर प्राय वे कुछ-न-कुछ ऐसी चीजें अवश्य खिलाते-पिलाते जिसकी याद कुछ दिनो मन में बसी रहती। इस सम्बध में उनके नये-नये अनुसधान भी चलते रहते।

वे इत्रो के भी अच्छे पारखी माने जाते थ। उन्होंने विविध इत्रों के मेल से अनेक नये इत्र तैयार किये थे। पान की गिलौरियाँ खाना उनका प्रिय व्यसन था।

सगीत में उन्हे लोकगीतों से विशप प्रेम था। यों तो शास्त्रीय सगीत भी उन्हे अच्छा लगता था पर सीधे-सादे ढग से मधुर गले से गाया हुआ भावपूर्ण गान ही उन्हें खीचता था।

प्रसादजी भारतीय सस्कृति के सच्चे अनुयायी थे। उनकी आस्था शैव मत में थी, जो उन्हे कुल-परम्परा से मिली थी। भारतीय दर्शनशास्त्र और उपनिषदो का वे निरतर अध्ययन करते रहते थे। पर वे रूढिवादी नही थे। गाधीजी की विचार धारा से भी वे प्रभावित हुए। अन्यथा ढाके की मल्मल के कुरते और जरी के किनारे की धोतियाँ छोड कर वे खद्दर धारण नही कर पाते।

प्रसादजी को बनारस से विशेप प्रेम था। अपने अतिम दिनो में बीमार पडने पर उन्हे निश्चय हो गया था कि, वे अब बचेंगे नही। उन्हे यक्ष्मा हो गया था। यक्ष्मा के इलाज के लिए लोगो की राय थी कि, वे पहाड पर अथवा कही शहर के बाहर जाकर रहे, किन्तु यह उन्हें स्वीकार नही था। वे वाराणसी के भीतर ही अपना प्राण त्याग करना चाहते थे। इससे कुछ लोग समझने लगे कि, आर्थिक सकट अथवा हठवश ऐसा कर रहे हैं। पर बात ऐसी नही थी। उन दिनो मैं भी कालाजार से पीडित था। किसी को विश्वास नही था कि, मैं बच जाऊँगा। तभी एक दिन बनारस से किसी एक मित्र ने सूचना दी कि, प्रसादजी तुम्हे बहुत याद करते हैं। मैं यह जानते ही अशक्त होने पर भी तत्काल बनारस गया। वहाँ पहुँचने पर जो-कुछ देखा, वह नश्वरता की चरम सीमा थी। वह शरीर, वह स्वास्थ्य, वह मुस्कराहट—सब रोग के भयानक तुषारपात के कारण विनष्ट हो गया था। कुछ न कह सका, न पूछ सका, केवल सिर झुकाया और पीछे लौट पडा। अब वहाँ जैसे कुछ शेष न था।

*

# पाषाणों के अन्तरोद्गार

पुरातत्व एवं इतिहास के विद्वान लेखक श्रीकृष्णदत्तजी वाजपेयी का एक शोधपूर्ण लेख

★

प्राचीन भारत में पाषाण का प्रयोग मूर्ति-निर्माण तथा इमारतों के बनाने में विशेष रूप से होता था। साथ ही पत्थर पर विविध लेखों को उत्कीर्ण कराने की भी प्रथा थी, जिससे उन लेखों को चिरकाल तक सुरक्षित रखा जा सके। प्राचीन समय में, जबकि पुस्तकों के मुद्रण की व्यवस्था नहीं थी और हाथ से लिखे जाने वाले, ग्रंथों का भी प्रयोग बहुत कम था, भारत के विभिन्न भागों में विविध शिलापट्टों पर लेख खुदाए गये। मौर्य सम्राट अशोक से पहले के शिलालेख इने-गिने उपलब्ध हुए हैं। अशोक के लेखों की संख्या काफी बड़ी है। इस प्रियदर्शी सम्राट ने अपने कर्मचारियों और प्रजा के लिए अनेक राजाज्ञाएं जारी कीं और उन्हें भारत के विभिन्न प्रदेशों में पहाड़ की चट्टानों और ओपयुक्त (पालिसदार) खंभों पर उत्कीर्ण करवाया। अशोक के समय में प्रायः समस्त भारत में ब्राह्मी लिपि चलती थी, केवल उत्तर-पश्चिमी भागों में खरोष्ठी लिपि का चलन था। यह खरोष्ठी लिपि उर्दू की तरह दाहिने से बाएँ तरफ लिखी जाती थी। अशोक के लेखों की भाषा पाली है। यह उस समय जन-साधारण की भाषा थी; और इसी-लिए उसका प्रयोग किया गया। अशोक के बाद अभिलेखों की परंपरा प्रायः अविच्छिन्न रूप से मिलती है। जिन राजवंशों ने भारत के विभिन्न भागों में शासन किया उन्होंने अपनी विजय, संधि, शासन-व्यवस्था, धार्मिक कार्यों आदि का विवरण अभिलेखों में अंकित करवाया है।

प्राचीन अभिलेखों के मुख्य विषय हैं— राजवंशों का वर्णन, विजय-यात्रा, युद्ध, दान तथा जनता के हित में किये गये विविध कार्यों का उल्लेख। इन लेखों की रचना प्रायः राजदरबार के लेखकों और कवियों द्वारा गद्य या पद्य में की जाती थी। इसके बाद रचना को पत्थर-तराशों या धातु-उत्कीर्णकों को दे दिया जाता था। वे निर्देशानुसार उस लिपिबद्ध रचना को पत्थर या विभिन्न धातुओं के पत्तरों पर खोद देते थे। मिट्टी के पत्तरों तथा लकड़ी आदि पर भी कुछ प्राचीन लेख मिले हैं, पर उनकी संख्या अधिक नहीं है। यद्यपि अधिकांश प्राचीन लेख टांक प्रकार से उकेरे हुए मिले हैं, किन्तु कुछ

लेखों में खुदाई करते समय अनेक अशुद्धियाँ रह गयी हैं। कहीं-कहीं भाषा-सम्बधी दोष भी मिलते हैं।

ऐसे लेख भी मिले हैं जिनमें भाषा और भाव सम्बधी अनेक विशषताएँ हैं। कहीं शब्दालकारों की छटा है, तो कहीं कल्पना की ऊँची उडान। कहीं प्रकृति की सुषमा का चित्रण हैं, तो कहीं विविध भावो की सुदर अभिव्यक्ति। अनेक अभिलेखो के पढने से मालूम होता है कि, उनके रचयिता महान कवि और कला-मर्मज्ञ थे। हम वाल्मीकि, भास, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति, माघ आदि कवियो के विषय म उनके उत्कृष्ट ग्रथो द्वारा जानते है। परन्तु अनेक प्राचीन कवि और लेखक, जिनकी रचनाएँ केवल पाषाण-खडो या ताम्रपत्रो पर ही सुरक्षित रह सकी हैं, आज विस्मृत-सी हैं। यहाँ हम कतिपय अभिलेख-कर्ताओ की रचनाओ के उदाहरण दे रहे हैं।

**रविल का मदसौर-लेख—**

मदसौर (मध्यभारत) में मालव सवत् ५२४ (४६७ ई ) का एक लेख मिला हैं, जो एक शिलाखड पर खुदा हुआ हैं। इस लेख की रचना रविल नामक कवि के द्वारा की गयी हैं। इस लेख में गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के लडके गोविंद गुप्त का उल्लेख हैं। गोविंद गुप्त के सेनापति वायुरक्षित के पुत्र का नाम दत्तभट था, जिसके द्वारा लोकहित के अनेक कार्य सपादित किये गये। उसने एक स्तूप का निर्माण कराया और उसके समीप एक कुआ, प्याऊ तथा वाटिका भी बनवायी। सर्वसाधारण के उपयोग के लिए उस कुए का उद्‌घाटन वसत ऋतु में किया गया, जबकि कुआ बनकर तैयार हो गया था। उस अवसर का सक्षिप्त वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है —

"भृगाग भारालस-
वालपद्मे,
काले प्रपन्ने
रमणीयसाले।
गतासु देशान्तरिता-
प्रियासु,
प्रियासु कामज्वल-
नाहुतित्वम॥
नात्युष्णशीतानिलकम्पितेषु,
प्रवृत्तमत्तान्यभृतस्वनेषु।
प्रियाधरोष्ठारुणपल्लवेषु
नवा सहत्सुपवनेषु कातिम्॥"

(अर्थात् कुआ और स्तूप आदि का निर्माण उस वसत में पूरा हुआ, जबकि भौरो के भार से बाल कमल झुक गये थे

## 'उदारचरितानाम्'

प्राचीरेर छिद्रे एक नामगोत्रहीन
फूटियाछे छोटो फूल अतिशय दीन।
'धिक धिक' करे तारे कानने सबाई–
सूर्य उठि बोले तारे 'भालो' आछो भाई?

—पत्थर की भीत के छेद में जब एक नाम-गोत्र से हीन, अतिशय दीन नन्हा कुसुम खिला, तब वन के सभी चिल्ला-चिल्लाकर उसे धिक्कार देने लगे। परन्तु सूर्य ने उदय होकर उसे पूछा–"कहो भाई, अच्छे हो न?" –रवीन्द्रनाथ ठाकुर

और शाल वृक्षों की शोभा रमणीय हो गयी थी, जबकि प्रोषित-पतिका यामिनियाँ व्यथा का अनुभव कर रही थीं और जब ऐसी मद हवाएँ बह रही थीं जो न तो अधिक गरम थीं और न अधिक ठंडी। उन हवाओं के संचरण से कुंजों के लता-वृक्षों में कंपन उत्पन्न हो रहा था। उस समय मत्त कोकिल मृदुस्वर से अलाप रही थीं और उपवनों की नवीन कोंपलें सुंदरियों के अधरोष्ठों की तरह अरुण वर्ण वाली हो गयी थीं।)

बत्समट्टि का लेख –

मंदसौर में शिवना नदी के घाट पर लगे हुए एक अन्य बड़े शिलापट्ट पर सं. ५२९ (४७२ ई.) का एक लेख खुदा है। इसके लेखक का नाम वत्समट्टि दिया हुआ है। चवालीस श्लोकों में यह लेख समाप्त हुआ है, जिसमें शार्दूल विक्रीडित, वसंततिलका, आर्या, उपेंद्रवज्रा, मदाक्रांता आदि छंदों का व्यवहार किया गया है। लेख में अनुप्रास-अलंकार का सुंदर प्रयोग मिलता है। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक की छटा स्थान-स्थान पर देखने को मिलती है।

इस लेख में दशपुर (जो मंदसौर का पुराना नाम था) के एक विशाल सूर्य-मंदिर का, वहाँ के रेशम के व्यापारियों द्वारा, जीर्णोद्धार कराने का वर्णन है। यह मंदिर कुछ समय पूर्व इन व्यवसायियों की श्रेणी द्वारा बनवाया गया था। लेख में दशपुर नगर तथा वहाँ के निवासियों के काव्यमय वर्णनों के साथ प्रकृति का मनोहर चित्रण इस प्रकार मिलता है :–

"विलोलवीचीचलितारविंद-
पतद्रजः पिंजरितैश्च हंसैः।
स्वकेसरोदारभरावभुग्नैः
क्वचित्सरांस्यम्बुरुहैश्च भांति॥८॥
स्वपुष्पभारावनतैर्नगेन्द्रै-
र्मदप्रगल्भालिकुलस्वनैश्च।
अजस्रगाभिश्च पुरांगनाभि-
र्वनानि यस्मिन्समलंकृतानि॥९॥
चलत्पताकान्यबलासनाथा-
न्यत्यर्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि।
तडिल्लताचित्र सिताभ्रकूट-
तुल्योपमानानि गृहाणि यत्र॥१०॥"

(अर्थात् उस दशपुर में स्थान-स्थान पर सरोवर थे, जिनमें उठी हुयी चचल लहरें कमलपुष्पों को हिला-डुला देती थीं, जिससे कमलों की पीली पुष्पराज सरोवर में तैरते हुए हंसों की पीठ पर गिर पड़ती थी और उन सफेद हंसों को पीला कर देती थी। किसी-किसी तालाब में अपने केसर के भार से कमलिनियाँ झुकी जा रही थीं। उस नगर के उपवन फूलों से लदे हुए विटपों से सुशोभित थे, जिन पर मस्त भौंरे गूँज रहे थे। नगरी की वनिताएँ उन उपवनों में विविध प्रकार के गीत गा रही थीं। और उस दशपुर में विशाल भवन थे, जिनके ऊपर पताका फहर रहे थे। ऊँची सफेद अट्टालिकाएँ, जिनके ऊपर सुंदरियाँ बैठी हुई थीं, ऐसी लग रही थीं मानों बिजली संयुक्त शुभ्र मेघमालाएँ हों।)

इस शिलालेख में दशपुर के रेशम के व्यवसायियों द्वारा तैयार किये गये वस्त्रों का भी अत्यंत रोचक वर्णन किया गया है –

"तारुण्यकान्त्युपचितोपि सुवर्णहार–
ताम्बूलपुष्पविधिना समलंकृतोपि ।
नारीजन: प्रियमुपैति न तावदग्र्या,
यावन्न पट्टमयवस्त्रयुगानिधत्ते ।२०।।"

(यौवन और सौंदर्य से संपन्न महिलाएँ, चाहे वे स्वर्णहार तथा ताबूल-पुष्पादि से अलंकृत ही क्या न हों, तब तक अपने शृंगार को अपूर्ण मान कर प्रिय के पास जाने में लजाती हैं, जब तक उनके पास दशपुर का बना हुआ रंगीन रेशमी वस्त्र-युगल न हो।)

**मैसूर राज्य का तालगुंड-लेख –**

कदंबराज शांतिवर्मा का तालगुंड लेख भी काव्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह लेख मैसूर राज्य के शिमोगा जिले में तालगुंड नामक स्थान पर प्रणवेश्वर के भग्न मंदिर के सामने एक शिला पर उत्कीर्ण है। इसका समय ई. छठी शती का प्रारंभ है। लेख के ३१ वें श्लोक से पता चलता है कि, उत्तर भारत के प्रसिद्ध गुप्त वंश तथा कतिपय अन्य राजवंशों के साथ वैवाहिक सम्बंध स्थापित कर कदंबों ने अपनी राजनीतिक शक्ति को मजबूत बनाया था। इस बात को लेख के रचयिता ने, जिसका नाम कुब्ज दिया हुआ है, इस प्रकार व्यक्त किया है -

गुप्तादिपार्थिवकुलाम्बुरुहस्थलानि
स्नेहादर प्रणयसंभ्रमकेसराणि।
श्रीमन्त्यनेकनृपषट्पद सेवितानि
योबोधयद् हितदीधितिभिनृपार्क ।।३१।।

कदंबराज शांतिवर्मा ने, जो सूर्य के समान तेजस्वी था, गुप्तादि उन राजवंशों से अपना संबंध जोड़ा जो अस्फुट कमल-पुष्पों के समान थे, जिन में स्नेह, आदर, प्रेम और प्रतिष्ठा पूंजीभूत थी और जो भ्रमर रूपी अनेक शक्तिशाली राजाओं द्वारा सेवित थे। ये सम्बंध शांतिवर्मा ने अपनी कन्याओं को उक्त राजकुलों में विवाहित करके स्थापित किये–जो कन्याएं सूर्य की उन किरणों के सदृश थी जो कमलकली को प्रफुल्लित और विकसित करती हैं।

उक्त श्लोक का उत्प्रेक्षालंकार ध्यान देने योग्य है। कमलावलि तब तक प्रफुल्लित एवं विकसित नहीं होती जब तक सूर्य की किरणें उस पर न पड़ें। कवि ने जिस कुशलता के साथ कन्या-प्रदायी अपने राजा की, सम्बंधित राजकुलों की अपेक्षा, उन्नतता और महानता की ओर संकेत किया है वह सराहनीय है। कवि के अनुसार गुप्तादि राजकुल कदंबवंश से सम्बंध स्थापित होने के बाद ही अधिक अभ्युदय एवं विकास को प्राप्त हुए।

★

सफलता की कोई भी कुंजी तब-तक काम नहीं करती जब-तक कि, आप स्वयं ही उस काम को न करें। ★ —लोकमान्य तिलक

# मंगल-दृष्टि

गीता के छठे अध्याय में वर्णित ध्यानयोग की आधारशिला 'समदृष्टि' की जीवनमुक्त संत विनोबाजी द्वारा एक अपूर्व व्याख्या। कुछ गौर से पढ़ें तो आपको विनोबाजी और महाभारत भागवतकार व्यासजी की निरूपण प्रणाली में बड़ा रोचक सादृश्य मिलेगा।

★

समदृष्टि का अर्थ है—शुभ दृष्टि। शुभ दृष्टि प्राप्त हुए बिना चित्त एकाग्र नहीं हो सकता। सिंह इतना मस्त वनराज है, परंतु चार कदम चलकर पीछे देखता है। हिंसक सिंह को एकाग्रता कैसे प्राप्त होगी? शेर कौवे, बिल्ली, इनकी आँख हमेशा फिरती रहती है। निगाह उनकी चौकसी लगायी हुई होती है। हिंस्र प्राणियों का ऐसा ही हाल रहेगा। साम्य दृष्टि आनी चाहिए। यह सारी सृष्टि मंगलमय मालूम होनी चाहिए। जैसा मुझे खुद अपने पर विश्वास है, वैसा ही सारी सृष्टि पर मेरा विश्वास होना चाहिए। यहाँ डरने की बात ही क्या है? सब कुछ शुद्ध और पवित्र है।

"विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवाः।"

यह विश्व मंगलमय है, क्योंकि परमेश्वर उसकी देखभाल करता है। अंग्रेज कवि ब्राउनिंग ने भी ऐसा ही कहा है—

"ईश्वर आकाश में विराजमान है और उसका बनाया संसार सब ठीक तरह से चल रहा है।"

संसार में कुछ भी बिगाड़ नहीं है। अगर बिगाड़ कहीं है, तो वह है मेरी दृष्टि में। जैसी मेरी दृष्टि, वैसी ही यह सृष्टि। यदि मैं लाल रंग का चश्मा चढ़ा लूँगा, तो सारी सृष्टि लाल-ही-लाल दिखायी देगी, जलती हुई दिखायी देगी।

रामदास रामायण लिखते जाते एवं शिष्यों को पढ़कर बताते जाते थे। हनुमान भी गुप्त रूप से उसे सुनने के लिए आकर बैठते थे। समर्थ रामदास ने लिखा था—"हनुमान अशोक-वन में गये। वहाँ उन्होंने सफेद फूल देखे।" यह सुनते ही वहाँ झट से हनुमान प्रकट हो गये और बोले—"मैंने सफेद फूल नहीं देखे, लाल देखे थे। तुमने गलत लिखा है, उसे सुधार लो।" समर्थ ने कहा—"मैंने ठीक लिखा है। तुमने सफेद ही फूल देखे थे।" हनुमान ने कहा—"मैं खुद वहाँ गया था और मैं ही झूठा?" अंत में झगड़ा रामचंद्रजी के पास गया। उन्होंने कहा—"फूल तो सफेद ही थे; लेकिन हनुमान की आँखें क्रोध से लाल हो रही थीं, इसलिए वे शुभ्र पुष्प उन्हें लाल दिखायी दिये।" इस मधुर कथा का आशय यही

है कि, संसार की ओर देखने की जैसी हमारी दृष्टि होगी, संसार भी हमें वैसा ही दिखाई देगा।

यदि हमारे मन को इस बात का निश्चय न हो कि, यह सृष्टि शुभ है, तो चित्त की एकाग्रता नहीं हो सकती। जब तक मैं यह समझता रहूँगा कि, सृष्टि बिगड़ी हुई है—तब तक मैं शंका दृष्टि से चारों ओर देखता रहूँगा। कवि पक्षियों की स्वतंत्रता के गान गाते हैं। उनसे कहना चाहिए कि, जरा एक बार पक्षी होकर देखो तो। फिर उसकी आजादी की सही कीमत मालूम हो जायगी। पक्षियों की गर्दन बराबर आगे-पीछे घूमती रहती है। उन्हें सतत दूसरों का भय लगा रहता है। चिड़िया को आसन पर ला बिठाओ। क्या वह एकाग्र हो जायगी? मेरे जरा निकट आते ही वह फुर्र से उड़ जायगी। वह डरेगी कि, कहीं यह मुझे मारने तो नहीं आ रहा है? जिनके दिमाग में ऐसी भयानक कल्पना है कि, यह सारी दुनिया भक्षक है—संहारक है, उन्हें शांति कहाँ? जब तक यह खयाल दिमाग से न निकलेगा कि, मेरा एक मैं अकेला ही हूँ, बाकी सब भक्षक हैं, तब तक एकाग्रता नहीं हो सकती। समदृष्टि की भावना करना ही उसका उत्तम मार्ग है। आप सर्वत्र मांगल्य देखने लग जाइये, चित्त अपने-आप शांत हो जायगा।

किसी दुःखी मनुष्य को कल-कल बहने-वाली नदी के किनारे ले जाइये। उसके स्वच्छ शांत प्रवाह को देखकर उसकी बेचैनी कम हो जायगी। वह अपना दुःख भूल जायगा। उस झरने में, उस प्रवाह में, इतनी शक्ति कहाँ से आ गयी? परमेश्वर की शुभ भक्ति उससे प्रकट हुई है। वेदों में झरने का बड़ा ही सुंदर वर्णन है—

"अतिष्ठन्तीनाम्
अनिवेशनानाम्"

ऐसे ये झरने हैं। झरना अखंड बहता है, उसका अपना कोई घर-बार नहीं, वह संन्यासी है। ऐसा पवित्र झरना एक क्षण में मेरे मन को एकाग्र बना देता है। ऐसे सुंदर झरने को देखकर प्रेम का, ज्ञान का स्रोत मेरे मन में क्यों न उमड़ पड़े?

यह बाहर का जड़ पानी भी यदि मेरे मन को इतनी शांति प्रदान कर सकता है, तो फिर मेरी मानस-दरी में

### परोपकारी

भवन्ति नम्रास्तरवः
फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्भूरिविलम्बिनो घना
अनुद्धता सत्पुरुषाः समृद्धिभि
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम ॥

—फल आने से वृक्ष झुक जाते हैं, नव वर्षा के समय बादल झुक आते हैं, सम्पत्ति प्राप्त करके सज्जन विनम्र हो जाते हैं—परोपकारियों का स्वभाव ही ऐसा है।

—कालिदास

यदि भक्ति और ज्ञान का चिन्मय झरना बहने लगे, तो मेरे मन को कितनी शांति प्राप्त होगी ? मेरे एक मित्र पहले हिमाचल में-काश्मीर में घूम रहे थे। वहाँ के पवित्र पर्वतों के, सुंदर जल प्रवाहों के वर्णन लिख-लिख कर मुझे भेजते थे। मैंने उन्हें उत्तर दिया कि, जो जल-स्रोत, जो पर्वत-माला, जो शुभ समीर तुमको अनुपम आनंद देते हैं, उन सबका अनुभव मुझे अपने हृदय में हो सकता है। अपनी अन्तर्दृष्टि में मैं नित्य उन सब रमणीय दृश्यों को देखता हूँ ; अब तुम्हारे बुलाने पर भी मैं अपने हृदय के इस भव्य-दिव्य हिमाचल को छोड़कर नहीं जाऊँगा।

"स्थावराणां हिमालय ।"

स्थिरता की मूर्ति के रूप में जिस हिमालय की उपासना स्थिरता लाने के लिए करनी है, उसका वर्णन सुनकर यदि मैंने अपना कर्तव्य छोड़ दिया, तो वह उल्टी ही बात होगी।

सारांश, चित्त को जरा शांत कीजिये। चित्त को सगुण-दृष्टि से देखिये, तो फिर आपके हृदय में अनंत झरने बहने लगेंगे। कल्पनाओं के दिव्य तारे हृदयाकाश में चमकने लगेंगे। पत्थर और मिट्टी की सुन्दर वस्तु देखकर यदि चित्त शांत हो जाता है, तो फिर अनुभूति के दृश्य देखकर क्यों न होगा ? एक बार मैं त्रावणकोर गया था। एक दिन समुद्र-किनारे बैठा था। वह अपार समुद्र, उसकी धूँ-धूँ गर्जना, सायंकाल का समय, मैं स्तब्ध, निश्चेष्ट बैठा था। मेरे मित्र ने वहीं समुद्र-किनारे कुछ फल वगैरह खाने के लिए ला दिये। उस समय वह सात्त्विक आहार भी मुझे जहर की तरह लगा। समुद्र की वह धूँ-धूँ गर्जना मुझे-"मामनुस्मर युद्ध च" इस गीता-वचन की याद दिला रही थी। समुद्र सतत स्मरण कर रहा था और कर्म भी कर रहा था। एक लहर आयी, वह गयी, और दूसरी आयी। उसे एक क्षण के लिए विश्रांति नहीं। यह दृश्य देखकर मेरी भूख-प्यास उड़ गयी थी। आखिर उस समुद्र में ऐसा क्या था ? ऐसे खारे पानी की लहरों को उछलते हुए देखकर यदि मेरा हृदय उछलने लगता है, तो फिर ज्ञान और प्रेम के अथाह सागर के हृदय में हिलोरें मारने पर मैं कितना नाच उठूँगा। वैदिक ऋषि के हृदय में ऐसा ही समुद्र हिलोरें मारता था—

"अन्तःसमुद्रे हृदि अन्तरायुषि
घृतस्य धारा अभिचाकशीमि
समुद्रादूर्मिर्मधुमानुदारत् "

इस दिव्य भाषा पर भाष्य लिखते हुए बेचारे भाष्यकारों की भी परेशानी होने की नौबत आ गयी। कैसी यह घृत की धारा ? कैसी यह मधु की धारा ? क्या मेरे अंतःसमुद्र में खारी लहरें उठेंगी ? नहीं, नहीं। मेरे हृदय में तो दूध, मधु और घी की लहरें हिलोरें मार रही हैं।

☆

अत्यत सहज सुलभता के कारण अग्नि का महत्व आज हमारी कल्पना में अंकित नहीं होता, किंतु मानव इतिहास में अग्नि से बड़ा आविष्कार आज तक नहीं हुआ। मनुष्य का आज तक का सारा इतिहास अग्नि के शोध की ही देन है। ऋग्वेद का अग्निसूक्त पढ़ जाइये, आपको अग्नि की महिमा की एक झांकी मिल जायेगी।

✶

वसुधरा पर जिस दिन अमृत-पुत्र 'मानव' ने अपने नेत्र खोले, उसी दिन से उसने अपने-आपको असहाय पाया। असहाय इस अर्थ में कि, उसके पैरों में हिरण के बच्चे के समान दौड़ने की क्षमता न थी—पक्षियों के समान उड़ने के लिए उसे पख नहीं दिये गये थे—मछलियों के समान तैरने की प्रतिभा उसमें नहीं थी—वह पेड़ पर बदरों के समान उछल-कूद भी नहीं सकता था—उसे पक्षियों के समान घोंसले भी बनाना न आता था—मधुमक्खियों की तरह छत्ते भी वह नहीं बना सकता था—कोयल के समान उसके कठ में स्वर भी न था।

अचल का दीप
[ चित्र: भारत-कला भवन, काशी में सगृहीत उस्ताद रामप्रसाद के एक रंगीन चित्र की रेखा प्रतिकृति ]

वह दीमक और चीटियों से भी अधिक मूढ़ और प्रतिभा-हीन था। ऐसे असहाय वेश में इस पृथ्वी पर मनुष्य का अवतार हुआ। सब प्रकार से हीन, इस पार्थिव प्राणी ने अपने नेत्र मूंदे और भीतर-ही-भीतर अपने अतःकरण में कातरता से अपनी स्थिति को समझने का प्रयत्न किया। उसके आश्चर्य की सीमा न रही, जब किसी ने उसे उत्तेजित करते हुए कहा —

> द्यौस्ते पृष्ठ पृथिवी
> सधस्थमात्मान्तारि
> क्षऽसमुद्रो योनि।
> विक्शाय चक्षुषा
> त्व म भि ति ष्ठ
> पृ त न्य त ॥

—हे मर्त्य, तू अपने को छोटा मत समझ। तू विशाल है, विस्तृत द्यौ-लोक तेरा पृष्ठ है, पृथ्वी तेरा आश्रय-स्थान है, अंतरिक्ष तेरी आत्मा है, समुद्र तेरी योनि है। खुले हुए नेत्र से देख—तू समस्त परिस्थितियों पर विजयी होगा। हे मर्त्य, तू अग्नि है, अग्नि-पुत्र है। पृथ्वी के गर्भ में से अग्नि का खनन कर—यह अग्नि तेरी विजय का एकमात्र आश्रय होगी।

असहाय मानव ने अंतःकरण की इस वाणी का स्वागत किया। एक व्यक्ति ने नहीं, मानव-समष्टि ने एक स्वर से घोषणा की— "वयं स्याम सुमतौ पृथिव्या अग्निं खनन्त उपस्थे अस्याः" 'हम सब इस पृथ्वी के गर्भ में से निरंतर अग्नि का खनन करते रहेंगे।" इस कार्य के लिए मानव-समष्टि में सुमति रहेगी, ऐसा आदमी—प्राणियों—का विश्वास था। सृष्टि के आदि में मनुष्य ने जो प्रतिज्ञा की, उसको उसने आज तक निभाया है। बार-बार ऋचा के शब्दों में मनुष्य ने कहा—"तं त्वगेम् सुप्रतीकमग्निम्, पृथिव्या सदस्थादग्नि पुरीष्यमङ्गिरस्वत् खनामि।"

कहा जाता है कि, जिस व्यक्ति ने अग्नि-खनन के इस कृत्य में नेतृत्व किया, वह अथर्वा या अंगिरस था। ऋचाओं का आदेश पाकर स्थान-स्थान पर मनुष्य ने अग्नि का खनन किया। जिस चिरस्मरणीय क्षण में उसके समक्ष अग्नि उपस्थित हुई, श्रद्धा से मनुष्य का मस्तक उसके सामने नत हो गया। सहज स्वर से उसके कंठ से ऋचा के रूप में मानो यह पहली स्तुति निकली—

'अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्यदेव मृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्'—

अंतःकरण में निःसृत की प्रथम प्रेरणा से मनुष्य ने अग्नि का आविष्कार किया, उस आदिदेव परम पुरुष का नाम भी मनुष्य ने 'अग्नि' रख दिया। यह भौतिक अग्नि परम श्रेष्ठ आत्म-अग्नि का दूत होने के कारण 'अग्नि-दूत' कहलाया और मानवमात्र ने 'अग्नि दूतं वृणी महे' शब्दों में उसका वरण किया—स्वागत और अभिनंदन किया। अग्नि की सहायता से मनुष्य ने अपनी परिस्थितियों पर विजय प्राप्त की। उसने असहाय होते हुए भी अपने को सबसे अधिक उत्कृष्ट बना डाला और धरातल के रूप को परिवर्तित कर दिया।

### मेरा कवि

लूँगा मैं उतना ही रस तो,
होगा जितना मेरा पात्र।
हो कितना कृतविद्य ग्राम को,
प्रकृति-पाठशाला का छात्र।
जाति बड़ी है, राष्ट्र और भी
बड़ा, विश्व का क्या कहना,
जल में, थल में और गगन में
मैं हूँ कौटुम्बिक कवि-मात्र।
—मैथिलीशरण गुप्त

मानव-प्रयासों के इतिहास में अग्नि का मंथन अब तक चला आ रहा है—सभ्यता और संस्कृति का इतिहास इस अग्नि के खनन, मंथन और दोहन का इतिहास है। जिस दिन अग्नि का यह यज्ञ समाप्त हो जायेगा, उस दिन इस धरातल से मानव का भी लोप हो जायगा। अग्निहोत्र का एकमात्र अधिकारी इस सृष्टि में मनुष्य है। अन्य प्राणी बलिष्ठ, प्रतिभा-सम्पन्न, रूपवान और अन्य गुणों से परिपूर्ण होते हुए भी अग्नि खनन के अयोग्य और इस यज्ञ के अनाधिकारी हैं। इस वसुधरा का वह स्थल धन्य है, जहाँ अंगिरस ने भौतिक अग्नि के दर्शन किये।

विज्ञान के आविष्कारों में सबसे बड़ा आविष्कार अग्नि का आविष्कार है। हमारी यह भावना है कि, यह आविष्कार भारत की भूमि में ही कहीं पर हुआ होगा अथवा जिस-किसी ने जहाँ-कहीं भी, इसका प्रथम साक्षात् किया हो, वह हमारा प्रथम पूर्व-पुरुष था और हम उसके उत्तराधिकारी हैं। जब कभी भी सोमयाग में अग्नि का मंथन होता है, इस पूर्व-पुरुष 'अथर्वा' का ऋक् के मंत्र से स्मरण किया जाता है—'त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वधत।'

अग्नि देवताओं में सबसे छोटा कहलाया और इसलिए सब से प्यारा, यह अतिथि माना गया और इसीलिए सबसे अधिक इसका सत्कार हुआ। मर्त्यलोक के मानव के पास सबसे अधिक प्रिय वस्तु थी घृत। मानव ने उससे इस अग्नि का समादर किया—'घृतैर्बोधयतातिथिम्, घृतेन वर्धयामसि।' ब्रह्म-सृष्टि में जो स्थान सूर्य का था, मानव-सृष्टि में वही स्थान अग्नि का रहा और इसीलिए जहाँ 'सूर्योज्योतिर्ज्योति सूर्य्य' वह कर सूर्य का स्मरण किया, वहीं 'अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्नि' भी उन्होंने कहा।

*

## पात्रता

एक बार जान रस्किन एक विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हो कर गये। विद्यार्थी बहुत बड़ी संख्या में उनका लेक्चर सुनने आये, लेकिन जब उन्हें मालूम हुआ कि, भाषण दूसरे दिन के लिए स्थगित हो गया है, तो उन्हें काफी निराशा हुई। दूसरे दिन फिर वे लोग वहाँ पहुँचे, मगर कम संख्या में, दूसरे दिन भी भाषण स्थगित हो गया। इस तरह लगातार चार दिनों तक रस्किन का भाषण स्थगित होता रहा। जब पाँचवाँ दिन आया, तो केवल दस-बारह ही छात्र वहाँ आये थे। संतोप-तृप्ति की मुद्रा में जान रस्किन ने मंच पर चढ़ते ही कहा—"मित्रो, अब कक्षा की काफी छँटाई हो चुकी है। आजसे हम अपना काम शुरू कर सकते हैं।"

—चार्ल्स एम्. क्रो

*

# किला अहमदनगर

मौलाना आज़ाद के एक संस्मरणात्मक लेख का संक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तर

*

आज साज़ोबर्गे काफ़िले-ए-बेसुदी मपुर्स।
बेनालामी रवद जरसे कारवाने मा॥

—हम अपने आपको भूले हुए हैं, हम से अपने काफ़िले की हालत न पूछ। हमारा काफ़िला तो इस प्रकार जा रहा है कि, काफ़िले की घंटियों से कोई दुःख का भाव भी पैदा नहीं होता।

कल सुबह तक वुसअत-आबाद (विस्तीर्ण) बम्बई में फ़ुर्सते-नग-हौसला की बेमायगी (समय की न्यूनता) का यह हाल था कि, ३ अगस्त का लिखा हुआ मक्तूबे-सफ़र (यात्रा-सम्बंधी पत्र) भी अजमलखान साहब के हवाले न कर सका कि, आपको भेज दें। लेकिन आज अहमदनगर के हिसारे-तंग (तंग किले) में उसके हौसले-ए-फ़राख की आसूदगियों (महान् धैर्य) देखिये कि, जी चाहता है, दफ़्तर-के-दफ़्तर (ग्रंथ-के-ग्रंथ) सियाह कर दूं (लिख डालूं)।

नौ महीने हुए, ४ दिसम्बर १९४१ को नैनी के मरकज़ी-कैदखाने का (केन्द्रीय-कारागार का) दरवाज़ा मेरे लिए खोला गया था, ९ अगस्त १९४२ को सवा दो बजे किले-ए-अहमदनगर (अहमदनगर के किले) के हिसारे-कोहना (पुराने घेरे) का नया फाटक मेरे पीछे बंद कर दिया गया। इस कारखान-ए-हज़ार शेवा-ओ-रंग (इस हज़ारों रंग-ढंग वाले कारखाने) में कितने ही दरवाज़े खोले जाते हैं, ताकि बन्द हों, और कितने ही बंद किये जाते हैं, ताकि खुलें। नौ माह (महीने) की बज़ाहिर (प्रकट में) कोई बड़ी मुद्दत नहीं मालूम होती।

दो करवटें हैं आलमे-ग़फ़लत में ख़्वाब की।

—(यह मुद्दत) बेख़बरी की अवस्था में स्वप्न की दो करवटें मात्र हैं, लेकिन सोचता हूँ तो ऐसा मालूम होता है, जैसे तारीख़ (इतिहास) की एक पूरी दास्तान गुजर चुकी हो।

नू सफ़हा तमाम शुद, औराक बर गरदद।

—जब पन्ने का एक पृष्ठ समाप्त हो जाता है, पन्ना उलट दिया जाता है। नयी दास्तान जो शुरू हो रही है, मालूम नहीं मुस्तकबिल (भविष्य) इसे कब और किस तरह ख़तम कर देगा।

फ़रेबे जहाँ किस्स-ए-रौशन अस्त।
बबीं ता चेह ज़ायद शब आबिस्तन अस्त॥

—दुनिया के छल-कपट की कथा यूं तो सब जानते हैं, परन्तु यह देखो कि, यह काली रात और क्या-क्या रंग दिखाती है?

यह अजीब इत्तिफ़ाक़ (संयोग) है कि, मुल्क में लगभग सारे तारीख़ी मुकामात

(ऐतिहासिक-स्थान) देखने में आये। मगर अहमदनगर का किला देखने का कभी इत्तिफाक नहीं हुआ था। किसी समय जब बम्बई में था, तो इरादा भी किया था, मगर फिर हालात ने मोहलत न दी। यह शहर भी हिन्दुस्तान के उन खास मुकामात में से है, जिन के नामों के साथ सदियों के इनकलाबों की दास्तानें जुड़ी हुई हैं। पहले यहाँ भेंगर नाम की नदी के किनारे, एक इसी नाम का गाँव आबाद था। पन्द्रहवीं सदी के आखिर में जब दकन की बहमनी हुकूमत कमजोर पड़ गयी तो 'मलिक अहमद-निजामुल-मुल्क भेरी' ने अलमे-इस्तेकलाल (धैर्य और साहस का झंडा) ऊँचा किया, और भेंगर के पास अहमदनगर की नींव रख कर उसे हाकिम-नशीन शहर (नगर जहाँ प्रमुख अधिकारी रहता हो) बनाया। उस वक्त से निजामशाही-राज्य की राजधानी यही शहर बन गया। 'फरिश्ता', जिसका खानदान, मासिदरों से आकर यहीं आबाद हुआ था, लिखता है—"कुछ सालों के अंदर इस शहर ने यह रौनक-व वुसअत (शोभा-और विस्तार) पैदा कर ली थी कि, बगदाद और काहिरा का मुकाबला करने लगा था।

करा पायमाल उश्त करमूदगी मुबाद,
दीरोज ऐशे वादिया आईना खाना बूद!

—जो पायमाल हो गया, उसकी पायमाली न देख! इससे क्या फायदा? वैसे तो यह मरुभूमि भी कल तक अपनी जगह एक शीशमहल के समान थी।

मलिक अहमद ने जो किला बनाया था, उसका हिसार (चहारदीवारी) मिट्टी का था। उसके लड़के बुरहान निजामशाह अव्वल ने उसे मुनहदिम करके (तोड़कर) अज-सरे-नौ (नये सिरे से) पत्थर का हिसार (चहारदीवारी) बनाया, और उसे इतना ऊँचा और मजबूत बनाया कि, मिस्र और ईरान तक उसकी मजबूती का गलगला (प्रसिद्धि) पहुँचा। १८०३ की मरहठों की दूसरी लड़ाई में जनरल-वेलेजली ने (जो आगे चल-कर ड्यूक-ऑव विलिंगटन हुआ) इस का मुआयना किया था। यह हालाँ कि, तीन सौ साल के इनकलाब (क्रांतियाँ) देख चुका था, फिर भी इसकी मजबूती में फर्क नहीं आया था। उस (वेलेजली) ने अपने मुरासिले (पत्र) में लिखा था कि, दकन के सारे किलों में सिर्फ वेलूर का किला ऐसा है, जिसे मजबूती के लिहाज से इससे अच्छा कहा जा सकता है।

कारवाँ रफ्ता व अन्दाज ए-जाहश पैदास्त,
जाँ निशाँहा कि ब-हर-राह गुजार उफ्तादस्त।

—काफिला चला गया, लेकिन उसका

[ मौलाना आज़ाद ]
[ चित्र श्री पन भोवे ]

वैभव अब भी उन-निशानों में झाँक रहा है, जो निशान, हर रास्ते पर (काफिले-वालों के कदमों से) बने हुए हैं।

यही अहमदनगर का किला है जिसकी पथरीली दीवारों पर, बुरहान निजाम शाह की बहन चाँदबीबी ने, अपने अज्म-व-शुजाअत (दृढ़निश्चयता और शौर्य) की यादगारे-जमाना (संसार में सदैव याद रखी जाने वाली) दास्तानें कुदा की थी (खोदी थी), और जिन्हें तारीख (इतिहास) ने पत्थर की सिलों से उतार कर अपने औराके-दफातिर (पन्नों और ग्रंथों) में महफूज (सुरक्षित) कर लिया है। अफसानों जुर्रे-एशाको हाले अहलेगोशतद की, कि अज जमशेदो कैखसरू हज़ारों दास्तों दारद।

–एक घूँट धरती पर छिड़को और इस प्रकार वैभवशालियों का परिणाम देखो, तो तुम्हें मालूम होगा कि, धरती की धूलि में सो जानेवाले उस घूँट की भाँति इस में जमशेद और खुसरू जैसे हज़ारों वैभवशालियों की दास्तानें छुपी पड़ी हैं।

इसी अहमदनगर के मारको (लड़ाइयों) में अब्दुर्रहीम खानखानाँ की जवाँमर्दी (शौर्य) की वह घटना दिखायी पड़ती है, जिसका हाल अब्दुल बाकी निहावन्दी और समसामुद्दौला ने हमें सुनाया है। जब अहमदनगर की मदद पर बीजापुर और गोलकुंडा की सेनाएँ भी आ गयीं और खानखानाँ की कसीरुत-तादाद (अल्पसंख्यक) सेना को सुहैल हब्शी की ताकतवर फौज से टकराना पड़ा, तो दौलतखान लोदी ने पूछा था–" चुनी अम्बोहे दर पेश व फतहे आस्मानी, अगर हादसा रू दहद, जाये निशाँ दहीद कि शुमारा दरयाबीम–" ("जिस समय तुम्हारे सामने शत्रु की भयंकर सेना है, और तुम अपनी विजय को एक ईश्वरीय देन समझते हो, परन्तु इसके विपरीत यदि कोई अप्रत्याशित घटना घट जाये, तो यदि हम तुम्हें ढूंढें तो तुम्हारा निशान और पता कहाँ होगा?")

खानखानाँ ने जवाब दिया था, "जेरे लाश-ए-मा!" (मेरी लाश के नीचे!) व नहनो उनासुन ला तवस्सुत बैनना, लनस्सदरो दूनल-आलमीन अवल्कबर

–हम ऐसे शूरवीर हैं कि, कोई हमारे बीच नहीं आ सकता, हमारा मुकाबला नहीं कर सकता। अगर कोई बीच में आया, तो फिर या हम संसार में नहीं रहते या फिर वहीं उसकी समाधि बन जाती है।

अहमदनगर के नाम ने हाफ्ज़े (स्मृति) के कितने ही मिटे हुए नुकूश (निशान) एकाएक ताजा कर दिये। अहमदनगर अपनी छः सौ साल की दास्तानें–कुहन (पुरानी दास्तान) लिये वरक-बर-वरक (पन्ने पर पन्ना) उलटता जाता। एक सफ्हे (पन्ने) पर अभी नजर जमने न पाती कि, दूसरा सामने आ जाता।

गाहे-गाहे बाज ख्वाँ यीं दफ्तरे-पारीना रा।
ताजा ख्वाही दाश्तन गर दागहायेसीना रा!!

–अगर तुम अपने सीने के घावों को हरा रखना चाहते हो, तो इस पुराने ग्रंथ को पढ़ लिया करो।

मुझे खयाल हुआ, अगर हमारे कैदो-बन्द के लिए–(हमें बन्दी रखने के लिए) यही जगह चुनी गयी है, तो इन्तेखाब (चुनाव) की मौजूनियत (अच्छाई) में कलाम नही (का जवाब नही।) हम खराबातियों के लिए (बरबादी लोगो के लिए) ऐसा ही खराबा (वीराना) होना था।

वायक जहाँ कदूरत, बाज ई-खराबा जाईस्त–

–ससार से रूठे हुओ के लिए अगर कोई उचित निवास-स्थान हो सकता है, तो वह वीराना ही हो सकता है।

स्टेशन से किले तक का रास्ता ज्यादह-से-ज्यादह दस बारह मिनट का होगा। किले का हिसार (चहार-दीवारी) पहले किसी कदर फासले पर दिखायी दिया। फिर यह फासला चद लमहों (कुछ क्षणो) में तय हो गया। अब इस दुनिया में जो किले के बाहर है और उस दुनिया में जो किले के अदर है, सिर्फ एक कदम का फासला रह गया था। चश्मजदन में (पलक मारते) यह भी तय हो गया, और हम किले की दुनिया में दाखिल हो गये। गौर(विचार) कीजिय, तो जिंदगी के हर सफर का यही हाल है। खुद जिंदगी और मौत का आपस में फासला भी एक कदम से ज्यादह नही होता।

'हस्ती से अदम तक नफसे-चन्द की है राह,
दुनिया से गुजरना, सफर ऐसा है कहाँ का?''

–'अस्ति' से 'नास्ति' का सफर कुछ लम्बा नही है। सिर्फ चद साँसो का रास्ता है।

किले की खन्दक, जिस के बारे में अबुलफजलने लिखा है कि, चालीस गज चौडी और चौदह गज गहरी थी, और जिसे जनरल वेलेजली ने एक सौ आठ फुट चौडा पाया था, मुझे दिखायी नही दी। दरवाजे के अदर दाखिल हुए, तो एक

## भूलता हूँ

तुम हो जहाँ के शायद,
मैं भी वहीं रहा हूँ।
कुछ तुम भी भूलते हो
कुछ मैं भी भूलता हूँ॥
मिटता भी जा रहा हूँ,
पूरा भी हो रहा हूँ।
मैं किसकी आरजू[1] हूँ,
मैं किसका मुद्आ[2] हूँ॥
सब से बडा गुनह है
मासूमिये – मुहब्बत[3]।
अब बख्श या सजा दे
मुजरिम[4] हूँ बेखता[5] हूँ॥
कैफे फना[6] भी मुझमें
शाने बका[7] भी मुझ में।
मैं किसकी इब्तिदा[8] हूँ,
मैं किसकी इन्तहा[9] हूँ॥
–'फिराक' गोरखपुरी

१ इच्छा, २ प्रार्थना, ३ प्रेम से अनभिज्ञ रहना, ४ जुर्म करनेवाला ५ निर्दोष ६ मृत्यु का अधिकारी ७ जीवन की महान चेतना ८ प्रारम्भ ९ अत

मुस्ततील (आयताकार) अहाता (आँगन) सामने था।

यह इतनी वसीअ (विस्तीर्ण) नहीं कि, इसे मैदान कहा जा सके, फिर भी अहाते के जिदानियों ( बदियों ) के लिए मैदान का काम दे सकती है। आदमी कमरे से बाहर निकलेगा, तो महसूस (अनुभव) करेगा कि, खुली जगह में आ गया।

सहन (आँगन) के वस्त (बीच) में एक पुख्ता (पक्का मजबूत) चबूतरा है, जिस में झंडे का मस्तूल (स्तम्भ) नसब (गाड़ा हुआ) है। मगर झंडा उतार लिया गया है। मैंने मस्तूल (स्तम्भ) की ऊँचाई देखने के लिए सर उठाया, तो वह इशारा कर रहा था

यहीं मिलेंगे तुझे नाला-ए-बुलन्द तेरे!
—तुझे तेरे आकाश-व्यापी दुःखगान यहीं मिलेंगे!

अहाते के शुमाली (उत्तरी) किनारे में एक पुरानी टूटी हुई कब्र (समाधि) है। नीम के एक दरख्त की शाखें इस पर साया करने की कोशिश कर रही हैं; मगर कामयाब नहीं होतीं। कब्र के सिरहाने एक छोटा सा ताक है, जो अब चिराग से खाली है, मगर मिहराब की रंगत बोल रही है कि, यहाँ कभी एक दिया जला करता था।

इसी घर में जलाया है,

चिरागे आरज़ू बरसों!
—हम ने इसी घर में बरसों अभिलाषाओं के दीप जलाये हैं।

मालूम नहीं, यह किसकी कब्र है? चाँदबीबी की हो नहीं सकती, क्योंकि उसका मकबरा किले के बाहर एक पहाड़ी पर पाया जाता है। खैर किसी की हो, मगर कोई मजहूलुल-हाल शख्सियत (सर्व-साधारण-व्यक्ति) न होगी। वरना जहाँ किले की सारी इमारतें गिरायी गईं, वहाँ इसे भी गिरा दिया होता।

सुबहान अल्ला! (अल्लाह बड़ी शानवाला है) इस रोजगारे खराब (उजड़े हुए संसार) की वीरानियाँ (उजड़ापन) भी अपनी आबादियों के बरिश्ते रखती हैं! इस पुरानी कब्र को वीरान भी होना था, तो इसलिए कि, कभी हम जिन्दानियाने-नवाबी (मन्द बदियों) के शोर-और-हंगामे (ऊधम) से आबाद होना था।

बुत्तों या तेरी चश्मे सियाह-मस्त मे मज़ार

होगा खराब भी तो खराबात होएगा!
—तेरे मदभरे और मतवारे नेत्रों के आहतों की जो समाधि होगी, अगर किसी प्रकार वह उजड़ भी जाये, तो उस उजड़ी हुई समाधि के स्थान पर भी निश्चय ही मधुशाला बन जायगी।

★

पापी से भी पाप का विचार करनेवाला अधिक भयंकर होता है।
—आद्रे जीद

★

# हीराकुणी

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की एक शिशु-वार्ता का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर

★

ग्वालिन का नाम हीरा था और गाय का नाम कुणी। हीरा के एक महीने का बेटा था और गाय के भी एक ही मास की बछिया थी। हीरा रायगढ का पहाड लांघकर एक राजा साहब के यहाँ दूध देने जाती थी। राजा साहब हर रोज उसकी कुणी गाय का स्वच्छ और ताजा दूध पिया करते और बेचारी बछिया दूध के लिए आँसू बहाया करती। किसी भी दिन हीरा के मन में उस गरीबिनी के प्रति न दया ही उत्पन्न हुई और न उसके आँसुओं का कुछ प्रभाव हुआ।

दूध दुहने के समय कुणी गाय अपने बछिया की ओर टकटकी लगा कर देखा करती और अपनी मूक भाषा में उसे बुलाती। बछिया भी उमग भरी अठखलियाँ करती और दूध पीने के लिए तडप उठती। लेकिन हीरा गाय को दुह लेती और बछिया को खूटे से बाँधे रखती। बेचारी बछिया अपनी माँ की गोद में दुःख विह्वल हो मुह भी नही छिपा पाती।

किन्तु हीरा इस ओर क्यो ध्यान दे? वह तो सुबह-शाम दूध दुह कर किले मे चली जाती और दिन ढले लौटा करती थी। आकर सब से पहले वह अपने पुत्र को दूध पिलाती और फिर मीठी-मीठी लोरियाँ गा-गाकर उसे सुला देती। फिर वही बछिया को पकड कर कुणी के पास ले जाती। बछिया अपनी माँ के स्तनो में दौडकर मुँह लगा देती, लेकिन उसे दूध के नाम कुछ बूदे ही मिल पाती थी। कुणी भी मौन कातर भाव से उसके कोमल बदन पर अपनी जिह्वा फिरा-फिरा कर उसे सुला देती।

एक दिन हीरा किले पर दूध बेचने के लिए गयी, तो खजाची ने दाम चुकाने में देर कर दी। लौटते समय किले का दरवाजा बद हो गया।

हीरा ने गिडगिडाकर कहा, "यह दरवाजा तो खोलो।"
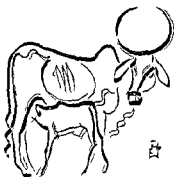
पय पान
चित्र श्री चावडा

सिपाहियों ने झिड़की देदी, "दरवाजा खोलने का हुक्म नहीं है।" हीरा के मातृ-हृदय में अपने पुत्र के प्रति जो चिंता उत्पन्न हुई, उससे वह चीत्कार कर उठी। व्याकुल हो असहाय भाव से रोने लगी। सिपाहियों की मिन्नतें कीं,—"मेरा बेटा बेचारा सुबह से भूखा होगा। आपके पैरों पड़ती हूँ, कृपया आज-भर के लिए ही दरवाजा खोल दीजिये।" किन्तु सिपाहियों के ऊपर इन मिन्नतों का क्या प्रभाव पड़ता! वे हँस कर रह गये।

रात्रि के अंधकार को विदीर्ण करते हुए आकाश में तारे निकल आये। हीरा स्वान्ति का घर पहाड़ की तरहटी में ही था। अचानक निस्तब्धता भंग करती हुई कुणी गाय के रँभाने की आवाज हीरा के कानों में आ टकरायी। कुणी रो-रोकर अपनी बछिया के लिये विलाप कर रही थी। कुणी के इस विलाप ने हीरा में एक नयी शक्ति का संचार किया। रोना-धोना और मिन्नतें करना छोड़, वह किले में चारों ओर घूमने लगी— कहीं से बाहर निकलने की कोई राह दीख जाये!

रायगढ़ के किले की दीवारें बहुत पुरानी थीं। उनके किनारे पहाड़ की ओर लुढ़क-से गये थे। एक पीपल का वृक्ष भी उसी ओर झुका हुआ था। तारों के टिमटिमाते प्रकाश में हीरा को मगर के नुकीले दाँतों की तरह वहाँ के चमकीले पत्थर दिखायी दे गये। अपनी समस्त शक्ति संचित कर, एक-एक पत्थर पर पैर रखते हुए वह धीरे-धीरे उतरने लगी और कुछ घंटों के श्रम के बाद ही वह किले के बाहर थी।

जब वह घर पहुँची, तो सारा रायगढ़ सो रहा था। उसका नन्हा भी रो-रोकर नींद की गोद में विश्राम कर रहा था। हीरा ने झपट कर सोते हुए बालक को अपने सीने से

## अनर्थों की जड़

एक दिन शैतान एक आदमी के पास पहुँचा-"तेरा अंतकाल अब समीप आ चुका है, किन्तु यदि तू चाहे, तो मृत्यु से बच सकता है।"

"भय विह्वल व्यक्ति ने कातर स्वर में प्रश्न किया-कैसे?"

"अपने नौकर की हत्या कर डाल, अपनी पत्नी को खूब पीट तथा इस प्याले को होठों से लगा सारी चिंताओं से मुक्त हो जा।"-शैतान ने उत्तर दिया।

निरपराध नौकर की हत्या करूँ? अपनी पतिव्रता पत्नी का अपमान करूँ? नहीं। इससे तो अच्छा होगा ."और उस घबड़ाए हुए व्यक्ति ने शैतान के हाथ का प्याला होठों से लगा दिया।

किन्तु मदिरा का प्रभाव बढ़ते ही उसने अपनी प्रिय पत्नी को पीटना शुरू कर दिया और जब उसका नौकर बीच-बचाव के लिए आया, तो गुस्से में उसकी हत्या भी कर डाली!

—वर्मा

लगाया। तभी किसी प्रकार अपनी रस्सी तोड कुणी की बछिया भी अपनी माँ के सीने से आ लगी। हीरा ने इस बार उसे अलग नही किया। माँ-बेटी के मिलन का यह अपूर्व दृश्य वह निर्निमेष नेत्रो से देखती रही। आँखो से प्रेमाश्रु छलक आये और उसके गालो को भिगोते हुए जमीन पर आ रहे।

सबेरा हुआ। भगवान् भास्कर आकाश की ऊँचाई पर चढने लगे। रायगढ के राजा साहब की गुलाबी नीद टूटी और उठने के साथ ही हर दिन की तरह उन्होंने दूध माँगा। किन्तु आज हीरा ग्वालिन के दूध से भरा रहने वाला घडा खाली पडा था।

हुक्म होते ही सिपाही दौडा हुआ हीरा के पास दूध लेने आया। हीरा ने स्पष्ट इन्कार कर दिया—"मेरे पास दूध नही है। राजा साहब से कहना कि, कुणी ने आज दूध ही नही दिया है!" परन्तु राजा साहब का सिपाही यो कैसे लौट सकता है? वह हीरा को ही पकड कर ले गया।

हीरा राजा साहब के सामने पेश की गयी और हीरा ने बिना किसी झिझक के सारी कहानी बता दी। उसने दूध देने में अपनी असमर्थता भी प्रकट कर दी।

आशा के विपरीत राजा साहब नाराज नही हुए। उल्टे उनकी आँखो में सहानुभति के अश्रु छलक आये। प्रसन्न होकर उन्होंने हीरा को एक गाँव इनाम में दे दिया।

अर्ध रात्रि मे, अपने पुत्र के लिए, प्राणो को सकट में डालकर हीरा के घर पहुँचने की यह कहानी पूरे रायगढ म फैल गयी। उसके साथ ही, कुणी गाय की कहानी भी लोगो को मालूम हो गयी और मानो हीरा व कुणी के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए ही उन लोगो ने उस तलहटीवाले गाँव का ही नाम 'हीरा-कुणी' ग्राम रख दिया।

★

पश्य लक्ष्मण पम्पाया बक परमधार्मिक।
शनै शनै पद धत्ते जीवाना वध शकया॥

—देखो लक्ष्मण, पम्पापुर का यह बगुला कितना धार्मिक है! वह इतनी सावधानी से पैर रखता है कि, कही कोई जीव-जतु कुचल न जाये।

राम की वाणी सुनकर पास बैठा मेंढक बोला—

सहवासि विजानाति सहवासि विचेष्टितम्।
बक कि वर्ण्यते राम ये नाह निष्कुलीकृत॥

—किसी के असली स्वभाव को उसके सगी-साथी ही भली भाँति जान सकते है। हे राम, आप प्रशसा क्यो कर रहे है, इसने तो मेरा सारा कुटुम्ब खा डाला।

—'रत्नमजरी से

★

कला, दर्शन एवं विज्ञान की अनुभूतियों का चरमोत्कर्ष एक ही लयबिंदु का स्पर्श करता है, इस सत्य को आधुनिक वैज्ञानिक शोधों के मंथन द्वारा श्री इलाचंद्रजी जोशी ने यहाँ बड़े सहज सुबोध रूप से स्पष्ट किया है।

★

प्लांक नामक एक जर्मन विज्ञानाचार्य ने गणित के अकाट्य प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया कि, प्रकृति की गति-विधि कुछ निश्चित नियमों के आधार पर नहीं चलती, बल्कि बीच-बीच में उसकी गति में कुछ विपर्यय, कुछ विचित्र खामखयालियाँ देखने में आती है। प्रारंभ में वैज्ञानिकों ने इस विद्रोही सिद्धान्त का बड़ा विरोध किया था उसका मजाक उड़ाने की चेष्टा की, पर वह ऐसे अकाट्य प्रमाणों पर आधारित था कि, वह मिटने के बजाय दिन-पर-दिन अधिक गहराई में अपनी जड़ें जमाता चला गया।

प्लांक का यह क्रांतिकारी सिद्धान्त 'क्वांटम-थियरी' के नाम से आधुनिक विज्ञान-जगत में प्रसिद्धि पा चुका है। प्लांक के इस सिद्धान्त ने अपने प्रारंभिक रूप में केवल यह सुझाया कि, प्रकृति की कारवाइयाँ एक सुनिश्चित सरल गति से नहीं चलती, बल्कि बीच-बीच में झटकों द्वारा अथवा कूद-फाँद से आगे बढ़ती हैं। आइन्स्टीन ने भी यह निर्देशित कर दिया कि, प्लांक ने उस सिद्धान्त को सदा के लिए गिरा दिया है, जो विश्व की प्रकृति में कार्य-कारण के क्रम को अनिवार्य रूप से तरजीह देता है। पिछले वैज्ञानिकों का यह विश्वास था कि, किसी वस्तु अथवा घटना की 'क' स्थिति की परिणति स्वाभाविक नियम के क्रम से निश्चय ही 'ख' स्थिति में होनी चाहिए। पर प्लांक के सिद्धान्त ने यह सिद्ध कर दिखाया कि, 'क' स्थिति की परिणति 'ख' में ही हो यह जरूरी नहीं है, वह उस स्थिति को एक दम से लाँघकर 'ग' अथवा 'घ' स्थिति में भी परिणत हो सकती है। वह 'ग' में परिणत हो गयी या 'घ' में यह प्रकृति की खामखयाली पर निर्भर करता है।

अतः 'क्वांटम सिद्धान्त' ने दो महत्वपूर्ण बातें प्रमाणित कीं। एक तो यह कि, प्रकृति में तथा जीवन में इच्छा-शक्ति की स्वतन्त्रता के लिए पूरी गुंजाइश है और दूसरी यह कि, प्रकृति में कार्य-कारण का कोई वज्रवत् निश्चित नियम

काम नही करता और अनिश्चित्य और अनियमितता उसमें अपवाद-स्वरूप नही है।

उदाहरण के लिए, रेडियम के अणुओ को लिया जाय। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि, किसी रेडियम के अणु हीलियम तथा सीसे के अणु में विघटित होते रहते है। पर यह विघटन-क्रिया किसी निश्चित नियम के आधार पर नही होती। प्रकृति किसी भी नियम से यह जानने नही देती कि, विघटन क्रिया मे कौन अणु पहले नष्ट होगे और कौन बाद में। कभी नव-स्फुरित अणु पहले नष्ट हो जाते है और कभी पहले से स्फुरित होने वाले परिपक्व अवस्था वाले अणु। प्रकृति किस अणु को पहले नष्ट करेगी यह उसकी खामखयाली पर निर्भर करता है। अर्थात् रेडियम के अणुओ की मृत्यु म भी सयोग और भाग्य का वही स्थान है, जो मनुष्यो की मृत्यु मे। जैसे मानवीय जगत म विभिन्न परिवारो मे कभी बुड्ढे पहले मरते है, कभी युवक ही पहले मर जाते है और कभी बच्चे पहले चल बसते है, कौन पहले मरेगा यह शायद ही कोई ज्योतिषी बता सकेगा, वही हाल रेडियम जगत में भी है— एक अतर के साथ। वह अतर यह कि, मानव-जगत् मे बुड्ढो को मरने की आशका अधिक रहती है, पर रेडियम-जगत मे यह आशका भी नही है। वहाँ प्रकृति की निपट खामखयाली ही चलती है।

हिरोशिमा के 'कबंला' को श्रद्धाजलि [चित्र. एक चीनी शिल्प की रेखानुकृति]

इस प्रकार 'प्लाक' के सिद्धान्त का विकास ज्ञान के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। पर प्रारभिक अवस्था मे स्वय 'प्लाक' ने अपने आविष्कार के महत्व को इस रूप मे महसूस नही किया था। उसने केवल प्रकाश के विकीरण ('रेडियेशन) सम्बधी नियम की यथार्थता को सुपरिस्फुट करने के उद्देश्य से अपने उस नये सिद्धान्त का प्रयोग किया था। वास्तव में, विश्व के केन्द्रीय रहस्य को समझने के लिए प्रकाश के विकीरण सम्बधी नियम के रहस्य से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है।

'क्वाटम सिद्धान्त' ने यह सिद्ध किया कि, प्रकाश न तो पूर्णत सूक्ष्म कण-पुज है, न पूर्णत तरग-पुज। वह दोनो है। जब 'एक्स'-किरण-पुज विद्युत्-कणो पर अलग-अलग रूप से आघात करता है, तब वह वर्षा की तीव्र बूदो अथवा बदूक की गोलियो की तरह आघात करता है, पर जब वही प्रकाश ठोस स्फटिक पर आघात

करता है तब तरंग-पुंजों की तरह उस पर टकराता है। किन्तु, आधुनिकतम विज्ञान ने यह प्रमाणित कर दिया है कि, प्रकृति की सामञ्जस्यवाली प्रकाश के सम्बंध में भी लागू होती है – कहीं पर प्रकाश सूक्ष्म कणों का रूप धारण करता है और कहीं तरंगों का। पर इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि, यह सामञ्जस्यवाली प्रकृति के भीतर विषमता में समता और अनेकता में एकता के सिद्धान्त के विरुद्ध पड़ती है। इसके विपरित आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि, प्रकाश के सूक्ष्म कण तथा उसके सूक्ष्म तरंग-पुंज मूलतः एक ही तत्व हैं।

इस 'अनेकत्व में एकत्व' सम्बन्धी सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए, हम एक दूसरे महत्वपूर्ण अनुसंधान की ओर आते हैं। वह यह है कि, प्रकाश की तरह ही 'इलेक्ट्रॉन' तथा 'प्रोटॉन' नामक वैद्युतिक अणु भी जो विश्व में स्थित समग्र पदार्थों के मूल उपकरण हैं, कभी सूक्ष्मतम कणों के रूप में हमारे सामने आते हैं और कभी सूक्ष्मतम तरंगों के रूप में।

इन सब उदाहरणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि, पदार्थजगत के जो सूक्ष्मतम कण हैं, वे तरंगों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं और इस प्रकार समग्र विश्व की मूल पार्थिव सत्ता विशुद्ध तरंगमय है। इसी से एक दूसरे महत्वपूर्ण परिणाम पर हम पहुँचते हैं। यह सब देख चुके हैं कि, पदार्थ के सूक्ष्मतम आधार हैं, वैद्युतिक अणु (इलेक्ट्रॉन तथा प्रोटॉन) और ये वैद्युतिक अणु सूक्ष्म विद्युत्-तरंग (अर्थात् विशुद्ध विद्युत्) के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। यह सभी जानते हैं कि, विद्युत् कोई पदार्थ नहीं, बल्कि एक शक्ति है। अतएव पूर्वोक्त नये आविष्कार के फलस्वरूप पदार्थ और शक्ति के बीच का भेद मिट जाता है।

उन्नसवीं शती के अंत तक वैज्ञानिकगण पदार्थ, पदार्थ के घनत्व तथा शक्ति इन तीनों के स्थायित्व अथवा संरक्षण (कन्जर्वेशन)-सम्बन्धी सिद्धान्त पर विश्वास रखते थे। उनका मत था कि, पदार्थ विभिन्न रूपों में परिवर्तित हो सकता है; पर उसके परिवर्तित रूप तथा मूल रूप के अंशों को यदि एकत्र किया जाय, तो पता चलेगा कि, मूल पदार्थ के किसी भी अंश का नाश नहीं हुआ है। पानी को जमाने से वह बर्फ में परिणत हो जायगा और खौलाने से धुएँ में बदल जायगा; पर इस परिवर्तन के बावजूद कुल मिला कर मूल पदार्थ में कोई घटी न होगी। उसी प्रकार यह सिद्धान्त भी स्वयं-सिद्ध बना हुआ था कि, किसी पदार्थ के परिवर्तित और अपरिवर्तित रूपों का घनत्व (जिसे किसी हद तक हम उसका वजन भी कह सकते हैं।) स्थायी रहेगा और यही सिद्धांत शक्ति के स्थायित्व के सम्बंध में भी लागू माना जाता रहा है।

पर आधुनिकतम विज्ञान ने जिसके प्रमुख आचार्य सापेक्षवाद के विश्व-विख्यात् आचार्य आइन्स्टीन हैं, यह नयी क्रांतिकारी खोज की है कि, शक्ति का भी वजन होता है। और शक्ति की तीव्रता

जितनी ही अधिक होगी, उसका वजन (या घनत्व) भी उतना ही अधिक होगा। चूंकि, पिछले भौतिक तत्ववादियों को इस रहस्य की कोई खबर नहीं थी, इसलिए उनका विश्वास था कि, कोई पदार्थ चाहे स्थिर हो या गतिशील, उसका घनत्व (या वजन) स्थायी रहेगा। पर आइन्स्टीन के सिद्धान्त ने इस भ्रान्ति को मिटा दिया। नये अनुसंधान ने यह प्रमाणित किया है कि, शक्ति का अपना अलग वजन होता है, यद्यपि वह बहुत ही स्वल्प होता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई ५०००० टन वजन का जहाज एक घंटे में २५ मील की गति से चलता है, तो अपनी इस गतिशील अवस्था में उसका वजन केवल एक औंस का दस लाखवाँ हिस्सा बढ़ जाता है, अर्थात् उसकी गतिशीलता का वजन इतना है। एक मनुष्य अपने संपूर्ण जीवन-काल में जो जो श्रम करता है, उसके फलस्वरूप उसका वजन केवल एक औंस का ६० हजारवाँ भाग बढ़ पाता है। मानवीय जगत के लिए इतने नगण्य वजन से चाहे कोई विशेष अंतर न पड़ता हो, किन्तु विराट् नक्षत्रों, सूर्यों और महासूर्यों के जीवन में इस हिसाब से बहुत भारी अंतर पड़ जाता है।

सूर्य पृथ्वी को जो प्रकाश देता है, उसे वह केवल इसलिए दे पाता है कि, वह अपने भीतर के दबाव से अपने में संचित वैद्युतिक तथा चुंबक शक्ति को निरंतर बिखरता रहता है। यह बिखेरना ही उसके प्रकाश का विकीरण है। उसके इस प्रकाश विकीरण का एक निश्चित वजन होता है, जिसे आज के गणितज्ञों ने ठीक-ठीक नाप लिया है। फलतः इस विकीरण का चाप पृथ्वी पर पूरे वजन से पड़ता है। प्रत्यक्ष में यह वजन बहुत कम होता है। पूरी एक शताब्दी में पृथ्वी के एक मील के घेरे पर सूर्य के प्रकाश का जो चाप पड़ता है, उसका वजन एक सेकेंड के पचासवें भाग में होनेवाली मूसलाधार वर्षा के चाप के बराबर है। पर यह वजन इतना कम इसलिए लगता है कि, विराट् विश्व में एक मील का क्षेत्र नगण्य से भी नगण्य है। यदि सूर्य के प्रकाश के पूरे चाप का वजन लिया जाय, तो वह प्रति मिनट २५,००,००००० टन निकलता है, अर्थात् एक मिनट में सूर्य इतना टन वजन

दर्शन एवं विज्ञान में अद्वैत के प्रतिष्ठाता आइंस्टीन (युवावस्था का चित्र)

शक्ति खर्च करके तब पृथ्वी को प्रकाश और ताप दे पाता है। एक मिनट का जब यह हिसाब है, तब एक घंटे का हिसाब लगाइये और फिर एक दिन का, मास का, वर्ष का, सैकडों, हजारों, लाखों, करोडों, अरबों वर्षों का हिसाब लगाइये। तब पता चलेगा कि, प्रकाश-विकीरण के चाप का वजन क्या महत्व रखता है। इसका अर्थ यह है, सूर्य प्रतिदिन, प्रतिमास, प्रति वर्ष अपनी कितनी शक्ति विकीरण के रूप में व्यय करता चला जा रहा है और अरबों-खरबों वर्षों से कितना व्यय कर चुका है, अभी अरबों-खरबों वर्षों तक कितनी शक्ति खर्च करने की शक्ति उसमें रह गयी है और कब वह इस प्रकार अपने सम्पूर्ण पार्थिवत्व को विकीरण में परिणत कर अन्त में बुझ जायगा।

केवल सूर्य का पार्थिव तत्व ही विकीरण में परिणत नहीं हो रहा है, बल्कि आइन्स्टीन-जैसे प्रमुख वैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि, जितने भी असंख्य ग्रह-नक्षत्र आकाश में वर्तमान हैं, वे निरंतर एक निश्चित नियम से अपने पार्थिव अणुओं का विघटन वृहत् परिमाण में करते जा रहे हैं। यह विकीरण ठोस पदार्थ की स्थूलतारहित तरंगायित अवस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। 'इलेक्ट्रोन' तथा 'प्रोटोन' के सम्बन्ध में हम देख चुके हैं कि, वे एक दृष्टिकोण से पदार्थ हैं और दूसरे दृष्टिकोण से वैद्युतिक तरंगों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। उसी प्रकार प्रकाश-विकीरण के सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि, वह पदार्थ का तरंग-रूप है और पदार्थ के सम्बन्ध में कह सकते हैं कि, वह विकीरण का बर्फ की तरह जमा हुआ रूप है। पदार्थ भी मूलतः तरंग-पुंज है और विकीरण भी। केवल इतना ही अंतर है कि, पदार्थ की स्थूल तरंगें दिन-प्रति दिन विकीरण की सूक्ष्म-तरंगों के रूप में परिणत होती चली जा रही हैं। पदार्थ का बद्ध जीवन प्रतिपल अपने को विघटित करता हुआ शक्ति-तरंगों के रूप में निज को मुक्त करने में प्रयत्नशील है। विकीरण है पदार्थ की बंधन-ग्रस्त जीवनाकांक्षा—बद्ध 'लिबिडो' या मुक्त सांसारिक जड़ता से ग्रस्त जीवात्मा की मुक्ति कामना।

केवल इतना ही नहीं, वैज्ञानिकों को इस बात के भी निश्चित प्रमाण मिल रहे हैं कि, विकीरण भी जो कि,ठोस पदार्थ का सूक्ष्म-स्पंदनशील रूप है, धीरे-धीरे सूक्ष्मतर तत्वों में विघटित होता चला जा रहा है। यह निश्चित है कि, स्थूल से सूक्ष्म में परिणत होने की जो प्रवृत्ति प्राकृतिक तत्वों में अपरिमित काल से चली आ रही है, वह रुक नहीं सकती। इसलिए यह भी विश्वास किया जाता है कि, विकीरण धीरे-धीरे जिस सूक्ष्मतर तत्व में बदल रहा है, वह भी समयानुक्रम से अपने से भी अधिक सूक्ष्म रूप में परिणत होगा। अंत में, यह स्थिति आने की सम्पूर्ण संभावना है कि, समस्त विश्व-तत्व विशुद्ध मनस्तत्व में और फिर आत्मतत्व में लीन होकर तादात्म्य प्राप्त कर लेगा।

★

कर्णोपदेश!
अपने पिताजी से
जे बी मंघाराम के
रायल क्रीम बिस्कुट का
एक पैकेट खरीद लाने
के लिए कहिए।
इन बिस्कुटों का
क्रीम, आपको बड़ा
स्वादिष्ट लगेगा।
विटामिनों से समृद्ध
उच्च कोटि के बिस्कुट
ये बिस्कुट रंगीन आवरणवाले
वायुरहित पैकेटों में बंद होते हैं।
मंघाराम के रायल क्रीम बिस्कुट
सर्वोत्तम उपहार हैं।
Royal Cream
J.B. MANGHARAM'S
ROYAL
CREAM
BISCUITS
जे. बी. मंघाराम ऐंड कम्पनी
डीस्ट्रीब्यूटर्स : नेशनल फूड एजेन्सी. ३१५, चर्नीरोड, बम्बई-४.
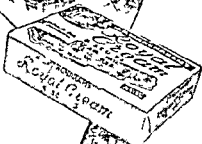
मन प्रदेश के मुक्त विहारी यशपालजी इस भौतिक धरती के पर्यटन के भी अथक शौकीन हैं। कुछ समय पूर्व उन्होंने कुलू से शिमला की यात्रा की थी। प्रस्तुत सदर्भ इस अति रोचक यात्रा का ही एक अंश है।

★

इस बार कुलू से ही मोटर पर काँगड़ा लौट गया, परन्तु गत वर्ष दुर्गा भाभी के साथ आया था, तो हम लोग कुलू से आगे 'मनाली' तक गये थे। मार्च का महीना था। मनाली में जगह-जगह बर्फ पड़ी हुई थी। एक बगले की टीन की छत से फिसल कर गिरी हुई बर्फ घुटनों तक ऊँची मेढ़ो के रूप में डाक बगले को घेरे थी। हमारे दुर्भाग्य से डाक बगले में पहले से ही कोई साहब लोग टिके हुए थे, इसलिए हम लोगों को उसी दिन लौट कर 'नगर' चले जाना पड़ा था।

नगर म ठहरने की इच्छा यों भी थी। वहाँ दो आकर्षण थे। जगत् प्रसिद्ध प्रकृति के चित्रकार (मास्टर आव् माउन्टेन्स) निकोलस रोरिक नग्गर में ही स्थाई रूप से रह रहे थे। उनके बनाये कुछ चित्र देखे थे और इस पुरुष विशेष से मिलन की इच्छा थी। निकोलस रोरिक क्रान्ति से पूर्व रूस के एक बहुत बड़े 'बैरन' या 'काउंट' (जागीरदार) थे। वे उसी समय ही हिमालय भ्रमण के लिए आये थे और फिर लौटे नही। आधुनिक रूसी समाज-व्यवस्था के प्रति उस महान कलाकार की भावना जानने का कौतूहल था। नगर मे ठहरने की असुविधा का प्रश्न नही था। लाहौर में हम लोग ठहरे थे, अपने पुराने मित्र प्रो बलवन्त के यहाँ। उन्ही के यहाँ, एक दिन चाय-पानी के समय श्रीमती बल-

हिमशैल-शिखरों के सौन्दर्यानंद का अद्वितीय शिल्पी कथाशेष निकोलस रोरिक

न्त की सहेली से परिचय हुआ। बातचीत में मालूम हुआ कि, इनके पति सरकारी नौकरी निभाने के लिए नगर में ही थे। वे जीव-विज्ञान के एम एस-सी हैं और एक जाति से दूसरी जाति की मछलियाँ पैदा करने का काम करते थे। जब उन्होंने सुना कि, हम लोग कुलू जाना चाहते हैं, तो हाथ जोड़ अनुरोध किया—"हाय, हमारे यहाँ भी जरूर आइयेगा! हम लोग तो 'आदमी' की सूरत देखने के लिए तरस जाते हैं।"

नगर में छोटी-मोटी बस्ती तो है, परन्तु स्थानीय आदमियों को यह लोग उनकी भाषा और आचार-व्यवहार के अपरिचय और विभिन्नता के कारण आदमी नहीं 'मानुं' ही कहते हैं। रोरिक की कोठी था महल नगर के सबसे ऊँचे भाग में है। मिलने के लिए समय निश्चित कर लेना उचित था। इसलिए एक आदमी के हाथ पत्र भेज कर पुछवा लिया। अगले दिन नौ बजे का समय तय हुआ—कड़ी चढ़ाई चढ़कर पहुँचे। कोठी के दरवाजे पर वर्दी पहने अर्दली ने स्वागत किया और दर्शकों के हस्ताक्षर और पते का एक रजिस्टर हस्ताक्षर करने के लिए सामने पेश कर दिया। इसमें लखनऊ के आर्ट स्कूल के प्रिन्सिपल, कई दूसरे यात्रियों और प० जवाहरलाल नेहरू के भी हस्ताक्षर मौजूद थे। कला के प्रति प० नेहरू का अनुराग है। वे रोरिक का आतिथ्य स्वीकार कर चुके हैं। उनके साथ कुछ दिन बिता चुके हैं।

ड्योढ़ी से जीना चढ़ कर ऊपर पहुँचने तक ही पर्याप्त रौब हम पर पड़ गया। पूरा जीना और जीने की दीवार कमर की ऊँचाई तक ईरानी कालीनों से मढ़ी थी और दीवारों पर भी रेशमी कपड़ों पर कढ़े और बने अद्भुत बहुमूल्य चित्र। दीवार का कोई भाग कहीं खाली नहीं था। रोरिक लम्बी, श्वेत दाढ़ी और गोल टोपी में कवीन्द्र रवीन्द्र की ही प्रति-छाया जान पड़ते थे, परन्तु कुछ नाटे और जरा भारी शरीर। वे बढ़िया पश्मीने का बन्द गले का कोट निकर-बाकर और वैसे ही

## प्रभो!

हे प्रभो! हमें 'मनुष्य' दो; नर-पुंगव, जो शुभ संकल्पवान हो, अंतः पूत हो, अचल श्रद्धावान हो, सत्कर्म-स्फूर्त हों, जिनके हृदय क्षणिक प्रभुत्व के लिए लालायित न हो उठें, जिन्हें विश्व का सर्वोच्च वैभव भी खरीद न सके, जिनके विचार निर्भीक हों, जिनकी भावना निश्छल-निर्बंध हों, जो कुकर्मियों के पाखंडों पर प्रहार करने से न डरें, जो सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन में सदैव उस निष्पक्ष-निर्विजित सूर्य के समान चमकें, जिसके प्रवेशमात्र से समस्त तिमिरांध वातावरण आलोकित हो उठता है।

—विलियम जोन्स.

मोज पहने थ। बहुत सहृदयता से उन्होन स्वागत किया। पहले उन्होने बातचीत में हम लोगो के कला-सम्बधी कौतूहल और अनुराग का परिचय पा लेना चाहा। शायद वे अतिथि के कला सम्बधी ज्ञान के स्तर के अनुसार ही बात करते थे।

हम लोगों के पहुँचने से पहले चित्रो के दिखाने की व्यवस्था तैयार थी। हमारे बैठने के कोच के सामने चित्र दिखाने की एक टिकटकी पर एक भारतीय युवती का तैल-चित्र पहले से रखा हुआ था। मै उस चित्र को बहुत देर तक देखता रहा। रोरिक ने बताया कि, वह उनके पुत्र का बनाया तैल-चित्र था। चित्र इतना सप्राण जान पडता था, विशेषत आँखें और ओठो की भाव-भगी कि, मानो युवती कुछ कह कर उत्तर की प्रतीक्षा कर रही है, अभी बोल उठेगी या खडी हो जायगी।

बंशी-वादन में निमग्न एक पहाडी

इसके बाद स्वय रोरिक के बनाये लगभग ५०-६० चित्र देखे। अधिकाश चित्र हिमाच्छादित पर्वत-श्रृगो के थे। यह चित्र रोरिक ने पहाडो-पहाड बर्मा से दार्जिलिग और दार्जिलिग से कुलू की यात्रा करते समय या उनकी स्मृति से बनाये थे। उनके चित्रो में मानव-भाव (ह्यूमन एलिमेन्ट) बहुत कम दिखायी दिया। वैसे चित्र केवल तीन ही दिखायी दिये। जिनमे से एक नार्वे की किसी झील का था। दो और विश्व-शान्ति के सकेत-सम्बधी थ। चित्रो को टिकटकी पर रखने और उतारने का काम वर्दी पहने अर्दली कर रहे थे। चित्रो के सम्बध में बातचीत भी चलती जा रही थी। मै चित्रो म मानव-भाव की कमी की बात कहे बिना नही रह सका। 'मुझ तो सूर्योदय या सूर्यास्त से दीप्त बर्फानी चोटी की अपेक्षा झोपडियो के झुड का चित्र, जिसम आदमी दिखायी द, ज्यादा मर्मस्पर्शी जान पडता है।' कलाकार को मेरी बात से क्षोभ नही हुआ। इस विषय पर कुछ बात-चीत हुई। 'पिकासो का भी जिक्र आया। उन्होने अपने पुराने चित्रो के एल्बम मगा कर दिखाये। कुछ की छपी हुई, छोटी प्रतियाँ भट भी कर दी। वे राजनीति पर बात करना नही चाहते थे। रूस की आधुनिक व्यवस्था के प्रति उन्होन गर्व से कहा-' रूस एक महान राष्ट्र है और उसकी शान्ति मानवता के विकास के प्रति बडी भारी देन है।

निकोलस रोरिक 'बैरन' होकर भी कलाकार की भावना से ओत प्रोत थे, इसलिए उपर्युक्त बात कह सकते थे, लेकिन 'बैरोनेस' या काउन्टेस-रोरिक (रोरिक की

पत्नी) का दृष्टिकोण दूसरा ही था। यह बात नगर में नीचे मित्र के यहाँ लौटने पर पता लगी। वे बोले—"रोरिक की पत्नी तो आपसे मिली नहीं होगी?" हमारे हामी भरने पर उन्होंने बताया कि, वह किसी से नहीं मिलती। वे रूस के जार की बहिन हैं। उनके आत्म-सम्मान-सम्बन्धी संस्कार यह सहन ही नहीं कर सकते हैं कि, सर्वसाधारण वर्ग के लोग, समान भाव और स्थिति से उनके सामने चलें-फिरें! इस महल में आने के बाद वे एक कुलू-मनाली सड़क पर घूमने गयी थीं। वहाँ साधारण अंग्रेजों या भारत-वासियों को अपने सामने निरपेक्ष आते-जाते देख उन्होंने इतना अपमानित अनुभव किया कि, फिर वे अपने महल या कोठी की चहारदीवारी से कभी बाहर नहीं निकलीं। अपनी सहचरियों या सेक्रेटरी के रूप में वे साथ दो रूसी या यूरोपियन महिलाओं को तनख्वाह देकर लायी हुई थीं। वे ही उनकी एकमात्र संगति थीं। बाहर निकलने की उन्हें कोई आवश्यकता भी नहीं थी। सभी आवश्यकताओं को पूरा करने का उनका अपना स्वतन्त्र प्रबंध था, शायद अपनी बिजली भी थी। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का यह भी एक रूप है! अपने-आपको दूसरे मनुष्यों से भिन्न और ऊँचा मानते रहने के लिए कैद स्वीकार कर लेना!

रोरिक ने अपने बाग के कुछ सेब भी खिलाये। सेब देखने में बिलकुल हरे या कच्चे जान पड़ रहे थे; परन्तु सेबों में वैसी सुगंध और कहीं नहीं देखी। दस-बारह सेबों के सम्बन्ध में उन्होंने बताया कि, उनमें से कोई पौधा आस्ट्रेलिया से, कोई कैलीफोर्निया से, कोई फ्रांस और इटली से मँगाया गया था। कुछ देर तक रोरिक के महल से प्राकृतिक सौन्दर्य को देखते रहने के बाद मैं कहे बिना न रह सका—"मैंने काश्मीर के कुछ भाग, कुमायूँ की पहाड़ियाँ, मसूरी, शिमला, दार्जिलिंग और शिलांग थोड़ा-बहुत देखा ही है। लेकिन प्रकृति में, रंगों और दृश्यों का ऐसा वैचित्र्य और समन्वय कहीं नहीं देखा, आपने यह इतना सुंदर स्थान चुना कैसे?"

एक पहाड़ी दम्पति

मेरे कौतूहल की तृप्ति के लिए उन्होंने बताया–बर्मा से पहाडो-पहाड दार्जिलिंग और दार्जिलिंग से भी हिमालय के भीतर-ही-भीतर अपने काफिले को ले यात्रा करते हुए जब वे नगर पहुँचे, तो इसी मकान के समीप अपना खेमा लगाया था। जगह उन्हें इतनी पसन्द आ गयी कि, आगे बढने का विचार छोड दिया। उन्होंने इस मकान और इसके साथ की भूमि को खरीद लेने का विचार प्रकट किया। उन्हे बताया गया कि, इस मकान को खरीद लेना सभव नही। मकान मडी के राजा का है।

रोरिक स्वय मडी के राजा के पास पहुँचे और राजा से बात की–"मै तुम्हारा मकान और उसके साथ की भूमि खरीदना चाहता हूँ।"

राजा ने विस्मय से रोरिक की ओर देखा–"मेरा मकान खरीदना चाहते हो?"

"हाँ, क्या कीमत चाहते है आप ?"

राजा ने अपने विचार से एक बडी कीमत बता दी और रोरिक ने उसी समय एक 'चेक' दे दिया। उनका हिसाब पेरिस, न्यूयार्क और बम्बई के बैंको में मौजद था।

इसके कुछ दिन बाद देहली जाने पर रूसी समाचार ऐजसी 'तास' के प्रतिनिधि कामरेड ग्लाडीशव से मिलने का अवसर हुआ। मैने बातचीत में निकोल्स रोरिक की कला की प्रशसा की। कामरेड ग्लाडीशेव ने रोरिक की कला के लिए आदर प्रकट कर इतना और कहा–"जो अवसर पहले केवल रोरिक की स्थिति के व्यक्ति के लिए ही सभव था, अब रूस में सभी लोगो के लिए है। अब हजारो निकोल्स रोरिक हमारे देश में विकास कर सकेंगे।'

★

## यह बात मुझे बहुत चुभी

एक दिन मैंने ईश्वर से पूछा–"मै सब अवस्थाओ म तुझसे सतुष्ट हूँ, क्या तू भी मुझसे सतुष्ट है ?"

ईश्वर ने उत्तर दिया–"तू झूठा है। यदि तू मुझसे पूर्णत सतुष्ट होता, तो मेरे सतोष की बात ही नही पूछता।" —अबुल हुसैनअली

★

'एक बार तो कह दिया कि, अभी कोई आदमी नही है दुकान म ! जा, चला जा यहाँ से !" दुकानदार ने भिखारी को फटकारते हुए कहा। लेकिन भिखारी भी एक ही नबर का मुहफट था। उसने उत्तर दिया– सेठजी, थोडी देर के लिए आप ही आदमी बन जाइये न !"

—'नवभारत' (मराठी) से

★

अफ्रीका के हिंसक वन्य प्रदेशों में जीवन के चालीस वर्ष बिताकर फिर से 'सभ्य' वातावरण में लौटने वाले विश्व विख्यात शिकारी राबर्ट रूर्याक ने विभिन्न वन्य पशुओं की स्वभावगत विशेषताओं को लेकर एक लेखमाला लिखी है। यह लेख इसी लेखमाला के एक अध्याय का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर है। वनराज सिंह शार्दूल के विषय में भी यहाँ वर्णित जानकारी आपको लाभ किये बिना नहीं रहेगी!

★

सिंह को साधारणतया 'वनराज' कहा जाता है, लेकिन मेरे अपने अनुभवों के आधार पर मैं तो यही कहूँगा कि, जंगल का राजा, वास्तव में कोई है, तो वह हाथी है। हाँ, सिंह एक चतुर कूटनीतिज्ञ अवश्य कहा जा सकता है।

सिंह वास्तव में, एक शांति-प्रिय प्राणी है। उसे यदि सताया न जाय, तो वह सदा किसी भी प्रकार के झंझट से दूर रहना ही पसंद करेगा। आलसी तो वह इतना होता है कि, केवल भूख लगने या छेड़ने पर ही उठता है, नहीं तो अधिकतर सोया रहता है। वह स्वार्थी, खुदगर्ज और गंदा भी होता है, और सड़ा-गला मांस खाने में भी नहीं हिचकता। उसकी मृत्यु अधिकतर बुढ़ापे और अशक्ति के कारण होती है या स्वयं उसके बच्चे ही उसे मार डालते हैं। वह स्त्रियों से कम कर काम लेने का पक्षपाती है और कई बातों में बिल्ली से अधिक, कुत्ते से मिलता-जुलता है। उसके बदन से गंध आती है और मक्खियाँ-मच्छर भी सदा उसके आसपास भिनभिनाया करते हैं। वह मुँह बंद कर चलता है; लेकिन जरूरत पड़ने पर इतना तेज भागता है कि, एक सौ गज की दूरी करीब तीन सेकंड में ही तय कर लेता है। उसकी एक छलांग लांग जम्प से भी अधिक की होती है।

सिंह पेड़ पर चढ़ सकता है और चढ़ता भी है। भारत में सिंह पाये जाते हैं, लेकिन अफ्रीका में बाघ नहीं पाये जाते।

सिंह और बाघ की जाति भी साथ रखकर देखी गयी है, लेकिन उनकी संतान इतनी अच्छी नहीं होती। एक सिंह का चेहरा दूसरे से नहीं मिलता। सिंहनी भी खूबसूरत या बदसूरत हो सकती है और स्त्रियों की भाँति उनमें भी अपना-अपना विशेष आकर्षण होता है। अधिकतर सिंह अयालदार नहीं होते। अयालवालों की संख्या कम होती है। अयालदार सिंह का रंग गहरे लाल से हल्का सफेद तक होता है। मैंने एक जोड़ा बिल्कुल काले रंग का भी देखा है। सिंह को भिनभिनाने वाली मक्खियों-मच्छरों और लकड़बग्घों से बहुत चिढ़ है। लेकिन चौड़े कानवाली छोटी-छोटी लोमड़ियों और सियारों, तथा गुरखरों प्रायः सभी प्राणियों से वह दोस्ती करता है, बशर्ते वह उस समय भूखा न हो।

सामान्य अवस्था में सिंह किसी से डरता नहीं। मनुष्य से भी वह प्यार कर सकता है। अधिकांश परिस्थितियों में वह मनुष्य की उपस्थिति सहन कर लेता है। अमीरों के बड़े-बड़े हाथियों को वह कुछ नहीं कहता और बदले में हाथी भी उस पर आक्रमण नहीं करते। डोनाल्ड केर नाम के एक व्यवसायी-शिकारी ने एक सिंहनी को एक बार मादा जिराफ के नीचे मरा पाया था। मादा जिराफ ने सिंहनी को अपने खुरों से कुचल दिया था। मैंने भी एक बार तेंदुए को सिंह की लाश खाते देखा था, लेकिन नजदीक जाने पर मालूम हुआ कि, सिंह किसी सफाई शिकारी की मार से पहले ही घायल हो चुका था।

तेंदुए के प्रतिकूल सिंह कभी किसी पर अकारण आक्रमण नहीं करता। वह भूखा होता है तभी किसी को मारता है। या सताये अथवा घायल किये जाने पर आत्म-रक्षार्थ आक्रमण करता है। नर-सिंह बहुधा अपना शिकार स्वयं मारना अपनी शान के खिलाफ समझता है। उसके बहुत सी पत्नियाँ रहती हैं। सिंह उनमें से किसी एक को भोजन लाने के लिए भेज देता है। जेब्रा या दूसरे वन्य पशुओं के झुंड के नजदीक जाकर

## विभूति

और, उस सिंह को लो! बड़ौदे में रहता था। सुबह-ही-सुबह उसकी गर्जना की गंभीर ध्वनि कानों में पड़ती। उसकी आवाज इतनी गंभीर और उम्दा होती थी कि, हृदय डोलने लगता। मंदिरों के गर्भगृहों में जैसी आवाज गूंजती है, वैसी ही गंभीर उसके हृदय गर्भ की यह ध्वनि थी। और सिंह की यह धीरोदात्त, भव्य, निर्भय मुद्रा, उसका वह शाही ढंग और शाही वैभव! यह भव्य सुंदर अयाल मानो चँवर ही उस वनराज पर ढल रहे हों। ऐसा मालूम होता है, मानो सिंह परमेश्वर की एक पावन विभूति है।

—विनोबा

वह स्वयं टहलता रहता है ताकि उसकी गंध उन तक पहुँच जाय। उसके बाद वह दो एक बार दहाड़ता है। सिंहनी घास में छिपती हुई, दबक कर शिकार के पास पहुँचती है और फिर अपनी पूछ झाड़ की तरह सीधी खड़ी कर एकाएक उछलकर झपटती है। किसी मशीन के पुर्जे के अतिरिक्त आज तक मैंने कोई जीव ऐसा नहीं देखा, जो सिंह के समान फुर्ती से उछल सके।

सिंहनी अपने शिकार पर पीछे से झपटती है और अपने दांत उसकी गर्दन में और पिछले पैर शिकार की पीठ पर गड़ा देती है। अगर इससे काम नहीं बना, तो दोनों पंजों से गर्दन को पकड़ कर तोड़ डालती है। लीजिए भोजन तैयार हो गया।

सिंह-संग्राम

भोजन की विधि बहुत-कुछ सिंह की मर्जी पर निर्भर है। कभी-कभी तो वह तब-तक किसी को एक कौर भी नहीं खाने देता, जब-तक कि, उसका अपना पेट पूरा न भर जाय। कभी-कभी अपनी स्त्रियों को पहले खाने देता है और यदि मिजाज ठीक हुआ, तो स्त्री-बच्चों सभी को अपने साथ खाने के लिए आमंत्रित करता है। ऐसे मौकों पर दस-बारह सिंहों को एक साथ भोजन करते देखना कोई असाधारण बात नहीं। पता नहीं क्यों, सभी सिंह शिकार की आतों को पहले खाना चाहते हैं। वे तब तक खाते रहते हैं, जब-तक कि, उनका पेट ठूस-ठूस कर नहीं भर जाता। उसके बाद वे पड़े रहते हैं। जब दुबारा भूख लगती है, तब फिर शिकार की खोज होती है।

साधारणतया सिंह मनुष्य-भक्षी नहीं होता। लेकिन भेड़ या चौपायों के झुंड पर आक्रमण करते समय, यदि किसी मनुष्य ने उस पर हमला किया और उसने अपने बचाव के लिए उस मनुष्य को ही मार डाला, तो मनुष्य का रक्त उसके मुँह लग जाता है। इसके अलावा सिंह जब बूढ़ा होता है या घायल होता है, तो उसमें बड़े शिकार को मारने की ताकत नहीं रहती। उस वक्त वह अपने ही बच्चों द्वारा या दूसरे सिंहों द्वारा जंगल से भगा दिया जाता है और किसी गाँव के आसपास आसान शिकार की खोज में जाने के लिए मजबूर हो

जाता है। अफ्रीका में लोग घर में किसी की मृत्यु का होना बहुत अशुभ मानते हैं। इसलिए उनके घर में कोई आदमी जब मृत्योन्मुख होता है, तो उसके प्राण निकलने से पहिले वे उसे जंगल में छोड़ आते हैं। ऐसे मृतप्राय व्यक्तियों या उनकी लाशों को जब बूढ़ा निर्बल सिंह देखता है, तो खा जाता है। वैसे भी सिंह को सड़ा मांस अधिक प्रिय होता है। एक बार जब सिंह मनुष्य को खा लेता है, तो उसे यह बहुत आसान शिकार दिखायी पड़ता है और जब कभी बिना अधिक परिश्रम किये वह अपना पेट भरना चाहता है, तो मनुष्य पर आक्रमण करता है।

जे० ऐ० हंटर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि, एक बार मसाई जिले में चौपायों की रक्षा करते समय एवं अन्य कारणों से भी जब बहुत से मसाई लोग मारे गये, तो करीब सौ सिंहों को वहाँ से खदेड़ना पड़ा ताकि, स्वाद पाकर वे नर-भक्षी न बन जाएं। केन्या में कुछ शेरों ने सड़क बनाने के काम में लगे, कई आदमियों को खा डाला। एक बार तो वे आफिस में घुसकर सुपरिंटेंडेंट साहब को ही उठा ले गये। नर मांस एक बार भक्षण करने के बाद सिंह को उसकी लत पड़ जाती है। जिम कारबट ने भारत के ऐसे कई बाघों का जिक्र किया है, जिन्होंने पशुओं की अपेक्षा मनुष्यों को खाने में अधिक रुचि दिखलायी।

एक वयस्क सिंह में अपरिमित शक्ति होती है। पूरी उम्र के एक शेर का वजन तीन सौ पौंड से भी अधिक होता है। कम-से-कम एक सिंह तो मैंने ऐसा भी मारा है जिसका वजन छः सौ पौंड था। तंबाकू, शराब या अन्य किसी नशा अथवा दवाइयों की विषैली प्रतिक्रिया से मुक्त, जीवन भर शुद्ध प्रोटीन (केवल मांस), प्रकाश और यथेष्ट नींद पर पोषित, उसके स्प्रिंगदार अंगों में अपार शक्ति कूट-कूट कर भरी रहती है।

एक बार मैंने एक तेंदुए को, जो सिंह के मुकाबले में उसका केवल पाँचवाँ भाग होता है, जिराफ के एक बच्चे को (जिसका वजन तीन-चार सौ पौंड रहा होगा) अपने मुँह में दबा कर पेड़ पर चढ़ते देखा है। एक सिंह सात सौ पौंड भारी जेब्रा को अपने जबड़ों में उठाकर चल सकता है। आदमी तो शेर के मुँह में एक 'लेमन-ड्राप' की तरह है। उसे मुँह में दबाकर तो वह पंद्रह फुट की छलांग भी मार लेता है।

सिंह के दाँत छेनी की तरह पैने और पंजे कटार की तरह आगे की ओर मुड़े होते हैं। अगले पंजों में एक नाखून होता है, जो आक्रमण करते समय फैल जाता है। यह इतना तीखा और घातक होता है कि, सिंह के यदि और कोई अस्त्र न हो, तो केवल उस एक नाखून से ही वह बड़े-से-बड़े शिकार को चीर सकता है। उसकी भुजाओं में अपार शक्ति होती है और उछलता वह बिजली की तेजी से है। सदा सड़ा मांस खाने के कारण उसके दांत

और पंजों में उसके कण जमा रहते हैं और इसलिए वे स्वयं विषैले बन जाते हैं।

कुछ शेर बदमिजाज भी होते हैं। लेकिन मैंने एक आदमी को सिंह के मुँह पर हैट से थप्पड़ मारकर उसे हटाते भी देखा है। एक बार एक जीप-गाड़ी सिंह की पूछ पर से निकल गयी। मैंने भी एक सिंह के मुँह में से जेब्रा की लाश के टुकड़े को छीन कर दूसरी ओर फेंक दिया ताकि, तस्वीर उतारने के लिए मैं उसे ऐसे स्थान पर हटा सकूं, जहाँ प्रकाश अधिक हो। मोटर में अगर मांस का टुकड़ा रख दिया जाय, तो शेर वहीं कूद आयेगा। अफ्रीका के 'नेशनल पार्क' में ली गयी एक तस्वीर में एक सिंह को 'टूरिस्ट' गाड़ी के 'हुड' पर खड़ा बताया गया है। जिस प्रकार एक आदमी के चेहरे को देखकर बताया जा सकता है कि, वह किस प्रकृति का है, उसी तरह प्रत्येक सिंह को भी पहचाना जा सकता है। बदमिजाज, घबड़ाया हुआ, या दुष्ट प्रकृति का शेर देख कर ही पहचाना जा सकता है।

सिंह क्रोधित अवस्था में नहीं दहाड़ता। या तो रात गीली अथवा ठंडी हो और गठिया का दर्द उसे अधिक सताये या आकाश में सुंदर चाँद खिला हो और उसका मन प्रसन्न हो उठा हो, अथवा प्रीति-विह्वल हो, या भूखा हो, तभी वह दहाड़ता है। अधिकतर सिंह बड़बड़ाता रहता है। शिकायत करते रहना उसकी आदत है। चोट लगने पर वह चिल्लाता है और घायल होने के बाद भी उसकी आवाज अत्यंत भयानक होती है।

सिंह का शिकार आसानी से किया जा सकता है। उसे खदेड़ा जा सकता है, शिकार का लोभ देकर कहीं भी बुलाया जा सकता है और उसके बहुत नजदीक भी आप जा सकते हैं। मसाई प्रांत के गाँवों के लड़के तक शेर मार लेते हैं। स्वयं अपने हाथों से मारे हुए सिंह की अयाल की टोपी वहाँ के लड़के पहिनते हैं। मसाई लोग शेर का शिकार करने जब जाते हैं, तो कुछ 'मोरान' या सैनिक शेर को घेर कर उसे हमला करने को बाध्य करते हैं। शेर जब झपटता है, तो एक आदमी अपनी ढाल पर उसका वार रोक लेता है।

पूर्वी अफ्रीका के मसाई, परदेशी शिकारी और किसानों ने एक बार सिंहों की संख्या इतनी कम कर दी कि, पूरे मसाई इलाके में केवल चार सिंह ही शिकार के योग्य बच गये। यही हाल पड़ोस के सेरेंगेटी मैदान का था। अंत में, सरकार ने केन्या में शिकार की 'सीजन' खत्म कर दी और सेरेंगेटी को सुरक्षित प्रदेश घोषित कर दिया। आज तो फिर भी इस सुरक्षित प्रदेश में मोटर चलाते समय दस-बीस शेर दिखायी पड़ जाते हैं और उनके शिकार को उस प्रदेश में वर्जित करने के कारण उनकी संख्या में भी इतनी वृद्धि हुई है कि, वे इस सुरक्षित प्रदेश से बाहर निकल कर शिकारियों को अपने शिकार का भी अवसर दे देते हैं।

अधिक-से-अधिक २१ सिंहों को मैंने

एक साथ देखा है। सिह अपन परिवार का मुखिया होता हैं और उसके बच्चे यदि सविनय रह तो साथ साथ रह सकते ह। मुखिया सिह परिवार की सभी सिहनियो की देखभाल करता हैं। लेकिन एक दिन एसा आता है जब सबसे बडा बच्चा बूढ सिह को द्वद्व यद्ध के लिए ललकारता हैं इसमें जिसकी विजय होती ह वही परिवार का मुखिया बनता हैं। अधिकतर जवान सिंह अपन वढ बाप को घायल कर देता हैं आर बढा सिह परिवार को छोडकर अयत्र जान के लिए बाध्य हो जाता ह। उस वक्त कमजोर और घायल होन के कारण वह पहले मवेशियों पर और बाद में मनुष्यो पर आक्रमण करना सीखता हैं। इसके कुछ अपवाद भी ह। एक बार मंन एक एसे मुखिया शर को मारा जिसन अपन बट को थोडी देर पहले ही मार डाला था। हेरी सेल्वी नाम के शिकारी न पिस्तौल से एक एसे सिह को मारा जिसकी कमर उसके बट न तोड दी थी और जो घायल होकर दो हफ्तो से भूखा पडा था। लकडबग्घो न उसे घर लिया और कीडो न उसके मास को खाना शुरू कर दिया।

सिह प्राय दूसरे वय पशुओ के साथ अपना स्थान बदलता रहता है। जहाँ पानी और घास रहेगा वहाँ शिकार के नजदीक सिह भी पाया जाता हैं लेकिन एक बार जब वे किसी स्थान पर जम जाते हैं तो वहाँ से सामान्यतया हटते नही। उनकी आदते बडी स्थिर होती ह। एक पहाडी पर काली अयाल का एक सिंह दस साल से बराबर दिखायी पडता था। मसाई म म कुछ एसे सिह परिवारो से परिचित हूँ जो अपन अडड से कुछ ही मील इधर उधर होन के अलावा नही हटते।

टगानियिका म म एक बूढी सिहनी ममा को भी जानता हूँ। मुझसे वह बिगडी हुई है क्योकि मन एक दिन उसके पति को मारा था और तब से उसन निश्चय कर लिया है कि जीप-गाडी म आनवाले सभी लोग बुरे होते ह। वह मुझ पर झपट कर आयी। दूसरे दिन जब म फिर वहा गया तब भी उस सिहनी न मेरी गाडी पर आक्रमण किया। छ महीन बाद एडघू होमवग या टोनी डायर (ठीक से याद नही कौन) जब वहाँ गया तब भी वह बूढी शरनी उन पर तीर की तरह झपट कर आयी। इस बूढी सिहनी की स्मरण शक्ति तो बडी तीव्र थी।

कुछ सिह एकपत्नी व्रत रखते ह और जीवन-पयत उसे निभाते ह। लेकिन कुछ एसे भी ह जो पुरान राजाओ की तरह पूरा जनानखाना ही अपन साथ रखते ह। मन कई सिहनियो के साथ एक सिह देखा ह। मजे की बात तो यह है कि सिहनी अपन सौत के बच्चे की भी देख भाल और रक्षा करती हैं। साधारणतया एक सिहनी एक-साथ दो बच्चे देती है। लेकिन कई बार चार भी दे देती है। सिह का बच्चा अठारह महीने का होन के बाद अपनी रक्षा करन का भार स्वय ले लेता है।

★

प्रकृति और प्राकृतिक जीवन क्रम के अनन्य उपासक विट्ठलदासजी मोदी अभी हाल ही में स्विट्जरलैंड गये थे। प्रकृति के इस 'पारिजात-वन' के सम्पर्क का उनकी रसमुग्धा लेखनी द्वारा यह विवरण आपको काव्य जैसा मधुर लगेगा।

*

पेरिस एक सप्ताह रहकर स्विट्जरलैंड के जूरिख शहर के लिए चल पड़ा। तीन घंटे फ्रांस की रेल चलकर हमें स्विट्जरलैंड की सीमा में ले आयी। यहाँ से रेल चली, तो रास्ते के दृश्य देखकर काश्मीर याद आ गया। लगा कि, यहाँ कोई आँखों पर पट्टी बाँधकर छोड़ जाता, तो भी मैं यह समझ जाता कि, यह स्विट्जरलैंड है। ऊँची-नीची पहाड़ियाँ, नाले, छोटी-छोटी नदियाँ, चारों तरफ हरियाली, हरियाली में से झाँकते हुए गाँव और उनके बंगले सब-कुछ बड़ा सुहावना लग रहा था। चार बज रहे थे और जूरिख आनेवाला था; तभी मेरे निकट बैठी दो वृद्धाएँ मुझसे बातें करने लगीं :

"आप कहाँ से आये हैं?"

"हिन्दुस्तान से।"

"यूरोप कैसा लगा?"

"मेरी कल्पना से कहीं अधिक धनवान मैंने उसे पाया।"

"आध्यात्मिक तौर पर यहाँ के लोग आपको कैसे लगे?"

"क्षमा करें, इस सम्बंध में मैं कुछ कह नहीं पा रहा हूँ।"

"बिलकुल अनभिज्ञ और मूर्ख और यही तो यहाँ के ऐश्वर्य के आधिक्य में भी दुःख का कारण है। बाहर से सुखी पर अंदर से दुःखी! पर हम आशा करते हैं कि, भारत यूरोप को शांति के संदेश के साथ-साथ आध्यात्मिकता का भी संदेश देगा। आपके नेता गांधीजी ने तो राजनीति के साथ हिन्दुस्तान की आध्यात्मिकता भी चलायी!"

मैं यहाँ जरा चौंका, पर कुछ ऐसी ही बातें मुझसे मिले प्रायः हर वृद्धों ने कहीं थीं। फर्क इतना ही था कि, वृद्धा की बातें तीव्र आलोचनात्मक थीं—"हाँ, वे साध्य के लिए साधन की पवित्रता में विश्वास करते थे। अतः राजनीति में उन्होंने अहिंसा का प्रतिपादन किया।"

"आपके यहाँ भगवान बुद्ध ने बोये

अहिंसा के बीज भी तो थे।"

"बीजों को तो एक देश से दूसरे देश में जाने में देर नहीं लगती। कोई न ले जाय, तो वे उड़कर भी चले जाते हैं।"

मेरी यह उक्ति सुनकर उक्त महिला मुस्करा पड़ी। तभी पोर्टर ने सूचना दी– "ज़ूरिख आनेवाला है।"

मैंने कहा–"पोर्टर यहाँ सूचना देता है ?"

"हाँ, यह स्विट्ज़रलैंड है। यहाँ के लोग बड़े ही अतिथि-प्रेमी हैं और उनकी सुविधा का बहुत ध्यान रखते हैं।"

स्टेशन के निकट ही बढ़िया होटल मिल गया। यहाँ होटलों की कमी नहीं है। अकेले ज़ूरिख में ही इतने होटल हैं कि, छः हजार आदमी एक साथ ठहर सकें। दस मिनट में ही होटल का आदमी स्टेशन से सामान ले आया और हम नहा–धोकर शहर देखने निकले।

आते ही मैंने विर्चर-वर्नर 'क्लीनिक' की संचालिका को फोन कर दिया था और उन्होंने मुझे छः बजे 'क्लीनिक' देखने बुलाया था और उनकी इच्छा थी कि, हम वहीं भोजन भी करें। विर्चर–वर्नर का 'क्लीनिक' अपने भोजन-सम्बधी अनुसंधानों के लिए प्रसिद्ध है। इन अनुसंधानों का असर सारे स्विट्ज़रलैंड पर पड़ा है। विर्चर-वर्नर ने भोजन में पचास प्रतिशत कच्ची तरकारियाँ और फल रखने की सिफारिश की है। उन्होंने सेब को बहुत ही महत्वपूर्ण फल माना है। परिणाम यह हुआ है कि, आपको स्विट्ज़रलैंड के हर होटल में भोजन के साथ कच्ची तरकारियाँ जरूर मिलेंगी और सेब का ताजा रस तो आप वहीं भी खरीदकर पी सकते हैं।

घड़ी निर्माण स्विट्ज़रलैंड का प्रमुख व्यवसाय है। ऊपर पैबर ल्यूबा कम्पनी के घड़ी निर्माण कौशल की प्रतीक यह गुल दस्तानुमा घड़ी है।

हमने टैक्सी ली और पहले विर्चर-वर्नर के 'क्लीनिक' ही पहुँचे। वहाँ हमें 'क्लीनिक' की संचालिका दरवाजे पर ही मिल गयीं। उन्हें हमें पहचानने में देर नहीं लगी। उन्होंने हमें घूम-घूमकर 'क्लीनिक' दिखाया।

भोजनशाला में हमारी एक भारतीय महिला से भेंट हो गयी। वे यहाँ चिकित्सा करा रही हैं। वे अपने अन्य रोगों की मुक्ति के साथ-साथ अपना वजन घटाने भी यहाँ आयी थीं।

भोजन के बाद श्रीमती मार्टिन–यही उक्त भारतीय महिला का नाम था–हमारे साथ घूमने में भी शरीक हो गयीं। वे हमें ज़ूरिख झील के किनारे ले गयीं। यह झील ३० मील लंबी और औसतन एक मील चौड़ी है और ज़ूरिख को तीन ओर से घेरे हुए है। स्वच्छ हरा जल, किनारे पर बड़ी-बड़ी दूकानें, होटल, बेहिसाब चहल-पहल! सैंकड़ों नावें झील में दौड़ रही

थी। इस झील याद आ गयी, पर उन-स उनकी क्या तुलना? यदि इस को 'भिक्षुणी' कहें तो जूरिख झील को 'नव-विवाहिता दुल्हन' कहना पड़ेगा।

तीसरे दिन के लिए प्राकृतिक सौंदर्य दिखानेवाली मोटर में हमने सीट 'रिजर्व' करा ली। छोटी-सी साफ 'बस' थी, १८ आदमी बैठ चुके थे। ज्यों हम बैठे और बस चल पड़ी। पानी बरस रहा था।

पचीस मील चलकर हम कूमन पहुँचे। यह छोटी-सी आबादी है। अब भी पानी की छोटी-छोटी बूंदें धीमे-धीमे गिर रही थीं, तभी हमारी 'बस' एक होटल के सामने रुकी और होटल की मालकिन छाता लिए दौड़कर 'बस' के दरवाजे पर आ गयी। वह मुस्करा-मुस्कराकर हमें उतारने लगी और अपने छाते से हमें भीगने से बचाने की कोशिश करने लगी। उस वृद्धा की मुस्तैदी देखकर हैरानी होती थी। हर यात्री को उसने अपने स्नेह और मुस्कराहट की मिठास से सराबोर कर दिया। होटल में आकर हम बैठे ही थे कि, एक मुस्कराती हुई लड़की ने आकर हम से नाश्ते का आर्डर माँगा। जब वह हमारे लिए फल दूध लेकर आयी तो हम साथ लाये भीगे हुए बादाम छील-छीलकर खा रहे थे। हमने थोड़े बादाम उसे भी दिये तो वह कृतज्ञता से भर उठी। जब तक हमने नाश्ता किया वह बार-बार निकट आकर हमारी जरूरत पूछती रही और जब हम विदा हुए तो वह देर तक हमें देखती और हाथ हिलाती ही रही।

यहाँ से 'बस' जो चली तो वह प्राकृतिक दृश्यों के ही बीच थी। रास्ते के दोनों ओर हरे-हरे वृक्ष, हरियाली से लदी पहाड़ियाँ, चौड़ी गहरी झीलें, लंबी घाटियाँ, बड़े-बड़े झरने। बीच-बीच में गाँव भी आते जो जरा हमें चुभते। इन प्राकृतिक-दृश्यों से मैं उनका सामंजस्य नहीं स्थापित कर पा रहा था। पर यहाँ तो सारे ही पर्वतीय स्थानों में आधुनिक साधन पहुँच गया है। सारे पहाड़ों में ही नहीं उनकी चोटी पर भी रेल जाती है, अगम्य चोटियों पर भी 'केबिल ट्रेन'

## अपेक्षा

**अभी मैंने पश्चिमी देशों का दौरा किया है। मैंने देखा कि, यहाँ साधारण-से-साधारण मनुष्य और स्त्रियाँ, चाहे वे किसी वर्ग से सम्बंधित हों, अपने देश को विकसित करने के प्रति उत्साह दिखाती थीं; परन्तु मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि, हमारे देश में इस प्रकार के उत्साह का अभाव है। हम में से प्रत्येक को इस बात में गर्व का अनुभव करना चाहिए कि, हमारा देश क्या कर रहा है। वस्तुतः जब-तक बलिदानपूर्ण देशभक्ति की भावना हमारे भीतर जाग्रत नहीं होगी, तब-तक हम कुछ भी अर्जित नहीं कर सकते।**

**—राधाकृष्णन्**

पहुँच गयी है, जो तारा की रस्सी के सहारे चलती है। सड़क पर जगह-जगह 'टेलिफोन' था।

दो घंटे बाद तो हमें बर्फ भी दिखायी देने लगी। काश्मीर में नग पर्वतों की चोटियों पर बर्फ देखी थी, पर यहाँ तो हरे पर्वतों पर बर्फ थी। बर्फ कभी-कभी हमारे नजदीक आ जाती और आगे तो बर्फ ही बर्फ दिखायी देने लगी।

११ बजे हमारी बस 'रोत' नदी के उद्गम के नजदीक पुरखा में रुक गयी। यहाँ आबादी बिलकुल नहीं है। पर यात्रियों के लिए एक बड़े-से कमरे में बाजार लगा हुआ था। जहाँ गाँवों में बनी चीजें, खिलौने, घड़ियाँ, बच्चों के जूते आदि बहुत-सा सामान बिक रहा था। कुछ रंग-बिरंगे पत्थर भी थे, जिनके ये पहाड़ बने हैं।

बाजार के पास बैठा एक आदमी एक राव फैंक (अठारह आना) लेकर बाजार से लोगों को बाहर की ओर ले रहा था, हम भी गये। वहाँ तो बर्फ का पहाड़ ही था और बर्फ में यह गुफा! लोग गुफा में जा रहे थे और एक दूसरी गुफा से निकल रहे थे। क्या इस गुफा में जाना ठीक रहेगा? यह विचार मस्तिष्क में एक क्षण का ही रहा होगा। जब सब लोग जा रहे हैं, तो डर क्या है? गुफा बर्फ का ही एक भाग थी। बर्फ तो सफेद होनी चाहिए, पर यह नीली क्यों? शायद बाहर गुफा पर चमकती सूर्य की किरणें इसे नीली ही नहीं पारदर्शक भी बना रही थीं। नीले रंगवाली यह गुफा इतनी सुंदर लग रही थी कि, शरीर का रोम-रोम आँखें हो जाना चाहता था! डेढ़ सौ गज चलकर हम एक छोटे गोलाकार कमरे में आ गये। यहाँ दो दीपक जल रहे थे। यहाँ तो आकर प्रेमी और प्रेमिकाएं आपस में चूमने ही लगे। प्यार के स्मृति-चिह्न अंकित करने का उपयुक्त स्थान दूसरा इस पृथ्वी पर हो भी कौन-सा सकता था? चारों तरफ शिव-ही शिव व्याप्त था, सुंदर भी सजग हो उठा था।

जीवन के सुख दुःख, आशा निराशा में सहधर्मी दाम्पत्य के प्रतीक एक स्विस शिल्प की अनुकृति

मुड़कर हम बाहर निकलने वाली गुफा में चले और एक तृप्तिकर आनंदानुभूति लिए बाहर निकले। बाहर लोग बर्फ में खेल

रहे थे। बर्फ की गेंदें अपने मित्रों पर फेंक रहे थे और उनकी मार मुस्कराते-मुस्कराते सह रहे थे पर, 'बस' चलने का समय हो गया था अतः खेल छोड़कर 'बस' में आना पड़ा।

अब तो 'बस' बर्फ की दीवारों के बीच चल रही थी। बर्फ कभी सर से ऊँची हो जाती, तो कभी नीची। बर्फ की अनेक आकृतियाँ!

कुहासा तो जैसे जादूगर ही बना बैठा था। कभी रास्ता दिखाई देना कठिन हो जाता, तो कभी वह हटकर मीलों तक दृश्य स्पष्ट कर देता। सूर्य चमकने लगता और हम दौड़ती 'बस' से ही फोटो लेने के लिए कैमरे ठीक करने लगते। एक एक दृश्य देखकर मन नाच उठता था। हम उन्हें कैमरे में बाँध लेना चाहते थे, पर कैमरे की इस अनंत सौंदर्य के सामने भला क्या बिसात!

हमारी 'बस' को देखकर हर गुजरती, 'कार' और 'बस' में से हाथ निकलकर हिलने लगते। रास्ते के गाँवों में ग्रामीण बालाएँ और युवक हमें देखकर मुस्करा-मुस्कराकर हाथ हिलाते, हमारा स्वागत करते। उनकी मधुर सरल फूलों-सी मुस्कान हृदय में उतर जाती। गैर अपने बन जाते!

यहाँ के सारे पहाड़ों को फूलों का बाग कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

छः बजे पहाड़ों, जंगलों, वनों का चक्कर लगाते झीलों, झरनों, पर्वतों का दर्शन करते हम लुसान वापस आ गये। यहाँ सुबह जिस होटल में हमने नाश्ता किया था, वहीं भोजन किया और सात बजे यहाँ से 'बस'-ज़ूरिख के लिए चल पड़ी। अँधेरा होने लगा था, दृश्य अस्पष्ट और सुबह देखे दृश्यों को फिर देखने की उत्सुकता कम! अतः हमारी 'बस' की पथ-प्रदर्शिका ने 'रेकार्ड' बजाने शुरू कर दिये। रास्ते-भर वह हमें 'माइक्रोफोन' से रास्ते की जगहों के नाम, उनकी विशेषताएँ बताती आयी थी। अब 'माइक्रोफोन' का यह उपयोग हमें बड़ा अच्छा लगा। वाद्य संगीत ही अधिक था जो बड़ा मधुर था जैसे विजय-गीत हो। 'बस' में बैठी कई युवतियाँ संगीत का लाभ उठाकर गाने लगीं। गाना खत्म होता और तालियों की गड़गड़ाहट से 'बस' गूंज उठती।

इस प्रकार गाते-हँसते ८॥ बजे हम ज़ूरिख पहुँचे। 'बस' से उतरकर सबने आपस में हाथ मिलाया और अपने-अपने होटल के लिए चल पड़े।

हम एक दिन में २५० मील की यात्रा करके लौटे थे और आधे स्विट्ज़रलैंड की परिक्रमा हमने कर ली थी। जितना पंद्रह दिन में काश्मीर में देखा था, उससे कई गुना अधिक एक दिन में देख सका।

क्या मैं स्विट्ज़रलैंड को स्वर्ग कहूँ और उन पर्यटकों के स्वर-में-स्वर मिला दूँ, जो स्विट्ज़रलैंड को 'पृथ्वी का स्वर्ग' कहते हैं? यदि स्विट्ज़रलैंड ही केवल पृथ्वी का स्वर्ग है, तो फिर स्विट्ज़रलैंड-वासियों के लिए किस स्वर्ग की कल्पना की जायगी?

☆

पटेल इंडिया लिमिटेड

१९० हार्नबी रोड, ५ लिंडसे स्ट्रीट, ७९० वल्लाजाह रोड, आसफ अली रोड,
बम्बई कलकत्ता मद्रास नयी दिल्ली

# अगर
# शहंशाह अकबर ब्राडकास्ट करते

इलाहाबाद आकाशवाणी से प्रसारित डा० रामकुमार वर्मा का एक रोचक संदर्भ

★

दीने-इलाही दुनिया का दीन है। हर एक दीन और धर्म के मुताहिसों से हमने दीने इलाही के लिए सिर्फ दस बातें चुनी हैं। सुनिये–

पहली है, जूद और करम (दरियादिली और मेहरबानी)। कुरान की आयत है कि, जब-तक तू अपनी सब से प्यारी चीज कुरबान नहीं करता, तब-तक तू हकीकत से वाकिफ नहीं हो सकता। इसलिए दरिया दिल और मेहरबान होना जरूरी है।

दूसरी बात है, बुरे काम करने वाले को माफ कर देना और उसके गुस्से का जवाब शीरी जबान से देना।

कम मबाश अज दरख्ते
साया फिगन।
हर कि संगत जनद
समर बख्शा॥

–तू साया देने वाले दरख्त, कम न साबित हो। जो तुझे पत्थर मारे, उसे तू फूल दे।

तीसरी बात है, दुनियावी ख्वाहिशात (इच्छाओं) से तू परहेज कर।

चौथी बात है, दायमुल वजूद (अमरत्व) के लिए तू इस दुनियावी जिंदगी की कैद से नजात (मुक्ति) हासिल कर।

पाँचवी बात है, कामों को तू अक्ल और अदब से अंजाम दे।

छठी बात है, दुनिया में खुदा का ऐजाज (करिश्मा) तू तभी देख सकता है जब तू होशियारी से काम ले।

सम्राट अकबर
[चित्र : 'इंडियन ज्वेलरी ऐंड आर्नामेंट्स' नामक ग्रन्थ से साभार]

सातवीं बात है, सब के लिए नर्म जबान और खुश कलाम (मीठाबोल) रखना जरूरी है।

आठवीं बात है, दूसरे की बात हमेशा अपनी बात से मुकद्दम (बढ़कर) समझ।

नवीं बात है, दीन के लिए तू दुनिया को तर्क कर दे और अपने को खुदा पर छोड़।

दसवीं और आखिरी बात यह है कि, ए बिरादर! अगर तू अपने दोस्त से वस्ल चाहता है तो रूह और नफ्स को एक में मिला दे।

बस इन्हीं दस बातों में दीने इलाही है। खुदा ने हमें मुल्क अता फरमाया। उस मुल्क को हम शीरी जबान दें, मुहब्बत दें, इबादत दें। अल्लाहो-अकबर!

★

संसार के सुप्रसिद्ध आत्मशिल्पियों के वैयक्तिक अनुभवों पर आधारित आत्मोन्नति के कुछ जीवन सूत्र

*

मानव-श्रम की महिमा अपार है। इतिहास को गढ़ने का सर्वाधिक श्रेय यदि किसीको है, तो वह मनुष्य के परिश्रम को। श्रम द्वारा ही प्रत्येक युग का मानव अधिकाधिक महत्त्व, आरोग्य एवं शान्ति प्राप्त करता आ रहा है। प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति एवं विकास मानवीय श्रम द्वारा ही सम्पन्न हुए हैं। विज्ञान, कला, वाणिज्य, उद्योग, संस्कृति, मानवता-सभी का उत्कर्ष मनुष्य के परिश्रम की ही देन है।

लेकिन जिसे हम काम समझते हैं, उसका स्वरूप बहुत-कुछ आधुनिक है। ईसा के छः हजार वर्ष पूर्व ऐसी कोई वस्तु लोगों के दिमाग में न थी। उस समय लोग मन-बहलाव के लिए शिकार, अनुभव प्राप्त करने के लिए अथवा रुचि से खेती तथा पशु-पालन करते थे। किसी भी कार्य को सम्पन्न करने में जो आनंद मिलता है, उसे प्राप्त करने के लिए ही लोग काम करते थे।

श्रम
[चित्र : स्वीडन के एक रंगीन चित्र की रेखा प्रतिकृति]

लेकिन ईसा से पाँच-छः हजार वर्ष पूर्व जीवन कुछ जटिल बन गया और अधिकाधिक बनता ही गया। उसके साथ-साथ आदमी का काम भी पेचीदा होने लगा। पशु-पालन में कई अरुचिकर दैनिक कार्यों की आवश्यकता पड़ती। खेती में भी समय-समय पर कठोर परिश्रम करना पड़ता, नहीं तो भूखों मरने की नौबत आ जाती। वही कार्य जो अब तक आनंद के लिए किया जाता था, अब मजबूर होकर करना पड़ता। इच्छा रहने या न

रहने पर भी, जिसे करने के लिए बाध्य होना पड़े, वही काम बन गया। आज-कल काम का यही अर्थ अधिक प्रचलित है।

उसी समय से काम स्वास्थ्य और सुख का स्रोत न रहकर, मनुष्य के लिए एक हौवा बन गया। वह उससे दूर भागने लगा। यही कारण है कि, हम चालीस वर्ष तक रोज तीन या चार घंटे काम करके शेष जीवन आराम से काटने के सपने देखा करते हैं।

एच जी वेल्स ने आशा प्रकट की है कि, अधिक न्याय-पूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के कारण आनेवाली पीढ़ियों को रोज रोज इतनी कड़ी मेहनत नहीं करनी होगी। बैंक और बीमा कम्पनियाँ लोगों को ६५ साल की उम्र में सम्पूर्ण अवकाश प्राप्त करने की स्थिति का आश्वासन देकर काफी व्यवसाय करती हैं। इन सभी बातों में कम-से-कम काम करने की खतरनाक प्रवृत्ति का बीज छिपा है।

बहुत कम लोग यह याद रख पाते हैं कि, जिंदगी केवल एक रूखा ढर्रा या कठोर परिश्रम ही नहीं। किन्तु महान व्यक्तियों ने इस महान सत्य को पहचाना है कि, कर्म ही जीवन है।

जान रस्किन ने लिखा है–'मनुष्य के श्रम का सर्वोच्च पारितोषिक उससे प्राप्त पारिश्रमिक नहीं, बल्कि उससे वह स्वयं क्या बनता है वही है।'

महान धनपति हेनरी फोर्ड ने अनुभव किया कि, हमारा काम हमें जीवन का साधन ही नहीं, बल्कि स्वयं जीवन प्रदान करता है। *लिड उन्ताङ का कथन है–"वास्तविक आनंद उसे ही प्राप्त होता है, जो अपने योग्य कार्य उचित ढंग पर करता है।"* कुछ भी नहीं करने से या काम को बिगाड़ कर अथवा अयोग्यता से करने से मन दुःखी होता है।

## काम : अमृत

**यदि अच्छा और परिश्रमपूर्ण काम है, तो वह एक ऊपर उठाने वाली, उल्लास और शक्ति देनेवाली चीज है। आपको कितना परिश्रम करना पड़ता है, इसकी परवाह नहीं। लोग आकर मुझसे कहते हैं कि, इतनी मेहनत न करो, तुम काफी सोते नहीं हो। इसकी क्या चिंता? कठिन परिश्रम करने से कोई मरा नहीं है, बशर्ते कि, वह अच्छे उद्देश्य के लिए काम कर रहा हो और जो लगाकर काम कर रहा हो। इसके विपरीत लोग मानसिक थकावट और दूसरे कारणों से मर जाते हैं।**

—*जवाहरलाल नेहरू*

जवाहरलाल नेहरू का कार्यक्रम सुबह सात बजे से ही शुरू हो जाता है। वे प्रतिदिन ७ बजे प्रात काल से लेकर २ बजे रात तक कार्य करते रहते हैं, लेकिन उनको इतना काम करके भी कोई परेशानी महसूस नहीं होती। उन्होंने तो बल्कि यह लिखा

हूँ कि, काम के भार से मैं अपने मस्तिष्क और बदन की स्फूर्ति कायम रख पाता हूँ और यह अच्छे स्वास्थ्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

केवल मनोरंजन, जीवन-यापन का साधन, स्वास्थ्य और सुख ही अधिक काम करने पर निर्भर नहीं, बल्कि मनुष्य की महानता की भी यही नींव है। प्रतिभा दस प्रतिशत प्रेरणा और नब्बे की सदी कठोर श्रम है, यह उक्ति बिलकुल सच है।

सन् १८४२ में चार्ल्स डारविन ने एक खेत पर खड़िया मिट्टी के टुकड़े इसलिए बिखेरे, ताकि मिट्टी को ढालने में केंचुए क्या कार्य करते हैं, इसकी खोज वे कर सकें। २४ साल बाद उन्होंने इसके परिणाम की जाँच के लिए एक खाई वहाँ खोदी। एक सामान्य प्रयोग के खातिर इतनी लगन से उन्होंने परिश्रम किया।

प्लेटो ने अपनी प्रख्यात पुस्तक 'रिपब्लिक' की प्रथम पंक्ति नौ बार लिखी। गिबन ने 'डिक्लाइन ऐंड फाल आव द रोमन एम्पायर' का प्रथम परिच्छेद सात भिन्न-भिन्न तरीकों से लिखा। 'मैडम बावरी' लिखते समय गस्टाफ फ्लाबर्ट ने एक उपयुक्त शब्द ढूँढ़ने के लिए कई देशों की यात्रा की थी। माइकेल-एन्जेलो भी इसी प्रकार खूब परिश्रमी थे। उस समय भी जब कि, वे कामियों सहायक बिना तनख्वाह दिए रख सकते थे, उन्हें अपने ही हाथ से सब-कुछ करना अधिक प्रिय था। यहाँ तक कि, चौखट, छेनी या मदानी इत्यादि औजार भी वह अपने ही हाथ के बने इस्तेमाल करते थे।

लियोनार्डो-विंसी संसार के उन महापुरुषों में से थे, जिन्हें अपना काम इतना प्रिय था कि, सुबह पौ फटने ही वे अपने स्टुडियो में चले जाते और शाम तक कार्य करते रहते। दिन भर वे प्रायः कुछ खाते-पीते भी नहीं थे।

रूस के जार, पीटर ने, जिसे वर्तमान रूसी सरकार भी महान मानती है, २६ वर्ष की उम्र में कठोर परिश्रम से अपनी रोटी आप कमाकर, यूरोप-भर का भ्रमण किया। जहाज-निर्माण का काम सीखते वक्त वह हालैंड के एक बंदरगाह पर एक मामूली मजदूर की तरह साधारण कुटिया में रहा। रूस की प्रथम जल-सेना तैयार करने के लिए कई मजदूरों के साथ उसने दिन-रात कड़ी मेहनत की! उसने अकेले अपने हाथों से रूस को संसार का एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाया। यही कारण है कि, रूस का प्रत्येक नागरिक उसे 'पीटर महान्' के नाम से पुकारता है।

'टाइम्स', 'डेलीमेल' और 'इवनिंग न्यूज' जैसे विश्व-विख्यात पत्रों के मालिक, स्वर्गीय लार्ड नार्थक्लिफ अपने गाढ़े पसीने की कमाई और अद्भुत साहस से ही इतने आगे बढ़े। लड़कपन में उनके पास एक भी पैसा नहीं था और न उनका कहीं प्रभाव ही था। बिना धन या मित्रों की सहायता से उन्होंने केवल अपने कठोर परिश्रम के कारण, बहुत मामूली हैसियत

से अपने-आपको इतने ऊँचे पद पर पहुँचाया।

काम अपने अनुयायियों को महानता के पथ पर तो ले आता ही है, लेकिन किसी भी राष्ट्र अथवा संस्कृति को अधिक टिकाऊ और महान बनाने का यदि कोई साधन है, तो वह कार्य ही है। इतिहास इस बात का गवाह है कि, जिस किसी देश में श्रम और श्रमिक की महत्ता घट गयी और उन्हे नीचा देखा जाने लगा, वह देश शीघ्र ही पराधीनता के मार्ग पर अग्रसर हुआ, एव उसकी संस्कृति धीरे धीरे क्षय-क्षीण होकर नष्ट हो गयी।

रोमन और यूनानी सभ्यता इसके स्पष्ट प्रमाण है। इन प्रजातंत्र राष्ट्रो के अंतिम दिनों में अकर्मण्य लोगो की सख्या में अत्यत वृद्धि हो गयी थी। जूलियस सीजर के जमाने में तो अनुमान लगाया जाता है कि, राज्य-कोष पर निर्भर रहनेवाले व्यक्तियो की सख्या ३,२०,००० थी। इनके अतिरिक्त हजारो और भी ऐसे लोग थ, जो भ्रष्ट राजनीतिज्ञो को जनमत दिलाने के लिए रुपया एठ कर अपना निर्वाह करते थे। यही कारण है कि, यूनानी अथवा रूसी उत्कर्ष-काल म कोई भी नवीन वैज्ञानिक अनुसधान अथवा प्रकृति पर विजय की गाथा सुनने म नही आती।

भारतवर्ष और दूसरे एशियाई राष्ट्र इस समय सक्रमण की परिस्थिति मे से गुजर रहे है। सहस्रो वर्ष की अकर्मण्यता के कारण जिस पराधीनता के चगुल में वे अब तक फँसे रहे, वह खत्म हो चुकी है। आज वे स्वतत्र है, लेकिन अपनी नवीन प्राप्त स्वतत्रता की रक्षा के लिए उसके, स्थायित्व के लिए ससार के राष्ट्रो में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने के लिए, उन्हे इतिहास की यह शिक्षा कभी नही भूलनी चाहिए कि, जो जाति पराक्रम करती है, वही जीती है।

★

## याचना

जिन प्राणो से लिपटी हो
पीडा सुरभित चन्दन-सी।
तूफानो की छाया हो
जिसको प्रिय आलिंगन-सी।
जिसको जीवन की हारे
हो जय के अभिनन्दन-सी।
वर दो यह मेरा आँसू
उसके उर की माला हो।

—महादेवी वर्मा

★
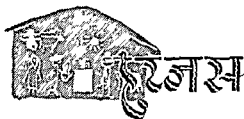
राजस्थान का यह बोध प्रखर लोक-काव्य अपनी मर्मस्पर्शिता में बेजोड़ है। भाष्य सहित यह हमें डा० कन्हैयालाल सहल से प्राप्त हुआ है। निष्कपट सत्य की प्रेम प्रखर अग्नि के सम्मुख निदारुण हिंसा भी प्रेम-पयस्विनी बन जाती है, इसकी प्रतीति में यह गीत एकदम अचूक है।

★

हरिजी को बाड़ो घेर घुमेरो, सीता है रखवाली हो राम। हरे भज राम ॥१॥
गोरी गँवतरी चौबे पूजे, इन्द्र रह्यो धर्राय हो राम। हरे० ॥२॥
एक बन चरियो, सकल बन चरियो, सिंहां को राख्यो बिड़लो उण चर्‌यो। हरे० ॥३॥
चरतां-चरतां सिंह ज आया, तो राख्यो बिड़लो अण चर्‌यो। हरे० ॥४॥
आ ए गँवतरी! भखलू ए भाई, सिंहां का बिडला तैं चर्‌या। हरे० ॥५॥
आच्छो रं भाई, भख ले रं भाई, एक बर भाई वचना को बांधी, एक बर पाछी जाण दे। हरे० ॥६॥
घर मा उडीकं मेरा धणी धोरी बाई राभं मेरो बाछड़। हरे० ॥७॥
जा ए गँवतरी! वचनां की बांधी, वचनां की बांधी पाछी आए गँवतरी। हरे० ॥८॥
चाली रं गँवतरी ठाण में आई, टणक-टणक आँसू टपकं हो राम। हरे० ॥९॥
आए गँवतरी! खूंटं बांधू, म्याडं मैं राँभै तेरो बाछड़। तेरं गूंयाडं मं परत न धमस्यू, वचनां को बांध्यो दूध प्यायसू। हरे० ॥१०॥
आ रं बाछड़िया! चूंग ले रं दूधो, वचनां रो बाँध्यो दूधो चूंग ले रं भाई। हरे० ॥११॥
आगं बाछड़िया! गैल्यो गँवतरी, वचना को बाँध्यो दूधो ना पिऊँ। हरे० ॥१२॥
एक बन देख्यो, सकल बन देख्यो, सिंहां रो राख्यो बिडलो मं चर्‌यो। हरे० ॥१३॥
कित है माता तेरा सिंह धड़ूकं, कितरं तनं भखण चालियां। हरे० ॥१४॥
इत भूल्या म्हारा भखणियां, इतही सिंह धड़ूकसी। हरे० ॥१५॥
आ रं मामलिया! भख रं भाई, पाछं भख मेरी माय नं। वचनां को बांध्यो दूधो ना पिऊँ। हरे० ॥१६॥

कण रैं बाछडिया! सिख बुध दीन्हीं, कण तन वचन सुणाइयो। हरे० ॥१७॥
हरि रैं मामलिया! सिख बुध दीन्हीं, माता वचन सुणाइयो। हरे० ॥१८॥
तनैं रैं बाछडिया! हसली कडूला, अगड घडाऊँ तेरी माय नैं। हरे० ॥१९॥
तेरैं रैं वाछडिया! झुगला टोपी, तील पहराऊँ तेरी माय नै। तेरैं ऊपर
के वारि मर ज्याऊँ॥ हरे० ॥२०॥

अर्थात् हरि की घेर घुमेरवाली वाटिका है और सीता उसकी रखवाली करनेवाली है ॥१॥ गौरी गाय खुले में काँप रही है और इन्द्र घनघोर गर्जन कर रहा है॥

(इसी समय वह गाय चरने निकली) एक वन की घास चर कर और सब वनों की घास भी चर ली, (यहाँ तक कि) सिहों से रक्षित हरे भू भाग भी उसने चर डाले॥३॥

वह चर रही थी कि, इतने में सिंह आ गये और (आपस में कहने लगे) कि, हमारे रक्षित भू-भाग को इसने चर लिया।

(एक सिंह ने आगे बढ कर कहा) हे गाय! इधर आओ, मैं तुम्हारा भक्षण करूँगा, क्योंकि तुमने सिंहों के हरे भू भाग को चर लिया है।

गाय ने प्रत्युत्तर दिया–'अच्छा भाई! मेरा भक्षण कर लो, किन्तु भाई! वचन-बद्ध होकर मुझे एक बार वापिस जाने दो।'

घर पर मेरे मालिक मेरी बाट देखते होंगे और खरक में मेरा बछडा रँभाता होगा।

सिंह ने कहा–हे गाय! तुम वचन-बद्ध होकर वापिस जाओ और वचन-बद्ध होने के कारण वापस आना।'

गाय वहाँ से चल कर अपने स्थान पर पहुँची, उस समय उसकी आँखों से टपटप आँसू टपक रहे थे।

गाय के मालिक ने कहा–हे गाय! आओ, मैं तुम्हे खूँटे से बाँधू, देखो, खरक में तुम्हारा बछडा रँभा रहा है।'

गाय ने उत्तर दिया–'अब मैं तुम्हारे खरक में कभी न बँध सकूँगी, मैं तो अपने बछडे को वचनों से बाँधा हुआ दूध पिलाऊँगी।'

गाय ने कहा–हे वत्स! आओ,

कुरान की एक आयत द्वारा अंकित सिंह
[चित्र एक अरबी चित्र की प्रतिकृति]

(अंतिम बार) मेरा दूध पान कर लो; वचन-बद्ध दुग्ध का पान कर लो।'

(यह सुनते ही) बछड़ा आगे चल पड़ा और गाय पीछे-पीछे (क्योंकि) बछड़े ने कहा-'मैं वचनों से बँधा हुआ दूध नहीं पीता।'

गाय ने कहा कि, मैं एक वन देखती हुई तथा और सब वनों को देखती हुई सिंहों से रक्षित भू-भाग को चरने लगी थी, (इसी से यह नौबत आयी)।

(जब गाय और बछड़ा जंगल में पहुँच गये तो बछड़ा गाय से पूछता है) 'हे माता! तेरा वह सिंह कहाँ दहाड़ता है और तुझे भक्षण करने वाला वह कहाँ है?'

गाय ने कहा-'हे वत्स! मुझे भक्षण करने वाला यहीं सोया हुआ है और यहीं वह सिंह दहाड़ेगा।'

(इतने में सिंह आ पहुँचा) सिंह को देखकर बछड़ा दृढ़ता से आगे बढ़ा और कहने लगा-'आओ, मामा! पहले मेरा भक्षण कर लो, इसके बाद मेरी माँ का भक्षण करना क्योंकि, वचनों से बँधा हुआ दूध मैं नहीं पीता।'

सिंह ने तरस खा कर कहा-'हे वत्स! तुम्हें यह शिक्षा और यह बुद्धि किसने दी और किसने तुम्हें अमृतोपम वचन सुनाये?'

बछड़े ने उत्तर दिया-'हे मामा! भगवान ने मुझे यह शिक्षा दी और माता ने मुझे उपदेश दिया।'

सिंह ने प्रसन्न होकर कहा-'हे वत्स! मैं तुम्हारे लिये हँसली और कड़ूला (आभूषण-विशेष) घड़वा दूंगा और तुम्हारी माता के लिये अघड़।'

'हे वत्स! मैं तुम्हें झुगला (बच्चों का कुरता) और टोपी पहनाऊँगा और तेरी माता को तौयल। तुम पर मैं न्यौछावर होता हूं।'

★

## आभार

'आइवनहो' के प्रख्यात लेखक, सर वाल्टर स्काट ने एक बार किसी फंड के लिए एक सभा आयोजित की। फंड का महत्व समझाते हुए उन्होंने अत्यंत ही मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी भाषण दिया। चंदा इकट्ठा करने के लिए भाषण के उपरान्त उन्होंने अपना हैट श्रोताओं के सम्मुख घुमाया; लेकिन चंदे के नाम किसी ने एक पैसा भी हैट में नहीं डाला। जब खाली हैट उनके पास वापस आ गया, तो उन्होंने बड़ी शांति से कहा-"आप लोगों का मैं अत्यंत आभारी हूँ कि, आपने मेरा हैट तो कम-से-कम सकुशल वापस लौटा दिया।"

—बादल कुमार बनर्जी

★

# जल की खेती और अंडी

बेल्जियम और हालैंड के देशों में एक ओर तो जनसंख्या लगातार होती जा रही है, और दूसरी ओर सारे संसार को सस्ते मशीनी उत्पादन से पाट देने के लिए चप्पे चप्पे जमीन पर उद्योग खड़े किये जा रहे हैं। अतः कृषि के लिए भूमि बच नहीं पा रही है। खेती का यह नया तरीका इसी समस्या का समाधान है।

★

बिना भूमि की कृषि-प्रणाली एक ऐसी रासायनिक प्रणाली है, जिसमें जल और रासायनिक क्रियाओं का मुख्य हाथ रहता है। सामान्य कृषि प्रणाली में पौधों को भूमि से, जड़ों के माध्यम, खाद्य पदार्थ (जैविक पदार्थ) प्राप्त होते हैं, परन्तु बिना भूमि की कृषि पद्धति से इन पदार्थों को ये खाद्य पदार्थ रासायनिक द्रव्यों के रूप में जल के माध्यम से पहुँचाये जाते हैं। अतः जहाँ जमीन की कमी हो, उद्यान-पद्धति पूर्णतः असफल सिद्ध हो चुकी हो, जहाँ भूमि बंजर हो, सिंचाई की व्यवस्था न हो, रेगिस्तान या पहाड़ी स्थान हो, वहाँ रासायनिक पद्धति से–बिना भूमि के–उत्तम पोषक तत्वों और समस्त विटामिनों से पूर्ण वनस्पति उत्पन्न की जा सकती है।

सर्वप्रथम, जापान में अमेरिका के फौजी सिपाहियों ने बिना भूमि खेती की पद्धति से ८० एकड़ का खेत तैयार किया था, जिसमें एक भी पौधा भूमि पर नहीं उगाया गया। आज भी पूर्वी देशों में, जहाँ की जनसंख्या बहुत अधिक है, हजारों खेत उपर्युक्त प्रणाली से तैयार किये जाते हैं और खाद्य पदार्थों के अभाव की पूर्ति सहज ही कर ली जाती है।

हाल ही में, नूतन शोध और प्रयोगों से यह पद्धति अत्यंत सरल बना दी गयी है और कोई भी व्यक्ति इस पद्धति से लाभ उठा सकता है। इसके लिए कृषि-यंत्रों की भी आवश्यकता नहीं होती।

अब तक इस पद्धति के लिए पोषक लवण के मिश्रण तैयार करने पड़ते थे जिनके लिए विशेष बर्तनों और विद्युत्-घड़ियों की आवश्यकता पड़ती थी। प्रयोग का व्यय भी कोई साधारण नहीं था। खेती करनेवालों के लिए तद्-विषयक ज्ञान और अनुभव अपेक्षित थे। परन्तु अब इन समस्त कठिनाइयों को दूर कर दिया गया है और 'नूतन

बगाल-पद्धति' का परिपूर्ण विकास किया गया है। 'बगाल-पद्धति' अत्यंत ही सुगम है। इस पद्धति से सफल प्रयोगों से ब्रिटेन तथा अन्य राष्ट्रों के लिए जहाँ जनसंख्या सघन है तथा कृषि के लिए उपयुक्त भूमि का मिलना कठिन है, अनेक सम्भावनाओं का मार्ग प्रशस्त हो चुका है।

जल-खेती या बिना भूमि की खेती का कार्य अत्यंत ही सरल है। किसी भी धातु के बर्तन में जो काफी गहरा हो पौधे पैदा किये जा सकते हैं। बर्तनों में १ से ३ इंच तक कंकड़ या गीली राख के साथ मिट्टी का मिश्रण ५/२ के अनुपात से भर देते हैं। ऐसे मिश्रण को सांज की तरह सदा गीला रखा जाता है। इस तरह तैयार हो जाने पर क्यारियाँ बना कर बीज डाल दिये जाते हैं। पौधों के उग आने पर क्यारियों के बीच में और पौधों की कतारों के आस-पास भूमें रासायनिक लवण और राख का मिश्रण छिड़का जाता है। इस लवण समाहि के ऊपर पानी के छींटे दे दिये जाते हैं।

रासायनिक खाद अपना प्रभाव भी तत्काल ही दिखाता है। अब उत्पन्न किये जानेवाले पौधे बड़े ही ताजे और भरे-पूरे होते हैं। परिणामतः फल भी बड़े मीठे और रसीले होते हैं। रासायनिक मिश्रण में मुख्यतः सोडियम नाइट्रेट या अमोनिया सल्फेट, पोटाशियम सल्फेट, मैगनेशियम सल्फेट और फास्फोरस रहते हैं। इनके अतिरिक्त चूने की भी आवश्यकता पड़ती है। जहाँ ये पोषक तत्व सुलभ न हों, वहाँ उनके स्थानापन्न तत्वों का उपयोग किया जा सकता है।

बिना भूमि की रासायनिक खेती की उपज भी साधारण खेती से अधिक होती है। जहाँ उत्तम भूमि और खाद के उपलब्ध होने पर भी एक एकड़ से साधारणतया ६० टन से अधिक टमाटरों की पैदावार नहीं होती, वहाँ जल-खेती से २०० टन टमाटर पैदा किये जा सकते हैं—औसतन हर पौधे पर २५ पौंड टमाटर। भू-खेती से एक एकड़ में २०० पौंड से भी कम मकई पैदा होती है, परन्तु रासायनिक खेती से एक ही एकड़ में ६०० पौंड से भी अधिक मकई पैदा की जा सकती है। उत्तरी बंगाल के दार्जिलिंग

## वंचना

जिस किसी ने अपने जीवन में एक बार भी उस आनंद का, जो वैज्ञानिक अनुसंधान के बाद प्राप्त होता है, अनुभव किया है, वह उस आनंद को कदापि भूल नहीं सकता और वह निरन्तर इस बात की इच्छा करेगा कि, यह आनंद मुझे जीवन में अनेक बार मिले। पर, एक बात से उसे दुःख होगा—वह यह कि, इस तरह का आनंद कितने अल्प-संख्यक आदमियों के भाग्य में बदा है। दुर्भाग्यवश ज्ञान और अवकाश केवल मुट्ठी-भर आदमियों तक ही परिमित रहता है।

—प्रिंस क्रोपाटकिन

में आलू की खेती इसी तरीके से की जा रही है। जहाँ पहले साधारण खेती से १८ टन आलू उत्पन्न होता था, वहाँ अब ६५ टन का उत्पादन किया जाता है। जल-खेती से चावल भी उत्तम किस्म के तैयार किये जा सकते हैं। गोभी, गाजर, शलजम आदि का उत्पादन भी इस पद्धति से सर्वोत्तम होता है। रंग-बिरंगे फूलों की फुलवारी भी सजायी जा सकती है।

भू-कृषि की तुलना में बिना भूमि की खेती में श्रम और स्थान का ३० प्रतिशत अल्प व्यय होता है। आप अपने कमरे में ही इस खेती का आनंद ले सकते हैं। इस पद्धति में खाद्य का शोषण करने वाले व्यर्थ के घास-फूस भी पैदा नहीं होते। प्रामाणिक तरीकों और आलरिक रासायनिक क्रियाओं के कारण विशेष देखभाल की आवश्यकता नहीं रहती। प्रकृति के प्रकोपों से सहज ही खेती को बचाया जा सकता है। सर्दी के दिनों में काँच या प्लास्टिक से ढककर उसकी रक्षा की जा सकती है। सबसे बड़े महत्व की बात यह है कि, रासायनिक क्रियाओं से उत्पन्न और प्राकृतिक तरीकों से उत्पन्न पौधों के पोषक तत्वों में अंतर नहीं होता। विटामिन और खनिजों की मात्रा दोनों में समान रहती है।

इन सब सुविधाओं के अतिरिक्त, इस पद्धति से पौधों के गुणों में वृद्धि करने की सम्भावनाएँ भी पर्याप्त हैं। टमाटर में कैल्शियम की मात्रा बढ़ा कर छोटे बच्चों के लिए उन्हें उपयोगी बनाया जा सकता है। फिर यह खेती भिन्न-भिन्न व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न तरीके से की जा सकती है। जो टमाटर एक रोगी के लिए लाभदायक होगा, वह अन्य रोगी के लिए नहीं हो सकता। जो नींबू दुबले आदमी के लिए पैदा किया जायेगा, वह मोटे आदमी के लिए उपयोगी नहीं होगा। मजे की बात तो यह होगी कि, हर व्यक्ति अपने साधारण रोगों का इलाज खाद्य पदार्थों से ही कर लेगा।

इस चमत्कारपूर्ण पद्धति का विकास होने पर जनसंख्या की वृद्धि के भय का भूत भी भाग जायेगा। पौधों को मकानों के छतों पर ही पैदा कर लिया जायेगा। खिड़कियों पर लहलहाते पुष्पों की क्यारियाँ दिखायी देंगी। सीढ़ियों के आसपास और आँगन के चारों ओर छोटे-मोटे पौधे बड़ी आसानी के साथ पैदा किये जा सकेंगे।

एक विशेषज्ञ ने यहाँ तक कल्पना की है कि, युद्ध के मैदान में हर सैनिक अपने शिविर में इस खेती से आवश्यक खाद्य पदार्थ का उत्पादन कर अपनी भूख मिटा लेने में समर्थ हो सकेगा। इतना तो निश्चित ही है कि, इस पद्धति का विकास होने पर सभी देश आत्मनिर्भर हो जायेंगे और भुखमरी इतिहास की एक दुखद घटना-मात्र बन कर रह जायगी।

★

हाल ही में वैज्ञानिकों का ध्यान वानर की इस जाति की ओर आकृष्ट हुआ है। आधुनिक काल में डार्विन के विकासवाद के समर्थक प्रोफेसर हावेल ने तो यहाँ तक दावा किया है कि, चिम्पांजी की अपेक्षा औरंग-उटान में मानवीय स्वभाव का विशेष सादृश्य है। प्रस्तुत लेख प्रोफेसर एडविन हावेल के ही लेखों के आधार पर है।

★

औरंग की खाल भूरी लाल होती है। बालों का रंग भी इसी प्रकार का होता है। यह बहुत धीरे-धीरे बल्कि कहना चाहिए कि, आलसियों की तरह चलता है। वास्तव में, यह पेड़ों पर रहने वाला जानवर है और इसीलिए इसके लम्बे-लम्बे हाथों की कलाइयाँ बहुत चपल होती हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि, औरंग केवल बोर्नियो और सुमात्रा द्वीपों में ही पाया जाता है। यहाँ यह घने और आर्द्र जंगलों में रहता है। एक अद्भुत बात यह है कि, औरंग के शरीर का रंग वही है, जो वहाँ के निवासी मनुष्यों का है, और यह भी कुछ जंगली मनुष्यों की भाँति पेड़ पर रहता है। मनुष्यों को छोड़कर इसके मुख्य शत्रु चीता और शेर-चीते आदि हैं।

फसलों पर चढ़ाई करने के लालच को छोड़कर, औरंग बहुत ही कम भूमि पर आता है। गुरिल्ला की तरह यह भी घोंसला या एक प्रकार का मंच बना कर रहता है। धूप और वर्षा से बचने के लिए यह घास-पत्ती की छतरी बना लेता है। बन्दी जीवन में (चिड़ियाखाने में) यह अखबार या तिनके से भी छतरी बना लेता है। कुछ पहले लंदन के चिड़ियाखाने से, रात में, एक बड़ा औरंग भाग निकला। दूसरे दिन प्रात: वह आराम से एक खुद के बनाये घोंसले में बैठा मिला।

औरंग में काफी बुद्धिमानी और तर्क-शक्ति होती है। न्यूयार्क के चिड़ियाखाने के एक औरंग ने एक लकड़ी की चाबी बनायी थी। इसी प्रकार एक बार एक

औरग के पिंजडे के निकट भूल से लोहे का एक टुकडा पडा रह गया। उसने उस टुकडे को उठा लिया और उससे पिंजडे से बाहर निकलने के लिए छडो को मोड कर रास्ता बनाने लगा। यही नही, बल्कि उसने इस काम के लिए अपने एक चिम्पैंजी साथी से भी सहायता ली।

औरग का जीवन, मनुष्य के जीवन से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। यह परिवार सहित झुडो में रहता है और दिन में खाता और रात में सोता है। बच्चे की शिक्षा-दीक्षा और पालन-पोषण का भार पूर्ण रूप से मादा औरग पर ही रहता है। पेडो पर रहने के कारण औरग के दैनिक कार्यक्रम में कुछ विशेषताएँ आ गयी है। बिना मच बनाये यह किसी भी स्थान में अधिक समय नही बिताता।

औरग केवल वही पानी पीता है, जो बरसात से या ओस से पेडो के तने और शाखाओं के जोडों से बने गढ्ढो में इकट्ठा हो जाता है। एक चिडियाखाने के बदर-घर में एक बाल्टी में पानी भर दिया गया। यद्यपि वहाँ एक कटोरी रखी थी, लेकिन फिर भी औरग ने कुछ तिनके उठा लिए और उनको पानी में डुबो कर चूसने लगा। यह औरग जगल में काफी समय तक रह चुका था।

यो साधारणत औरग बडा शात जानवर है, लेकिन कभी-कभी यह बहुत भयकर हो जाता है। यह आदत पुरुष औरग में विशेषत पायी जाती है। जितने भी पुरुष-औरग पकडे जाते है, चा.. जीवित पकडे गये हों या मृत, उनमें से बहुतो के शरीर पर लडाइयो के चिह्न होते है। यह देखा गया है कि, औरग की उँगलियो के सिरे बहुत छोटे होते हैं—कदाचित् इसका यह कारण हो कि, बदर जब लडते हैं तो एक दूसरे का हाथ पकड कर चबा जाते हैं।

औरग का सबसे बडा शत्रु साँप है। इसमें सदेह नही कि, औरग का इनसे डरना ठीक ही है, क्योकि जिन जगलों में यह रहता है, वहीं बड-बडे विषैले साँप भी पाये जाते है। कदाचित् औरग अपनी सहजबुद्धि के कारण ही से साँप से डरता है। एक बार लदन के चिडियाखाने में एक छोटे-से औरग के साथ एक विषहीन साँप को रख दिया गया। इस औरग ने कभी साँप को नही देखा था। वह साँप से डरने लगा, यहाँ तक कि, उसकी रक्षा के लिए यह उचित समझा गया कि, दोनो को अलग कर दिया जाय।

औरग-उटाग के बारे में न्यूयार्क के चिडियाखाने के निरीक्षक डॉ डिटमार्स का वर्णन बहुत मनोरजक है। उन्होंने लिखा है—

"मुझे सबसे अधिक आनद औरग-उटाग के साथ मिलता है। एक बार मुझे सेन-फ्रांसिसको जाकर कुछ औरग उटाग के लाने की आज्ञा मिली थे औरग-उटाग सिंगापुर से आये थे।

"मेरा डब्बा औरग-उटाग के डब्बे

से साल डब्बा आगे था, इसलिए मैंने एक आदमी को कह दिया कि, अगर कोई जरूरत हो तो मुझे आकर कह जाय। आधी रात के समय मेरे डब्बे को किसी ने आकर बड़े जोर से खटखटाया। कुली ने क्षमा मांगते हुए मुझसे कहा कि, पीछे के डब्बे में आप की आवश्यकता है। वहाँ जाने पर मालूम हुआ कि, एक रेल-कर्मचारी जो कि, सामान की जाँच कर रहा था, औरंग-उटाग के पिंजड़े के पास आया। शायद उसे कोई कागज नहीं मिल रहा था, इसीलिए उसने अपनी जेब से कागजों को निकाल कर पिंजड़े के उपर रखा और उनमें से छाँटने लगा। इसी समय रेल एक ओर मुड़ी और औरंग जाग पड़ा। शायद औरंग की समझ में यह बात नहीं आयी कि, यहाँ पर सभी के समान यह क्या खड़ा है। उसने अपने लम्बे हाथ निकाल कर उन "सभी" को जोर से ऐंठ दिया। बेचारा कर्मचारी चीख-मारकर एक तरफ गिर पड़ा।

एक स्टेशन पर मैंने औरंग को जलपान कराया। दोपहर के समय एक दूसरे स्टेशन पर जब मैं चाय पी रहा था, तो मुझे औरंग के डब्बे की ओर से चीखें और हँसी की आवाज सुनायी पड़ी। एकदम मैं समझ गया कि, इसमें औरंग का अवश्य कुछ हाथ है। वहाँ जाने पर देखा कि, सारे डब्बे में चीथड़े-चीथड़े बिखरे कागजों का ढेर लगा है—वास्तव में, एक समाचार-पत्र बेचने वाला लड़का वहाँ पर औरंग को देखने के लिए आया था। औरंग न एक झटके में उससे समाचार-पत्र छीन लिये और उन्हें फाड़ने लगा। इतनी देर आलस्य में बैठने के पश्चात् जब औरंग को यह खेल मिला तो पता नहीं उसको कितना आनंद हुआ होगा, क्योंकि वह बीच-बीच में किलकारी भी मारता जाता था। मैंने उस लड़के को सब समाचार-पत्रों का मूल्य दे दिया।

"कुछ समय पश्चात् एक कुली फिर मेरे डब्बे में आया। वहाँ जाकर मैंने देखा कि, औरंग के हाथ में एक लम्बा चाकू है और वह उससे आसपास खड़े हुए दर्शकों को डरा रहा है। पूछने से मालूम हुआ कि, एक कुली नये सामानों पर लेबिल चिपकाने आया था। यह सोच कर कि, कहीं किसी सामान के पीछे रखकर वह चाकू भूल न जायें, उसने उसे औरंग के पिंजड़े पर रख दिया। लेकिन बाद कर उसने दुबारा फिर वहीं चाकू रख दिया। आवाज होने से औरंग जाग गया और चुपके से उसने चाकू पिंजड़े से खींच लिया। कुली ने पहले तो चाकू को खोजा, लेकिन ज्योंही उसने उसे औरंग के हाथ में देखा वह फौरन डब्बे में से कूद पड़ा। बड़ी देर तक सोचने के पश्चात मैंने औरंग को एक तेल की कुप्पी दिखायी। उसमें तेल गिरता देखकर शायद औरंग ने यह सोचा कि, इस चाकू से अच्छा यह खेल है और उसने चाकू गिरा दिया और कुप्पी ले ली। मैंने चुपके से चाकू हटा दिया।"

★

अंग्रेजी की सुप्रसिद्ध लेखिका और समाज सेविका श्रीमती पद्मिनी सेन गुप्ता के एक लेख का संक्षिप्त हिन्दी-रूपांतर

★

आजकल हम संस्कृति की बहुत चर्चा सुनते हैं। जब कभी कोई हम में दोष निकालता है या हमारे बुरे बर्ताव की ओर इशारा करता है, तो हम हमारी प्राचीन संस्कृति की दुहाई देते हैं। हमारा इतिहास सहस्रों वर्ष पुराना है, हमारा ज्ञान सर्वोत्कृष्ट है, और हमारी सभ्यता बहुत बढ़ी-चढ़ी है, इसीलिए शायद हमारे सारे कुसूर माफ कर दिए जाने चाहिए, ऐसा हम सोचते हैं।

पर्वपूजा

[ चित्र : श्री हेब्बार के एक रंगीन चित्र का सरल रेखांकन ]

हमारे पड़ोस में एक महिला रहती हैं जिनके घर में रोज सवेरे शंख ध्वनि के साथ पूजा होती है और संध्या को आरती। लेकिन उनकी गोशाला इतनी गंदी और मक्खियों-मच्छरों से भरी रहती है कि, आसपास के रहनेवाले अच्छी तरह सो नहीं सकते। उनके यहाँ बगीचे में घास काटनेवाली मशीन खराब पड़ी है। न उसमें कभी तेल दिया जाता है और न कभी उसकी सफाई ही होती है। घास तो उससे ठीक से कट भी नहीं सकती, लेकिन बिचारे माली को दोपहर में लगभग ३-४ घंटे बराबर उसे चलाना पड़ता है। और जब यह मशीन चलती है तो फिर उसकी आवाज से क्या कहें! बस कान मूंदे बैठे रहिये।

हमारे पड़ोस में एक दूसरी श्रीमतीजी रहती हैं, जो हर इतवार को गिरजे जाती हैं और कई सुधारवादी कार्य-समितियों की सदस्या भी हैं। लेकिन उन्होंने कुछ कुत्ते ऐसे पाल रखे हैं, जो सारे मुहल्ले की नाक में दम किए हुए हैं। जब कभी वे बाहर

जाती हैं, तो इन कुत्तों को कमरे में बंद कर जाती हैं। कुत्ते जोर-जोर से भौंकते रहते हैं और हमें कानों में उंगलियाँ डालकर बैठना पड़ता है। एक बार हम सब पड़ोस की स्त्रियों ने मिलकर उन्हें एक प्रार्थना-पत्र लिखा कि, वे हम पर मेहरबानी करके कुत्तों को इस प्रकार बंद न किया करें। लेकिन उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। जानवरों को कष्ट से बचाने के लिए जो संस्था है उससे हमने शिकायत की, तो उन्होंने जवाब दिया कि, जब तक कुत्तों का भरण-पोषण भली भाँति होता है तब तक संस्था इस मामले में कुछ नहीं कर सकती। कुत्तों को कोई तकलीफ नहीं। हमने कहा, कुत्तों को न सही हमें तो बेहद है!

[ चाँदी का रत्नजटित पात्र जिसे २००० वर्ष पूर्व बैक्टीरिया-स्थित भारतीय कलाकारों ने बनाया था ]

वास्तव में, किसी भी बड़े शहर के लोग अपने 'सभ्य' पड़ोसियों के कारण शांति से रह नहीं सकते। कभी-कभी तो जी चाहता है, किसी का गला घोंट दिया जाय! लेकिन सभ्यता को यह तो सहन नहीं होगा। मुझे याद है, जब मैं एक दिन इस सभ्य और सांस्कृतिक नगर की सड़क पर चारों ओर हो रहे शोर-गुल, फुटपाथ पर बसनेवाले गृह-विहीनों, भिखारियों और जोर-जोर से चिल्लाते फेरीवालों की जिंदगी पर गम्भीर दार्शनिक विचार करती हुई चली आ रही थी, तो एकाएक किसी मकान की तीसरी मंजिल से नारियल की खोपड़ी मेरे सिर पर आकर पड़ी। मुझे करीब-करीब मूर्छा आ गयी। मेरा सर फटते-फटते बचा। ऊपर की ओर झाँका, तो एक महिला घर का सारा कूड़ा-कचरा, सड़क पर बिखेर रही थी। मुझे उन पर बहुत गुस्सा आया, लेकिन उनको इसकी क्या परवाह? वे एक भद्र महिला हैं! सबेरे ही उन्होंने गंगास्नान कर सारे पाप धो लिये थे। हठात् मुझे गांधीजी के ये शब्द याद आ गये—"इस विचार से मुझे बड़ा दुःख होता है कि, भारत के किसी भी नगर में सड़क पर चलनेवालों को ऊपर से थूक गिरने का सदा डर रहता है।"

सभ्यता और संस्कृति की पहली माँग तो यह है कि, हम अपने पड़ोसियों का ख्याल रखें। प्रत्येक धर्म इस बात को

"सुंदरता का यह साबुन निराला है"

नया! सुगंधित!
ब्रीज़
BREEZE
"इस में ऍक्टमर मिला है"

शिक्षा देता है। वास्तव में, धर्म का जन्म ही इसी विचार से हुआ कि, हमारा बर्ताव दूसरों के साथ कैसा हो। समाज की रचना इसी पर हुई है। हमारे यहाँ जो वर्णाश्रम धर्म था, उसका भी रहस्य यही था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी अपना-अपना काम अच्छी तरह करके समाज की सेवा करें। गीता में कृष्ण ने अर्जुन को यही उपदेश दिया है। भले ही अपने लिए न सही, धर्म के लिए या समाज की रक्षा के लिए अपना कर्त्तव्य निभाना चाहिए। दूसरों के लिए जीना ही प्रत्येक धर्म का सार है। ईसा ने भी बार-बार अपने पड़ौसी को अपनी तरह प्यार करने के लिए कहा है। दूसरों की भलाई के लिए अपनी जान देने से बढ़कर प्रेम की कोई कसौटी नहीं हो सकती।

लेकिन आज के राष्ट्र जो सभ्य और सांस्कृतिक होने का दावा करते हैं, क्या अपने पड़ोसियों की सुख-सुविधा या उनके विचारों की परवाह करते हैं? क्या वे दूसरों को भी अपनी ही तरह अपनी जिन्दगी बिताने का अवसर देना चाहते हैं? गृहणियों की भी संग्रह प्रवृत्ति, अनावश्यक मूल्यवान अलंकार खरीदने या नौकरों से बुरी तरह पेश आने की आदत कुछ सभ्य या सांस्कृतिक नहीं कही जा सकती। आवश्यकता पड़ने पर भी मित्रों की सहायता न करना और केवल अपने एवं अपने परिवार के लिए ही जीना, तो असांस्कृतिक ही कहा जायगा। न तो हमारे प्राचीन धर्म-ग्रंथों में ही ऐसा लिखा है और न हमारी पुरानी सभ्यता ही हमें यह सिखाती है। लेकिन आज तो हमारी अधिकांश गृहणियाँ ऐसी तंग दिल और संकुचित विचारों की हो गयी हैं कि, पुराने समय का अतिथि-सत्कार तो केवल कहानी-मात्र रह गया है। किसी तमिल कवि ने लिखा है—"अच्छी गृहिणी वह है जो घर में अभाव का अनुभव करते हुए भी, ऐसे अतिथियों का स्वागत प्रसन्नता से करती है जिनके पेट में समुद्र भी समा जाय।" भारतीय संस्कृति का मूल-मंत्र-निस्वार्थ सेवा—तो आज कहीं भी दिखायी नहीं पड़ता। जब कभी, कोई किसी की सहायता भी करता है, तो उसके पीछे कुछ-न-कुछ उद्देश्य या फल-

## शासन

यदि सैन्यबल से मुक्ति चाहते हो, तो जैसा परमेश्वर ने किया, वैसा करो। परमेश्वर ने बुद्धि का विभाजन कर दिया। हर एक को अक्ल दे दी—बिच्छू को, साँप को, शेर को और मनुष्य को भी, और कहा कि, अपना जीवन अपनी अक्ल से चलाओ। बस तभी से सारी दुनिया आत्मचालित हो गयी—यहाँ तक कि, प्रायः शंका हो जाती है कि, परमात्मा है भी या नहीं। वस्तुतः राज्य तो ऐसा ही चलना चाहिए कि, प्रजा को सत्ता का भान तक न हो।

—सर्वोदय

प्राप्ति की आशा रहती है।

यजुर्वेद में लिखा है-'हमारे नवयुवक भली भाँति शिष्ट हों।' लेकिन आजकल के माता-पिता बच्चा को बडा से प्रणाम करने और यथवत् धन्यवाद दने के अतिरिक्त क्या और भी कुछ शिष्टाचार सिखाते हैं? पडोसियों से प्यार करना, सेवा-भाव, विनम्रता, सहनशीलता, देश एव समस्त ससार की एकता पर विचार करने के लिए क्या उन्हे प्रोत्साहित किया जाता है? क्या हमने कई बार एक बगाली लडके को अपनी मद्रासी बहिन पर हँसते नही देखा है? या महाराष्ट्र की लडकियो को पजाबी बहिनो को चिढाते नही देखा? शाकाहारी लोग मास खानेवालों से नफरत करते हैं। वेश-भूषा एव विन्यास के अतर के कारण भी लोग एक दूसरे पर अविश्वास एव अप्रसन्नता प्रकट करते दिखायी देते हैं।

सेंट पाल के शब्दो में प्रेम या परोपकार की भाँति सस्कृति भी पारस्परिक त्याग, सहिष्णुता एव सेवा की अक्षय-अजस्र स्रोतस्विनी होती है। प्रेम जहाँ हृदय—मानव-हृदय—का अमृत है, वहाँ सस्कृति भी हृदय की पुष्पवल्लिरा है। इतिहास साक्षी है, कोई भी सभ्यता जहाँ स्वार्थ-भावना के कीटाणुओं से ग्रस्त हुई कि, नष्ट हो गयी; क्योंकि स्वार्थ की भाषा को यदि हम फरिश्तों की तरह भी बोले, तो भी वह पीतल के मजीरों की नीरस-निर्जीव आवाज ही होगी, प्राण उसमें नहीं हो सकते। इसीलिए शायद, मद्रास के राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश ने स्त्रियों की एक सभा में कहा था कि, कला, सगीत या मूर्ति बनाने को ही हमें सस्कृति नही समझना चाहिए। वास्तविक सस्कृति तो हमारा वह आत्म-विकास है जो हमें दूसरों के साथ आत्मवत् बर्ताव करने की शिक्षा देता है।

★

## परिवार का लेखा

"तुम्हारे पिताजी कहाँ है?" मर्दुमशुमारी के अफसर ने एक लडकी से पूछा।

"वे तो जेल गये हैं।" "और तुम्हारी माँ?"

"वह पागलखाने गयी है। लेकिन मेरे एक बहन भी है, जो बच्चों को सुधारनेवाले स्कूल में है और एक भाई जो विश्वविद्यालय में है।"

"अच्छा, तुम्हारा भाई विश्वविद्यालय में है? क्या अध्ययन कर रहा है वह?" उक्त अफसर ने साश्चर्य पूछा।

"वह तो कुछ नही करता—वहाँ के प्रोफेसर ही उसका अध्ययन कर रहे हैं।"

—वाल्टर विचेल

★

आंध्र वाङ्मय-तेलुगु-के सुप्रसिद्ध लेखक श्री वि वा पिराजु के एक रसमय संस्मरण का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर

✱

हमारी बैलगाडी उपत्यकाओं पर धीरे धीरे सरकती हुई चादनी की तरह आगे बढ रही थी। दोनो श्वेत बैल हिमाच्छादित शैल-शिखर से प्रतीत हो रहे थे। श्वेत हसों से जुते हुए मुक्ताभ रथ पर चढकर चन्द्रमा नीले आकाश में विहार कर रहा था। सडक के दोनों ओर खेत ऐसे चुपचाप बिछे थे, मानो चादनी ने जादू कर दिया हो।

मनुष्य चिरयात्री है, अतएव रात-दिन चादनी में या तारों-भरी रात में, जलती धूप में अथवा घुमडती घटाओं में वह चलता रहता है। उसकी जीवन-यात्रा कभी हर्ष की ओर कभी शोक की ओर अग्रसर होती है। हमारी बैलगाडी भी कला तथा इतिहास के प्रसिद्ध स्थान विजयपुर के पुराखडो की ओर जा रही थी। नागार्जुन पहाडी की उपत्यका में स्थित यह स्थान, कभी आन्ध्र के यशस्वी इक्ष्वाकुओ की राजधानी था। यही स्थान "अपर-शैल-सघाराम" है।

वर्तमान अतीत में जा मिलता है, और अतीत वर्तमान की ओर अग्रसर होता है। नागार्जुन, ईसवी प्रथम शती के महान आन्ध्र सत थे, जिन्हे बुद्ध का अवतार मानकर पूजा जाता था। बौद्ध महायानशाखा के प्रवर्तक वही थे।

हमारा रास्ता धीरे-धीरे उस घाटी पर चढ रहा था जिसे पार करके विजयपुर की उपत्यका में उतरते हैं। मैंने सुना, खेतो में कहीं कोई बडा ही भावुक किसान युवक एक भावमय गीत गा रहा था

'बोल सुदरी! जीवन के इस सँकरे पथ पर कितनी दूर मुझ चलना है?

"बोल सुदरी! किन कुजो तक मधुर प्यार के, झूलो पर मुझको चलना है।"

जब तब स्वर से या चाँदनी की किरण से चौंक कर छोटे-छोटे पछी मानो उस दूरागत गीत के स्वरो पर ताल दे उठते

आंध्र की गुफा का एक शिल्प
प्रलय के समय वाराह रूपधारी विष्णु द्वारा पृथ्वी का परित्राण
[ चित्र आर्सवाल्ड कोल्ड्रे ]

थे। उस किसान के गीत तथा पक्षियों के स्वरों की मधुर लोरियाँ सुनता-सुनता मैं सो गया।

जब पूर्वी शिखर पर उषादेवी की रंजित मुस्कान फैली, तब मैंने जाग कर देखा, हम घाटी के बीचों-बीच पहुँच गये हैं। दोनों ओर चोटियों पर इक्ष्वाकुओं के लाट थे। सामने कोई तीन सौ हाथ नीचे विजयपुर की उपत्यका बिछी हुई थी। नीचे जानेवाली सड़क बड़ी ढालू थी, दूर पर इस बिखरी हुई घाटी में दो-एक लम्बे गँवई झोपड़े दिखायी दे रहे थे। नल्लमाल की सकरी घाटियों में बहती हुई द्रुतवाहिनी कृष्णा नदी उस सुंदर उपत्यका को तीन ओर से घेरे थी। धुँधले अतीत से लेकर आज के स्पष्ट वर्तमान तक अजस्र रूप में प्रवाहमान यह नदी अतीत और वर्तमान का, नवीन और प्राचीन संस्कृतियों का, पूर्वी बंगाल की खाड़ी और पश्चिमी गिरिमेखला के जलों का संगम-सूत्र है।

हम नीचे उतरे। हमारी राह मुड़ती, बलखाती, अंत में संग्रहालय के फाटक तक आ पहुँची, जहाँ पर बौद्ध स्तूपों तथा विहारों से प्राप्त मूर्तियाँ और पुरातत्व रखे गये हैं। इन स्तूपों के अतिरिक्त विजयपुर के प्राचीन नगर के कोई अवशेष अब नहीं हैं। नागार्जुन का विहार घाटी के एक सिरे पर छोटी पहाड़ी पर था। कदाचित् इसी कारण इसे 'नागार्जुन टीला' कहते हैं।

आंध्र का एक कृषक-युवक अपनी सवारी में आनंद-मगुल्मित
[चित्र : ओसवाल्ड कोल्हे]

मैं संग्रहालय में घुसा। प्राचीन आन्ध्रों के अद्भुत संसार का दृश्य मेरे समक्ष प्रकट हो गया। मानो जादू के प्रभाव से मैं उन सुदूर शतियों के जीवन में पहुँच गया होऊँ। कलानिर्मित एक पाषाण से लेकर एक के बाद एक पाषाण मूर्तियों को देखता हुआ मैं आगे बढ़ता गया। मेरे सामने जीवन के सौन्दर्य और संघर्ष का जो दृश्य आया वह मानो आज का ही था। यदि हम अपने वर्तमान को परिष्कृत अंतर्भेदी दृष्टि से देख सकें, तो हमें उसमें पुराकाल की पहले तो छाया, और फिर स्पष्ट प्रतिबिम्बित यथार्थता, देखने को मिलेगी।

संग्रहालय का अपना एक अन्य संसार था, एक साथ ही सुंदर और रहस्यमय। बड़े-बड़े सम्राट और सम्राज्ञियाँ, राजकुमार तथा राजकुमारियाँ, सन्यासी तथा ऋषि-मुनि, योद्धा तथा नागरिक, राजदरबार की महिलाएँ एवं ग्राम-वधुएँ सभी वहाँ थीं। राजाओं के उद्यान और विलासों

के खेत, महल और झोपड़े, पशु और पक्षी, गँवई बैल गाड़ियाँ और सजीले रथ भी वहाँ देखने को मिले। वह दुनिया ही निराली थी।

संग्रहालय से मैं अपने तथा गाड़ीवान के लिए भोजन बनाने बाहर निकला। कुएँ की जगत के पास नीम के वृक्ष की छाया में भोजन बनाते हुए मैंने देखा, खेतों में प्रसन्नवदन नर-नारी काम कर रहे हैं। एक युवती तथा उसके प्रेमी में होती हुई बातचीत मैंने सुनी।

युवक कह रहा था–"इस बरस तो हमारे खेत में चौलाई की फसल खूब फलेगी!"

युवती बोली–"और गेंदे के फूल भी तो!"

युवक ने ढिठाई से कहा–"...और नहीं तो, तेरी वेणी को कौन सजायेगा?"

"नहीं, नहीं! तुम्हारे चौड़े वक्ष पर हार बन कर झूमने के लिए, तुम्हारे पाषाण हृदय को प्रसन्न करने के लिए!"

"मेरा हृदय क्या तुम्हारी चितवन से भी कुटिल है?"

"और नहीं तो! वह तो नाग से भी कुटिल है।"

'फिर भी तुम्हारी मदमाती चाल के बराबर नहीं!"

"तो तुम्हारे साथ चलने को कौन उधार बैठा है?'

"और तुमसे बात ही कौन कर रहा है?"

युवती रुठ गयी, बोली, "तो लो, मैं खेत के उस पार चली। कोई नहीं बोलता तो यहाँ किसे पड़ी है। मैं अपने आपसे बातें करूँगी, पंछियों से और उस नागार्जुन के टीले से बातें करूँगी।"

वह बोला, "हाँ, नागार्जुन ही तो टीले से उतर कर आयेगा तेरा रूप निहारने!"

लड़की क्रोध से भरकर वहाँ से चल दी। इस दृश्य में मुझे उस छोटे अर्धचित्र की याद आई, जिसमें स्त्री-पुरुष को रुष्ट प्रेमियों के रूप में अंकित किया गया था। पुरुष के मुख पर विषाद के और नारी की मुखाकृति में लज्जा, क्रोध तथा क्षोभ के भाव बड़ी कुशलता के साथ अंकित किये गये थे।

दोपहर के विश्राम के पश्चात् मैंने आन्ध्र के पुरातन कलाकार के हस्त-लाघव एवं सृजन-कौशल का अध्ययन फिर आरंभ किया। उस महान कलाकार की आनंदपूर्ण तन्मयता का अनुभव किया

### संकल्प

अहं नागो' व संगामे
चापतो पतितं सरम्।
अतिवाक्यं तितिक्खिस्सं
दुस्सीलो हि बहुज्जनो॥

—जैसे युद्ध में हाथी धनुष से गिरे शरों को सहन करता है, वैसे ही मैं कटु वाक्यों को सहन करूँगा। संसार में तो दुःशील व्यक्तियों का ही आधिक्य रहता है। —'धम्मपद'

जिसने चौबीस सौ वर्ष पूर्व के सारे स्वर्ण-अतीत को मेरे मानस-पट पर साकार कर दिया था। पद्मासन में, अथवा एक हाथ में भिक्षापात्र लिये और दूसरे को चिन्मुद्रा में उठाये, नर-नारियों के बीच घूम कर प्रेम और अहिंसा की शिक्षा देते हुए भगवान बुद्ध की बीसियों मूर्तियाँ देखते-देखते मैं मानो आत्मस्थ हो गया।

वह प्रणयाकांक्षी युवक मुझे कई बार मिला। युवती से उसका क्या सम्बन्ध है, मैं नहीं जानता था। किन्तु नागार्जुन टीले की छाया में अपने तीन दिन के प्रवास में मैंने उस प्रेमी-युगल को कभी प्रतिकूल होते नहीं देखा। मुझे कौतूहल हुआ। पूछने पर पता चला कि, दोनों का हाल ही में विवाह हुआ है, और युवती कुछ ही मास पूर्व स्वामी के घर आयी है।

चौथे दिन गणेश-चतुर्थी थी—वर्ष का पहला पर्व!

प्रातःकाल ही पास के खेत में काम करने वाली वह युवा जोड़ी सकुचाती-सी आकर मेरे पास खड़ी हो गयी। उनके साथ एक डलिया थी। मैं आश्चर्य-चकित रह गया।

सकुचाते युवक से मैंने पूछा—"क्यों भाई, बहू से झगड़े का निपटारा कर लिया?"

अपनी निर्मल आँखों में उल्लास भर कर उसने उत्तर दिया—"मालिक, वह झगड़ा थोड़े ही था? भला ऐसी सुन्दर-सुशील बहू से कोई झगड़ सकता है?" वह थोड़ा-सा हँसा और फिर बोला—"आप ही पूछ देखिये न।" वह अपनी पत्नी की ओर कनखियों से निहारने लगा।

लड़की ने और भी लज्जा कर कहा—"वह झगड़ा नहीं था, मालिक। वह तो इस गर्वीली कृष्णा की घाटी में पले दो अल्हड़ दिलों की तरंगें थीं। लीजिये, आपके लिए हमारी खेती की यह भेंट।"

डलिया में हरे, शाक, तीन-चार सन्तरे, कैथ और कुछ फूल थे। मेरी पलकें आर्द्र हो आयीं। मैंने सोचा, 'माँ, मेरी चिरंतन भारत माँ संसार के सकल राष्ट्रों की आद्य-जननी भारत-वसुंधरे। तू कब प्रेममयी नहीं रही!

सहसा मैंने अनुभव किया, मुनि नागार्जुन प्राचीन कला-कृतियों की वह रत्नराशि और उनके समक्ष खड़ा वह प्रेमी-युगल तथा पृष्ठ-भूमि में लहराता कृष्णा का जल—सभी मेरी जननी जन्म भूमि के गुणगान कर रहे हैं, आज से नहीं, काल के अपराजेय कितने ही युगों से वे अपनी परम स्नेहमयी 'मलयज शीतलाम्' माँ का स्तवगान कर रहे हैं!

★

गरीब मनुष्य के लिए भविष्य की कल्पना आनंददायक होती है। वह सोचता है कि, कभी मैं भी पैसेवाला बनूंगा, जब कि, धनाढ्य व्यक्ति सदा इसी सोच में घुलता रहता है कि, कहीं मैं गरीब न बन जाऊँ।

—'कुमार' (गुजराती) से

✱

आधुनिक वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक कसौटी पर परीक्षित सृष्टि की परम रहस्यमय रचना—नारी के विषय की नवीन उद्भावनाएँ

*

कुछ साल पहले मनोवैज्ञानिकों का विश्वास था कि, नर और नारी में जो भेद है, वह केवल शिक्षा, संस्कार और वातावरण का है। यदि एक लड़की को भी उसी तरह रखा जाय जैसे एक लड़के को रखा जाता है, तो वह लड़की बड़ी होकर सभी पुरुषोचित गुणों को धारण कर लेगी। लेकिन यह विश्वास गलत प्रमाणित हुआ है। प्रयोग करके देखा गया है कि, एक लड़की को बचपन से लड़के की तरह रखा जाने पर भी, युग-युग से चली आ रही नारी-सुलभ विशेषताओं एवं प्रकृति के आग्रहों का परित्याग वह न कर सकी। सूक्ष्म यन्त्रों से देखे जाने पर, स्त्री और पुरुष के शरीर में जो असंख्य कोष्ठ होते हैं, वे भी समान नहीं, विभिन्न ही पाये गये हैं। कुछ समय पूर्व की वैज्ञानिकों ने तो यहाँ तक सिद्ध कर दिखाया था कि, स्त्री और पुरुष के मस्तिष्क में भी जो रासायनिक तत्व हैं, वे भी एक-दूसरे से स्पष्टतया भिन्न हैं।

नारी की मदभरी चाल पर न-जाने कितनी कविताएँ लिखी गयी हैं। लेकिन नारी की इस 'गजगामिनिता' का असली रहस्य उसके शरीर की बनावट है। इसमें उसकी अपनी कोई विशेषता या सिद्धि नहीं। स्वभावतः ही स्त्रियों का नितम्ब प्रदेश पुरुष से चौड़ा होता है और उनकी टाँगें भी विभिन्न कोणों पर जुड़ी होती हैं। अतः जाँघों के बीच में विषम अंतर रहने और टाँगें छोटी होने के कारण वे मजबूरन झूमती हुई ही चल सकती हैं। इस वैज्ञानिक तथ्य से अनभिज्ञ होने के कारण अमेरिका में एक वर महाशय ने अपनी नव-वधू को इसीलिए तलाक दे दिया कि, उसकी 'मतवाली' चाल पर लोग फब्तियाँ कसते थे। न्यायाधीश के पूछने पर उन्होंने बताया कि, वधू शादी से पहले भी वैसे ही चलती थी, लेकिन विवाह होने पर तो उसे ठीक से चलना चाहिए था।

शृंगार
चित्र : के० के० हेब्बर

शरीर-वैज्ञानिकों के अनुसंधानानुसार नारी पुरुष से छै फीसदी कद में छोटी और बीस फीसदी वजन में हल्की होती है, बल में तो वह पुरुष से हीन होती ही है। शरीर से कम काम लेने के कारण उसकी खुराक भी कम होती है। अत्यधिक कार्यशील पुरुष अत्यधिक कार्यशील नारी से ५० फीसदी अधिक खुराक खाता है। खाने की रुचि में भी दोनों में अंतर होता है। और चूँकि अधिकांश घरों में पति और पत्नी दोनों के अनुकूल अलग-अलग भोजन तैयार नहीं किया जा सकता, इसलिये किसी एक को दूसरे की रुचि का खयाल कर अतृप्त रहना पड़ता है, या दोनों ही असंतुष्ट रहते हैं।

शरीर की कोमल रचना के कारण ही स्त्रियाँ पुरुषों की तरह शरीर से बल प्रयोग नहीं कर पातीं। उनकी लड़ाई जबान से होती है। वाक्-युद्ध में नारी को स्वभावतः उतना ही आनंद आता है, जितना कि, पुरुषों को अपने विपक्षी को पीटने में।

पुरुष और नारी के शरीर के तापमान में भी काफी अंतर होता है। जिस शीत में पुरुष के दांत कटकटाने लगते हैं, उस में नारी सुखपूर्वक रह सकती है। दोनों की सोने की आदतें भी भिन्न हैं। साधारणतया पुरुष को अधिक काम करने के कारण ज्यादा सोने की जरूरत पड़ती है, जबकि नारी कम घंटे सो कर ही स्वस्थ-प्रफुल्लित रह सकती है। इसके अलावा एक स्त्री या बालक सुप्तावस्था में भी सुंदर लगते हैं, लेकिन पुरुष नहीं। अधिकांश पुरुष बड़े बेढंगे लगते हैं।

डाक्टरों की राय में स्त्रियों का शरीर अधिक सहनशील होता है। शारीरिक रोगों के विरोध में यह तथ्य बिल्कुल ठीक है, मगर मानसिक रोग उन पर पुरुषों से अधिक आक्रमण करते हैं। क्योंकि नारी स्वभाव से ही अधिक भावुक होती है।

## परमहंस

विवाह के पूरे तेरह वर्ष बाद, माता की अनुमति से दक्षिणेश्वर तक पैदल आयीं। अपनी १८-वर्षीया पत्नी को देख परमहंस रामकृष्ण ने कहा– "भगवति, अब तो मैं नारिमात्र को मातृवत् देखता हूँ। मैं तुम्हें भी मातृवत ही देख रहा हूँ। किंतु, यदि तुम मुझे पुन गृहस्थ-जीवन के स्वप्नमय-जगत् में ले चलना चाहती हो, तो मैं उद्यत हूँ।"

शारदादेवी उनके चरणों पर गिर पड़ीं–'देव, मुक्ति को बंधन की ओर खींचकर मैं कौनसा श्रेय कमाऊंगी? मुझे भी दीक्षित कीजिये! मेरे लिए भी आप गुरु-तुल्य ही हैं।"

तभी से परमहंस ने उन्हें आश्रम में रख लिया और देवी के रूप में उन्हें उपासने लगे! –सिस्टर निवेदिता

नारी अधिक वाचाल क्यों होती है? इसका कारण यह व्यापक विश्वास नही कि, उसकी बुद्धि कमजोर रहती है, या जो कुछ वह करती है, उसे बहुत ही काम की बात समझती है। किन्तु स्वत प्रकृति ने ही ऐसा बनाया– एक खास अभिप्राय के लिए वह अभिप्राय है कि, बच्चे वाणी का पाठ माँ के मुख से ही पढ़ते है। दो साल की लडकी अपनी आयु के लडके से अधिक शब्द बोल सकती है।

नारी की विचार-धारा तो और भी रहस्यमयी है। छोटी-छोटी बारीकियो पर भी वह बहुत ध्यान देती है। एक विशेष प्रकार के रग या डिजाइन की वस्तु के लिए वह घटों चुनाव करने में बिता देगी। आदमियो की समझ में ही नही आता कि, आखिर इतनी बारीकी में जाने की क्या जरूरत है? हरा रग कई प्रकार का होता है। आदमी हरे रग का कपडा खरीदने आयगा तो अधिक उधेडबुन में नही पडेगा। किसी भी हरे रग से वह सतुष्ट हो जायगा। लेकिन स्त्री यदि एक विशेष प्रकार का हरा रग चाहती है तो, उससे अधिक या कम गहरे हरे रग से सतुष्ट नही होगी। अपनी रुचि को सतुष्ट करने के लिए वह बहुत छान-बीन करेगी। यही कारण है कि, कोई भी स्त्री रगो की पहचान में 'अधी' नही होती।

सबवेर
[ चित्र पै के डेक्सर ]

अधिकाश स्त्रियां अपने आस-पास की या व्यक्तिगत बातो के अतिरिक्त बाहरी प्रश्नो या दुनिया के झगडों में रुचि नही लेती। उनका ससार अपने तक ही सीमित होता है। बहुत से आदमी इसलिए नारी को मदबुद्धि समझ लेते है। लेकिन बात ऐसी नही है। लडकियाँ लडको से बुद्धि में कम नही होती, इसका प्रमाण किसी भी स्कूल की परीक्षाओ से प्राप्त किया जा सकता है। शिशु-वर्ग से लेकर हाईस्कूल तक अधिकाश लडकियाँ लडको से अधिक नबर पाती है। लेकिन इसके बाद उनका विकास रुक जाता है। वे अपने व्यक्तिगत या पारिवारिक प्रश्नो में ही अधिक रुचि लेने लगती है। साधारणतया स्त्री व्यक्तिगत सम्बध पर अधिक ध्यान देती है। जीवन और जगत के विषय म विचार करने की उसे आदत नही। यह उसकी प्रकृति है। ऊपर से लादी हुई कोई मजबूरी नही। एक लडका और लडकी अगर रेत में खेले तो लडका चारो कोनो में रेत बिखरता

हुआ खेलना अधिक पसद करेगा, जबकि लड़की आसपास की रेत को अपने पास जमा कर एक जगह बैठी खेलती रहेगी। आधुनिक नारी भी प्राणि-शास्त्र के इस नियम से स्वाधीन नहीं हुई। ऊपर से वह भले ही अपना रूप-रंग बदल ले, और स्त्री-पुरुष समानता के समर्थक चाहे जितना इस तथ्य को अस्वीकार करें, लेकिन पिछली कई हजार वर्ष की सभ्यता भी नारी की शरीर-रचना और प्रकृति में कोई अंतर नहीं ला सकी।

अधिकांश स्त्रियाँ सबके बीच में बैठ कर खाना पसद करती हैं, खासकर यदि उन्हें अपनी नई पोशाक या जेवर लोगों को दिखाना हो तो! लेकिन आदमी अपना भोजन एकांत में करना पसद करता है। किसी भी होटल में जाकर आप देख सकते हैं कि, आदमी अधिकतर दीवार से लगी मेजें पसद करते हैं। जब कोने की या दीवार से लगी मेजें खाली नहीं रहतीं, तभी पुरुष कमरे के बीच बैठना स्वीकार करता है। इसका मनोवैज्ञानिक कारण समझने के लिए आप एक कुत्ते को रोटी का टुकड़ा डालिए। वह उसे ले जाकर एक कोने में छिपा कर खायेगा। आदमी की भी प्रारम्भ से यही आदत है। आदि-युग में जब उसे अपना भोजन भयंग युद्ध कर करना पड़ता था, ताकि कोई दूसरा उसे छीन न ले, तभी से आदमी में स्वभावतः ही यह प्रवृत्ति है। हजारों वर्षों की सभ्यता भी इस आदत को बिलकुल मिटा नहीं सकी।

इसके अतिरिक्त आदमी और औरत की अंग-रचना में जो अंतर है, उसके कारण भी उनकी आदतें नहीं मिलतीं। औरत आदमी पर इसलिए बिगड़ती है कि, वह उसे रात में थियेटर, सिनेमा या लेक्चर सुनने नहीं ले जाता और जल्दी ही सो जाना चाहता है, तो वह यह नहीं जानती कि, आदमी देर तक बगैर अपनी पीठ को सहारा दिए बैठ नहीं सकता। उसके बदन का भार और अधिक-से-अधिक चौड़ाई कंधों के समीप होती है, क्योंकि उसे अपने हाथों से श्रम करना पड़ता है। स्त्री का शरीर कटिप्रदेश के समीप सबसे अधिक चौड़ा और भारी होता है, इसलिए वह आसानी से सारे शरीर का भार उस पर डाले, बगैर सहारा लिए देर तक बैठ सकती है। थिएटर, सिनेमा या लेक्चर-हाल में कुर्सियाँ छोटी होती हैं और पैर फैलाने के लिए जगह नहीं होती, इसलिए साधारणतया आदमी बगैर अपने कंधों को सहारा दिए, देर तक सीधा बैठने में तक लीफ अनुभव करता है। थकावट के अलावा, रात को अपने घर में ही आराम करने की इच्छा का यह प्रमुख कारण है।

आदमियों को अगर कुछ रोज ही घर का काम करना पड़े तो वे तंग आ जाय। किसी भी पुरुष को बगीचे की घास काटना या भारी बोझ उठाना स्वीकार होगा, लेकिन उसे एक जगह बैठकर तरकारी छीलना कभी अच्छा नहीं लगेगा।

हाँ, शौकिया वह कुछ देर के लिए भले ही बैठ जाय। इसका कारण यह है कि, उसके शरीर की बनावट ही भारी काम के लिए हुई है। इसके अतिरिक्त औरतें जब कि, बहुत सफाई-पसंद होती हैं और घर को सँवार कर रखने में उन्हें आनंद मिलता है, आदमी अपनी चीजें बिखेर देता है और स्थान की स्वच्छता की ओर अधिक ध्यान नहीं देता। औरतों में किसी भी वस्तु को सँभाल कर रखने की आदत होती है और खाद्यपदार्थों को वह-इस सावधानि से जमा कर रखती हैं कि, वे बिगड़ न जाय। अपने व अपने परिवार के स्वास्थ्य का खयाल उन्हें स्वभावतः ही रहता है।

सभ्यता के बावजूद भी आदमी स्वभाव से उग्र झगड़ालू और बात-बात पर मरने-मारने को तत्पर रहता है। अमेरिका की यूनाइटेड स्टेट्स में प्रति घंटा जो १९० गंभीर अपराध होते हैं, उनमें से केवल १५ को छोड़कर बाकी सभी पुरुषों द्वारा होते हैं। यह सही है कि, बहुत-से अपराध पुरुष द्वारा न किये जा कर स्त्री द्वारा किये गये हों तो, वे अधिक आसानी से माफ किये जा सकते हैं।

पुरुष का स्वभाव सदियों से चले आ रहे संघर्ष के कारण उग्र हुआ है। आज से १०,००० वर्ष पहले के दिन की कल्पना कीजिए। किसी गुफा में स्त्री अपने शिशु को स्तन-पान करा रही है। गुहा-द्वार पर उसका पति और संरक्षक हाथ में गदा लिए बैठा है। बाहरी आक्रमण से रक्षा और भोजन प्राप्त करना उसीका काम है। उसे आप जँगली, जाहिल जो-कुछ भी कहें, लेकिन यही शख्स अपनी गदा और कंकड़-पत्थर से दुनिया को जीतने चला था। आज भी वह क्रम जारी है। युग-युग की सभ्यता के उप-रांत भी आज मनुष्य बर्बरता से सदा सशंकित रहता है। संघर्ष के फल-स्वरूप ही पुरुष का स्वभाव उग्र बना हुआ है। स्त्रियों की यह शिकायत है कि, पुरुष उन पर अधिकार जमाता है, अपने-आपको उनसे श्रेष्ठ समझता है। लेकिन इसमें पुरुष कोई जानबूझ कर गलती नहीं करता। सदियों से वह परिवार का संरक्षक और मुखिया होता आया है। केवल अधिकार जमाने के लिए वह अपने-आप को श्रेष्ठ घोषित नहीं करता। अधिकारी रहने की उसकी आदत है।

बीसवीं सदी का पुरुष आधुनिक सभ्यता के वातावरण में भी अपनी बहुत-सी ऐसी आदतों और प्रवृत्तियों को धारण किये हुए है, जिनका उद्गम आदि-युग से है। नारी के प्रति वैज्ञानिक जितने जागरूक हैं, उतने ही जागरूक पुरुष के मन और स्वभाव के प्रति भी हों, तो पुरुष और नारी के बीच जो यह अस्वाभाविक संघर्ष उत्पन्न हो गया है, वह न रहे, और नारी भी पुरुष के व्यवहार से दुखी न हो। दोनों ही एक-दूसरे से भली प्रकार परिचित हो जाय और सुख से रहें।

*

# मित्र बनाने की कला में आप कितने कुशल हैं

"सात मित्र इंसान के, सात सौ भगवान के !" इस मराठी कहावत का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि, मैत्री का प्रसार ही मनुष्य की सफलता उसकी वैयक्तिक विभूतियों का मापदंड है।

★

हमारे जीवन की सफलता एवं संपूर्णता बहुत-कुछ मैत्री की भावना पर निर्भर है। जिस व्यक्ति के जितने अधिक और वास्तविक मित्र होंगे, उतना ही अधिक आनंद उसे जीने में मिलेगा। "मेरी सारी सम्पत्ति मुझसे ले लो और बदले में मुझे एक सच्चा मित्र दे दो।" ये शब्द विख्यात धनपति कार्नेगी के हैं। वस्तुतः जिसकी शुभ कामना करनेवाला एक भी हितैषी मित्र इस संसार में है, उसे किसी प्रकार का दुःख अधिक विचलित नहीं कर सकता। और-तो-और हमारे आनंद-भोग की मात्रा भी इस पर निर्भर है कि, हमारे हर्ष में हिस्सा लेनेवाले कितने व्यक्ति हैं।

मित्रता संसार की सुंदर वस्तु में आज शायद ही कोई जवाहरलालजी का मुकाबला कर सके। [चित्र : आर. के. लक्ष्मण]

मित्र-प्रेम इस संसार की एक अद्भुत शक्ति है। एक फारसी कहावत है कि, 'जिस व्यक्ति के मित्र नहीं, वह मनुष्य नहीं।' इमर्सन ने भी अपने विख्यात निबंध 'मैत्री' में मित्र को 'भगवान का रूप' कहा है। थोरो ने तो मित्र को 'सृष्टि की सर्वोच्च सर्जन-स्फूर्ति का कोष' कहा है। अतः आइये, आप-हम अपने अंतःकरण को टटोलें कि, जीवन की इस अमृत-बेलि को हमने अपने-अपने हृदय-रस से कितना-कितना सींचा है ?

नीचे दी गयी प्रश्नावली में प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 'हाँ' या 'ना' में दीजिये और निर्णय कीजिये कि, आप मित्र बनाने की कितनी क्षमता रखते हैं—

१. क्या आप दूसरों का खयाल अपने से पहले करते हैं और उन्हें कभी अपनी ओर से नाराज नहीं करना चाहते ?

२. अपने प्रति दूसरे के दोषों को क्या आप सहज ही क्षमा कर सकते हैं ?

३. क्या आप दूसरों को प्रसन्न देखना चाहते हैं और उन्हें सुखी करने के लिए छोटे-मोटे काम करना आपको पसंद है ?

४. क्या आप बदले में कुछ पाने की आशा के बिना भी दूसरों को कुछ दे सकते हैं?

५. क्या लोगों के साथ मिलन जुलने और साथ-साथ कार्य करने में आपको आनंद मिलता है?

६. क्या आप अन्य लोगों में सचमुच रुचि रखते हैं। उनकी आकांक्षाएँ, विचार धारणाएँ अनुभवों में आपको वास्तविक दिलचस्पी है?

७. क्या आप लोगों पर यह प्रकट करते हैं कि, वे आपको अच्छे लगते हैं और जो कुछ वे आपके लिए करते है, उसके लिए आप कृतज्ञ हैं?

८ बिलु क्या आप शीघ्र ही यह ताड लेते हैं कि, आपके सम्पर्क में आये लोग व्यस्त हैं, या शांति अथवा एकांत चाहते हैं?

९ क्या आप अपने विषय में बातचीत करने से अपने-आप को रोक पाते हैं? अपनी या अपने परिवार की बड़ाई—अथवा अपने कष्ट और तकलीफों की शिकायत करना आपको बहुत प्रिय तो नहीं है?

१०. क्या आप अपनी एव अपने मित्रों की अभिरुचियों के विकास में प्रयत्नशील हैं?

११. जब कोई बात आपके प्रतिकूल हो तो क्या आप अपने को दबा लेते हैं और दूसरों पर वह आक्रोश नहीं निकालते?

१२. समस्याओं और गलतफहमियों की चर्चा क्या आप चतुराई और समझदारी से कर सकते हैं?

१३. किसी विषय पर विवाद होने से क्या आप दूसरों के साथ अपने मतभेद सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं?

१४. आप पर किए गये विश्वास की क्या आप रक्षा करते हैं?

१५. क्या आप मित्रों के लिए सहर्ष कष्ट अथवा असुविधा उठाने को तैयार हो जाते हैं?

प्रत्येक 'हाँ' के लिए पाँच अंक प्राप्त कीजिये। यदि आपके प्राप्त अंकों की संख्या ७० या उससे अधिक है, तो आप मित्र बनाने की अच्छी योग्यता रखते हैं। ५० से ६० अंक सामान्य हैं, ५० से कम अंक यह प्रकट करते हैं कि, आप मित्र बनाने की कला में कमजोर हैं?

मित्र बनाने की क्षमता का अर्थ है कि, आपको दूसरे लोग अच्छे लगते हैं और अपने से अधिक आप उनमें रुचि रखते हैं। स्वार्थ मैत्री का ही नहीं, समग्र जीवन का महान शत्रु है। रवीन्द्रनाथ ने तो स्वार्थ-अकेले स्वार्थ— को ही षड्रिपुओं की जननी माना है। अतः स्वार्थ को परार्थ में परिणत करने का अभ्यास कीजिये—अपने ही से निकलकर दूसरों में भी अपनी दिनचर्या को विभाजित कीजिये। ज्यों-ज्यों यह आपका अभ्यास बढ़ता जायेगा, त्यों-त्यों शुक्ल पक्षीय चन्द्रोदय की भाँति आपके भीतर आनंद की ऊर्मियाँ भी विकसित होती जायेंगी।

★

# जानि सरद रितु खंजन आये

खंजन जैसी सौंदर्य चपल भाषा के सिद्धहस्त शिल्पी बेनीपुरीजी की लेखनी से यदि ऐसे ही कुछ और शब्दचित्र विरचित हों, तो यह परम्परा निश्चय ही एक अति दीर्घकालीन अभाव की पूर्ति कर देगी!

★

चेंचे-चेंचें! यह देखिये, मेरी अँगनाई में किसने घुड़दौड़ मचा रखी है?

ओहो!—जानि सरद-रितु खंजन आये? चेंचे-चेंचें! कहाँ से आ पहुँची है यह छोटी-सी चिड़िया? किसने आमन्त्रण भेजा था कि, आओ, मेरे गोबर से लिपे-पुते इस चिकने-चुपड़े आँगन को अपनी चेंचे-चेंचें से भर दो!

आज तक कहाँ थी यह चिड़िया?

शरद आयी, यह पहुँची: वसन्त बीता, यह गयी। कहाँ से आती है? कहाँ से भाग जाती है?

धूप, धूल, धमार से इसे विरक्ति क्यों है?

इसे उड़ान चाहिए, इसे रंगीनी चाहिए। कैसी रंगीली तबीयत पायी है इस छोटी-सी चिड़िया ने।

ओ नन्ही चिड़िया, अपने साथ मुझे भी ले लो और संसार के उन भागों की सैर कराओ, जहाँ सिर्फ उड़ान-उड़ान है, रंगीनी-रंगीनी है। गर्मियों ने झुलसा डाला है: कुरूपताओं ने आँखों की रंग-ग्राहिणी शक्ति को ही नष्ट कर दिया है!

चेंचे-चेंचें! क्या बोल रही हो? मैं तुम्हारी भाषा समझ कहाँ पाता हूँ?

न समझो, तुम्हारी बला! यह चेंचे कर रही है, फुदक रही है, दौड़ रही है, उड़ रही है! पैर, पंख, चोंच सब को एक ही साथ काम रहा हो, जैसे; एक छोटी-सी चिड़िया ने सारे आँगन को भर रखा है—जहाँ देखिये, वहीं, वहीं!

## कामना

विकचकमलवक्त्रा फुल्लनीलोत्पलाक्षी,
विकसितनवकाशश्वेतवासो वसाना।
कुमुदरुचिरकान्ति कामिनीवोन्मदेयं,
प्रतिदिशतु शरद्वश्चेतसः प्रीतिमग्र्याम्।

भगवान् करे, यह खिले हुये उजले कमल के मुखवाली, फूले हुये नीले कमल की आँखोंवाली, सुन्दर कोईं के शरीर वाली और फूले हुये काँस की साड़ी पहननेवाली जो कामिनी के समान उन्मत्त शरद् ऋतु आयी है, वह आप सब के मन में नयी-नयी उमंगें भरे।

—कालिदास

छोटी-सी चिड़िया: उजली-सी चिड़िया। छोटे-छोटे पैर, छोटी-सी चोंच, छोटे-छोटे पख। उजले पखों पर काली-सी धारियाँ—जो पूँछों से शुरू होकर, गर्दन होती हुई चोंच पर समाप्त होती हैं।

कवियों ने कामिनियों की आँखों की उपमा इससे दी है—अजनरंजित आँखों से।

जरा गौर से देखिये किसी सुंदरी की अंजन-रंजित आँखें इस खजन के रूप में मेरे आँगन में चहक रही हैं, फुदक रही हैं।

हाँ, हाँ, यह खजन नहीं, अजन-रंजित नयन, हैं जो मेरे आँगन में इधर-उधर, यहाँ, वहाँ, फुदक-चहक रहे हैं! एक नयन अनेक नयन बन चुका है। चारों ओर नयन, नयन, नयन-खजन कहाँ है?

कैसी चपलता, कैसी चटुलता! क्या कामिनियों की अजनरंजित आँखों ने चपलता-चटुलता का उपहार तुमसे ही प्राप्त किया है?

ओ नन्हीं चिड़िया, जरा पल-भर को ठहरो तो, रुको तो! अपनी कलम के कैमरे से तुम्हारा पूरा चित्र उतार लूँ!

शायद तुम्हें यह सूक्ति मालूम नहीं—सारा सौंदर्य क्षणिक है, नश्वर है, जब तक वह कला में नहीं बाँधा जाता!

अरी, ठहरो, तुम्हें कला में बाँधू, तुम्हें अमरता दूँ, शाश्वतता दूँ। किन्तु बेचारी करे तो क्या? क्या चाहकर भी वह कहीं स्थिर हो सकती है, एक क्षण को, पल को भी।

लगता है विधाता ने पारे से इसकी रचना की हो—चमचमक, ढलमल पारे से।

पारे से इसे रचा और काले डोरों से इसे बाँध दिया—नहीं तो यह कब न आकाश में उड़ गयी होती! हाँ, पखों पर के काले-काले डोरे हैं जिनके कारण यह पृथ्वी से बँधी है, आज मेरे आँगन में दौड़ रही है, चहक रही है!

चेंचे-चूँचूँ! सर्र-सर्र, फुर-फुर!

ओहो, इसकी गति में कैसी समरसता, समगरता है। शरीर में जरा हिलडुल नहीं, पूँछ में हल्का कपन! चलती है, तो गौरैया भी, जैसे बँधे पैरों से कूद रही हो। क्या कोई सधा हुआ घोड़ा भी इस सरपट से भाग सकता है?

इस गति की उपमा कहाँ खोजी जाय?

जब पेरिस के स्वर्गस्थ (शाँजिलीजे) पर टहल रहा था, वहाँ की सुंदरियों की, घाँघरे को ठेलती हुई, हवा में तरती-सी, गति देखकर इस चिड़िया की याद आयी थी?

यह गयी, वह गयी, उड़ गयी! कहाँ गयी, किधर गयी—बस, चिल्लाते रहिये, वह गयी, गयी! चेंचे-चूँचूँ सर्र-सर्र-फुर-फुर! कहाँ उड़ गयी!

★

एक कंजूस आदमी ने अपने खिलौने इसलिए बचा कर रखे कि, अगले जन्म में जब वह बच्चा बनेगा, तो काम आयेंगे। —'लाफ़' से

★

# ऊँट का झोल

'जोश' मलीहाबादी की एक लघुवार्ता का संक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तर।

★

हिन्दुस्तान में जहाँ और बदबख़्तियाँ हैं वहाँ एक यह भी है कि, घर का एक आदमी कमाता है, बाकी सब उसके सिर खाते हैं और जब वह कमाने वाला मर जाता है तब उसके सहारे जीने वाले भीख माँगने लगते हैं। इस कमाश के लोगों के लिए एक कहानी सुनाता हूँ।

एक बद्दू अरब एक जगह से दूसरी जगह जा रहा था। उसने खुर्जी में, एक तरफ बहुत-सा अनाज और दूसरी तरफ दो-एक बरतन और थोड़ा सा खाने-पीने का सामान रखा और चल पड़ा।

खुर्जी का अनाज वाला हिस्सा भारी होने की वजह से बार-बार नीचे की तरफ खिसक जाता था। जिसकी वजह से बद्दू को भी बार-बार नीचे उतर कर सामान ठीक करना पड़ता था। यहाँ तक कि, वह तंग आ गया। इतने में उसकी नजर एक दूसरे मुसाफिर पर पड़ी जो पैदल चल रहा था और बद्दू की तरफ देख-देखकर मुस्कराता जाता था। बद्दू ने उससे कहा, "तुम मेरी तरफ देख कर क्यों मुस्करा रहे हो? क्या मेरी तलवार की धार नहीं देखी?" 'नहीं भाई," उसने जवाब दिया, "तुम्हारी तलवार की धार तो मुझसे छिपी हुई नहीं लेकिन . . . ."

"लेकिन क्या?" बद्दू ने तलवार सौंतकर कहा—"भाई, मैं तो तुम्हारा हमदर्द हूँ और चाहता हूँ कि, तुम्हारी तकलीफ दूर कर दूँ।"

"इस बात का क्या मतलब?"

"आपकी एक तरफ की खुर्जी बार-बार सरक जाती है, जिसकी वजह से आपको भी बार-बार ऊँट ठह-राना, नीचे उतरना और उसे ठीक करना

अश्वभाव

[चित्र : सुतारे के रंगीन चित्र की सरल रेखानुकृति]

डालडा मेरे लिये अच्छा है!
डालडा
छाप
वनस्पति से
खाना पकाइए
DALDA
डालडा
यह न केवल खाना पकाने के लिये ही अच्छा है, बल्कि पौष्टिक भी है!

लोमा
मस्तिष्क को शांत रखता है।
लोमा
अधिक बाल उगाता है।
लोमा
सुफेद बालोंको श्याम बनाता है।
लोमा
बडी प्यारी खुशबू देता है।
लोमा
सुफेद बालोंको श्याम बनाता है।

पन्ता है। आप मुझे इजाजत दें, तो मैं यह तकलीफ दूर कर दूँ।

यह तुम कैसे कराग ?

मैं दोनों खुर्जियों में वजन बराबर कर दूँगा जिसकी वजह से वह नहीं सरकेगी।

तुम हाथ न लगाओ, मुझे बताते जाओ मैं अपने हाथ से करूँगा। मगर याद रखो अगर फिर यही तकलीफ हुई तो तुम्हारा सिर उड़ा दूँगा।

इसके बाद बद्दू ऊँट से उतरा और मुसाफिर ने जिस तरह बताया उसी तरह उसने दोनों खुर्जियों का बोझ एक सा कर दिया। काम खत्म हुआ तो बद्दू बोला तुम मेरे साथ आओ, अगर फिर मुझे तकलीफ हुई तो तुम्हारी खैर नहीं और अगर तकलीफ न हुई, तो जहाँ कहोगे वहीं अपने ऊँट पर बिठाकर पहुचा दूँगा।

दोनों ऊँट पर सवार होकर आगे चले। बद्दू ने जाँच करने के लिए ऊँट को कई मील तक खूब तेज दौड़ाया, लेकिन खुर्जियाँ अपनी जगह से न हटीं। बद्दू खुश होकर साथी से बोला–'तुम बहुत अक्लमन्द आदमी मालूम होते हो।

बहुत सारी किताब पढ चुका हूँ न' वह भी खुश होकर बोला।

तो फिर तुम बहुत मालदार भी होगे।"

नहीं मैं कमाता कुछ नहीं, मेरे कदरदान ही पेट भर देते हैं।

बद्दू यह सुनकर गुस्से से सुर्ख हो गया और कहने लगा – तुम कुछ नहीं कमाते, दूसरों के सहारे जीते हो! वल्लाह, अगर इल्म का मतलब यह है कि, आदमी हाथ पाँव न हिलाये और खैरात पर गुजर करे, तो ऐसे इल्म से जहालत कहीं अच्छी है। इतना कहकर उसने ऊँट रोक लिया। ऐसा मालूम होता था जैसे वह अपने गुस्से को दबा रहा हो। लेकिन थोड़ी देर बाद वह अपने बाल नोच-नोच कर कहने लगा,

कमबख्त, तू मेरे ऊँट से उतर जा। मुझे न तेरी अक्लमंदी की जरूरत है न तेरे इल्म की! इतना कहकर वह ऊँट से कूद पड़ा साथी को भी टाँग पकड़ कर खींचा, फिर अपना सामान पहिले ही की तरह भरकर रवाना हो गया।

★

## जल्द दुह लो

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन और उनके समकालीन सेनापति जार्ज मक्केलेन में बनती नहीं थी। लिंकन का हुक्म था कि, सेनापति अपने कार्यों की सूचना समय समय पर राष्ट्रपति को भेजते रहें। मक्केलेन को यह हुक्म फूटी आँख नहीं भाता था। एक बार चिढ़ कर उन्होंने लिंकन के नाम एक तार भेजा–'अभी-अभी छ गाय पकड़ी गयी हैं।" लिंकन ने उत्तर दिया–" उन्हें जल्द दुह लो।'

—'टाइम्स' से

★

बंगला के अद्वितीय हास्य-व्यंग्य-लेखक श्री परशुराम की एक कहानी का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर।

★

बेतसी का जन्म विलायत में हुआ था। उसके पिता ने वहाँ कृषि एवं पशु-पालन की शिक्षा प्राप्त की थी। स्वदेश लौटकर उन्होंने अपनी जमींदारी में साग-सब्जी का एक बड़ा बाग लगा लिया और भेड़, गाय, सूअर, मुर्गी, हंस इत्यादि पालने का व्यवसाय करने लगे। मरते दम तक उन्होंने यही व्यवसाय किया। उसके पश्चात् उनकी मृत्यु हो गयी।

बेतसी की माँ अनमी मुश्किल में पड़ गयीं। इतने बड़े व्यवसाय की देख-रेख अब कौन करेगा? उसने तय किया कि, सब-कुछ बेच-बाच कर कलकत्ते चल कर रहा जाय। लेकिन बेतसी ने अपनी माँ से कहा कि, इसमें चिंता क्या, वह स्वयं सारा कारोबार सँभाल लेगी।

अनमी को अब यह चिंता सताने लगी कि, यदि कोई योग्य दामाद मिल जाय, तो सारा व्यवसाय वह सँभाल लेगा। बेतसी को उसके हाथ में सौंप कर वह निश्चिन्त हो जायगी। लेकिन बेतसी का रूप चित्ताकर्षक न था और मिजाज भी नाहिराना और बहुत तेज था। इसलिए उसकी माँ की सारी चेष्टाएँ विफल हुईं। बेतसी ने कहा—"माँ, क्यों चिंता करती हो? दो दिन बाद सब ठीक हो जायगा।"

जयहरि हाजरा नाम का एक मध्यम वर्ग का लड़का 'स्कालरशिप' पाकर विलायत गया और वहाँ से सूत और कपड़ा रँगने का काम सीख कर लौटा। आते ही वह अहमदाबाद की किसी मिल में अच्छे वेतन पर नौकर हो गया। कुछ दिन बाद उसने नौकरी छोड़कर स्वयं अपना 'डाइंग' और 'ब्लीचिंग' का कारखाना खोल लिया। धन भी काफी कमाया उसने। लेकिन शिकार का शौकीन होने के कारण एक बार जंगली सूअर के आक्रमण से उसका पाँव जख्मी हो गया। वह लँगड़ाने लगा। उसने अपना कारखाना अच्छी कीमत पर बेच दिया और अपने पैतृक मकान में आकर रहने लगा।

जयहरि की जमीन के एक ओर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का रास्ता और तीन तरफ धान का खेत था। उसके मकान के सामने एक लम्बा-सा मैदान था। उसके वहाँ रहने के कुछ दिन उपरान्त ही लोगों ने देखा कि, उस मैदान में भाँति-भाँति के विचित्र जीव फिर रहे हैं। दूर-दूर से लोग आकर उनको देखने लगे।

बेतसी के पास भी खबर पहुँची कि, एक

लगाड़े बाबू ने अजब चिड़ियाखाना खोल रखा है, जिसे देखने के लिए लोग कलकत्ते तक से आते हैं। उस इलाके में चाकलादार वंश ही सर्वाधिक गणमान्य जमीदार थे। बेतसी से यह सहन नहीं हुआ कि, कोई व्यक्ति बाहर से आकर इस प्रकार का एक अद्भुत चिड़ियाखाना खोले और उसे देखने के लिए उन्हें निमत्रण तक न भेजे। वह विलायत भी होकर आया है, 'यह सुनकर बेतसी उसकी अवज्ञा भी न कर सकी। कौतूहल न दबा पाकर, एक दिन सवेरे एक बड़े विलायती कुत्ते, 'प्रिंस' को साथ लेकर वह जयहरि का बगीचा देखने गयी।

फाटक के पास पहुँचकर वह अवाक् होकर देखने लगी। तीन नीली भेड़ें चर रही थी। एक हरे रग की गाय और पास में चार बैंगनी रग के बछड़ दिखायी पड़े। एक और अद्भुत जानवर घास चर रहा था। शरीर का रग पीला और उस पर गहरे बादामी रग की लकीरें। बेतसी ने पहले तो सोचा कि, शायद चीता है, लेकिन उसकी दाढ़ी और सीग से तो वह बकरा दिखायी पड़ा। थोड़ी दूर पर कुछ मयूरकठी हस दिखायी पड़े। मकान की छत पर से हठात् लाल, नारगी, पीले, नीले, बैंगनी रग के पक्षी उड़ कर आकाश में मडराने लगे। मानो इद्रधनुष दिखायी पड़ रहा हो। वह चकित होकर उन्हें देख ही रही थी कि, उसके कानों में किसी की आवाज आयी—'नमस्कार। कृपा करके भीतर आइये न?'

बेतसी ने मुँह घुमा कर देखा कि, एक सुदर युवक फाटक खोलकर खड़ा है। प्रति-नमस्कार कर उसने पूछा—'आप ही जय-हरि बाबू हैं? आपने तो जानवरों को अत्यत आश्चर्यजनक बना डाला है। लेकिन इसके पीछे कुछ उद्देश्य भी है कि, यह सब निष्प्रयोजन ही है?'

भार मुक्ति

[ चित्र . ब्रिटेन के चित्रकार सर एल्फ्रेड मुनिंस का एक अनुपम पेंसिल स्कैच ]

जयहरि ने उत्तर दिया—' 'आर्ट'-मात्र ही निष्प्रयोजन है, एक बच्चों का-सा खेल। कोई कागज-कैन्वास पर चित्र आकता है, कोई पत्थर की प्रतिमा बनाता है। मैं जीवित प्राणियों पर रग लगाता हूँ। मेरा 'मीडियम आव टेकनीक' बिल्कुल नया है।"

"सुना है कि, आपने विलायत जाकर सूत और कपड़ा रगने का काम सीखा था।

आप किसी मिल में नौकरी क्यों नहीं कर लेते ? इस फिजूल काम में अपना दिमाग खराब करते हैं।' बेनसी ने कहा।

"लेकिन सभी की दृष्टि में यह दिमाग खराब करना नहीं। हमारे कृषिमंत्री रायबहादुर नादान सों, मेरा काम देखकर इतने खुश हुए कि, उन्होंने कहा –"यदि सोवियट सरकार को एक सौ आठ उल्लू लाल रंग के भेज जा सकें, तो बड़ा अच्छा होगा।" वे नेहरूजी के साथ इस विषय में परामर्श करेंगे।" जयहरि ने उत्तर दिया।

इसी बीच जयहरि की एक गुलाबी रंग की कुतिया ने बेनसी के विलायती कुत्ते, 'प्रिंस' को काट खाया, क्योंकि 'प्रिंस' ने उसके साथ अनुचित घनिष्ठता बढ़ाने की कोशिश की थी। बेनसी के गुस्से का पार न था। उसने अग्निमूर्ति होकर कहा–"आप अपनी कुतिया को गोली मार दीजिये। एक साधारण देसी कुतिया होते हुए भी, उसकी यह मजाल कि, उच्चवंशीय विलायती 'प्रिंस' को काट खाया।" जयहरि ने उत्तर दिया–"आपका 'प्रिंस' कितना भी ऊँची डिग्री का हो, लेकिन उसकी दृष्टि निम्न है। ठीक जैसे उच्चकुल के लोग चेहरा रंगी हुई साधारण स्त्री के पीछे दीवाने हो जाते हैं। इसमें कसूर उसी का है।" बेनसी ने कहा–"तो ठीक है आप शीघ्र ही मेरे वकील की चिट्ठी पायेंगे। देखें, अदालत आपको रिहा करती है या नहीं।"

घर लौटकर बेनसी सीधी वकील के यहाँ पहुँची। वकील, विष्णु बनर्जी उसके पिता के निकटतम मित्र थे। उन्होंने कहा– "इस पर कोई कानूनी कार्रवाही नहीं हो सकती। जयहरि की कुतिया रास्ते पर नहीं भटक रही थी और न वह पागल ही है।" बेनसी वहाँ से रुष्ट होकर महकमा हाकिम, अरुण घोष के मकान पर गयी। उनसे सारा वृत्तांत कह कर उसने विनय की कि, वे पुलिस द्वारा कुतिया को मरवा डालें और जयहरि को जानवर रखने के काम से रोका जाय। हाकिम ने उत्तर दिया कि, वे पुलिस को निश्चय ही जयहरि बाबू की कुतिया की रोज खबर रखने का हुक्म दे देंगे। किसी प्रकार की बीमारी होने पर अवश्य ही कुतिया मार डाली जायगी। किन्तु जयहरि जो करते हैं वह तो एक निर्दोष खेल है, उसे किसी प्रकार रोका नहीं जा सकता जब तक कि, उसमें किसी का अहित न हो।

बेनसी वहाँ से भी निराश होकर अपने घर लौट आयी। उसने निश्चय किया कि, वह स्वयं जयहरि से बदला लेगी। उसने अपने खास निमाईदास और सदर अर्दली गगन महतो को बुलाकर हुक्म दिया कि, वे दूसरे दिन सबेरे आठ बजे जयहरि बाबू के फाटक के पास उपस्थित रहें।

दूसरे दिन बेनसी अपने अरबी घोड़े पर बैठकर चाबुक हाथ में लिये जयहरि के मकान पर पहुँची। निमाईदास और गगन महतो दोनों वहाँ अपने बच्चों के साथ पहले से ही उपस्थित थे। जयहरि भी फाटक के पास खड़ा अपने जानवरों को

देख रहा था। बेतसी को देखते ही मुस्करा कर बोला—"गुड मार्निंग, मिस बेतसी। आपका 'मिस' अच्छा है न?"

बेतसी ने उत्तर दिया—"जरा बाहर आइये, आपसे कुछ कहना है।" जयहरि फाटक से बाहर निकल आया। बेतसी ने कहा—'कल मेरे साथ जो आपने दुर्व्यवहार किया उसके लिए आप क्षमाप्रार्थी हैं या नहीं? और, यदि सचमुच आपको उसके लिए दुःख है, तो आप अपनी कुतिया को गोली मरवा दीजिये। या ऐसा नहीं कर सकते हो, तो उसे गंगा-पार छुड़वा दीजिये।' जयहरि ने उत्तर दिया—"आपको कष्ट हुआ, उसके लिए मुझे अफसोस जरूर है। क्षमा भी मैं माँग सकता हूँ, लेकिन कुतिया के साथ मैं किसी प्रकार का कठोर व्यवहार नहीं कर सकता, बेतसी ने जयहरि को मारने के लिए चाबुक उठाया।"

लेकिन बेतसी का चाबुक जयहरि की पीठ पर पड़ने से पहले एक और घटना ऐसी घटी, जिसका विवरण यहाँ आवश्यक है। मैदान में कदम-वृक्ष के नीचे एक जेब्रा दिखायी दिया। बेतसी ने उसे देखा नहीं था। निमाई धोबी उसे देखकर थोड़ी देर तो हैरान रहा। उसके बाद उसने पहचाना—"अरे यह तो मेरी भैरवी है।" जयहरि बाबू को दस रुपये में वह गधी उसने कुछ दिन पूर्व बेची थी। लेकिन अब तो उसका रंग ही बदल गया था। भैरवी ने अपने पुराने मालिक, निमाई को पहचान लिया और वह 'भूची-भूची' करके उसकी तरफ दौड़कर आयी। उसका अद्भुत सौंदर्य देखकर बेतसी का घोड़ा सामने के दोनों पाँव उठाकर हिनहिनाने लगा। बेतसी जयहरि के साथ बात करने में व्यस्त थी। अचानक घोड़े के पैर उठने से वह अपने-आपको सम्भाल न सकी और धड़ाम से जमीन पर गिर गयी।

उसे दो सप्ताह तक बिस्तर पर ही लेटे रहना पड़ा। उनके मुनीम हरकाली माइती की स्त्री रोज उसे देखने आती। उसने कहा—'तुम भी दीदी खूब हो। मेम साहब की तरह घोड़े पर बैठकर जयहरि बाबू को सजा देने गयीं। मर्दों के दाँत खट्टे करने का एक ही तरीका है। उन्हें एमा भर पहले तो अपने वश में करना और फिर चाहे जैसे नाच नचाना। तुम्हारी और जयहरि बाबू की जोड़ी भी खूब मिलती है। तुम शादी न करो, तो जयहरि बाबू जैसा पात्र तो मैं हाथ से छोड़नेवाली हूँ नहीं। मेरे भाई की 'चबी' को वहीं ब्याह दूँगी। मेरा खयाल है, जयहरि बाबू उसे नापसंद नहीं करेंगे।

माइती की स्त्री चली गयी, लेकिन उसकी बात बेतसी के मन पर चोटकर गयी, जयहरि न गधी को जेब्रा बना दिया, तो क्या वह जयहरि को भेड़ नहीं बना सकती? दूसरे दिन सवेरे ही उसने जयहरि बाबू को चिट्ठी लिखी—'आपकी कुतिया और गधी को मैंने क्षमा किया और आपको भी। क्या आप भी मुझे क्षमा कर सकते हैं?"

*

रूसी कथा साहित्य में 'वर्तमान गोर्की' के नाम से मशहूर श्री निकोलाई तिखनोव की एक युद्धकालीन कहानी का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर।

★

वह व्यक्ति ज़ोर-ज़ोर से हाँफता हुआ खड़ा था। वह झुँझलाया हुआ था, उसके होश-हवास गुम थे।

'उफ़, बड़ी मुश्किल से पता चला तुम्हारा। इस अँधियारी में तो कोई अपने ही घर को भी खोजता-खोजता घर के किनारे से निकल जाय।' उसने अपनी टोपी का बर्फ़ झाड़ते हुए कहा—"क्या यह बच्चों का अस्पताल है?" उसने पूछा।

"हाँ, क्या बात है?"

"बात क्या, एक औरत पिछवाड़े की गली में पड़ी बच्चा जन रही है।"

"और तुम कौन हो?"

"मैं.. मैं तो इत्तिफ़ाक़ से उधर से गुज़रा था। कारख़ाने की रात की ड्यूटी से मैं लौट रहा था। ख़ैर, अब जल्दी करो। मैं तुम्हें रास्ता दिखा दूँ। क्या अजीब काम है! मैं अपने रास्ते जा रहा था, देखता क्या हूँ कि, वह बेचारी अकेली है। कोई भी तो वहाँ नहीं और मैं भी करता तो क्या करता?"

एक मिनट बाद ही इरीना नाम की नर्स एक परिचारक को लिये उस अनजान के साथ बर्फ़ की आँधी में गिरती-पड़ती जा रही थी। अँधेरा बहुत घना हो गया था। मकान नंगी चट्टानों-से खड़े थे। कहीं से भी तो प्रकाश की किरण नहीं आती थी। बर्फ़ की आँधी शून्य में चक्करी लगाती हुई घूम रही थी। कुछ आभास-सा होता था, पहरे पर तैनात सैनिकों की छाया का, जो छाया दबे पाँव गली से निकल जाती थी।

एकाएक वे धरती पर, बर्फ़ में सिकुड़ कर पड़ गये। उनकी नाक एक-दूसरे की पीठ से अड़ी हुई थी। एक क्षीण, पर धीरे-धीरे बढ़ती हुई आवाज़ सुनायी पड़ी और जैसे वह आवाज़ उनकी ओर बढ़ी आ रही थी, उनके सिर सिकुड़ कर कंधों में घुसे जाते थे। चौराहे के पास कहीं से लाल लपटें उछलने लगीं और गली को कँपाता हुआ ज़ोर का एक धमाका हुआ। घरों की ओलतीं पर जमी हुई बर्फ़ भड़भड़ कर सड़क पर झड़ रही थी।

"वही उस बेचारी को चोट न आयी हो'—इरीना चिल्लायी।

"नहीं, वह दूसरी ओर है। तुम दोनों उधर की तरफ खोजो उसे। बिजली के खम्भे के आगे वह कहीं होगी। मैं तो चला। आज तो दनादन गोलियाँ चल रही हैं। घर पहुँचने से पहले मैं गोली नहीं खाना चाहता।"

इरीना ने दाई का काम नहीं सीखा था। बच्चों के अस्पताल में वह नर्स का काम करती थी। पर अब उसे इस रात में उस स्त्री की खोज करनी थी और बच्चा भी उसी को जनाना होगा। अब एक सकिन्ड भी नहीं खोना है। दाई यहाँ कहाँ है जो उसकी मदद को आयेगी। रात का सन्नाटा था। पाला और बर्फ का तूफान। फूत्कार और सीटी के साथ गोले पर-गोला सिर के ऊपर से निकल जाता था। इरीना बर्फ की एक ढेरी से दूसरी की ओर दौड़ती थी और रुक-रुक कर कान लगाती और सुनती थी।

दाहिनी ओर से कराहने की आवाज सुनायी दी। वह उसी ओर लपकी और सचमुच बिजली के खम्भे के आगे—जैसा कि, उस अनजान ने कहा था—किसी घर के बंध द्वार के समीप वह स्त्री बर्फ में, दीवार के सहारे कमर टेके बैठी थी। इरीना औरत के सामने घुटने टेक कर बैठ गयी और औरत ने इरीना का हाथ अपने हाथ में थाम लिया। उसका हाथ गरम-गरम थर थर काँप रहा था।

उसे अस्पताल तक ले जाने का समय न था। उसे प्रसव का दर्द उठ रहा था। वह बर्फ में ही बच्चा जन रही थी, शीतकाल की उस अँधियारी रात में जिसे फटते हुए गोलों का प्रकाश ही आलोकित कर रहा था। इरीना ने अपने चारों ओर देखा वह सब-कुछ रात्रि के भयावह स्वप्न-सा दिखलायी पड़ता था। उसके कोट के कॉलर में बर्फ भीतर को खिसक रही थी हवा के पूरे जोर के झोंकों के थपेड़े उसके मुँह पर लगते थे, उसके हाथ ठिठुर गये थे और उसका दिल इस जोर से धड़क रहा था कि, इरीना को वह धड़कन भी साफ सुनायी पड़ती थी। मालूम होता था, जैसे वह लेनिनग्राद नगर नहीं, बल्कि कोई वियाबान सुनसान है, जहाँ शीत की आँधी जर्मन तोपों की ताल पर फेरे लगा रही है। घर के बंद द्वार को खटखटाना व्यर्थ था, किसी को पुकारना भी तो फिजूल होता। गली सूनी पड़ी थी और सुबह तक कोई भी प्राणी उधर से न निकलेगा।

पर यहीं, इस बीच-बाटों में, इस खुले मैदान में, जिसे आकाश की आँधियाँ घेरे थीं, एक नये मानव प्राणी का जन्म हो रहा था। इसकी प्राण रक्षा तो करनी ही थी। शीत, कीचड़ और दुश्मनों की तोपों के मुँह से उसे निकालना ही होगा। फटते हुए गोलों की भीषण धमक से उसके कान बहरे हो रहे थे। इरीना ने स्त्री को इस सहारे से उठाया जैसे वह अस्पताल की आरामदेह वार्ड में सो रही हो, इस

तरह आहिस्ता से जैसे बच्चा को उठाया जाता है। बच्चे को उसने गोद में ले लिया और फिर उसे आकाश की ओर उठा दिया, जैसे अंधकार की मूर्छा में पड़े हुए लेनिनग्राद नगर का उसका प्रदर्शन कर रही हो। वह उसे अपनी छाती से चिपका कर चलने लगी– गरम-गरम, रोते-रीगते उस जीव को अपने कोट के भीतर दुबकाये हुए। वह बर्फ में चल रही थी, उस बर्फ में जो ताजा थी और जिसको किसी के पाँवों ने रौंदा न था।

परिचारक के सहारे बच्चे की माँ पीछे-पीछे घसीट रही थी, जैसे तूफान में छितरे हुए परों वाली चिड़िया हो। बर्फीली हवा के झोंकों में उसके पाँव डगमगाते थे, उसके सूखे ओठों के पार कानाफूसी के-से शब्द निकलते थे–'मैं तो अपने आप भी चल सकती हूँ।' थके-माँदे परिचारक के मुँह से निकला था– 'हम लोग शीघ्र ही वहाँ पहुँच जायेंगे। अब दूर नहीं है।'

आँधी मुट्ठी भर-भर कर सूखा बर्फ उनके मुँह की ओर झोंक रही थी। नगर को कँपाती हुई हर धमक के साथ टूटे हुए काँच की झंकार उनका पीछा करती थी। लेकिन वे विजेता के समान आगे बढ़ रहे थे– रात, शीत और नगर को कँपाने वाली गोलाबारी को जीतकर चलने वाले योद्धाओं के समान।

अगर जरूरत होगी, तो जीवन के इस लघु अंकुर को लिये जीत का यह शानदार जुलूस सारे शहर में घूमेगा, इस नन्हे-से नवागन्तुक को लिए हुए, जो लेनिनग्राद नगर में ऐसे समय में अवतीर्ण हुआ था।

माँ पहले ही जान गयी थी कि, उसने जिस शिशु को जन्म दिया है, वह कन्या है। बार-बार वह इरीना की ओर बाँहें उठाती थी, जैसे उसे रोकना चाहती हो, लेकिन फिर-फिर वह अपनी बाहों को गिरा देती थी।

वे बच्चों के अस्पताल में पहुँच गये। और जब स्त्री को बिछौने पर लिटा दिया गया और उसके आराम की सुविधा कर दी गयी, तो उसने इरीना को बुला भेजा और निस्पृह, किन्तु अधिकार पूर्ण और धीमे स्वर में उसने पूछा– "तुम्हारा नाम क्या है?"

"तुम मेरा नाम क्यों जानना चाहती हो? मेरा नाम 'इरीना' है।"–सस्नेह, इरीना ने पूछा।

"मैं अपनी पुत्री को तुम्हारा ही नाम दूँगी। उसे तुम्हारा स्मरण रहे, वह तुम्हारे जैसी बन सके। आज की रात तो तुमने नारी नाम को गौरवान्वित कर दिया है देवि!"

और उसने इरीना का तीन बार चुम्बन लिया। इरीना ने पीठ फेर ली। उसकी आँखों में आँसू उमड़ आये।– क्यों? क्योंकि हिमक समुद्र की सहस्र-सहस्र कामरूपिणियों के बीच जब कि, धरती से आकाश तक मौत बरसती थी, उसने जीवन का सर्जन किया था! जीवन को विनाश पर विजयी बनाया था!

*

सिंधी भाषा के प्रसिद्ध कथालेखक श्री आसानन्द मामतोरा की एक कहानी का श्री मूलचन्द परशुराम शर्मा द्वारा संक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तर।

★

किकी को उसकी सब सहेलियाँ ग्वालिन कह कर सम्बोधित करती थीं, पर उसके परोक्ष में। वास्तव में, वह कोई ग्वालिन न थी और यह उसका व्यापार-धंधा भी न था। उसके पति ने दो-तीन गायें पाल रखी थीं और उनके दूध बेचने में जो-कुछ मिल जाता था, उस पर उनके परिवार की आजीविका निर्भर थी।

उसका वास्तविक नाम भी किकी न था। अभी वह बारह बरस की बच्ची ही तो थी, पर इतने में ही उसके अभिभावकों ने उसका विवाह एक पच्चीस वर्ष के ब्राह्मण से कर दिया। शरीर से भी वह सूक्ष्म ही थी। पति के घर में जब वह गयी, तब भी वह एक अबोध बालिका की तरह दिखायी पड़ती थी, मानो वह निरी बच्ची थी, एक किकी! सिंधी भाषा में 'किकी' का अर्थ होता है, एक छोटी बच्ची।

किकी का पति जन्म से ब्राह्मण था, पर कर्म से नहीं। न उसने संस्कृत का अध्ययन किया था और न अपनी मातृ-भाषा में अनुवाद हुए वेद-शास्त्रों का अभ्यास ही किया था। प्रारंभ में कुछ उसके यजमान थे। वह पौरोहित्य वृत्ति करता था। धार्मिक त्योहारों पर जो कुछ दान-दक्षिणा उसे मिल जाती थी, उस पर अपना उदर निर्वाह करता था। किन्तु लड़ाई के बाद उसका निर्वाह कुछ कष्ट से होने लगा। उसके यजमानों की संख्या भी कम हो गयी—हो सकता है, उनमें पहले की-सी श्रद्धा ही न रही हो। अंत में, विवश होकर इस जन्म के ब्राह्मण ने, दो-तीन गायें पालकर उन्हें अपनी आजीविका का साधन बना लिया।

किकी ने अब अट्ठारहवें में प्रवेश किया था। यौवन-चिह्न बहुत बाद में उसके शरीर में प्रस्फुटित हुए। यह शायद उसके सूक्ष्म शरीर और कृशांग यष्टि के कारण था। पर अट्ठारहवें में पदार्पण करते ही उसके शरीर में यौवन के चिह्न इतनी तीव्रता के साथ विकसित हुए—तारुण्य की शारीरिक तथा मानसिक तरंगें इतने वेग से उठीं कि, प्रणय की कोमल और कमनीय भावना

के पूर्णरूपेण प्रस्फुटित होने के पूर्व ही वह अपने पति के सहवास में जीवन की प्रफुल्लता अनुभव करने लगी। वस्तुतः प्रणय के कोमल और कमनीय भावों के प्रादुर्भाव की उसके जीवन में गुंजाइश ही नहीं थी। ये भावनाएँ केवल उस स्थान में पनपती हैं, जहाँ सभ्यता का धवल, अनादि सत्य के सूर्य की ओर उन्मुख होकर विकसित होता है। यहाँ तो न आत्मिक सभ्यता का प्रकाश था और न उसके लिए कोई अभिलाषा थी।

किन्तु पूरे दो बरस भी उस यौवनोन्माद में बीतने न पाये थे कि, अपने पति के प्रति उसके स्वभाव में अलक्षित परिवर्तन होने लगा। पति के बातचीत के ढंग तथा व्यवहार में जरा-सा भी लावण्य न देखकर उसे घृणा-सी आने लगी।

रात को जब वह उसके पार्श्व में बिस्तर पर लेटता था, तो उसके शरीर से गोबर तथा गो-मूत्र की गंध आती रहती थी। किकी को यह असह्य था। अपने मन को वह बहुत ही समझाती-बुझाती—"पति ईश्वरतुल्य है। चाहे वह कैसा भी हो, कुरूप हो अथवा विकलांग हो, हिन्दू नारी का परम कर्तव्य है, उसकी सेवा-शुश्रूषा करना—उसे संसार के सभी पुरुषों से श्रेष्ठ मानना।" प्राचीन शास्त्रों की यह शिक्षा-यह संस्कार उसके रोम-रोम में समाया हुआ था।

पर कभी-कभी जब गृहकार्य से निवृत्त होकर एकांत में बैठती, तो उसके मन में विचारों की दूसरी अनोखी तरंगें उठती थीं, जो उसके इस पति-सेवा की भावना को धारा देकर कहीं दूर पटक देती थीं। उस समय उसके हृदय में निराशा और चिंता के काले बादल घिर आते और अन्तर्द्वंद्वों का तूफान-सा उठ खड़ा होता। प्रताड़ित हृदय स्वयं से विद्रोह कर बैठता।

पर-पुरुषों को देखकर हर्षित और प्रफुल्लित होने कई मर्तबा किकी ने स्वयं को पकड़ लिया था। कौन-सी ऐसी विशेषता थी उनमें, जिसने उसके हृदय में अज्ञात आकर्षण उत्पन्न किया था? किन्तु भोली-भाली किकी को यह भी ज्ञान न था। पूछने पर भी वह इसका उत्तर न दे पाती।

उसके गार्हस्थ्य जीवन में आनंद का एक क्षण भी विद्यमान न था। गृहकार्यों से छुट्टी पाकर जब घर के दरवाजे की चौखट पर आकर बैठती थी और उस समय किसी युवक को देखकर अनायास ही, जब उसका हृदय पुलक उठता, तो उसे उस युवक की पत्नी के सौभाग्य पर ईर्ष्या हो आती थी। यों किकी के पीहर में भी सुख-सम्पत्ति का साम्राज्य था—सरस्वती और लक्ष्मी दोनों की कृपा थी। वहाँ घास-फूस गोबर और गोमूत्र के गंध की जगह पुष्प, धूप, दीप तथा चंदन की सुगंध व्याप्त रहती थी। यहाँ पर-निंदा, इधर-उधर की बेहूदा बातें और जोर-जोर से बोलने के बदले धर्मचर्चा,

शास्त्राभ्यास, शिष्टाचार तथा सभ्यता का वातावरण था। इस सभ्य वातावरण में पली किकी को भाग्य ने कैसे वातावरण में ला पटका था—किकी का मन विक्षोभ से भर उठता।

किकी का दम घुटने लगता और तब उसका एकमात्र सहारा था सुखद कल्पनाओं के संसार सँजोना। कल्पनाएँ ही उसके जीवित रहने का एकमात्र आधार रह गयी थीं। उसकी ये कल्पनाएँ भी बड़ी अनोखी होती थीं—एक वितृस्त मैदान, जहाँ प्रकृति अपने पूरे निखार पर है और जिसका ओर-छोर कुछ भी नहीं दीख पड़ता। इस मैदान के लता-वृक्षों से लिपटकर वह अपना असंतोष-अपना अभाव-सब-कुछ भूल जाती थी! हर रात वही मैदान होता—वही हरियाली।

[ ग्वालिनें ]

किन्तु एक दिन उसकी कल्पनाओं ने परम्परा का बाँध तोड़ दिया। किकी ने उस दिन देखा—मैदान में एक ज्योतिर्मय शिवलिंग है। बड़ी श्रद्धा से वह उसकी आराधना में तल्लीन है। बहुत समय तक वह ध्यान में जुटी रही। आँखें उसकी बंद थीं, मस्तक झुका हुआ और दोनों हाथ जुड़े हुए थे। आँख खोलने पर उसने देखा कि, शिवलिंग के स्थान पर एक देवोपम कांतिमान पुरुष सामने खड़ा है—मानो उसकी आराधना से साक्षात् शिव ने दर्शन दे दिये हों। किकी अमुग्ध-सी उस पुरुष की ओर बढ़ी और दूसरे ही क्षण उसने स्वयं को उस पुरुष के स्नेहालिंगन में सौंप दिया। वे पवित्र स्नेह के सुवर्णमय क्षण थे—किकी आत्मविभोर हो उठी। जाने कितनी देर बाद उसे अपने आलिंगन के बंधन शिथिल होते प्रतीत हुए। चौंककर उसने मुँह ऊपर किया—वह देवोपम पुरुष भी अंतर्धान होने को था और तब पहली बार किकी ने देखा कि, उस पुरुष की आकृति बिलकुल उसके पिता की आकृति के समान थी। अनजाने ही एक सिहरन सी उसके शरीर में दौड़ गयी और कल्पनाओं का यह रंगीन संसार छिन्न भिन्न हो गया। किन्तु किकी के ऊपर अभी भी एक अव्यक्त भय हावी था। उस दिन के बाद फिर कभी उसने उस विस्तृत और विशाल मैदान को अपनी कल्पना में उतारने का प्रयास नहीं किया। अपने वर्तमान और यथार्थ जीवन से ही समझौता करने की चेष्टा करती रही।

एक दिन उसके पति पर एक गाय ने ज़ोर से सींग का प्रहार किया जिससे उसके गर्दन की हड्डी टूट गयी। पैर का एक घुटना भी बुरी तरह चोट खा गया। किसी प्रकार लोग उसे टाँग टूँग कर घर

ले आये। कई महीने वह बिस्तर पर पड़ा रहा।

किन्तु पति के साथ घटी इस दुर्घटना ने बिना किसी पूर्व सूचना के ही किकी की जीवन-धारा पलट दी। अभिशाप मानो वरदान में परिणत हो गया। अभिलाषा और अप्रिय वास्तविकता के बीच जो युद्ध उसके मन में चल रहा था, उससे उसका ममस्थल विदीर्ण होता चला जा रहा था—उसे लगता, किसी भी समय उसके हृदय की धड़कन बंद हो जा सकती है।

परन्तु इस आकस्मिक विपदा ने उसके हृदय में एक नयी भावना को जन्म दिया। उसके अंतर में एक और सोया मातृत्व अचानक ही जाग उठा। अपने इस दुर्घटना-ग्रस्त 'घृणित' पति के लिए अकस्मात् ही उसके हृदय में प्यार का ज्वार उमड़ पड़ा। जिस प्रकार एक माँ अपने बच्चे की देख-भाल में स्वयं की सुध-बुध भूल जाती है, ठीक वही बात किकी के साथ हुई। वह अक्खड़-गँवार ब्राह्मण अब उसका पति न था, दुश्मन का पात्र न था। किकी की नजरों में वह एक निरीह और असक्त इंसान था।

मातृ-उमंग से किकी ने अपने-आपको उस गँवार ब्राह्मण-पति की शुश्रूषा में इस तरह सौंप दिया कि, दूसरी सब भावनाएँ-आकांक्षाएँ उस एक महान् भावना में विलीन हो गयीं। उसके हृदय में जीवित रहने के लिए एक नया उत्साह उत्पन्न हो गया, जिसने उसके शरीर के अंग-प्रत्यंग में आह्लाद और प्रसन्नता की लहर दौड़ा दी। दिन देखे वे सपने, जो उसके पिछले संकीर्ण और म्लान जीवन से मुक्ति दिलाने के क्षणिक साधन थे, अब सदा के लिए उससे विदा माँग कर चले गये। उसका मोक्ष अब इस मातृ-उमंग से परिपूर्ण जीवन में था। उसके हृदय से भावना का एक नवीन स्रोत फूटकर बाहर निकल आया था, जिसने उसके मन के मैल कलुष धो डाले। ऐसा प्रेम था, जिसमें वासना या कामना का लेशमात्र भी विद्यमान न था। ऐसे पवित्र प्रेम का अनुभव किकी ने इससे पहले कभी नहीं किया था।

हाँ, किकी अब पत्नी से परिवर्तित होकर माँ बन गयी थी.... बिना प्रसव-वेदना के ही, पर इसी मातृत्व ने उसकी जीवन-रक्षा की—उसे नया जीवन दिया !

★

अमेरिका के फेडरल कोर्ट के जज फ्रैंक पिकार्ड अपनी यूरोप-यात्रा में पेरिस भी गये। अपनी यात्रा से लौटने के बाद पिकार्ड ने अपने एक मित्र से पेरिस की बड़ी प्रशंसा की और बोले—"काश मैंने उस नगर को २० वर्ष पूर्व देखा होता?" मित्र ने पूछा—"क्या जब पेरिस पेरिस था ?" पिकार्ड ने उत्तर दिया—"नहीं, जब पिकार्ड पिकार्ड था।" —"जोक्स एबाउट द ग्रेट मेन" से

★

ले० कृष्णदेवप्रसाद गौड 'बेढब बनारसी'

✱

युग था अंग्रेजी शासन का। क्रातिकारी दलो का नाम कभी-कभी पत्रो में सुनायी देता था। देश प्रेम तो हम लोगो मे भी था, किन्तु उसे हृदय की तिजोरी में कंजूस की सपत्ति की भाँति बद रखना ही ठीक जान पडता था। क्योकि जितना देश-प्रेम अधिक था उतना ही साहस कम था। देश प्रेमियो की यातनाएँ हम लोग सुनते-पढते थे। जब कुछ करने का मन होता है तब उसके समर्थन में तर्क उसी सरलता से मिल जाते हैं, जैसे बिना खोजे पग-पग पर मूर्ख मिल जाते हैं।

मित्रो ने कहा हम लोगो का समय शिक्षा ग्रहण करने का है। हम सभी लोग इस समय शिक्षा ग्रहण करें। देश-भक्तो का, देश-सेवको का, निर्माण कैसे होता है इसे पहिले सीखना चाहिए। डाक्टर एक दम रोगी को दवा देना आरंभ नही कर देता। पाँच-छ साल पढने के बाद अनेक रोगियो पर अभ्यास कर लेने के पश्चात ही दवा करने योग्य होता है। एक मित्र ने कहा, हम लोगो को क्रातिकारी बनना चाहिए। देश सेवा का इससे बढकर दूसरा ढग नही हो सकता। नाम भी है और यदि गोली खायी या फासी पडी, तो अप्सराओ का ससर्ग और लोगो की अपेक्षा जल्द होगा। एक छोटा-सा भाषण ही इन्होने दे डाला और अतिम वाक्य यो बोले – जिस प्रकार हल चलाये बिना खेत म कुछ नही उपज सकता, मूड मुडाय बिना सन्यासी नही बन सकता, काट बिना कपडा नही सिल सकता और रावण के मरे बिना दसमी नही हो सकती, उसी प्रकार बिना क्रातिकारी बने देश स्वतत्र नही हो सकता।

इस भाषण का प्रभाव वैसा ही पडा जैसा गाजे की चिलम पर कुभक का पडता है। एक साथी ने कहा क्यो न हम लोग एक गुप्त समिति कालेज में बनायें। दूसरे ने पूछा, उसका उद्देश्य क्या होगा। उसने उत्तर दिया –"पहला उद्देश्य यह होगा कि, गुप्त ढग से हम लोग कार्य करना सीख जायेंगे। दूसरी बात यह होगी कि, कालेज में जो भी बुराई हो और स्पष्ट रूप से उसका सुधार न हो सके उसे समिति द्वारा हम लोग ठीक करेंगे।" कुछ लोगो ने इस मनोवृत्ति का विरोध

किया और कहा यह कायरता है, छिपे-छिपे कोई कार्य करना। जैसे लोगों को चाय गर्म अच्छी लगती है, भोजन गर्म अच्छा लगता है, मित्रता गर्म अच्छी लगती है उसी प्रकार विचार भी गर्म अच्छे लगते हैं। यही निश्चय हुआ कि, हम लोगों की गुप्त समिति बन जाना आवश्यक है।

समिति बन गयी। उस समय अंग्रेजी का बोलबाला था इसलिए उसका नाम रखा गया पी० एस्० एस्०। जिसका अर्थ था "पैट्रियट्स सीक्रेट सोसायटी"। इसके कुल बारह सदस्य थे। दस होस्टल के और दो बाहरी। किसी को, सदस्यों के सिवा पता न था कि, कौन इसका सदस्य है। बैठक रात को ग्यारह बजे होती थी, जब प्राय सब लोग सो जाते थे। एक आदमी कमरे के बाहर पहरा देता था। उसे आदेश था कि, यदि कोई विद्यार्थी उधर आता दिखायी दे, तो वह कहे–'थ्री-स-डी,' और हम लोग ताश खेलने लगें। दो-तीन ताश की गड्डियाँ सदा सामने मेजपर रखी रहती थीं। यदि 'वारडन' उधर आते दिखायी दें, तो वह टहलने लगता और गाने लगता–'जाके प्रिय न राम वैदेही'। और एक विद्यार्थी कमरे में जोर-जोर से किसी विषय का नोट पढ़ने लगता और हम लोग ध्यान से सुनने लगते।

इसी बीच एक घटना घटी। तीन विद्यार्थियों पर पाँच-पाँच रुपये जुरमाना इसलिए किया गया कि, उन्होंने दूसरे की हाजिरी इतिहास के घंटे में बना दी। प्रोफेसर मकोड़ाराम इतिहास पढ़ाते थे। आज की तुलना में उन दिनों उन्नति कम थी। बंदर ने क्रमश उन्नति करके मानव की संज्ञा पायी। इसी प्रकार सिर का फैशन भी उन्नति की चार सीढ़ियाँ चढ़ कर आज उन्नति की चोटी पर पहुँचा है। पहिले सिर जटाजूट से ढका रहता था। उसे फिर पगड़ी ने हलका किया। किंतु पगड़ी भी भारी थी इसलिए टोपी ने उसका स्थान लिया। और जब हलकापन अधिक पसंद आने लगा, क्योंकि लोग भी हलके हो गये तब आज टोपी हटाकर सिर का बोझ हलका किया गया। उस समय विद्यार्थी और अध्यापक उन्नति के एक पग पीछे थे। इसी प्रकार मूछ मुड़ाने की भद्र प्रथा का अविष्कार तो हो चुका था; किंतु अधर उसे धर न सका था। मकोड़ाराम टोपी लगाते थे, मूछें रखते थे। आक्सफोर्ड में तीन साल रहने और वहाँ से एम० ए० पास करने पर भी ऐसा जान पड़ता था कि, उन्हें कोई किसी गाँव की छोटी नदी के किनारे से पकड़ लाया है। उनकी मूछें जमुनापारी बकरे के कानों के समान मुह के दोनों ओर लटक रही थीं। यदि उनके दोनों छोर बाँध दिये जाते, तो ऐसा जान पड़ता मानो उनके मुह पर किसीने बगैरू की माला रख दी है। नाक ऐसी जान पड़ती थी मानो मूछों को केंचुआ समझ कर वह मारे भय के अंदर लौट जाने की चेष्टा कर रही है। आँखें चेहरे की सतह से एक इंच अंदर थीं और बादामी न होकर रुपये

की भाँति गोल थी। जिसकी ओर देखते थे जान पड़ता था मंगल ग्रह का कोई प्राणी देख रहा है। यदि वह चश्मा न लगाते, तो मेरे दरजे में ऐसे भी विद्यार्थी थे कि, उनकी ओर वह देखते, तो उनके हृदय की धड़कन उसी प्रकार बंद हो जाती जैसे बिना चाबी दिये घड़ी बंद हो जाती है। वह कैसे पढ़ाते थे यह आगे बताऊँगा। उनके पास जाना और सिंहनी को दुहना करीब-करीब बराबर था।

जिन विद्यार्थियों पर जुरमाना हुआ उसमें भी एस एस् का भी एक सदस्य था। तीनों विद्यार्थी उनके पास गये और जुरमाना क्षमा करने के लिए कहा। वे इस प्रकार बोले जैसे बिल्लियाँ लड़ते समय बोलती हैं और कह दिया, मैं क्षमा नहीं कर सकता। रात को गुप्त समिति की बैठक हुई कि, क्या किया जाय। अनेक सुझाव आये किसीने कहा, उनकी कुरसी पर बिच्छू रख दिया जाय। किसीने सुझाव दिया कि, उन्हें चाय के लिये बुलाकर पचास टिकिया वाइकोलेट चूर करके चाय में मिला दी जाय। किन्तु कुछ लोगों को शंका थी कि, वह चाय का निमंत्रण स्वीकार न करेंगे। एक ने कहा घर से उनके नाम तार दिला दिया जाय जिसमें उन्हें घर जाना पड़े और पचासों रुपये खर्च हो जायँ। किन्तु यह सब जचा नहीं। अंत में सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि, चुपके चुपके पहरा दिया जाय और जब वे कहीं बाहर जायँ, तब नौकर को किसी बहाने इधर-उधर भेज दिया जाय और उनके घर में जाकर उनका कपड़ा सब हटा दिया जाय। जाड़े के दिन थे मजा आ जायगा। प्रोफेसर मकोड़ाराम के घर के लोग उनके साथ नहीं रहते थे। इसी-लिए यह बात सोची गयी। तीन-चार दिनों के बाद नोटिस आया कि, आज सात बजे मकोड़ाराम का 'स्लीपर्स क्लब' में भाषण है। भगवान विद्यार्थियों की बात बहुत शीघ्र सुन लेता है, ऐसा हम जान पड़ा। प्रोफेसर महोदय समय के बहुत पाबंद थे। इसलिए जब हमने समझा उन्हें गये पंद्रह मिनट हुए होंगे, तो मैं और मेरा एक साथी चला। द्वार पर नौकर नहीं था, दरवाजा देखा तो केवल चपकाया हुआ था, अंदर या बाहर से बंद न था। तनिक-सा हाथ से छूने से खुल गया। उसी समय यह अनुभव हुआ कि, साहस करे मनुष्य, तो सफलता उसकी चेरी बन जाती है। हम दोनों व्यक्ति घरमें चले गये। जान पड़ा नौकर कहीं चला गया है और द्वार बंद करना भूल गया है।

हम लोगों को पता न था कि, कपड़े कहाँ रखे होंगे। किंतु ड्राइंग रूम तो खाली था केवल कुर्सियाँ मुस्कराती हम लोगों का स्वागत कर रही थीं। सामने रसोई घर था, उसमें कपड़ा रखा न होगा। बगल में एक कमरा था उसमें भी अंधेरा था। उसका द्वार भी बंद था। इसी में कपड़े रखे होंगे। हम लोगों ने द्वार खोला तो खुल गया। हम लोग घुस गये। चार काम उस समय एक साथ हुए। हम लोगों का घुसना, किसी का

चिल्लाना "कौन है", स्विचपर किसी का हाथ जाना और न जाने कहाँ से मक्खोडाराम का उपस्थित हो जाना।

उड़नी तश्तरी (फ्लाइंग सासर) से भी तीव्रतर गतिसे हमारे मस्तिष्क में यह बात आयी और गयी। भय, ग्लानि, अपमान, लज्जा और भविष्य की कथा देनेवाली आशंका। उस समय तो नहीं, किंतु बादमें यह भी जान पड़ा कि, आवश्यकता पड़ने पर वीरता और साहस ऐसे भाग जाते हैं जैसे प्रकाश देखकर भूत भाग जाता है। प्रोफेसर साहब ने पूछा "कौन, क्या बात है"? इतना आश्चर्य मुझे कभी नहीं हुआ था जितना इस समय जब मेरे मुँह से बोली फूट पड़ी। जान पड़ा कोई अज्ञात शक्ति मुझे शिक्षा दे रही है। सचमुच अतर्ज्ञान कोई चीज है। मैंने कहा हम लोग क्षमा माँगने आये हैं। प्रोफेसर साहब इतने जोर से हँसे, मानो हिरोशिमा की घटना फिरसे हुई।

*

## देश-भक्ति और पेट-भक्ति

उस दिन सबेरे अफ्रीका से बहुत बुरे समाचार मिले थे। तेल के व्यापारी, श्री फेलीचे और गल्ले के व्यवसायी श्री पीयत्रा, हाथ में अखबार लिये सड़क के बीच में खड़े बड़े आवेश में बातें कर रहे थे। उनके देशभक्त हृदय में उफनते हुए तूफान का प्रतिबिम्ब उनके तमतमाते हुए चेहरों पर व्यक्त था। सैनिक दुर्घटना का धक्का, मारे जाने वालो के लिए खेद, विजयी हब्शियों के प्रति क्रोध, हत्याकाण्ड के लिए उत्तरदायी मनुष्यों के ऊपर क्षोभ–यह सब उनके दिल में रह रहकर उठ रहा था और बाहरी तौर पर उनकी शीघ्र गति, बार-बार मुट्ठी बाँधना, कड़वे शब्द, तीखी दृष्टि और मुक्के उनके भावों का प्रदर्शन कर रहे थे।

इसी समय दोपहर का घंटा बजा और देखते ही-देखते उनके तमतमाये मुखों पर प्रसन्नता की लहरें दौड़ गयीं मानों अचानक अपनी 'इटैलियन सेनाओं की सनसनीखेज विजय की खबर मिल गयी हो। तब दोनों ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक भावावेश में हाथ मिलाया और शीघ्र ही, एक इधर और दूसरा उधर डग बढ़ाने चल दिया।...

उनकी इस आकस्मिक प्रसन्नता का कारण यह था कि, दोनों के लिए अपनी-अपनी पसन्द की वस्तुएं भोजन के लिए बनी थीं। श्री फेलीचे के लिए भेड़ का कबाब था, तथा श्री पीयत्रा के लिए भरवाँ मसालेदार करमकल्ला।

—फुर्सती

*

शरच्चन्द्र नारी आत्मा के अद्वितीय चित्रकार थे और रवीन्द्र नारी अंतःकरण के अनुपम कवि। दोनों ने अपने विराट् प्राण-तत्व को भावना में उतारकर नारीत्व की थाह हमारे सामने रखी है। नारी के अंतःकरण का स्पष्टीकरण करते हुए शरद् ने अपनी एक कहानी ('अंधकार में आलोक') में तो मानो मनुष्य स्वभाव के मूल का ही हमें आभास दे दिया है— स्वभाव के विरुद्ध विद्रोह किया जा सकता है, पर उसे बिल्कुल उड़ाया नहीं जा सकता। नारी शरीर पर सैकड़ों अत्याचार किये जा सकते हैं, किंतु नारीत्व को तो अस्वीकार नहीं किया जा सकता। रवीन्द्र ने भी नारी को 'सहस्रधारा स्नेहधात्री धरित्री' कह कर नारीत्व की बड़ी उन्नत छवि हमें दी है। यहां हम रवीन्द्रनाथ की ही एक लम्बी कहानी का संक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तर प्रकाशित कर रहे हैं। कवि ने यहां भी नारी हृदय को अत्यंत तरल एवं मधुर अभिव्यक्ति में चित्रित किया है।

ऊपर का चित्र श्री सुधीर खास्तगीर के एक सुन्दर चित्र की सरल रेखानुकृति है।

★

लड़की के पिता के लिए धीरज धरना थोड़ा-बहुत संभव भी था, लेकिन लड़के के पिता सब्र करने के लिए तनिक भी राजी न थे। उन्होंने समझ लिया था कि, लड़की के विवाह की उम्र पार हो चुकी है, लेकिन यदि कुछ दिन और भी पार हुए तो इस बात को, भद्र या अभद्र किसी भी उपाय से दबा रखने का अवसर भी पार हो चुकेगा। कन्या की वयस बड़े अवैध भाव से बढ़ रही थी, यह सच है, किन्तु उससे भी बड़ा सच यह था कि, उसकी तुलना में दहेज की रकम अब भी काफी भारी थी। वर के पिता इसीलिए इस तरह बेतहाशा जल्दी मचा रहे थे।

मैं ठहरा वर। लिहाजा शादी के मामले में मेरा मन जानना बिल्कुल ही फिजूल समझा गया। अपना कर्तव्य निभाने में मैंने भी कोई कसर नहीं रखी, अर्थात् एम. ए. पास करके छात्रवृत्ति पा ली। पर यह हुआ कि, मेरे सम्बंध में श्रीप्रजापति के दोनों ही पक्ष, कन्यापक्ष और वरपक्ष, बारबार बेतरह बेचैन होने लगे।

हमारे देश में जो मनुष्य एक-बार ब्याह कर चुकता है, उसके मन में अगली बार ब्याह के विषय में कोई उद्वेग नहीं होता। एक बार नर-मांस का स्वाद ले लेने पर मनुष्य के प्रति बाघ की जो मनोदशा होती है, स्त्री के सम्बंध में बहुत-कुछ वैसी ही अवस्था एक बार विवाह कर चुकनेवाले आदमी के मन की भी होती है। एक बार स्त्री का अभाव घटित हुआ कि, फिर सबसे बड़ी बात उस अभाव को भरने की ही सामने हुआ करती है और फिर इस विषय में उसका चित्त दुविधा में नहीं रहता कि, भावी स्त्री की उम्र क्या और अवस्था कैसी है। मैं देखता हूँ, सारी दुविधा और दुश्चिन्ता का ठेका ले रखा है, हमारे आजकल के लड़कों ने, बार-बार विवाह का प्रस्ताव पेश होने पर उनके पिता-पक्ष के सफेद केश, खिजाब के आशीर्वाद से बार-बार काले हो उठते हैं, और उधर बातचीत के प्रथम सूत्रपात की आँच से ही लड़कों के काले केश, मारे चिन्ता-फिकर के, रात ही भर में पक उठने का उपक्रम करते हैं।

आप विश्वास रखिये, मेरे मन में ऐसा कोई विषम उद्वेग पैदा नहीं हुआ, बल्कि विवाह के प्रस्ताव से मन में वसन्त की दक्षिण हवा डोल उठी, कौतूहली कल्पना की नवीन कोंपलों के बीच मानो आपस में गुपचुप कानाफूसी शुरू हो गयी। जिस छात्र को एडमंड बर्क के फ्रांसीसी विप्लव की घोर टीकाओं के पाँच-सात पोथे जबानी घोटने हों, उसके मन में इस जाति के भावों का उठना बेजा ही समझा जायेगा। यदि टेक्स्ट-बुक-कमिटि द्वारा मेरे इस लेख के पास होने का जरा भी अन्देशा होता, तो शायद ऐसा कहते हुए भी सावधान हो जाता।

लेकिन यह मैं क्या शुरू कर बैठा?

यह क्या कोई ऐसा दास्तान है जिसे लेकर उपन्यास गढ़ने जा रहा हूँ? मेरा यह लिखना इस सुर से शुरू हो जायगा, यह मैंने सोचा भी न था। बड़ी साध थी कि, वेदना के जो काले बादल पिछले कई वर्षों से मन में उमड़ रहे हैं, उन्हें किसी वैशाखी सांझ की तूफानी बारिश के प्रबल वर्षण द्वारा बिल्कुल निःशेष कर दूँगा। लेकिन न तो बच्चों की कोई पाठ्य-पुस्तक ही लिखते बनी, क्योंकि संस्कृत का व्याकरण मेरा पढ़ा हुआ नहीं था, और न काव्य रचना ही हो सकी, क्योंकि मातृभाषा मेरे जीवित काल में ऐसी फूली फली न थी कि, उसके द्वारा मैं अपने अंतर के राज्य को बाहर प्रकट कर पाता। इसीलिए देख पा रहा हूँ कि, मेरे भीतर का सन्यासी आज अपने अट्टहास से अपना ही परिहास करने बैठा है। और बिना किये करे भी तो क्या? उसके आँसू सूख जो गये हैं। ज्येष्ठ की तेज धूप वस्तुतः ज्येष्ठ की अश्रुशून्य रुलाई ही तो है।

जिसके साथ मेरा विवाह हुआ था उसका असली नाम नहीं कहूँगा, क्योंकि आज पृथ्वी के पुरातत्ववेत्ताओं में उसके ऐतिहासिक नाम के विषय में घोर विवाद छिड़ने की आशंका नहीं है। जिस ताम्र-पत्र पर उसका नाम खुदा हुआ है, वह मेरा हृदयपट है। वह पट और वह नाम किसी काल में भी विलुप्त होगा, यह बात मेरी कल्पना से भी बाहर है। किन्तु जिस अमृतलोक में वह अक्षय बना रहा, वहाँ इतिहासकारों का आना-जाना नहीं होता। किन्तु तब भी मेरे इस लेख में उसका एक नाम तो चाहिए ही। अच्छा मान लीजिये उसका नाम शबनम (मूल शब्द शिशिर का अर्थ है ओस, किन्तु ओस हिन्दी में नाम के लिए प्रयुक्त अथवा उपयुक्त शब्द नहीं। अतएव उसके फारसी पर्याय, शबनम को यहाँ ग्रहण किया गया है) था, क्योंकि शबनम में मुस्कान और रुलाई दोनों घुल-मिलकर एक हो गयी होती है, और भोर का संदेशा प्रभात तक आते-आते ही चुक जाता है।

शबनम मुझसे सिर्फ दो ही वर्ष छोटी थी। मेरे पिता गौरीदान के पक्षपाती न हों, सो भी नहीं था। उनके पिताजी जबरदस्त समाज-विद्रोही थे। देश में प्रचलित किसी धर्म के प्रति उनमें श्रद्धा न थी। उन्होंने खूब कसकर अंग्रेजी पढ़ी थी। मेरे पिता उग्र भाव से समाज के अनुगामी थे। जिसे मानते हुए तनिक सी भी अड़चन हो, ऐसी किसी भी वस्तु को हमारे समाज के सिंहद्वार या अंतःपुर में, दर-देहली अथवा पिछली राह पर, झलक भी देख पाना मुमकिन न था। इसका भी कारण यही था कि, उन्होंने भी कसकर अंग्रेजी पढ़ी थी। पितामह और पिताजी के विभिन्न मत मानो विद्रोह की दो विभिन्न मूर्तियाँ थी! कोई भी सरल-स्वाभाविक नहीं। फिर भी बड़ी उम्र की लड़की के साथ मेरा विवाह करना पिताजी ने इसलिए मंजूर कर लिया कि,

लड़की की इस बड़ी-सी वयस की दोनों मुट्ठियों में दहेज की रकम भी बहुत बड़ी थी। शबनम मेरे श्वसुर की एकमात्र संतान थी। पिताजी का दृढ़ विश्वास था कि, कन्या के बाप का सारा रुपया-पैसा भावी जामाता के भविष्य का गर्भ परिपूर्ण करनेवाला है। मेरे श्वसुर को किसी मत-मतान्तर का झमेला नहीं था। पश्चिम की किसी पहाड़ी रियासत में किसी राजा के यहाँ वे किसी बड़े भारी ओहदे पर थे। शबनम जब गोद में थी, तभी उसकी माँ नहीं रही। इस बात की ओर पिता का ध्यान ही नहीं गया कि लड़की प्रतिवर्ष एक-एक वर्ष करके बड़ी होती जा रही है। वहाँ उनके समाज का ऐसा कोई ठेकेदार नहीं था, जो उनकी आँखों में अंगुली डालकर इस परम तथ्य को उन्हें हृदयगम करा देता।

शबनम ने यथासमय उम्र के सोलह वर्ष पूरे किये, लेकिन वे स्वाभाविक सोलह बरस थे, सामाजिक नहीं। किसीने उसे अपनी वयस के प्रति सचेत होने में सलाह नहीं दी और उसने भी कभी अपनी इस वयस की ओर मुड़कर नहीं देखा। मैंने उन्नीसवें वर्ष में कालिज के तृतीय वर्ष में पाँव रखा। ठीक तभी मेरा ब्याह हो गया। समाज या समाज-सुधारक के मत से यह उम्र विवाह के उपयुक्त है अथवा नहीं, इस विषय में दोनों पक्ष लड़-भिड़कर चाहे खून-खराबी कर बैठें, लेकिन मैं तो नम्रतापूर्वक यही कहना चाहता हूँ कि, इतिहास पास करने के लिये यह उम्र जिस तरह उपयुक्त है, विवाह करने के लिए भी उससे किसी कदर कम नहीं। विवाह का अरुणोदय एक तस्वीर के आभास द्वारा हुआ था। उस दिन मैं पढ़ाई-लिखाई में सिर गड़ाये बैठा था, कि, मेरे साथ मज़ाक का रिश्ता रखनेवाली

किन्ही आत्मीयों ने मेरे सामने मेज पर शबनम की तस्वीर लाकर रख दी और कहा— लो अब झंझट की पढ़ाई बंद करके सचमुच की पढ़ाई करो। एकदम जी तोड़ परिश्रम करानेवाली पढ़ाई। तस्वीर किसी अनाड़ी कारीगर की खींची हुई थी। लड़की के माँ नहीं थी इसलिए उसके केशों को बांध सँवारकर जूड़ा मंजरी गूंथकर कलकत्ते की मशहूर साहा या मल्लिक कम्पनी की बढ़िया जबरदस्त जकेट पहनाकर वरपक्ष की आँखों में धूल झोंकने की कोशिश नहीं की गयी थी। केवल एक सीधा-सादा भरा हुआ चेहरा था सीधी सादी दो आंखें और वैसी ही सीधी-सादी एक साड़ी। तब भी मालूम नहीं क्या कोई अपूर्व महिमा उसे घेरे हुए थी। कैसी भी एक चौकी पर वह बैठी थी। पीछे पर्दे की तरह एक धारीदार शतरंजी झूल रही थी। पास में ही तिपाई पर फलदानी में फलों के गुच्छ दीख रहे थे और कालीन पर साड़ी की तिरछी किनार में किंचित अनावद्ध दो खाली पांव। कागज की उस छवि को जैसे ही मेरे मन के जादू का स्पर्श मिला कि वह मेरे जीवन में जाग उठी। वे दोनों कारी आंखें मेरी सारी चिंता भावना को चीरकर मुझपर जाने कैसे अद्भुत भाव से आकर स्थिर हो गयी। और उस तिरछी किनार के नीचेवाले दोनों अनावृत चरणों ने मेरे हृदय-पद्मासन पर बस अपना स्थान बना लिया।

उमंग

[ चित्र अरुधती घोष ]

पत्र की तिथियाँ आती और जाती रही। विवाह के दो तीन लग्न भी बीत गये। लेकिन मेरे श्वसुर को छुट्टी मिलने का नाम भी नहीं। इधर कुछ महीनों से मेरे देखते देखते एक अकाल मेरी इतनी बड़ी अविवाहित वयस को व्यर्थ ही उन्नीसवें वर्ष से बीसवें वर्ष की ओर धकेलने का षड्यन्त्र रच रहा था। श्वसुर और उनके अधिकारियों पर मुझे खीझ होने लगी।

विवाह का दिन ठीक अकाल का पूर्वलग्न पर ही आकर पड़ा। उस रोज की शहनाई की हर तान आज मुझे याद आती

हूँ। उस दिन के प्रति मुहूर्त को मैंने अपने समग्र चैतन्य द्वारा छुआ था। मेरी वह उन्नीस वर्ष की उम्र मेरे जीवन में अक्षय रहे, मैं उसे कभी नहीं भुला सकूँगा।

विवाह-मंडप में चारों ओर शोर-गुल फैला हुआ था। उसीके बीच कन्या का कोमल हाथ मैंने अपने हाथों में पाया। मुझे स्पष्ट प्रतीत हुआ कि, यही मेरे जीवन की एक परम आश्चर्य घटना है। मेरे मन ने बार-बार यही कहा–'इसे मैंने पाया है, उपलब्ध किया है। किन्तु कैसे? यह तो दुर्लभ है। यह मानवी है। इसके रहस्य का क्या कभी आर-छोर पाया जा सकता है?"

मेरे श्वसुर का नाम गौरीशंकर था। जिस हिमाचल पर उनका कर्मस्थान था, उसी हिमाचल के वे मानो गौरी थे। उनके गांभीर्य के शिखर देश में कोई प्रशान्त शुभ्र हँसी उज्ज्वल होकर खिली हुई थी। उनके हृदय के स्नेह-स्रोत का संधान जिसने भी एक बार पाया, उसने फिर कभी उन्हें छोड़ना नहीं चाहा।

काम पर लौटने से पूर्व उन्होंने मुझे बुलाकर कहा–"बेटा, अपनी बच्ची को तो मैं सत्रह वर्ष से जानता हूँ, और तुम्हें इन पिछले कुछ दिनों से, तब भी सौंपा तो उसे तुम्हारे ही हाथों में है। जो धन तुमने आज पाया, किसी दिन उसका मूल्य भी पहचान सको, इससे बड़ा आशीर्वाद मेरे पास नहीं।"

समधी-समधिन ने उन्हें बारबार आश्वस्त करते हुए कहा–"समधी, कुछ चिंता न करना। तुम्हारी बेटी जैसी पिता को छोड़कर आयी है, वैसे ही यहाँ माता-पिता दोनों पाये, ऐसा ही समझना।"

कन्या से विदा लेते समय वे हँसकर बोले– बिटिया, चल दिया। इस बाप का छोड़ तेरा कौन अपना रहा है? आज से अगर इसका कुछ भी खो जाये, तो इसके लिए मुझे जिम्मेवार न ठहराना।" बेटी, ने कहा–"क्यों नहीं, अगर कभी इतनी-सी चीज भी नष्ट हुई, तो तुम्हें सारी नुकसानी भरनी होगी।"

अन्त में, घर रहते हुए जिन विषयों पर अक्सर ही तूल खड़ा हो जाता था, उनमें उसने पिता को बार-बार सावधान कर दिया। भोजन के मामले में अनियम का उन्हें खासा अभ्यास था। कुछ विशेष प्रकार के अपथ्य भोज्य पर उन्हें विशेष आकर्षण था। पिता को उन सारे प्रलोभनों से यथासंभव दूर रखना लड़की का एक खास काम था। इसीसे आज वह उद्विग्न होकर उनका हाथ थामकर बोली–"बाबूजी मेरी एक बात रखोगे?" पिता ने हँसकर कहा–"आदमी इसीलिए प्रतिज्ञा करता है कि, एक दिन उसे तोड़कर चैन की साँस ले सके। इससे प्रतिज्ञा न करना ही बेहतर है।"

पिता के चले जाने पर बेटी ने कमरे का द्वार बंद कर लिया। बाद की घटना अन्तर्यामी ही जानते हैं। बाप-बेटी की अश्रुहीन विदाई का दृश्य सगड़ के कमरे

की चिर-कौतूहली अंत पुरिकाओं ने देखा, सुना और टिप्पणी की—"कैसी अजब बात है भला! रुखे-सूखे देश में रहते-रहते इन लोगों के दिल भी सूखकर काठ हो गये हैं। माया-ममता का लेश भी नहीं रहा। राम राम!"

मेरे श्वसुर के मित्र वनमाली बाबू ने ही हमारी बातचीत पक्की की थी। वे हम लोगों के घराने से भी खूब परिचित थे। मेरे श्वसुर से बोले—"लड़की को छोड़कर तो दुनिया में तुम्हारा कोई नहीं है। यहाँ इनके नजदीक कोई मकान लेकर जिंदगी के बाकी दिन निकाल डालो।"

जवाब मिला—"जब दिया है, तो नि शेष करके ही दे डाला है। फिर लौट-लौटकर ताकने से जी को पीडा ही होगी। जिस अधिकार को एक बार त्याग चुका, उसे बार-बार बनाये रखने की कोशिश से बढकर विडम्बना और क्या होगी?"

अंत में मुझे निराले में ले जाकर किसी अपराधी की तरह दुविधा करते हुए बोले—"बिटिया को किताबें पढने का बडा शौक है और लोगों को खिलाते-पिलाते उसे बहुत भला लगता है। लेकिन इसके लिए समधीजी को परेशान करते अच्छा नहीं लगता। अगर बीच-बीच में तुम्हें रुपये भेज दिया करूँ, तो इससे वे नाराज तो नहीं होंगे?"

सुनकर मुझे जरा ताज्जुब हुआ। कारण जिंदगी में कभी किसी भी तरफ से अर्थ समागम होने पर पिताजी नाराज हुए हों, उनका ऐसा बिगडा मिजाज तो अपने जाने मैंने कभी नहीं पाया। जो हो, मेरे श्वसुर मानो मुझे रिश्वत दे रहे हों, कुछ ऐसे ही भाव से मेरे हाथों सौ रुपये का एक नोट थमाकर, वे वहाँ से चटपट चल दिये। मैंने देखा, इस बार जेब से रुमाल निकलने की बारी आही पहुँची। स्तब्ध होकर मैं विचारों में खो गया। मैंने अनुभव किया कि, ये लोग बिल्कुल अन्य जाति के मनुष्य हैं।

रसवंती
[ चित्र . यामिनी राय के एक रंगीन चित्र की रेखानुकृति

अपने मित्रों में कितनों ही को तो विवाह करते देखा है। विवाह मंत्रों के उच्चारण के साथ-ही-साथ स्त्री को एकबारगी गले के नीचे उतार लिया करते हैं। हजम करने के यंत्र तक पहुँचने पर थोड़ी ही देर बाद यह पदार्थ अपने नाना गुण-अवगुणों को हर कर सकता है और इसके परिणाम स्वरूप भीतर चिंताजनक हलचल भी शुरु हो सकती है। सो होती रहे। लेकिन निगलने के रास्ते में इससे कोई रुकावट नहीं पडती।

किन्तु मैंने विवाह-मंडप में ही भली-

भाँति समझ लिया था कि, पाणिग्रहण के मन्त्र द्वारा जिसे पाया जाता है, उससे घर-गिरिस्ती तो चल जाती है, लेकिन प्राप्य का पदार्थ आना पाना बाकी ही रह जाता है। मुझे भय है कि दुनिया के अधिकांश आदमी स्त्री का ठीक ठीक पाते हैं। वे स्त्री को ब्याह कर ले आते हैं, लेकिन उपलब्ध नहीं करते, और न कभी जान ही पाते हैं कि, उन्होंने पाया कुछ भी नहीं। उनकी स्त्रियाँ भी मृत्युकाल तक इस सत्य से अवगत नहीं हो पातीं। किन्तु मैंने स्पष्ट अनुभव किया था कि, वह मेरी साधना का धन है। वह सम्पत्ति नहीं, सम्पद है, अगाध रत्न-राशि!

खैर, नहीं इस नाम से काम नहीं चलेगा। एक तो यह कि, वह उसका वास्तविक नाम नहीं, और न यह उसका यथार्थ परिचय ही है। वह तो सूर्य की तरह ध्रुव है, क्षणकालीन ऊषा की विदा-बेला के आँसुओं की बूंद नहीं। नाम का छुपाकर ही आखिर क्या होगा? उसका असल नाम था . . .हेमन्ती।

मैंने देखा, सत्रह वर्ष की इस लड़की पर यौवन का सारा आलोक बिखरा हुआ है। तब भी किशोरावस्था की गोद में वह अब तक जागी नहीं है। पर्वत के बर्फानी शिखर पर सुबह का उजाला तो फैल उठा है, लेकिन हिम अभी तक गल नहीं पाया है। कैसी अकलुष शुभ्र है वह, कैसी निविड पवित्र, यह मैं ही जानता हूँ। मेरे मन में बराबर यह खटका लगा हुआ था कि, इतनी बड़ी पढ़ी-लिखी लड़की का मन मालूम नहीं, क्योंकर पाऊँगा। लेकिन कुछ ही दिनों में मैंने जान लिया कि, उसके मन की राह और पढ़ाई-लिखाई की राह आपस में कहीं कटी ही नहीं है। कब उसके सहज शुभ्र मन पर हल्की-सी रंगीनी दौड़ गयी, आँखों में अलस तंद्रा छायी और देह मन मानो उत्सुक हो उठे, सो स्थिर भाव से यह पाना मेरे लिए कठिन है।

यह तो हुई एक पक्ष की बात, किन्तु दूसरा पक्ष भी है। वह और उसके बारे में विस्तृत रूप से कहने का समय अब आ पहुँचा है।

मेरे श्वसुर राज-दरबार में काम करते थे। अतएव उनकी कितनी दौलत बैंक में जमा है, इस सम्बन्ध में जनश्रुति ने बहुत तरह के अनुमान भिड़ाये थे। इनमें से कोई भी संख्या लाख के आँकड़ों से नीचे नहीं पड़ती थी। फलस्वरूप एक तरफ पिता के प्रति सम्मान बढ़ता गया, तो दूसरी ओर बेटी के प्रति दुलार। हमारी घर-गिरिस्ती का काम-धंधा और तौर-तरीका सीखने के लिये हेम बराबर खूब उत्सुक थी, लेकिन माँ ने उसे लाड़ के मारे किसी काम में हाथ भी नहीं लगाने दिया। यहाँ तक कि, घर से हेम के साथ जो पहाड़ी महरी आयी थी, उसे उन्होंने यद्यपि अपने कमरे में नहीं घुसने दिया, फिर भी उसकी जात-पात के बारे में कोई बात नहीं उठायी। वे डरती थीं

कि, तहकीकात करने पर कहीं कोई अप्रिय सत्य न सुनना पड़े।

दिन इसी तरह कट जाते। किन्तु एक दिन पिताजी का मुँह घोर मेघाच्छन्न दिखायी दिया। बात यह थी कि, मेरे विवाह में श्वसुर ने पन्द्रह हजार रुपये नकद और पाँच हजार के जेवर दिये थे। इधर पिताजी को अपने किसी दलाल मित्र की कृपा से पता चला है कि, यह समूची रकम कर्ज करके जुटायी गयी थी, जिसका ब्याज भी कुछ मामूली नहीं था। और लाख रुपये की अफवाह तो बिल्कुल उड़ाई हुई ही थी।

यद्यपि मेरे विवाह के पूर्व-ससुर की सम्पत्ति के परिमाण के विषय में पिताजी ने कभी उनसे कोई आलोचना नहीं की थी, तब भी जाने किस तर्क पद्धति से आज उन्होंने यह बिल्कुल पक्का ठहरा लिया कि, उनके समधी महाशय ने उनके साथ जान-बूझकर ही यह धोखा खेला है। इसके अतिरिक्त पिताजी की यह भी धारणा थी कि, मेरे श्वसुर राजा के प्रधान मंत्री वगैरा अथवा उसी जाति के किसी पद पर प्रतिष्ठित हैं। पीछे जाना गया कि, वे वहाँ के शिक्षा विभाग के अध्यक्ष हैं। पिताजी ने टीचर की—अर्थात स्कूल के हेडमास्टर, दुनिया में जितने भी भद्र पद हैं उनमें सबसे ऊँचा। पिताजी ने बड़ी-बड़ी उम्मीदें बाँध रखी थीं कि आज नहीं तो कल, श्वसुर के अवकाश ग्रहण करने पर राजमंत्री के पद को वे स्वयं ही सुशोभित करेंगे।

पद पूर्ति के हेतु
[ चित्र श्री देवीप्रसाद राय चौधरी के एक रंगीन चित्र की रेखानुकृति ]

इन्हीं दिनों के कार्तिक महीने में रासलीला के उपलक्ष्य में हमारे देश का सारा कुनबा कलकत्तेवाले घर में आ जुटा। कन्या को देखते ही उनमें एक छोर से दूसरे छोर तक कानाफूसी की लहर दौड़ गयी। क्रमशः वह अस्फुट हुई। दूर के रिश्ते की किसी नानी ने फरमाया—'आग लगे मेरे नसीब को, नयी बहू ने तो उमर में मुझे भी हरा दिया।'

सुनकर नानी श्रेणी की और भी कोई वृद्धा कह उठी—अरे हम अगर न हरायेगी, तो हमारा लल्ला परदेस से बहू लाने ही क्यों जायगा?

माँ ने खूब तेजी के साथ जवाब दिया—'मैया रे, यह भला कैसी बात हुई? बहू ने तो अभी ग्यारह पूरे नहीं किये, यही अगले फाल्गुन में बारह में पाँव धरेगी। पछहुओं देस में दाल रोटी खा-खा कर

बड़ी हुई है कि, नहीं ? माँ तो यह ज़रा ज्यादा समझ गयी है।"

नानियों ने बात अविश्वास के साथ कहा—"माँ चिड़िया, इतनी कमजोर तो हमारी नजर अब भी नहीं हुई है। हमारे जान लड़कीवालों ने जरूर उमर कुछ दबाकर बताई है।

माँ बोलीं—"हम लोगों ने जन्मपत्री देखी है।'

"बात सच है, लेकिन जन्मपत्री से ही तो प्रमाणित होता है कि, लड़की की अवस्था सत्रह है।"

प्रवीणाओं ने कहा—"तो जन्मपत्री में क्या धोखा-धड़ी चलती नहीं ?" इस बात पर घोर बहस छिड़ गयी। यहाँ तक कि, तकरार की नौबत आ पहुँची। इसी समय वहाँ हेम आ पहुँची। किसी नानी ने उससे पूछा—"बहूरानी, तुम्हारी उमर क्या है बताओ तो भला ?" माँ ने आँखों से सैन किया; लेकिन हेम उसका मतलब नहीं। समझी बोली—"सत्रह।" माँ बेचैन होकर कह उठी—"तुम्हें मालूम नहीं है।" हेम बोली—"मालूम है। मेरी उमर ग्यारह है।"

नानियों ने चुपचुप एक-दूसरे के हाथ दबाये। वह की मूर्खता पर खीझकर माँ बोली—"तुम्हें तो सब मालूम है। तुम्हारे बाबूजी ने हमसे खुद कहा है कि, तुम्हारी उमर सत्रह है।" चौंककर हेम बोल उठी, बोली—"बाबूजी ने ? कभी नहीं।" माँ बोली—"तुमने तो हैरान कर दिया। समधी खुद मेरे सामने कह गये और चिड़िया कहती है, कभी नहीं।" यह कहकर माँ ने आँख से फिर सैन किया। अब की बार हेम इशारा समझ गयी। किन्तु उसने कण्ठस्वर को और भी दृढ़ करके कहा—"बाबूजी ऐसी बात कभी कह ही नहीं सकते।"

माँ ने आवाज को जरा दबाकर कहा—"तू मुझे झूठा ठहराना चाहती है ?" हेम ने कहा—"बाबूजी तो कभी झूठ नहीं बोलते।"

इसके बाद माँ जितना ही बकने-झकने लगीं, सियाही उतनी ही इधर-उधर फुलक कर सबको एकसार लीपने पोतने लगी। माँ ने नाराज होकर पिताजी के निकट अपनी बहू की मूढ़ता और उससे ज्यादा जिद की शिकायत दायर की। पिताजी ने हेम को बुलाकर धमकाते हुए कहा—"इतनी बड़ी अनब्याही लड़की की अवस्था सत्रह बरस की थी, यह क्या कोई बड़प्पन की बात है, जो उसका ढिंढोरा पीटती फिरोगी ? हमारे घर में यह सब नहीं चलेगा, कहे देता हूँ।" हाय रे भाग्य, बहूरानी के प्रति पिताजी का वह मधु-मिश्रित पंचम स्वर इस तरह उन्माद वाक्यों के घोर षड्ज तक कैसे उतर आया!

हेम ने व्यथित होकर पूछा—"अगर कोई उमर जानना चाहे, तो क्या बताऊँगी ?" पिताजी बोले—"झूठ बोलने की जरूरत नहीं। कह दिया करो, मुझे नहीं मालूम,

ग्वालियर रेयन सिल्क
मैन्यु फैक्चरिंग (वीविंग) कं. लि.
क्रेप प्लेन
क्रेप प्रिंट
जार्जेट
साटिन
चेक साटिन
शार्क स्किन
बेबी शार्कस्किन
पिग स्किन
शांटुंग
और
नाना प्रकार की सूटिंग
सब बडे शहरों की दुकानों पर प्राप्य
मैनेजिंग एजेंटस
बिड़ला ब्रदर्स (ग्वालियर) लि. ग्वालियर

मेरी सास जानती हैं।" इसके बाद झूठ किस तरह बचाया जाता है, इसका सारा उपदेश सुनने के पश्चात्, हेम कुछ इस तरह खामोश हो गयी कि, पिताजी को यह समझना बाकी न रहा कि, उनका सारा सदुपदेश बिल्कुल उल्टे घड़े पर पानी की तरह पड़ा।

हेम की दुर्गति पर दुख क्या प्रकट करूँ, उसके आगे तो मेरा सिर ही नीचा हो गया। मैंने देखा, शारदीय प्रभात के आकाश की तरह उसकी आँखों की वह सरल उदार दृष्टि मानो किसी मलाय की छाया से म्लान हो उठी। भीत हरिणी की तरह मानो उसने मेरे मुख की तरफ ताका और सोचा, मैं कदाचित् इन्हें नहीं पहिचानता।

[illegible]

उस दिन मैं एक मनोरम जिल्द बंधी हुई अंग्रेजी कविताओं की पुस्तक उसके लिये खरीदकर लेता आया था। उसने किताब अपने हाथों में थामी, फिर धीमे से गोद में रख कर एक बार भी खोलकर नहीं देखा। मैंने उसका हाथ अपने हाथों में लेकर कहा—'हेम, मुझपर नाराज न होना, मैं तो तुम्हारे सत्य के बंधन में बंधा हुआ हूँ। सुनकर वह कुछ न बोली, केवल तनिक सी हँस दी। विधाता ने वैसी हँसी जिसे दी है, उसे और कुछ भी कहने की जरूरत ही कहाँ?

इधर पिताजी की आर्थिक उन्नति के बाद कुछ दिनों से विधाता के उस अनुग्रह की चिरस्थायी कर रखने की गरज में हमारे यहाँ नये उत्साह से पूजा पाठ चल रहा था। आज तक पूजा-अर्चना में घर की वहू की कभी बुलाहट नहीं हुई। आज अचानक नयी बहू को पूजा का थाल सजाने का आदेश मिला। वह बोली—"माँ मुझे समझा दो, कैसे क्या करना होगा?

प्रश्न कुछ ऐसा न था, जिसे सुनकर किसी के सिर आसमान टूट पड़ता, क्योंकि यह तो सब लोग भली भांति जानते थे कि, मातृहीन लड़की प्रवास में ही बड़ी हुई है। तब भी इस आदेश का आशय तो केवल हेम को लज्जित करना ही था। सो सभी ने गाल पर हाथ धरकर कहा—'हाय रे, यह भला कैसी बात है! आखिर किस नास्तिक के घर की लड़की है? कहें, घर की लछमी अब इस गिरिस्ती से विदा होने ही वाली है।

देरी मत समझना"। और इसी प्रसंग में हेम के पिता को लक्ष्य करके जाने कितनी अकथनीय बातें कही गयीं। बदूक्तियों की हवा जबसे बहना शुरू हुई थी, तब से हेम आज तक बराबर चुप रहकर सब बर्दाश्त करती आ रही थी। कभी पल भर के लिए भी उसने किसी के सामने आँसू नहीं छलकाये। लेकिन आज ता उसके बड़े-बड़े नेत्रों का प्लावित करती हुई आँसुओं की झड़ी-सी लग गयी। वह खड़ी होकर बोल उठी—"आपको मालूम है, वहाँ मेरे बाबूजी को सब लोग ऋषि मानते हैं।"

ऋषि मानते हैं, सुनकर सब लोगों ने पेट भरकर हँस लिया। इस घटना के बाद जब उसके पिता का उल्लेख करना होता, तो सब लोग यही कहते, तुम्हारे 'ऋषि पिता'। इस लड़की की सबसे मर्म की जगह कौन सी है? इसे हमारे यहाँ सब ने अच्छी तरह जान लिया था। दरअसल मेरे श्वसुर ब्राह्म भी नहीं थे, न क्रिस्तान, और बहुत करके नास्तिक भी नहीं। पूजा-पाठ की बात कभी उनके ध्यान में ही नहीं आयी। लड़की को उन्होंने बहुत पढ़ाया था, सुनाया था, किन्तु भगवान् के संबंध में कभी कोई उपदेश नहीं दिया। इसी सिलसिले में पूछने पर उन्होंने इतना ही कहा था—"जिस विषय को मैं स्वयं नहीं जानता, उसे सिखलाना केवल कपट ही होगा।"

अन्तःपुर में हेम की एक सचमुच की भक्तिन थी, मेरी छोटी बहिन नारायणी। वह अपनी भाभी को प्यार करती थी, इसके लिये उसे काफी लाछना सहनी पड़ती। घर में हेम के अपमान की कहानी मुझे उसीसे सुनने को मिलती थी। हेम के मुह से कभी किसी दिन कुछ भी सुनने को नहीं मिला। सकोच के मारे यह सब उसके मुह से कभी निकलता ही न था। सकोच अपने लिये नहीं, मेरे ही लिए था। पिता के पास से वह जब जो चिट्ठी पाती, मुझे पढ़ने के लिये देती। ये चिट्ठिया छोटी होने पर भी रस से भरपूर होतीं। वह स्वयं भी जब उन्हें कुछ लिखती, तो मुझे जरूर दिखाती। पिता के साथ उसका जो नाता था, उसमें अपने साथ मुझे भी बराबर-बराबर भागी बनाये बिना उसका दाम्पत्य पूर्ण जो नहीं हो पाता। उसकी चिट्ठियों में ससुराल के सम्बध में किसी तरह की शिकायत का आभास भी न होता। यदि होता तो खतरे की सभावना थी, कारण बहिन से मैंने सुन लिया था कि, जाच के लिए बीच-बीच में उसकी चिट्ठिया खोली जाती हैं। इन चिट्ठियों में उसका कोई कुसूर साबित न होने से ऊपरवालों का मन शात हो, सो नहीं। बल्कि उम्मीद टूटने का दुःख ही शायद उन्हें ज्यादा टीसा करता था। अतएव बेहद चिढ़कर उन्होंने कहना शुरू किया—"आखिर इतनी जल्दी-जल्दी चिट्ठिया लिखने की ही भला कौनसी जरूरत है? मानो बाप

ही सब कुछ है। हम लोग क्या कोई नहीं?" और इसी सिलसिले में अप्रिय बातों का तांता शुरू हो गया। मैंने क्षुब्ध होकर हेम से कहा– 'तुम पिताजी को जो चिट्ठी लिखती हो, उसे और किसी को न देकर मुझे ही दे दिया करो, कालिज जाते हुए राह में छोड़ दिया करूंगा।

चकित होकर हेम ने पूछा–' क्या ? मैंने लाज के मारे जवाब नहीं दिया। किंतु घर में सबने कहना आरम्भ किया कि, अब लड़के के सिर चढ़ना शुरू हुआ है। बी ए की डिग्री अब ताक पर रखी रहेगी। आखिर उस बचारे का भला दोष ही क्या है ?

सो तो है ही। दोष अगर किसी का है, तो वह हेम का ही हो सकता है। उसकी उम्र सत्रह बरस की है, यह उसका पहला दोष है। मैं उसे प्यार करता हूँ, यह भी उसीका दोष है। विधाता का विधान ही ऐसा है, यह भी हेम का एक दोष है। इसीलिए तो मेरे हृदय के रोम रोम में समस्त आकाश इस तरह बांसुरी की तान साधे हुए है।

बी ए, की डिग्री को परम निर्विकार भाव से मैं चूल्हे में फेंक सकता था, लेकिन हेम के कल्याण की खातिर मैंने प्रण किया कि, मैं जरूर पास होऊंगा और अच्छी तरह ही पास होऊंगा। दो कारणों से मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर पाने का पूरा भरोसा था। एक तो हेम की प्रीति में कुछ ऐसा आकाशव्यापी विस्तार था कि, वह मन को संकीर्ण आसक्ति में अटकाकर नहीं रखती। उस प्यार के आसपास कोई खूब ही स्वास्थ्यकर हवा बहा करती थी। दूसरे परीक्षा की किताब कुछ ऐसी थी जिन्हें हेम के साथ साथ पढ़ना असंभव न था। सो मैं कमर कसकर परीक्षा पार करने के उद्योग में जुट गया।

एक रोज रविवार की दोपहर को बाहर के कमरे में बैठा हुआ मैं मार्टिन की आचार शास्त्रावली पोथी की खास खास पंक्तियों के मध्यपथ को चीरते हुए लाल नीली पेन्सिल का हल चलाए जा रहा था कि, अचानक सामने की तरफ मेरी नजर जा पहुंची। कमरे के सामने आंगन के उत्तर की तरफ अंतपुर को जाने के लिये एक जीना था। इसी बंद जीने में बाहर की तरफ सींखचेदार खिड़कियाँ थीं। मैंने देखा, हेम उन्हीं किसी खिड़की के पास पश्चिम की तरफ ताकती हुई गुमसुम बैठी है। उस ओर मल्लिकों की बगिया है, जिसमें कचनार का पेड़ गुलाबी फूलों से सिर-से-पैर तक लदा खड़ा है। इस भाषाहीन गहरी पीड़ा के रूप को आज तक इतने सुस्पष्ट भाव से मैंने नहीं देखा था। खास कुछ भी नहीं, अपने कमरे से मैं किंचित पीछे की ओर दीवार के सहारे टिके उसके सिर की भंगी मात्र देख पा रहा था। मेरा अपना जीवन इस तरह लबालब भर उठा था कि, कहीं किसी प्रकार की भी कोई शून्यता मैंने आज तक लक्ष्य ही नहीं की

थी। आज अचानक अपने बिल्कुल ही पास मैंने किसी वृहत निराशा का अथाह गड्ढा देखा था। इस तलहीन गव्हर को मैं क्योंकर, काहे-से भर सकूंगा? मुझे तो जीवन में कुछ भी त्यागना नहीं पड़ा। न घर, न द्वार और न आज तक का कोई अभ्यास ही। किन्तु हेम को तो सभी पीछे छोड़कर और दूर ठेलकर ही मेरे पास आना पड़ा इसका परिमाण कितना अधिक है, सो मैंने कभी भली-भाँति मापा भी नहीं। हमारे घर में अपमान के काँटों की सेज पर वह बैठी है। उसे क्या हमने आपस में बाँट लिया है। उस पीड़ा में हम दोनों एक-दूसरे से मुक्त थे, उसने हमें न्यारा नहीं किया। किन्तु पहाड़ों में फैली हुई वह गिरिनन्दिनी सत्रह वर्ष की लम्बी अवधि तक अपने बाहिरी और भीतरी जीवन में कैसी विशाल मुक्ति के बीच पली है? कैसे निर्मल सत्य और उदार आलोक में उसकी प्रकृति इस तरह ऋजु, शुभ्र और सबल हो उठी है? उस समूचे वैभव से आज हम का नाता किस तरह निरतिशय और निष्ठुर रूप में तोड़ दिया गया है, इस बात का पूरी तरह आज से पहले मैंने कभी अनुभव ही नहीं किया था। कारण उस जगह हेम के साथ मेरा आसन बराबरी में नहीं था। वह तो भीतर-ही-भीतर पल-पल तिल-तिल करके मृत होती जा रही थी। उसे मैं सब दे सकता था; लेकिन मुक्ति नहीं, मुक्ति मेरे अपने ही अंतर में कहाँ है? इसीलिए कलकत्ते की इस सकरी गली में खिड़की की तीलियों के भीतर से मूक आकाश के साथ उसके मूक जी की बातचीत हुआ करती। किसी दिन अचानक रात को उठकर मैंने देखा, वह बिछौने पर नहीं है। हाथों पर सिर को थामकर तारों से भरपूर आकाश की ओर मुंह उठाये वह छत पर लेटी है।

मार्टिनो का चरित्र वहीं पड़ा रह गया। मैं सोचने लगा कि, मेरा कर्तव्य क्या है। बचपन से ही पिताजी के साथ मेरे सम्बंध में संकोच की सीमा नहीं थी। आमने-सामने खड़े होकर कभी उनसे किसी चीज की दरख्वास्त कर सकने की न तो मेरी आदत ही थी, न हिम्मत ही। लेकिन आज मुझसे रहा नहीं गया। लाज-शरम को ताक पर धरकर मैं उनसे कह बैठा—"उसकी तबीयत कुछ अच्छी नहीं है, न हो एक बार पिता के यहाँ भेज देना अच्छा होगा।"

सुनकर पिताजी तो हतबुद्धि हो गये। उनके मन में इस बात का तनिक भी संदेह न रहा कि, हेम ने ही मुझमें यह अभूतपूर्व हौसला उकसाया है और सिखा-पढ़ाकर दरबार में भेजा है। वे चटपट उठकर अंतःपुर में गये और हेम से पूछा—"मैं कहूँ, बहू, तुम्हें क्या बीमारी है, बताना तो सही?" हेम बोली—"कहाँ, बीमारी-बीमारी तो कुछ नहीं है।" पिताजी ने सोचा, जवाब तेज दिखाने के लिये है। लेकिन हेम की देह जो प्रतिदिन सूखती जा रही थी, सो रोजमर्रा देखते रहने के

कारण हमलोग समझ भी नहीं पाते थ। एक दिन अचानक वनमाली बाबू ने उसे देखा, तो चौंक पड़े। वे बोले–"एँ, यह क्या? तेरा मुँह यह ऐसा-कैसा हो गया है? हेमी! बीमार तो नहीं है?' हेम ने कहा–"नहीं," लेकिन इस घटना के बाद दसेक दिन के भीतर ही, न बात, न चीत, अचानक मेरे ससुर आ पहुँचे। अवश्य ही वनमाली बाबू ने हेम की तबीयत की बात उन्हें लिख दी होगी।

विवाह के बाद बाप से विदा लेते समय लड़की ने अपने आँसू रोक लिये थे। किन्तु आज जैसे ही उन्होंने उसकी ठोडी छूकर मुँह ऊपर को उठाया कि, हेम के आँसुओं ने सब बरजना जैसे एकबारगी भुला ही दिया। पिता के मुँह से आधी बात भी न निकली। वे इतना भी न पूछ पाये कि, तू कैसी है? लड़की के मुख पर उन्होंने ऐसी बात देखी कि, उनकी छाती टूकटूक हो गयी। हेम पिता का हाथ पकड़कर उन्हें सोने के कमरे में लिवा ले गयी। कितनी ही बातें तो पूछने की हैं, पिताजी की तबीयत भी तो ठीक नहीं जान पड़ती।

हेम अपने पिता के साथ जाने को तत्पर हो गयी। वनमाली बाबूने भी समधी से इस बात का संकेत किया, किन्तु अन्ततः बात मेरे पिता की रही और हेम अपनी आकांक्षा पूरी करने से बाज रह गयी।

पिता पुत्री की विदा का मुहूर्त एक बार फिर आ पहुँचा। बेटी न हँसते हँसते ही भर्त्सना के सुर में कहा–'बाबूजी, अगर फिर कभी तुमने मेरे लिये पागल की तरह बेतहाशा दौड़ते हुए इस घर में पाँव रखा, तो मैं दरवाजा बंद कर लूँगी। पिताने भी हँसते हँसते ही कहा–'अगर फिर कभी आया, तो साथ में सेंध लगाने के औजार भी लेता आऊँगा।" इसके बाद हेम के मुँह की हमेशा की वह स्निग्ध हँसी फिर कभी देखने को नहीं मिली।

फिर क्या हुआ सो मुझसे कहा नहीं जायेगा।

सुनता हूँ, माँ फिर उपयुक्त पात्री की तलाश में हैं। शायद किसी दिन माँ के अनुरोध की अवहेलना मुझसे न हो सके यही संभव है, क्योंकि खैर, खैर, छोड़िये भी उन बातों को!

★

## एक मिनट की महिमा

एक वैज्ञानिक ने हिसाब लगाकर बताया है कि, संसार में प्रति मिनट–५४४० बच्चे पैदा होते हैं, ४६३० आदमी मरते हैं, लोग ८३५००० प्याले चाय-कॉफी पीते हैं, १२७० टन तम्बाकू सिगरेट आदि के रूप में स्वाहा करते हैं, तथा ११७०० पत्र और १९१७ तार भेजे जाते हैं। —आनंद

✶

# हृदयवान

★

यूरोप के एक कलाकार हैं, पिकासो! समझा जाता है कि, वे घोर अहंवादी व्यक्ति हैं, जो जन साधारण तक पहुँचने का बिल्कुल प्रयास नहीं करते। किंतु वास्तविकता कुछ और है। नाजी-अन्याय की विभीषिका उनके 'गुअरनिका' नामक प्रसिद्ध चित्र में इतनी सजीव हो उठी है कि, कोई भी कल्पना प्रवण व्यक्ति उसे देखकर बिना सिहरे नहीं रह सकता। नाजी लुटेरे जब पिकासो की चित्रशाला में घुसे, तो वहाँ उन्होंने वह चित्र पाया। गुस्से से काँपते हुए उन्होंने पिकासो से पूछा—"क्या यह तुम्हारी करतूत है?" "नहीं तुम्हारी—" पिकासो ने निर्भीकता से उत्तर दिया!

पिकासो

किंतु अन्याय के सम्मुख सदैव वज्रवत् पिकासो स्नेह के मामले पर सहृदय भी कितने हैं। जरा इस घटना को देखिये! एक बार पिकासो के एक बहुत प्रिय शिष्य का विवाह हुआ। वर-वधू को सब ने कुछ-न-कुछ भेंट दी, किंतु पिकासो ने कुछ भेंट नहीं दिया। सब को आश्चर्य भी हुआ। किंतु जब वर-वधू गिरजे से बाहर निकले, तो पिकासो उन्हें मोटर पर लेकर एक नये मकान पर पहुँचे। "यह तुम लोगों के रहने के लिए एक 'फ्लैट' है"—कहकर उन्होंने जो ताला खोला और वर-वधू अंदर गये तो आश्चर्य-चकित रह गये। प्रत्येक दीवार पर पिकासो की तूलिका के भव्य चमत्कार अंकित थे। यह 'फ्लैट' उन्होंने चुपके-चुपके अपने प्रिय शिष्य और उसकी वधू के लिए तैयार किया था।

—अनंतकुमार 'पाषाण'

★

## अगणित जिह्वाएं

—साधु की एक जीभ रहती है, सर्प की दो, ब्रह्मदेव की चार, अग्नि की सात, कार्तिकेय स्वामी की छः और रावण की दस, शेष की दो हजार जीभें रहती हैं; पर दुर्जन-मुख में रहने वाली जीभों की संख्या अनगिनत है—सौ, हजार, लाख या करोड़—कोई कुछ नहीं कह सकता। —सुभाषित

★
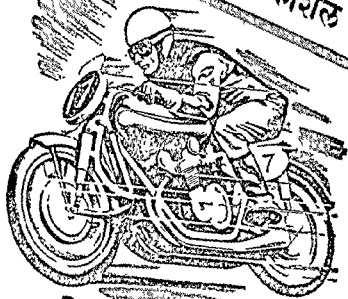
रोमाञ्चपूर्ण कौशल
7
MEDIUM
कैप्स्टैन
दूसरों से मीलों आगे
क्यों न कैप्स्टैन खरीदें
इसका मिश्रण अच्छा है

## बाल भारती

नन्हे मुन्नों की सचित्र मासिका जिसमें सरल भाषा में प्रेरणादायक कहानियां, मीठी मीठी कविताएं, उपयोगी लेख और रेखा-चित्र प्रस्तुत किए जाते हैं। वार्षिक मूल्य ४); एक प्रति ।=)

## आजकल

हिन्दी की इस सर्वप्रिय सचित्र मासिका में विचारपूर्ण लेख तथा विख्यात कथाकारों और कवियों की कृतियां पढ़िए। 'आजकल' से सयुक्त 'विश्वदर्शन' में अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर निष्पक्ष लेख प्रस्तुत किए जाते हैं। वार्षिक मूल्य ६); एक प्रति ।।)

## प्रसारिका

(सचित्र त्रैमासिक)

'प्रसारिका' (रेडियो सग्रह) आकाशवाणी के हिन्दी केंद्रों से प्रसारित उच्च कोटि की चुनी हुई वार्ताओं, कविताओं तथा कहानियों आदि का त्रैमासिक सग्रह है। सुन्दर गेट-अप की इस सचित्र पत्रिका का मूल्य ८ आना है। वार्षिक मूल्य २)

एक से एक उत्तम
इसके चुरमुरेपन से पहले ही आपको मालूम हो जायेगा कि ब्रिटेनिया बिस्कुट खास तरह के हैं, इनका सानी नहीं। ये बिस्कुट विशेषज्ञ बनाते हैं और ऐसी सामग्री से जिसकी विशुद्धता और उत्तमता पहले ही जाँच ली जाती है। स्वादिष्ट तो होते ही हैं, साथ ही पुष्टिकारक भी। बच्चे बहुत पसन्द करते हैं आप भी बेशक पसन्द करेंगे।
बढ़िया बिस्कुट
ब्रिटेनिया
BBX 33 H ND
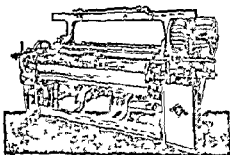
मॉर्टन की
मिठाईयां क्यों श्रेष्ठ
बनती हैं —
उत्कृष्ट सामग्री
आधुनिक मशीनें
शीत ताप नियन्त्रित कारखाना
आदर्श स्वच्छ और स्वस्थ
वातावरण
कुशल कारीगर
मार्टन की मिठाइयां
निराली
भारतीय उद्योग प्रदर्शनी नई दिल्लीमें कृपया हमारे स्टाल नं० बी ७१ पर पधारिये
(२९ अक्टूबरसे १५ दिसम्बर सन् १९५५ तक

नयनाभिराम
CENTURY
विशेषताएं हैं।
बिड़ला ब्रदर्स लि०

बड़े दानेवाली सफेद चमकदार चीनी के लिए
प्रख्यात
श्री लक्ष्मीजी शुगर मिल्स क लि
मझोली
श्री अजुध्या शुगर मिल्स क लि
राजा का सहसपुर
मुरादाबाद
और
सर्वाधिक टिकाऊ
एवं सस्ती
शर्टिंग, कोटिंग, धोतियों
व
चादरों
के
लिए
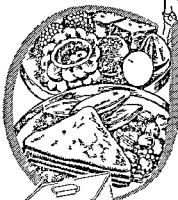
मोहक
रुचिकर
तृप्ति-पूर्ण
आपके बनाए भोजन भी
इसी तरह के होंगे—
आप भी
वनस्पदा
वनस्पति मे पकाइए
बरार आयल इण्डस्ट्रीज—अकोला
Vanasda
ASP V8/54

---

श्री रतनलाल जोना द्वारा 'नवनीत प्रकाशन' लि०, ३४१, तारदेव, बम्बई ७, के लिए प्रकाशित तथा एसोसियेटेड एडवर्टाइजर्स ऐंड प्रिंटर्स लि०, ५०५, आर्थर रोड, बम्बई में मुद्रित